कानों सुनी सो झूठ सब

भगवान श्री रजनीश

"ध्यान मृत्यु है। सूली अपने कंधे पर लेकर
जो चले, वही संन्यासी है। जो अहंकार के जगत
में प्रतिपल मरने को तैयार रहे, वही संन्यासी है।
तो जो परमात्मा से प्रार्थना करे कि प्रभु, मुझे
मिटाओ। अब बहुत हो गया यह खेल। अब
डुबाओ। क्योंकि यह कुछ मामला ऐसा है कि
जो डूबते हैं, वही किनारे लगते हैं।"
--भगवान श्री रजनीश
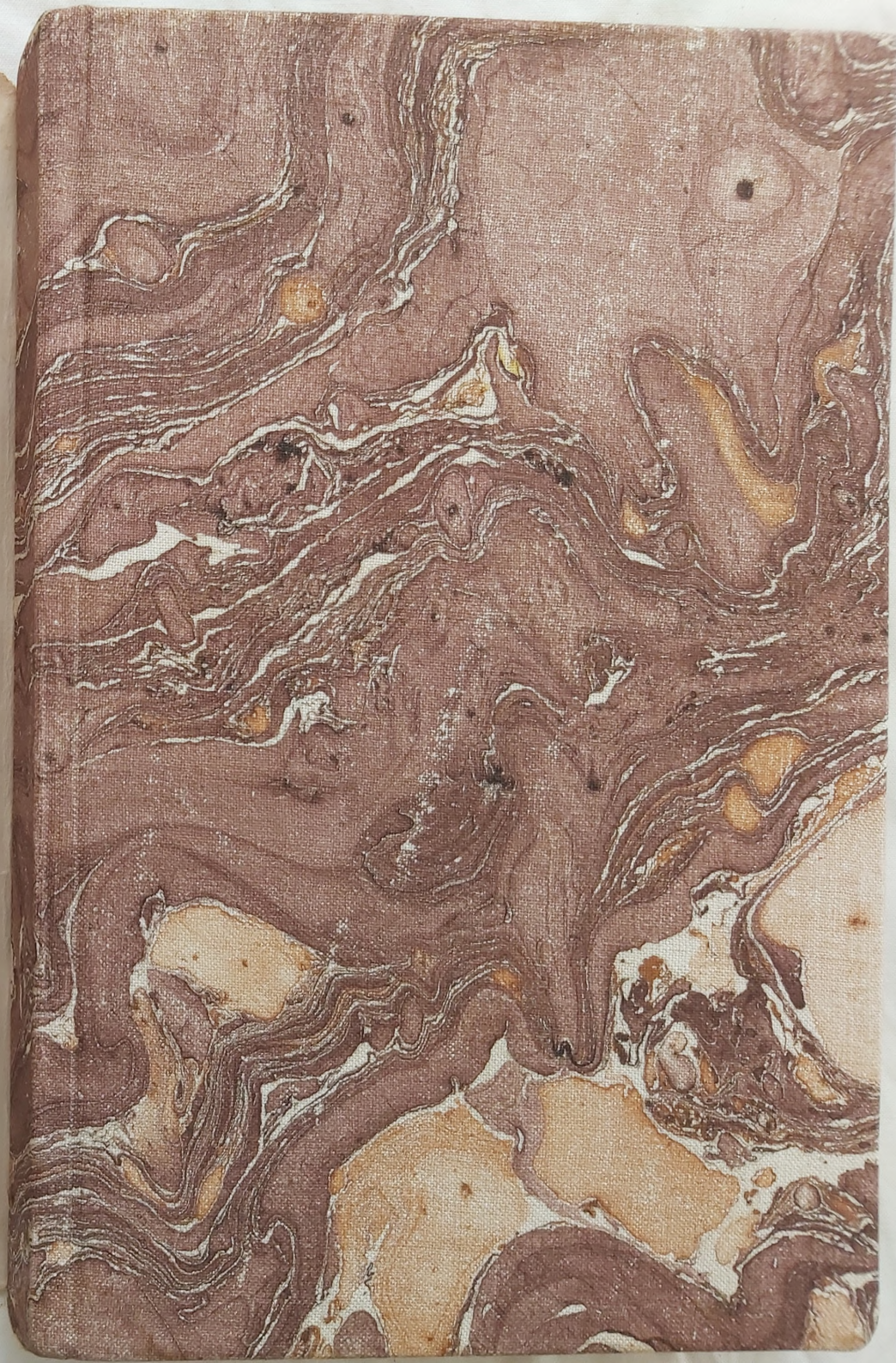
कानों सुनी सो झूठ सब

(दरिया-वाणी)
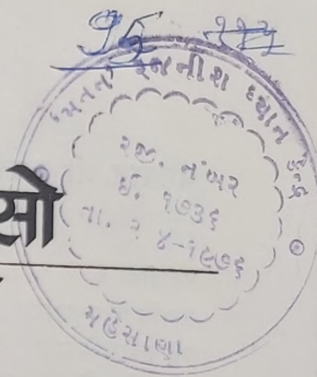
भगवान श्री रजनीश का नव-प्रकाशित साहित्य

महागीता ६
समाधि के सप्तद्वार
कहै कबीर दिवाना
कहै कबीर मैं पूरा पाया
नहीं सांझ नहीं भोर
अजहूं चेत गंवार
कठोपनिषद्
कैवल्य उपनिषद्
सर्वसार उपनिषद्
ताओ उपनिषद् भाग १
मैंने राम रतन धन पायो
कन थोरे कांकर घने

कानों सुनी सो झूठ सब

भगवान श्री रजनीश

सम्पादन
मा अमृत साधना

संकलन
मा कृष्ण प्रिया

आवरण-सज्जा
स्वामी आनंद अर्हंत

रजनीश फाउंडेशन प्रकाशन, पूना
१९७८

प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी
सचिव, रजनीश फाउंडेशन
श्री रजनीश आश्रम
१७, कोरेगांव पार्क
पूना—४११००१

मूल्य : ५० रुपये
प्रति : ३,०००

मुद्रक
गो. आ. जोशी
के. जोशी एंड कं.
ब्लॉक मेकर्स एंड आर्ट प्रिंटर्स
निकट भिकारदास मारुति टेंपल
पूना ४११०३०

एक झलक

'गीत अपने अब नहीं कुंआरे रहे
मीत के स्वर से भंवर कर आ गये'

"अध्यात्म की खोज में सद्‌गुरु की खोज सबसे बड़ी है। परमात्मा से भी महत्वपूर्ण है सद्‌गुरु की खोज, क्योंकि परमात्मा से तो सीधे तुम जुड़ ही न पाओगे। कोई खिड़की, कोई द्वार चाहिये होगा। परमात्मा तो सब तरफ मौजूद है। मौजूद ही है, उसे क्या खोजना है? लेकिन मौजूद है, पर तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता तो गैर-मौजूद है। तुम्हारे लिए तो मौजूद तभी होगा जब तुम परमात्मा जैसे किसी व्यक्ति से मिल बैठोगे। जब दो दिल एक होंगे, किसी ऐसे व्यक्ति—जिसके लिए परमात्मा मौजूद हो गया है, उस जोड़ में ही तुम्हारे लिये भी मौजूद होगा; उसके पहले नहीं मौजूद होगा।"

"मिलन प्रेमजी महाराज का—जिंदगी बदल गयी दरिया की। खोज समाप्त हो गयी। जैसे प्यासे को पानी मिल गया। एक छोटी सी नजर ने क्रांति उपस्थित कर दी।"

"फिर दरिया कुंआरे नहीं रहे। गांठ जुड़ गयी, गुरु से मिलन हो गया। वह परम विवाह हो गया जिसके बाद फिर एक ही मंजिल और रह जाती है—परमात्मा के मिलन की।"

"उन वचनों को, दरिया के, बुद्धि से समझोगे तो चूकोगे। हृदय से समझना। तरंगित होना इनके साथ। एक गैर-पढ़े-लिखे आदमी के, लेकिन बड़े प्यारे वचन हैं। उपनिषद् और वेद भी स्पर्धा करें, ऐसे वचन हैं। क्योंकि पढ़े-लिखे

होने से क्या संबंध है ? हृदय में जब घटना घटती है तो टूटे-फूटे शब्द भी स्वर्णमंडित हो जाते हैं। जिसके पास कहने को कुछ है, वह किन्हीं भी शब्दों में कहे, वे शब्द स्वर्णमंडित हो जाते हैं।

— भगवान श्री रजनीश

95

अनुक्रम —

१. सतगुरु किया सुजान १
२. रंजी सास्तर ग्यान की ३१
३. सूर न जाने कायरी ६५
४. सुख-दुख से कोई परे परम-पद ९७
५. अनहद में बिसराम १३१
६. शून्य-शिखर में गैब का चांदना १६५
७. दरिया लच्छन साध का १९९
८. निहकपटी निरसंक रहि २३३
९. पारस परसा जानिये २६७
१०. मीन जायकर समुंद समानी ३०३
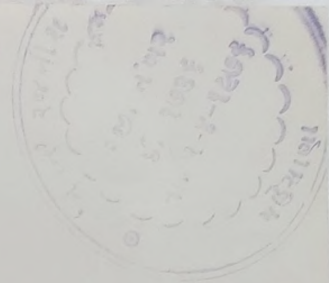
सतगुरु किया सुजान

प्रवचन : १
दिनांक : ११।७।१९७७
श्री रजनीश आश्रम, पूना
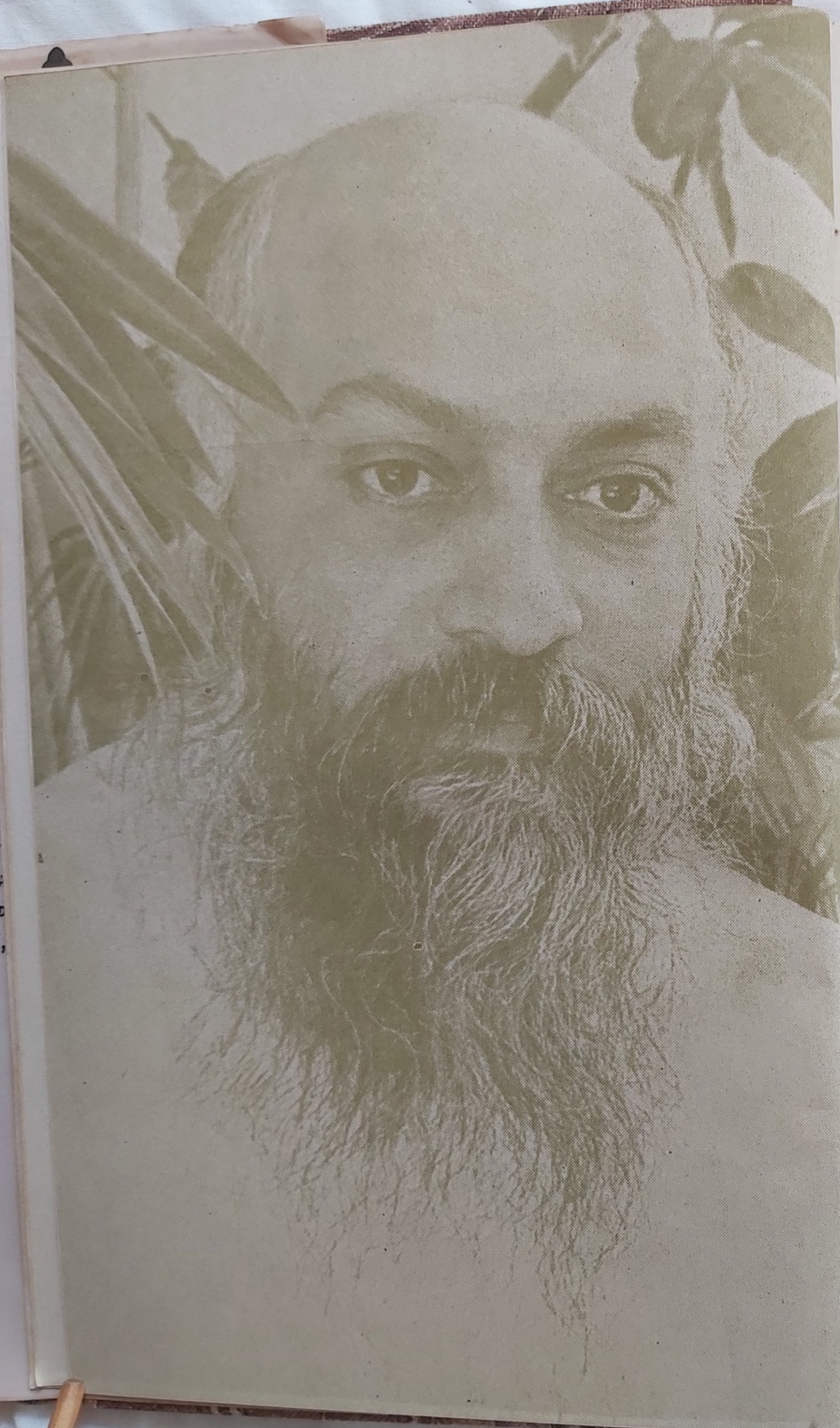
जन दरिया हरिभक्ति की, गुरां बताई बाट।
भूला उजड़ जाय था, नरक पड़न के घाट।।
नहिं था राम रहीम का, मैं मतिहीन अजान।
दरिया सुधबुध ग्यान दे, सतगुरु किया सुजान।।
सतगुरु सब्दां मिट गया, दरिया संसय सोग।
औषध दे हरिनाम का, तन मन किया निरोग।।
रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय।
सतगुरु एकहि सब्द से, दीन्ही तुरत उड़ाय।।
जैसे सतगुरु तुम करी, मुझसे कछू न होय।
विष-भांडे विष काढ़कर, दिया अमीरस मोय।।
सब्द गहा सुख ऊपजा, गया अंदेसा मोहि।
सतगुरु ने किरपा करी, खिड़की दीन्हीं खोहि।।
पान बेल से बीछुड़ै, परदेसां रस देत।
जन दरिया हरिया रहै, उस हरी बेल के हेत।।
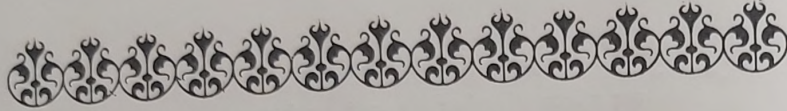
अथातो प्रेम जिज्ञासा ! अब प्रेम की जिज्ञासा। अब पुनः प्रेम की बात। दो ही बातें हैं परमात्मा की--ध्यान की या प्रेम की। दो ही मार्ग हैं-- या तो शून्य हो जाओ या प्रेम में पूर्ण हो जाओ। या तो मिट जाओ समस्त-रूपेण, कोई अस्मिता न रह जाये, कोई विचार न रह जाये, कोई मन न बचे ; या रंग लो अपने को सब भांति प्रेम में, रत्ती भी बिना रंगी न रह जाये।

तो या तो शून्य से कोई पहुंचता है सत्य तक, या प्रेम से। संत दरिया प्रेम की बात करेंगे। उन्होंने प्रेम से जाना। इसके पहले कि हम उनके वचनों में उतरें... अनूठे वचन हैं ये। और वचन हैं बिलकुल गैर-पढ़े-लिखे आदमी के। दरिया को शब्द तो आता नहीं था ; अति गरीब घर में पैदा हुए--धुनिया थे, मुसलमान थे। लेकिन बचपन से ही एक ही धुन थी कि कैसे प्रभु का रस बरसे, कैसे प्रार्थना पके। बहुत द्वार खटखटाये, न मालूम कितने मौलवियों, न मालूम कितने पंडितों के द्वार पर गये लेकिन सबको छूंछे पाया। वहां बात तो बहुत थी, लेकिन दरिया जो खोज रहे थे, उसका कोई भी पता न था। वहां सिद्धांत बहुत थे, लेकिन दरिया को शास्त्र और सिद्धांत से कुछ लेना न था। वे तो उन आंखों की तलाश में थे जो परमात्मा की बन गयी हों। वे तो उस हृदय की खोज में थे, जिसमें परमात्मा का सागर लहराने लगा हो। वे तो उस आदमी की छाया में बैठना चाहते थे जिसके रोएं-रोएं में प्रेम का झरना बह रहा हो। सो, बहुत द्वार खटखटाये लेकिन खाली हाथ लौटे। पर एक जगह गुरू से मिलन हो ही गया।

जो खोजता है वह पा लेता है। देर-अबेर गुरू मिल ही जाता है। जो बैठे रहते हैं उन्हीं को नहीं मिलता है ; जो खोज पर निकलते हैं उन्हें मिल ही जाता है। और खयाल रखो, ठीक द्वार पर आने के पहले बहुत से गलत द्वारों पर खटखटाना ही पड़ता है। यह भी अनिवार्य चरण है खोज का। जब तुम खोज लोगे तब तुम पाओगे कि जो गलत थे उन्होंने भी सहारा दिया। गलत को गलत की तरह पहचाना लेना भी तो ठीक को ठीक की तरह पहचानने का कदम बन जाता है।

तो गये बहुत द्वार-दरवाजों पर। जहां जहां खबर मिली वहां गये। लेकिन बात तो बहुत पायीं, सिद्धांत बहुत पाये, शास्त्र बहुत पाये ; सत्य की कोई झलक न मिली। पर मिली, एक जगह मिली। और जिसके पास मिली, उस आदमी का क्या नाम था यह भी ठीक ठीक पक्का पता नहीं है। उस आदमी के तन-प्राण ऐसे प्रेम में पगे थे कि लोग उन्हें 'संत प्रेमजी महाराज 'ही कहने लगे थे। इसलिए उनके ठीक नाम का कोई पता नहीं है। पहुंचते ही बात हो गई।

क्षण भर भी देर नहीं होती। आंख खोजनेवाली हो, आंख खोजी की हो तो जहां भी रोशनी होगी वहां जोड़ बठ जायेगा, बिठाना नहीं पड़ता; बिठाये बिठाना पड़े तो फिर बैठा ही नहीं। बिठाये बिठाये कभी बैठता ही नहीं।

गुरु का मिलन तो प्रेम जैसा है। जैसे किसी को देखते ही प्रेम उमड़ आता है। अवश ! तुम्हारा कुछ उपाय नहीं है ; असहाय हो। कहते हो, बस हो गया प्रेम। ऐसी ही गुरु की भी दृष्टि है। यह आखिरी प्रेम है। और सब प्रेम तो संसार में ले आते हैं ; यह प्रेम संसार के बाहर ले जाता है। यह प्रेम की पराकाष्ठा है। और सब प्रेम तो अतंतः शरीर पर ही उतार लाते हैं ; यह प्रेम शरीर के पार ले जाता है। और सारे प्रेम तो स्थूल हैं ; यह प्रेम सूक्ष्म का प्रेम है। ... इस एक संत को देखकर बात हो गई। एक क्षण में हो गयी, बिजली कौंध गयी।

यह प्रेमजी महाराज दादू दयाल के शिष्य थे--संत दादू के शिष्य थे। और संत दादू ने अपने मरते समय खाट पर आंखें खोली थी। सौ साल पहले .. दरिया से सौ साल पहले संत दादू हुए। मरते वक्त शिष्य इकट्ठे थे, दादू ने आंखें खोली और जो कहा वह अजीब सी बात थी, भविष्यवाणी थी। मरते दादू ने कहा था :

देह पड़न्ता दादू कहे, सौ बरसां एक संत।
रैन नगर में परगटे, तारे जीव अनंत ॥

दरिया का जन्म सौ साल बाद हुआ, रैन नगर में हुआ।

संत प्रेमजी महाराज दादू के शिष्य थे। इस बात की पूरी-पूरी संभावना है कि दादू ने जो घोषणा की थी वह दरिया के संबंध में ही थी। क्योंकि दादू के ही एक प्रेमी से फिर द्वार मिला। दादू-पंथी तो मानते हैं कि दरिया दादू के ही अवतार हैं। एक अर्थ में ठीक भी है क्योंकि जो दादू ने कहा, जिस प्रेम की महिमा दादू ने गायी है, उसी महिमा को दरिया ने भी गाया है। एक अर्थ में प्रेम के सभी अवतार प्रेम के ही अवतार हैं। व्यक्तियों के थोड़े ही अवतरण होते हैं, सत्यों के अवतरण होते हैं।

देह पड़न्ता दादू कहे ... गिरती थी देह, जाती थी देह, आखिरी घड़ी आ गयी थी, यमदूत द्वार पर खड़े थे, और दादू ने कहा : 'देह पड़न्ता दादू कहे'..।

गिरती है मेरी देह, मगर गिरते समय एक घोषणा किये जाता हूं--सौ बरसां एक संत... सौ बरस बाद आयेगा एक संत ; रैन नगर में परगटे, तारे जीव अनंत। बहुत लोगों का उससे उद्धार होगा। रोते हुए शिष्यों को कहा था कि घबड़ाओ मत मेरे जाने से कुछ जाना नहीं हो जाता, कोई और भी आनेवाला है, प्रतीक्षा करना।

फिर दरिया का आगमन--एक धुनिया के घर में, एक मुसलमान धुनिया। लेकिन बचपन से एक ही रस, एक ही लगाव। न स्कूल गये, न भेजे गये स्कूल, न कुछ पढ़ा, न लिखा। हस्ताक्षर भी कर नहीं सकते थे। जैसा कबीर ने कहा है, 'मसी कागद छुओ नहीं'--कभी कागज छुआ नहीं, स्याही छुई नहीं, ठीक वैसे ही, ठीक कबीर जैसे ही।

कहा है दरिया ने : 'जो धुनिया तो भी मैं राम तुम्हारा'। माना कि धुनिया हूं, कुछ पढ़ा-लिखा नहीं, कुछ सूझ-बूझ नहीं है, अज्ञानी हूं--इससे क्या फर्क पड़ता है! 'जो धुनिया तो भी मैं राम तुम्हारा' लेकिन हूं तो तुम्हारा !

भक्त कहता है, मैं क्या हूं यह तो बात ही व्यर्थ है; तुम्हारी कृपा-दृष्टि मेरी तरफ है, बस सब हो गया। अहंकारी और भक्त का यही भेद है। अहंकारी कहता है मैं कुछ हूं, देखो पढ़ा-लिखा हूं, धनी हूं, पद-प्रतिष्ठा है, चरित्रवान हूं, त्यागी हूं, ऐसा हूं, वैसा हूं। अहंकारी दावा करता है। भक्त कहता है : जो धुनिया ... मैं तो धुनिया, मैं तो कुछ भी नहीं, मेरी तरफ तो कोई गुणवत्ता नहीं है, 'तो भी मैं राम तुम्हारा'। लेकिन मेरी इतनी गुणवत्ता है कि मैं तुम्हारा हूं। और यह बड़ी से बड़ी गुणवत्ता है, अब और क्या चाहिये? इससे ज्यादा मांगना भी क्या है, इससे ज्यादा होना भी क्या है? इतना ही हो जाये कि तुम राम की तरफ हो जाओ, तो तुम्हारे अंधेरे में रोशनी आ जायेगी। इतनी धारणा ही बनने से सब क्रांति घट जाती है, सारा पलड़ा बदल जाता है।

देखा प्रेमजी महाराज को और घटना घट गयी। खोजते थे ...

कोई दिल-सा दर्दआशना चाहता हूं
रहे इश्क में रहनुमा चाहता हूं

प्रेम के रास्ते पर कोई पथप्रदर्शक खोजते थे।

कोई दिल-सा दर्दआशना चाहता हूं
रहे इश्क में रहनुमा चाहता हूं

गये बहुत पंडितों के पास, लेकिन प्रेम के मार्ग पर पंडित से क्या रोशनी मिले! थोथे शब्दों का जाल! दीवानगी नहीं, मस्ती नहीं, मदिरा नहीं। और भक्त शराब की बातें करने में उत्सुक नहीं होता, भक्त शराब पीने में उत्सुक होता है। पंडित शराब की बातें करते हैं, विश्लेषण करते हैं, चर्चा करते हैं, पीते इत्यादि

कभी नहीं। कंठ को कभी शराब ने छुआ ही नहीं, आंख से कभी आंसू नहीं ढलके और न कभी पैरों में घूंघर बंधे, न कभी नाचे मस्त होकर, न कभी गुनगुनाये, कभी अपने को डुबाया नहीं। सारा पांडित्य अहंकार की सजावट है, शृंगार है।

जैसे ही देखा प्रेमजी महाराज को, कोई कली खिल गयी, बंद कली खिल गयी।

ऐसा बहुत बार हुआ है मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन के इतिहास में। अगर कोई व्यक्ति बुद्ध के चरणों में बैठा हो और बुद्ध से कुछ सीखा हो, कुछ पाठ लिया हो, फिर बुद्ध विदा हो जाये--तो यह व्यक्ति उस पाठ को अपने भीतर दबाये हुए, अपने अचेतन में संभाले हुए भटकता रहेगा, खोजता रहेगा; जब तक इसे फिर कोई बुद्ध जैसा व्यक्ति न मिल जाये, तब तक इसकी चिनगारी दबी रहेगी। बुद्ध जैसे व्यक्ति के पास आते ही लौ प्रगट हो जायेगी। पास आते ही! सन्निकट मात्र--और भभककर जलने लगेगी रोशनी। कोई व्यक्ति अगर कृष्ण के पास रहा हो तो जन्मों-जन्मों तक वह फिर उन्हीं की तलाश करेगा--जाने-अनजाने, होश में बेहोशी में, जागते-सोते, वह कृष्ण को टटोलेगा। और जब तक कोई कृष्ण जैसा व्यक्ति फिर उसके पास न आ जाये तब तक उसका दिया बुझा रहेगा।

मेरे देखे दरिया दादू के शिष्यों में एक रहे होंगे। मैं ऐसा नहीं कहता कि दादू के ही अवतार हैं, क्योंकि दादू का क्या अवतार होगा! जो जाग गये वो गये, उनका फिर अवतार नहीं। फिर लौटना नहीं होता। तो मैं दादू-पंथियों से कहूंगा कि ऐसा मत कहो कि दादू का अवतार। इतना ही कहो कि उसी प्रेम का अवतार जिसके अवतार दादू थे। लेकिन दादू का ही अवतार मत कहो। क्योंकि दादू तो गये सो गये। गीत वही है, धुन वही है, सुर वही है। फूल ठीक वैसा ही है--वही गंध, वही रंग। लेकिन यह मत कहो कि वही फूल है, वैसा ही है। क्योंकि दादू तो गये।

यह दादू को उस दिन, उनकी मृत्यु-शैय्या पर घेरकर जो शिष्य खड़े होंगे, उनमें से ही कोई हैं। ये उसी को चेताने के लिए वचन कहे होंगे :

देह पडन्ता दादू कहे, सौ बरसां एक संत।
रैन नगर में परगटे, तारे जीव अनंत॥

यह बीज-मंत्र उस भीड़ में खड़े हुए किसी शिष्य के लिए कहा होगा।

बहुत बार तुमसे बातें कही गयी हैं जो तुमने सुनी नहीं हैं। बहुत बार तुमसे बातें कही गयी हैं जो तुमने समझी नहीं हैं। और वे बातें कभी पूरी होती रहेंगी। एक बार भी जो किसी सदगुरु के निकट आ गया, अब जन्मों-जन्मों की सारी यात्रा इसी निकटता में ही चलेगी। सद्गुरु रहे कि जाये, देह में रहे कि देह से

मुक्त हो जाये, लौटे; कि न लौटे; लेकिन जो एक बार किसी सद्‌गुरु से जुड़ गया, यह नाता कुछ ऐसा है कि जनम-जनम का है। यह गांठ बंधती है तो फिर खुलती नहीं। यह गांठ खुलनेवाली गांठ नहीं है। जुड़े ही न तो बात अलग लेकिन जुड़ जाये तो फिर जन्मों-जन्मों तक साथ चलता है।

घूमते रहे दरिया, बहुत लोगों के पास गये; लेकिन फिर दादू के ही एक भक्त, जहां दादू जैसी ही रोशनी थी, जहां दादू ही जैसे पुनः प्रगट हो रहे थे, वहां ज्योति जग गई। वहां बुझा दिया एकदम दमक उठा, दीप्ति आ गयी।

खिली हो कितनी कोई, खिले वीरान में जैसे
निकल आयें नई बालें कुंआरे धान में जैसे
––ऐसे कुछ खिल गया भीतर।
निकल आयें नई बालें कुंआरे धान में जैसे
हां याद है किसी की वो पहली निगाह-ए-लुत्फ
फिर खूं को यूं न देखा रगों में रवां कभी
वह आंख प्रेमजी महाराज की, आंख से जुड़ते ही क्रांति कर गयी
हां याद है किसी को वे पहली निगाह-ए-लुत्फ
फिर खूं को यूं न देखा रगों में रवा कभी

जल गया जो जलना था। मिट गया जो मिटना था। होना था जो हो गया। कभी-कभी एक क्षण में, एक पल में हो जाती है बात––ठीक-ठीक व्यक्ति से मिलन हो जाये।

अध्यात्म की खोज में, सद्‌गुरु की खोज सबसे बड़ी है। परमात्मा से भी महत्त्वपूर्ण खोज है सद्‌गुरु की खोज, क्योंकि परमात्मा से तो सीधे तुम जुड़ ही न पाओगे। कोई खिड़की, कोई द्वार चाहिए होगा। परमात्मा तो सब तरफ मौजूद है। मौजूद ही है, उसे क्या खोजना है? इसे थोड़ा समझना। परमात्मा तो मौजूद ही है, उसे क्या खोजना है? लेकिन मौजूद है, पर तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता, तो तुम्हारे लिए तो गैर-मौजूद है। तुम्हारे लिए तो मौजूद तभी होगा जब तुम परमात्मा जैसे किसी व्यक्ति से मिल बैठोगे। जब दो दिल एक होंगे, किसी ऐसे व्यक्ति–– जिसके लिए परमात्मा मौजूद हो गया है, उस जोड़ में ही तुम्हारे लिये भी मौजूद होगा, उसके पहले नहीं मौजूद होगा। हां, एक बार दिख गया, एक बार खुल गयी खिड़की, उठा पर्दा, फिर कोई अड़चन नहीं है। फिर तो गुरु और परमात्मा में भेद ही नहीं रह जाता। फिर परमात्मा और गुरु एक के ही दो नाम हो जाते हैं।

कबीर ने कहा है:
गुरु गोविंद दोइ खड़े, काके लागूं पांव

बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताए

किसके छुऊं पैर? अब दोनों सामने खड़े हैं। बड़ी दुविधा हो गयी। पहले किसके पैर छुऊं? गुरु के छुऊं तो परमात्मा का कहीं असम्मान न हो जाये। परमात्मा के छुऊं यह भी बात जंचती नहीं, क्योंकि जिसके द्वारा परमात्मा तक आये, उसका असम्मान न हो जाये। वचन मधुर है: किसके पैर छुऊं? लेकिन कहा नहीं कबीर ने कि किसके पैर छुए, तो अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग अर्थ कर लिये। कुछ ने अर्थ किया कि गुरु ने इशारा कर दिया कि शंका मत कर, संदेह में मत पड़, परमात्मा के पैर छू। बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय। निवारण हो गया शंका का।

ऐसा अधिक लोग अर्थ करते हैं। ऐसा मैं नहीं करता। मैं तो यह अर्थ करता हूं कि कबीर ने गुरु के ही चरण छुए। क्यों? इसलिए गुरु के चरण छुए कि गुरु ने परमात्मा बताया। बलिहारी में ही चरण छुए। वह जो 'बलिहारी' शब्द है, वह खबर दे रहा है कि गुरु के ही चरण छुए हालांकि गुरु ने इशारा कर दिया परमात्मा की तरफ, इसलिए तो गुरु के चरण छुए। गुरु का तो सारा काम ही इशारा है। गुरु तो एक इंगित है।

मील के पत्थर देखे न, जिन पर तीर बना होता है–आगे की तरफ यात्रा की खबर! गुरु तो एक तीर का एक चिन्ह है। गुरु तो कहता है: और आगे और आगे और आगे! गुरु तो तब तक कहता चला जाता है और आगे, जब तक कि परम से मिलन न हो जाये। बलिहारी गुरु आपकी ...!

लेकिन फिर कबीर ने पैर किसके छुए? मेरे हिसाब से तो पैर गुरु के ही छुए। यह जो 'बलिहारी' शब्द का उपयोग किया, इसी में ही बात आ गयी।

मिलन प्रेमजी महाराज का–– जिंदगी बदल गई दरिया की। खोज समाप्त हो गयी, जैसे प्यासे को पानी मिल गया! एक छोटी-सी नजर ने क्रांति उपस्थित कर दी।

गीत अपने अब नहीं कुंआरे रहे
मीत के स्वर से भंवर कर आ गये

फिर दरिया कुंआरे नहीं रहे, गांठ जुड़ गई, गुरु से मिलन हो गया। वह परम विवाह हो गया, जिसके बाद फिर एक ही मंजिल और रह जाती है––परमात्मा मिलन की।

गुरु द्वार है, परमात्मा मंदिर है।

इन वचनों को, दरिया के, बुद्धि से समझोगे तो चूकोगे। हृदय से समझना। तरंगित होना इनके साथ। एक गैर-पढ़े-लिखे आदमी के, लेकिन बड़े प्यारे वच

हैं। उपनिषद् और वेद भी स्पर्धा करें, ऐसे वचन हैं। क्योंकि पढ़े-लिखे होने से क्या संबंध है? हृदय में जब घटना घटती है तो टूटे-फूटे शब्द भी स्वर्णमंडित हो जाते हैं। जिसके पास कहने को कुछ है, वह किन्हीं भी शब्दों में कहे, वे शब्द स्वर्णमंडित हो जाते हैं। और जिसके पास कहने को कुछ भी नहीं है, वह कितने ही सुंदर शब्दों का आयोजन करे, वे सब मुर्दे के ऊपर लगाये गये आभूषण हैं। उनसे थोडी ही देर में दुर्गंध आयेगी। तुम मुर्दों को कितने ही सुंदर वस्त्र पहना दो, इससे मुर्दे जीवित नहीं होते। और जीवन तो अगर नग्न भी खड़ा हो तो भी सुंदर होता है।

सुनो इन वचनों को–

जन दरिया हरिभक्ति की, गुरां बताई बाट
भूला ऊजड़ जाय था, नरक पड़न के घाट

जन दरिया हरिभक्ति की गुरां बताई बाट। गुरु ने हरि-प्रेम का रास्ता बता दिया। 'रास्ता बता दिया' –– इसका ऐसा अर्थ मत लेना कि गुरु ने बड़ा समझाया। समझाया तो जरा भी नहीं। यह बात समझने-समझाने की नहीं। यह तो गुरु के होने में ही इशारा है। यह तो गुरु के पास बैठने में ही घट जाता है। यह तो छूत की बीमारी है। यह तो सत्संग है। गुरु के पास बैठे कि घटने लगता है। गुरु के पास बैठकर रोमांच जगने लगता है, रोआं-रोआं तरंगित होने लगता है, कंपित होने लगता है। किसी अदृश्य लोक की हवायें तुम्हें चारों तरफ से घेर लेती हैं। कोई वसंत आ जाता है। जो हृदय सूना-सूना था, जहां कोई स्वर नहीं उठता था, वहां हजार स्वर उठने लगते हैं। मगर यह बात है छूत की। यह लगने वाली बात है। यह लगने वाली बीमारी है।

इसलिए प्रेम के मार्ग के पर सत्संग का अर्थ है गुरु के पास होना, गुरु के पास बैठना। कभी कुछ कहे तो सुनना, कभी कुछ न कहे तो सुनना; मगर गुरु को पीना। पीते-पीते ही इशारा साफ होता है।

जन दरिया हरिभक्ति की गुरां बताई बाट

गुरु ने इशारा कर दिया, राह पर लगा दिया, नाव में बिठा दिया –– हरि-भक्ति की !

दरिया मुसलमान है; लेकिन गीत न हिंदू का है न मुसलमान का; गीत न राम का है न रहीम का; या कि दोनों का है। दरिया जैसे संतों ने ही धर्म को प्रतिष्ठा दी है। जरा भी भेदभाव नहीं सोचा कि हिंदू है यह आदमी, मैं मुसलमान हूं। यह बात ही न उठी। प्रेम कहीं हिंदू होता, कहीं मुसलमान होता ! हरि की भक्ति का क्या लेना कुरान से और क्या लेना गीता से? हरिभक्ति कोई सिद्धांत तो नहीं है, कोई दर्शनशास्त्र तो नहीं है। यह तो डुबकी है एक ऐसे लोक में जहां

हम तर्क और विचार और बुद्धि के सब विश्लेषण को छोड़कर पहुंचते हैं। यह तो अपने ही अंतरतम में निवास है।

जन दरिया हरिभक्ति की ...

भक्ति प्रेम का परम रूप है। प्रेम के तीन रूप हैं–– काम, प्रेम, भक्ति। काम निकृष्टतम रूप है–– अधोमुखी; नीचे की तरफ जाता हुआ; शरीर से बंधा हुआ प्रेम दूसरा रूप है –– न ऊपर जाता हुआ; समतल पर गतिमान ; न अधोमुख न ऊर्ध्वमुख; मध्य में। काम शरीर से बंधा है; प्रेम मन से। भक्ति तीसरा रूप है, आत्यंतिक रूप है––ऊर्ध्वमुखी, ऊपर की तरफ जाता हुआ; न शरीर से बंधा है न मन से, आत्मा में अवगाहन।

मनुष्य के तीन तल हैं–– शरीर, मन आत्मा। वैसे ही मनुष्य के प्रेम के तीन तल है–– काम, प्रेम, भक्ति। जब तक तुम्हारा प्रेम भक्ति न बने तब तक तुम आनंद न पाओगे। काम प्रेम न बने तब तक तुम सुख न पाओगे। और जब तक तुम्हारा काम अगर ही बना रहे, तो तुम दुख ही दुख पाओगे। तुम्हारा काम अगर प्रेम बन जाये तो तुम कभी दुख और कभी सुख भी पाओगे। तुम्हारा काम अगर भक्ति बन जाये तो तुम सदा सुख पाओगे, तुम सुखरूप हो जाओगे। काम से बंधन है; भक्ति में मुक्ति है। प्रेम मध्य है। इसलिए प्रेम में थोड़ा बंधन भी है और थोड़ी स्वतंत्रता भी। प्रेम समझौता है। इसलिए प्रेम में थोड़ी-सी काम की भी छाया पड़ती है और थोड़ी भक्ति की भी। इसलिए तुम जिसे प्रेम करते हो उसमें तुम्हें थोड़ी-थोडी कभी-कभी प्रभु की झलक भी दिखायी पड़ती है। तुमने जिसे प्रेम किया है उसमें कभी न कभी प्रभु का आभास भी होता है। कभी-कभी तुम उसके साथ पशु जैसा व्यवहार भी करते हो और कभी-कभी प्रभु जैसा भी। प्रेम मध्य में है।

इसलिए प्रेम में एक तनाव भी है। कामी में ज्यादा तनाव नहीं होता। कामी अपने पशु-स्वभाव से बंधा है। उसके भीतर दुविधा नहीं है। इसलिए तो पशुओं में दुविधा नहीं है। और भक्त भी मुक्त है, उसमें भी दुविधा नहीं है। वह भी पूरा का पूरा परमात्मा से जुड़ा है। और कामी पूरा का पूरा देह में डूबा है। दुविधा होती है प्रेमी में। वह मध्य मे खड़ा है। एक हाथ भक्ति की तरफ जा रहा है डांवाडोल है। जैसे कोई रस्सी पर चलता है, ऐसा कंपता है पूरे वक्त।

प्रेम में एक चिंता है, क्योंकि प्रेम उड़ना तो चाहता है आकाश में और पैर उसके जमीन में गड़े हैं। काम तो जड़ों जैसा है और भक्ति पक्षियों जैसी है। और प्रेम बड़ी दुविधा में है, बड़ी अड़चन में है।

इस बात को खयाल में रखना। भक्ति के मार्ग पर प्रेम का विरोध नहीं है;

प्रेम का रूपांतरण है। काम को प्रेम बनाना है, प्रेम को भक्ति बनानी है। विरोध कहीं भी नहीं है। इसलिए तुम जिसे प्रेम करते हो, अगर उसी में तुम परमात्मा को देखना शुरू कर दो तो तुम पाओगे, धीरे-धीरे हरिभक्ति का रस आने लगा। इसलिए तुम जिसके प्रति कामातुर हो उससे प्रेम करो कम से कम, थोड़े-थोड़े बढ़ो। जिसके प्रति कामातुर हो उसे प्रेम करो। जिसके प्रति प्रेम से भरे हो उसके प्रति थोड़ी भक्ति भी लाओ।

लड़ने की कोई जरूरत नहीं है, धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता क्रांति हो जाती है। आहट भी नहीं होती और क्रांति हो जाती है।

जन दरिया हरिभक्ति की गुरां बताई बाट
भूल ऊजड़ जाय था, नरक पड़न के घाट

मैं तो भूला था। और मैं तो उस तरफ भागा जा रहा था—काम की तरफ, जो कि वस्तुतः ऊजड़ है; जो है तो रेगिस्तान लेकिन दूर-दूर मृग-मरीचिकायें दिखाई पडती हैं। लगता है कि खूब जल के सरोवर हैं, हरे वृक्ष हैं और छायाएँ हैं। और मन भागा जाता है। भागा जा रहा था काम की तरफ।

भूला ऊजड जाय था, नरक पड़न के घाट

कामवासना ही नरक का घाट है। नरक जाना हो तो वही तीर्थ है; वहीं से उतरा जाता है। लेकिन गुरु ने राह बता दी। और बता दी— शब्दों से नहीं, अपने अस्तित्व से। गुरु ने अपने प्रेम के अस्तित्व से खबर दे दी कि जो काम है उसमें बड़ी महिमा छिपी है, उसे मुक्त कर लो।

ऐसा समझो, जलधार बहाओ तो नीचे की तरफ जाती है। वह जल का स्वभाव है। फिर जल को जमा दो, बरफ बन जाये, तो फिर न नीचे जाता है न ऊपर; जाता ही नहीं, रुक जाता है। वह बरफ का स्वभाव है। फिर जल को बाष्पीभूत कर दो, गरम करो, उड़ा दो, तो जल ऊपर की तरफ जाने लगता है, जब भाप बन जाता है। जल ही है। जब नीचे की तरफ जाता था तब भी जल था; जब बरफ की तरह रुक गया था तब भी जल था, कहीं नहीं जाता था; और अब जब भाप की तरह आकाश की तरफ उठ रहा है, सूर्योन्मुख हो गया है, तब भी जल ही है। जैसे जल की तीन अवस्थाये हैं ऐसी ही प्रेम की तीन अवस्थायें हैं। काम में नीचे की तरफ जाता है। प्रेम में नीचे नहीं जाता, ऊपर नहीं जाता, ठहर जाता है। भक्ति में ऊपर की तरफ उठने लगता है। नीचे की तरफ नरक है, ऊपर की तरफ स्वर्ग है। और प्रेमी दोनों के बीच अटका रहता है— स्वर्ग और नर्क। एक पैर स्वर्ग में, एक पैर नर्क में। प्रेमी दो नावों पर सवार रहता है।

इसलिए दुनिया में प्रेमी या तो एक न एक दिन तय कर लेता है कि कामी

हो जाये या तय करना पड़ता है कि भक्त हो जाये। ज्यादा दिन तक प्रेमी प्रेमी नहीं रह सकता। वह दुविधा की घड़ी है। इसलिए लोग एक ना एक दिन निर्णय ले लेते हैं कि या तो अब कामी हो जाओ और या फिर भक्त हो जाओ।

भौतिकवादी आदमी धीरे-धीरे प्रेम को तो भूल जाता है, काम में ही रुक जाता है। अध्यात्म का खोजी धीरे-धीरे प्रेम को तो भूल ही जाता है और भक्ति मे डूब जाता है। मगर निर्णय लेना होता है, क्योंकि प्रेम बड़ी दुविधा की दशा है। अगर तुमने निर्णय न लिया तो तुम पीड़ा और बेचैनी में ही रहोगे। इसलिए प्रेमी से ज्यादा तुम और किसी को कष्ट में न पाओगे।

कुछ ना कुछ करना होगा। जीवन में एकरसता लानी होगी। या तो नीचे के तल पर लाओ एकरसता या ऊपर के तल पर। या तो पशु बनकर एकरस हो जाओ...।

देखा, पशु एकरस है! पशु पागल नहीं होते, विक्षिप्त नहीं होते, बेचैन नहीं होते, आत्मघात नहीं करते। एकरस हैं। जहां हैं वहां पूरी तरह से हैं। उन्हें पता ही नहीं कि इसके ऊपर होना भी कुछ हो सकता है।

और भक्त भी एकरस है। वह भी भूल गया है कि इससे नीचे भी कुछ हो सकता है। लेकिन जो दोनों के बीच में खड़ा है, उसका कष्ट बहुत है।

भूल ऊजड़ जाय था, नरक पड़न के घाट
नहीं था राम रहीम का, मैं मतिहीन अजान
दरिया सुधबुध ग्यान दे, सतगुरु किया सुजान

नहिं था राम रहीम का...। जब तक तुम राम के नहीं हो, रहीम के भी कैसे होओगे? और जब तक रहीम के नहीं हो तब तक राम के भी कैसे होओगे? तो लोग बातें कर रहे हैं राम और रहीम की; न कोई राम का है न कोई रहीम का है। क्योंकि जो एक भी हो गया वह सबका हो गया। जो ठीक से मुसलमान हो गया वह हिंदू भी हो गया और जैन भी हो गया और ईसाई भी हो गया। और जो ठीक से हिंदू हो गया वह ठीक से मुसलमान भी हो गया।

असल में धार्मिक आदमी होने की बात है; हिंदू-मुसलमान होने की बात ही नहीं है। नहिं था राम रहीम का...।

दरिया कहते हैं, न तो राम का था न तो रहीम था, बातचीत थी। मंदिर जाता था तो भी कुछ अर्थ न था; वहां के राम से मेरी कोई पहचान न थी। और मस्जिद जाता था तो भी व्यर्थ था; वहां के रहीम से मेरी कोई पहचान न थी। अपने भीतर के ही भगवान से पहचान न हो तो मंदिर-मस्जिदों के भगवान से पहचान नहीं हो पाती। पहली पहचान तो आत्म-पहचान है।

जन दरिया हरिभक्ति की गुरां बताई बाट

लेकिन गुरु ने राह सुझा दी। गुरु ने आंख खोल दी। गुरु ने बुझी बाती जला दी।

दरिया सुधबुध ग्यान दे, सतगुरु किया सुजान

—मैं तो मतिहीन था।

मन तो सबके पास है, मति बहुत कम लोगों के पास है।

मति का क्या अर्थ होता है? भाषाकोश में तो मति का अर्थ मन ही होता है, लेकिन जीवन के अस्तित्व में सोये हुए मन का नाम मन, जागे हुए मन का नाम मति, सुमति। जो मूर्च्छित है वह मन और जो जाग गया वह मति। यही मन जागकर सुमति हो जाता है, सन्मति हो जाता है, मति हो जाता है।

नहिं था राम रहीम का, मैं मतिहीन अजान

बुद्धि तो थी, सोच-विचार था, लेकिन मति नहीं थी। बुद्धि तो थी, लेकिन बुद्धि का भी ठीक उपयोग करने का बोध नहीं था। अधिक लोग बुद्धि का दुरुपयोग' कर रहे हैं। अधिक लोग ऐसे हैं जैसे अपने ही हाथ से अपनी ही गरदन काट रहे हों। उनकी बुद्धि ही उनके जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई हो गई है। अपनी बुद्धि से वे इतने ही उपाय करते हैं जिनसे उनका जीवन ऊपर नहीं उठ पाता। तो कभी-कभी ऐसा भ हो जाता है कि सरलचित्त लोग, जिनको तुम बुद्धू कहो, वे भी गतिमान हो जाते हैं ऊर्ध्व दिशा में; और जिनको तुम बुद्धिमान कहते हो—अति बुद्धिमान सोच-विचार से भरे हुए लोग, वे जरा भी गतिमान नहीं हो पाते। वे हजार तर्क करते हैं। और उनके सब तर्क उन्हीं को खंडित करते हैं।

तुम कभी खयाल करना : जब ईश्वर के विरोध में कोई तर्क देते हो तो ध्यान रखना, इससे ईश्वर खंडित नहीं होता, सिर्फ तुम्हारा भविष्य खंडित होता है। ईश्वर क्या खंडित होगा? ईश्वर को क्या फर्क पड़ेगा? तुम मानो न मानो, इससे ईश्वर को तो कुछ भेद नहीं पड़ता; लेकिन न मानने से तुम्हारी संभावना का द्वार बंद हो गया। न मानने से जो बीज अंकुरित हो सकता था, तुमने कह दिया कि नहीं, अंकुरण होता ही नहीं। तो बीज पत्थर की तरह पड़ा रह जायेगा।

ईश्वर के विरोध में तुमने अगर कुछ भी कहा हो तो वह तुम्हारे ही विरोध में गया है। तुमने अगर सत्य को झुठलाने के लिये कुछ कोशिश की हो तो सत्य नहीं झुठलाया जाता; तुम्हीं झुठलाए जाते हो। यह सब ऐसा ही है जैसे कोई आकाश की तरफ मुंह उड़ाये और थूके, वह थूक अपने पर ही गिर जाता है।

मगर बुद्धिमान आदमी इस तरह की बातें करते हैं। मति नहीं है। मति होती तो अपने जीवन की सारी ऊर्जा का एक ही उपयोग करते, कि जान लूं उसे कि

मैं कौन हूं। छोड़ो ईश्वर! 'ईश्वर' शब्द से कुछ लेना-देना नहीं है। अगर बुद्धिमान हो तो इतना तो करो कि जान लो कि मैं कौन हूं। कहां से आता हूं, कहां जाता हूं, इस चौराहे पर कैसे आकर खड़ा हो गया हूं, इतना तो जान लो!

नहिं था राम रहीम का, मैं मतिहीन अजान

दरिया सुधबुध ग्यान दे सत्गुरु किया सुजान

सुधबुध ग्यान दे...। खयाल करना, गुरु ने कोई शास्त्रज्ञान नहीं दिया, सुध-बुध दी।

दो तरह के ज्ञान हैं। एक शास्त्रीय ज्ञान है, जो विद्यालय-विश्वविद्यालय में मिलता है। एक शास्त्रीय ज्ञान है, शब्दज्ञान है, उसका बड़ा जंगल है। उसमें भटके तो जन्मों-जन्मों लग जायें तो भी बाहर न आ सको। जंगलों में भटका तो निकल आये, किताबों में भटका नहीं निकल पाता। क्योंकि जंगल की तो एक सीमा है, शब्दों की कोई सीमा नहीं है।

...सुधबुध ग्यान दे।

सुध का अर्थ है चेताया। चेताया कि तू कौन है। जगाया, झकझोरा। उस झकझोरने में ही बुध, बोध पैदा होता है। और इस सुध-बुध का नाम ही ज्ञान है। शेष तो सब व्यर्थ बकवास है। शेष तो ऐसा है जैसे लगी है भूख और पाकशास्त्र खोले हुए किताब पढ़ रहे हैं। पढ़ो खूब, भूख मिटती नहीं। लगी तो है प्यास और फार्मूला लिये बैठे हैं कि जल कैसे निर्मित होता है—एच.टू.ओ (H_2O)। रखे रहो इस फार्मूले को, इसका ताबीज बना लो, इसको गले में लटका लो, इसका मंत्र-जाप करो : एच.टू.ओ, एच.टू.ओ, एच.टू.ओ! गुनगुनाओ। मगर प्यास नहीं बुझेगी। प्यास मंत्रो से नहीं बुझती। प्यास के लिए जल चाहिये। और आश्चर्यों का आश्चर्य यह है कि तुम एच.टू.ओ का पाठ कर रहे हो और सामने नदी बह रही है। मगर तुम अपने पाठ में ऐसे तल्लीन हो कि नदी देखने कि सुविधा किसे!

दरिया सुध-बुध ग्यान दे, सत्गुरु किया सुजान

अजान था, सुजान किया।

सत्गुरु सब्दां भिट गया, दरिया संसय सोग

सतगुरु सब्दां मिट गया...। सतगुरु के शब्दों को सुनकर, सब संशय मिट गये, सब संदेह मिट गया।

अब इसको थोड़ा समझना। ऐसा मत समझना कि जो भी दरिया के गुरु के पास के गये थे, सभी के संशय मिट गये होंगे। सुनने की एक कला चाहिए। तुम बुद्ध के पास भी जाओ तो भी संशय ले आ सकते हो। सुनने की एक कला चाहिये। सुनने की एक अनूठा ढंग चाहिये। इस भांति सुनना है कि तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारा

तर्कजाल बीच में बाधा न दे। प्रेम से सुनना है, तर्क से नहीं। तर्कशून्य होकर सुनना है। वही श्रद्धा का अर्थ है।

दरिया के तो मिट गये सारे शोक, सारे संशय, क्योंकि इस आदमी के प्रेम में पड़ गये। इस आदमी को देखा नहीं, इस आदमी की आंख में आंख पड़ी नहीं, कि सुध-बुध खो बैठे।

अब यह बड़े मजे की बात है ! जिसके साथ तुम सुध-बुध खो बैठो उसी के पास सुध-बुध पैदा होती है। यह बड़ा विरोधाभास है।

कुछ तुम्हारी निगाह काफिर थी,
कुछ मुझे भी खराब होना था

देखी होंगी वे आंखें–– रस से सरोबोर ! देखी होंगी वे आंखें शांत झील की तरह, जिन पर कमल तिरते हों ! देखी होंगी वे आंखें और डूब गये होंगे उनमें। उस प्रेम ने पकड़ लिया। पकड़े गये। बहुत बुद्धिमान होते, पढ़े-लिखे होते तो सोचते कि कहीं इस आदमी ने सम्मोहित तो नहीं कर लिया ! कि मैं यह किस जाल में पड़ा जा रहा हूं ! अपने को संभालते। अपने तर्क को निखारते। सुनते भी तो भी डूबकर न सुनते, दूर-दूर खड़े। रहकर सुनते सुनते तो ऐसे सुनते जैसे कि न्यायाधीश सुनता है अदालत में। सुनते तो ऐसे सुनते जैसे परीक्षक होकर आये हैं। सुनते तो ऐसे सुनते कि निर्णय मुझे करना है कि ठीक हो कि गलत।

अब, काश तुम्हें ही पता होता कि क्या ठीक है और क्या गलत है तो आये ही क्यों थे ?

सुनने वाले को ऐसे सुनना चाहिये कि मुझे तो पता नहीं है कि क्या ठीक और क्या गलत इसलिए मैं कैसे निर्णायक बनूंगा ? निर्णय छोड़कर सुनता हूं। मुझे तो पता नहीं है क्या ठीक है और गलत है, शायद इस आदमी को पता हो। एक मौका इसे दो। इस आदमी के सामने अपने हृदय को खोल दो। इस आदमी को उठाने दो संगीत हृदय में। इस आदमी को छेड़ने दो तार, इस आदमी को बजाने दो वीणा मेरे हृदय की।

लेकिन तर्कनिष्ठ आदमी प्रविष्ट ही नहीं होने देता किसी को हृदय तक। खुद तो जानता नहीं कैसे अपनी वीणा बजाये और जो जानते हैं उनके हाथ को भीतर नहीं जाने देता। कहता है, बाहर रखना हाथ, सम्मोहित मत कर लेना, कहीं मुझे उलझा मत देना, किसी झंझट में न पड़ जाऊं।

अब यह बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं, लेकिन तुम डर बहुत रहते हो कि कहीं कुछ खो न जाये ! है क्या तुम्हारे पास खोने को ? सम्मोहित करके तुमसे लिया क्या जा सकता है ? आत्मा तो तुम्हारी बिलकुल खाली

है। डरते क्यों हो ? भय क्या है ? खोओगे क्या ? तुम्हारे पास क्या है ? लेकिन बड़ा डर है। बड़े होश से सुनते हो। होश का मतलब ? होश नहीं। होश का मतलब इतना ही कि दूर-दूर रहते हो, भागे-भागे रहते हो। एक जगह तक जाते हो, वहां से आगे नहीं बढ़ते। खयाल रखते हो कि इतनी दूर खड़ा रहूं कि अगर भागने की नौबत आ जाये तो भाग सकूं, पकड़ा न जाऊं। बड़ी होशियारी से सुनते हो। बड़ी चालबाजी से सुनते हो। बड़ी चालाकी से सुनते हो। जिसने चालाकी से सुना वह चूक जायेगा। ये बातें चालाकों के लिए नहीं हैं। ये बातें दीवानों के लिए हैं।

सतगुरु सब्दां मिट गया . . .। क्या मिट गया ? दरिया मिट गया। सुने वे शब्द, सुने वे प्यार भरे शब्द, सुने वे मिठास भरे शब्द, सुने वे मस्ती के शब्द ! ऐसा नहीं है कि उन शब्दों में बड़ा तर्क था, इसलिए वे जंचे। उन शब्दों में बड़ा प्रेम था, इसलिए। ये बड़े फर्क की बातें हैं। ऐसा नहीं है कि उन शब्दों में बड़ा सिद्धांत था। सिद्धांतियों के पास तो दरिया बहुत गये थे, पंडित और मौलवियों के द्वार खटखटाये थे। सिद्धांत वहां खूब था, सघन था। तर्क वहां काफी प्रतिष्ठित था। जो भी वे कहते थे, प्रत्येक बात के लिये शास्त्रों से प्रमाण देते थे। यहां न तो शास्त्र था न प्रमाण था, न कोई तर्क था; यहां तो बड़ी बेबूझ बातें हो रही थीं। यहां तो पियक्कड़ बैठे थे। यह तो मधुशाला थी। ये प्रेमजी महाराज की मधुशाला में डूब गये।

सतगुरु सब्दां मिट गया ...। यहां तो कुछ ऐसी बातें कही जा रही थीं, जो कही ही नहीं जा सकतीं। यहां तो कुछ ऐसी बातें कहीं जा रही थीं कि अगर तुम शब्दों पर ही अटक जाओ तो समझ ही न सकोगे। शब्दों के बीच जो खाली जगह होती है, उसको सुनना पड़ता है। पंक्तियों के बीच में जो रिक्त स्थान होता है उसमें झांकना पड़ता है। यहां हर शब्द के साथ जुड़ा हुआ निःशब्द था। उस निःशब्द में झांकना होता है। जब कोई शब्द को बहुत श्रद्धा से सुनता है तो उसके हाथ में निःशब्द आ जाता है। जब शब्दों को कोई बहुत सहानुभूति और लगाव से सुनता है तो फिर शब्दों में जो छिपा हुआ शून्य है वह उसमें झलक देने लगता है।

तुमने अगर बहुत ज्यादा चालाकी से सुना तो शब्द को तुम मार डालते हो, उसकी मृत्यु हो जाती है; मुर्दा शब्द तुम्हारे हाथ में रह जाते हैं। ज्यादा से ज्यादा सिद्धांत तुम्हारे हाथ में आ जायेगा, लेकिन शून्य चूक जायेगा। और असली बात वही थी।

ऐसा समझो कि मैंने तुम्हारे पास एक पत्र भेजा और तुमने लिफाफा रख लिया और भीतर जो पत्र था वह तुमने देखा ही नहीं, या भूल ही गये, या खो ही

दिया, या खोला ही नहीं लिफाफा, लिफाफे में ही बहुत मोहित हो गये। शब्द तो लिफाफे हैं; उनके भीतर जो शून्य है छिपा हुआ, वहीं है संदेश। मगर शून्य को सुनना हो तो हृदय जरा भी सुरक्षा करता हो अपनी, तो नहीं सुन पाओगे। असुरक्षित होकर, सब भांति समर्पित होकर, निवेदित होकर . . .।

सतगुरु सब्दां मिट गया, दरिया संसय सोग

दरिया ही मिट गया फिर संशय कहां! संशय तो अहंकार की छाया है। तुम जब तक हो तब तक संशय है। तुम गये, संशय गया। और संशय गया तो सब शोक, सब दुख गये; क्योंकि संशय के कारण हम विभक्त हैं, खंड-खंड टूटे हैं।

बंटी है टूट कर यह जिंदगी इस भांति टुकड़ों में
दरारें जोड़ना इनकी नहीं इतना सरल कोई

बड़े टूटे हैं टुकड़ों में हम।

बंटी है टूट कर यह जिंदगी इस भांति टुकड़ों में
दरारें जोड़ना इनकी नहीं इतना सरल कोई

जब तक कि तुम किसी के प्रेम में बिलकुल न बह जाओ, तुम जुड़ न पाओगे। जब तक कि तुम किसी के प्रेम में बेबस न हो जाओ, तुम जुड़ न पाओगे। प्रेम जोड़ता है, तर्क तोड़ता है। विचार खंडित करते हैं, निर्विचार अखंड बनता है।

तुम मुझे सुन रहे हो, दो ढंग से सुन सकते हो। एक तो दरिया का ढंग—तो तुम सौभाग्यशाली। किसी दिन तुम कह सकोगे: 'सतगुरु सब्दां मिट गया, दरिया संसय सोग।' और एक ऐसे तुम सुन सकते हो जैसे विद्यार्थी सुनता है कि नोट लेने हैं, कि क्या ये कह रहे हैं ठीक है या नहीं, चलो सोचकर रख लेंगे, बाद विचार कर लेंगे। और जब तुम सुन रहे हो तब भी भीतर तुम्हारा अतीत, तुम्हारा जाना हुआ बोल रहा है कि हां ठीक है, यह रामायण से मेल खाता है, यह कुरान से मेल खाता है; यह बात नहीं जंचती, यह हमारे धर्म के खिलाफ है। ऐसा तुम पूरे वक्त कमेंट्री कर रहे भीतर। तुम चल रहे हो। इधर मैं बोल रहा हूं, उधर तुम बोल रहे हो। तब तो बड़ा मुश्किल होगा। कुछ का कुछ सुन लोगे। कुछ छूट जायेगा, कुछ जुड़ जायेगा। कुछ का कुछ हो जायेगा। फिर तुम उतने सौभाग्यशाली नहीं सिद्ध होओगे जैसे दरिया सौभाग्यशाली सिद्ध हुए।

सतगुरु सब्दां मिट गया . . .

जिसने प्रेम से किसी सद्गुरु के शब्द सुन लिये वह मिट ही जाता है। उसी मिटने में होना हैं। उसी मृत्यु में नया जन्म है।

औषध दे हरिनाम का तन मन किया निरोग

और सब आरोग्य हो गया, सब नीरोग हो गया, सब स्वस्थ हो गया। सब रोग गये, क्योंकि सारे रोग मन के हैं। सारे रोग अस्मिता के हैं।

औषध दे हरिनाम का . . .

हरिनाम की औषधि उसे ही दी जा सकती है जो प्रेम से सुनने में तत्पर हो जाये।

सुनो, अपूर्व वचन है—

रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय
सतगुरु एक ही सब्द से, दीन्हीं तुरत उड़ाय

रंजी का अर्थ होता है धूल।

रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय

दरिया कहते हैं, मेरे अंग-अंग में धूल लगी थी शास्त्र-ज्ञान की। सुनी-सुनाई बातें, पढ़ी-पढ़ाई बातें—लिपटी थीं चारों तरफ। उधार बातें, बासी बातें।

रंजी सास्तर ग्यान की . . . शास्त्र-ज्ञान की धूल मुझे खूब लिपटी थी चारों तरफ। बकवास थी सब, मगर खूब लिपटी थी। उसी में मैं गंदा हो रहा था। स्नान की जरूरत थी। और उस धूल को मैं सब कुछ समझे बैठा था।

रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय
सतगुरु एक ही सब्द से, दीन्हीं तुरत उड़ाय

और सतगुरु के एक शब्द से स्नान हो गया, वह सारी धूल उड़ गई। सत्गुरु वही जो तुमसे तुम्हारे शास्त्र छीन ले। जो तुम्हें शास्त्र देता हो वह सत्गुरु नहीं—जो तुमसे तुम्हारे शास्त्र छीन ले। जो तुम्हें ज्ञान दे वह सत्गुरु नहीं—जो तुम्हें बोध दे और तुम्हारा सारा ज्ञान छीन ले। सत्गुरु वह नहीं जो तुम्हें बहुत ज्यादा सिद्धांती बनाये—सत्गुरु वही जो तुम्हारे जीवन से सारे सिद्धांतों की धूल अलग कर दे; तुम्हे जीवंत, जाग्रत बना दे। शास्त्र न दे, तुम्हें शास्त्र बना दे—वही सत्गुरु।

तुम्हारे भीतर भी वही तो छिपा है जो उपनिषद के ऋषियों में छिपा था। तुम उपनिषदों को कब तक पकड़े बठे रहोगे? कब भीतर के ऋषि को मौका दोगे कि गुनगुन हो, गीत उठे? तुम्हारे भीतर के ऋषि को कब अवसर दोगे? वेद में जिन्होंनें गाये अपूर्व वचन, वैसा ही चैतन्य तुम भी लिये चल रहे हो। इसको कब मौका दोगे कि तुम्हारा वेद प्रगट हो?

जीसस और बुद्ध और महावीर तुम्हारे भीतर भी बोलने को आतुर हैं, क्योंकि तुम्हारी भी आत्यंतिक संभावना वही है। तुम भी बुद्ध होने को हो; उससे कम पर तुम्हारी भी यात्रा पूरी नहीं होगी। लेकिन जब तक तुम उधार को बांधे

रहोगे, गठरी उधार की सिर पर लिये रहोगे तब तक तुम्हारी अपनी संपदा पैदा न होगी।

तो गुरु तो वही है जो तुम से शास्त्र छीन ले।

मैंने सुना, चीन में एक अद्भुत झेन फकीर हुआ--हुइनेंग। निकल रहा है आश्रम में, बगीचे के पास से गुजर रहा है, और उसका एक शिष्य वृक्ष के नीचे बैठा बुद्ध-वचनों को कंठस्थ कर रहा है, रट रहा है। वह खड़े होकर सुनता है और उसे कहता है, 'सुन! खयाल रखना, कहीं ऐसा न हो कि शास्त्र तुझे गड़बड़ा दे, तू शास्त्र को गड़बड़ा देना!'

अपूर्व वचन है कि तू शास्त्र को गड़बड़ा देना; कहीं ऐसा न हो कि शास्त्र तुझे गड़बड़ा दे। फिर तो झेन फकीरों ने इस पर काफी काम किया।

फिर तो दूसरे एक झेन फकीर ने अपने सारे शिष्यों को अपने मरते वक्त इकट्ठा किया और सारे शास्त्र इकट्ठे करके आग लगवा दी और कहा कि देखो यह मेरा आखिरी संदेश है। जब तक ऐसे ही तुम्हारे भीतर के सभी शास्त्र न जल जायेंगे तब तक तुम्हारे भीतर का शास्ता पैदा न होगा।

रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय
सतगुरु एकहि सब्द से, दीन्ही तुरत उड़ाय

पर यह कैसे होता होगा? क्योंकि कितने ही तो लोग, कितने लोगों की बातें सुनते हैं, कुछ होता नहीं। एक ही शब्द से हो गया होगा?

प्रेम से सुना जाये तो एक शब्द भी काफी हो जाता है। प्रेम से न सुना जाये तो करोड़ों शब्द भी काफी नहीं होते। फिर समझदार को इशारा काफी होता है।

बुद्ध कहते थे: एक दिन एक आदमी आया और उसने बुद्ध को कहा कि आप तो संक्षिप्त में कह दें, मैं जल्दी में हूं। आप सार बात कह दें, बस उसी को पूरा कर लूंगा। और बुद्ध ने उससे कुछ न कहा, वे चुप ही बैठे रहे। वह आदमी आधा घड़ी चुप बैठा रहा, फिर बड़ा पुलकित होकर उठा, बुद्ध के चरण छुए और कहा: धन्यवाद! मिल गयी बात। बुद्ध ने कही नहीं और उसको मिल गयी। मिल गयी बात!

जब वह चला गया तो आनंद ने बुद्ध से पूछा कि इसको क्या मिल गया? क्योंकि मैं इधर तीस साल से आपके साथ हूं--सुन सुनकर थक गया हूं। और यह आदमी आधा घड़ी बैठा और आपने इससे कुछ कहा भी नहीं, इसको मिला कैसे? इसको मिला क्या? यह मामला क्या है? और आप भी प्रसन्न थे जब उसने कहा मिल गया और वह भी बड़ा अपूर्व आनंदित था! जरूर कुछ हुआ तो है, कुछ गुप चुप हो गया!

बुद्ध ने कहा: आनंद, मुझे याद है जब हम राजकुमार थे, (आनंद बुद्ध का ही चचेरा भाई था) तो मुझे घोडों का बहुत शौक था, घुड़सवारी में तू नंबर एक था। तुझे खयाल होगा, भूल नहीं गया होगा। घोड़े कई तरह के होते हैं। एक तो वह घोड़ा होता है कि मारो मारो, फिर भी चलता नहीं। एक वह भी घोड़ा होता है कि जरा मारा कि चल पड़ता है। फिर एक वह भी घोड़ा होता है, मारने की जरूरत नहीं पड़ती, कोड़ा फटकारा कि चल पड़ता है। और फिर एक वह भी घोड़ा होता है आनंद, हमारे पास ऐसे घोड़े थे तुझे याद होगा कि उसको फटकारना भी नहीं पड़ता कोड़ा क्योंकि वह भी उसका अपमान हो जायेगा--बस कोड़ा हाथ में है, इतना काफी है। फटकारना भी नहीं पड़ता। और तुमने उस आखिरी परम घोड़े को भी देखा होगा जिसको, घोड़े को, कोड़े को भी नहीं रखना पड़ता जिसके साथ, क्योंकि वह उसका अपमान हो जायेगा। उसे तो कोड़े की छाया भी काफी है। दूर की छाया भी पर्याप्त है। ऐसा ही यह आदमी था--यह जो घोड़ा था। उसे कोड़े की छाया काफी थी।

आदमी-आदमी अलग अलग ढ़ंग से सुनते हैं। दरिया ने बड़े डूबकर सुना होगा। एक शब्द तोड़ गया सारी कारा, सारा अंधकार। एक किरण जगा गयी भीतर की रोशनी को।

जैसे सतगुरू तुम करी, मुझसे कछू न होय
विष-भांडे विष काढ़कर दिया अमीरस मोय

और दरिया कहते हैं: गजब किया! खूब किया! चमत्कार किया! कैसे तुमने किया?-- 'जैसे सतगुरू तुम करी, मुझसे कुछ न होय'। क्योंकि मैं जानता हूं कि यह मेरे किये नहीं हुआ है। यह मेरे किये तो होता ही नहीं था, मैं तो कर-कर हार गया था। मैं तो थक रहा था। नहीं, मुझे तो हताशा घेरने लगी थी। मेरे किये तो कुछ नहीं हो रहा था।

जैसे सतगुरु तुम करी, मुझसे कछू न होय

अब मुझे पक्का पता है कि यह प्रसाद से हुआ है।

खयाल रखना, ध्यान के मार्ग पर प्रयास, और प्रेम के मार्ग पर प्रसाद, प्रभु-कृपा। प्रभु-कृपा की पहली किरण--गुरु-कृपा।

विष-भांडे विष काढ़कर...। चमत्कार तुमने किया कि मैं तो विष से भरा हुआ घड़ा था, तुमने विष भी निकाल दिया और कब मुझे अमृत से भर दिया मुझे पता भी न चला!

सतगुरु एकहि शब्द से, दिया अमीरस मोय

एक शब्द मात्र से! इशारे मात्र से! आंख में आंख डाल दी और सब कर

दिया !

विष-भांड़े विष काढ़कर . . .

कठिन था काम यह, मगर पलक मारते हो गया।

परमात्मा पलक मारते हो जाता है। यह काम कठिन है अगर तुम करना करना चाहो; अगर तुम होने दो तो यह काम कठिन नहीं है, बहुत सरल, बहुत सहज है। तुम बाधा न डालो बस।

तो फर्क समझना। ध्यान के मार्ग पर श्रम। इसलिए ध्यान का मार्ग अथक परिश्रम का मार्ग है। इसलिए तो बुद्ध और महावीर की संस्कृति 'श्रमण संस्कृति' कहलाती है--श्रम। वहां भक्ति का कोई उपाय नहीं है, कोई व्यवस्था नहीं है। वहां ध्यान ही एक मात्र मार्ग है। इसलिए बुद्ध और महावीर दोनों के माग पर स्त्री थोड़ी परेशान रही है, क्योंकि भक्ति का वहां कोई उपाय नहीं है। महावीर के माननेवाले तो कहते हैं कि स्त्री-पर्याय से तो मोक्ष नहीं हो सकता।

स्त्री-पर्याय का क्या अर्थ होता है? स्त्री-पर्याय का अर्थ होता है--प्रेम की पर्याय। बुद्ध ने वर्षों तक स्त्रियों को दीक्षा नहीं दी, इनकार करते रहे। और जब दी भी तो बड़े संकोच से दी और देने के बाद कहा कि आनंद, तुम मानते नहीं तो देता हूं; लेकिन ध्यान रखना, मेरा धर्म जो पांच हजार साल चलता, अब पांच सौ साल से ज्यादा नहीं चलेगा।

यह बात क्या है? ऐसा क्या कारण है! धर्म से इनका कोई संबंध नहीं है--एक विशिष्ट दृष्टि से। ध्यान पुरुषगत है--श्रम, अथक श्रम, प्रयास, संकल्प, साधना। प्रेम स्त्रीगत है--प्रसाद, स्वीकार-भाव, अहोभाव, प्रतीक्षा, प्रार्थना। स्त्री ग्रहण करती है; पुरुष खोजता है। पुरुष यात्रा पर निकलता है; स्त्री बाट जोहती है।

और ऐसा मत समझना कि सभी पुरुष पुरुष हैं और सभी स्त्रियां स्त्रियां हैं। ऐसा मत समझना। कुछ स्त्रियां हैं जो ध्यान से उपलब्ध होंगी। और बहुत पुरुष हैं जो प्रेम से उपलब्ध होंगे। इसलिए स्त्री-पुरुष का विभाजन शरीरगत नहीं है सिर्फ, जैविक नहीं है; बहुत गहरा है। जैसे चैतन्य है; अगर चैतन्य को आध्यात्मिक दृष्टि से सोचना हो तो स्त्री कहना पड़ेगा, पुरुष नहीं। क्योंकि पाया भक्ति से। ठीक मीरा जैसे व्यक्ति हैं; जरा भी भेद नहीं। शरीर के भेद से क्या फर्क पड़ता है? थोड़े हार्मोन कम या ज्यादा इधर-उधर, इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। वह भेद तो शरीर का है। चैतन्य की जो चेतना है वह ठीक मीरा जैसी है।

काश्मीर में एक महिला हुई, लल्ला। वह महावीर जैसी है। वह नग्न रही। पुरुष का नग्न रहना इतना कठिन नहीं मालूम पड़ता, स्त्री का नग्न रहना बहुत कठिन मालूम पड़ता है। मगर लल्ला रही, जीवनभर नग्न रही। महावीर की भी

हिम्मत नहीं पड़ी की अपनी दीक्षित संन्यासिनियों को कहें कि तुम नग्न हो जाओ। पुरुष तो नग्न हुए, लेकिन स्त्रियों को रोक दिया। शायद इसी कारण कहा कि एक दफा फिर तुमको जन्म लेना पड़ेगा; पुरुष बनकर जब तुम सब तरह से छोड़कर दिगंबर हो जाओगी तभी पाओगी। मगर इस जनम में तो कैसे होगा?

लेकिन लल्ला काश्मीर की नग्न रही। लल्ला को स्त्री कहना ठीक नहीं। लल्ला ठीक वैसी ही है जैसे महावीर।

तो उस भेद को ऐसा मत मान लेना कि यह शरीरगत ही है; यह ज्यादा आत्मगत है।

जैसे सतगुरु तुम करी . . .

दरिया के पास स्त्री का दिल है। सभी भक्तों के पास स्त्री का दिल है।

मुझसे कछू न होय . . .

तुमने किया, हो गया। मेरे किये कुछ भी न होता।

सब्द गहा सुख ऊपजा, गया अंदेसा मोहि
सदगुरु ने किरपा करी, खिडकी दीन्ही खोहि

सब्द गहा सुख ऊपजा . . . । शब्द के गहते ही-- शब्द को लेते ही भीतर, सुख ऊपजा। इधर तुमने शब्द दिया, इधर सुख उपजा। तुम्हारे शब्द से सुख की वर्षा हो गई।

सब्द गहा सुख ऊपजा, गया अंदेशा मोहि
--सारा भय मिट गया।

समझो। आमतौर से तुम सोचते हो कि प्रेम और घृणा विपरीत है। यह बात सच नहीं है। प्रेम और भय विपरीत हैं। प्रेम और घृणा विपरीत नहीं हैं--प्रेम के साथ घृणा चल सकती है। इसलिए विपरीत नहीं कह सकते। तुम जिसको प्रेम करते हो उसी को कई बार घृणा करते हो। सच तो यह है उसी को घृणा करोगे, और किसको घृणा करोगे? पति पत्नी को, पत्नी पति को--जिससे तुम प्रेम करते हो उसी से तो झगड़ोगे! उसी पर नाराज भी होओगे, उसी को घृणा भी करोगे। जिसके लिए जीते हो, कभी-कभी सोचने लगते हो मिट ही जाये, मर ही जाये! जिसके जीने के लिए जान दे सकते हो, कभी उसकी जान लेने का विचार भी मन में आ जाता है।

प्रेम के साथ घृणा चल सकती है, कुछ अड़चन नहीं है। लेकिन प्रेम के साथ भय कभी नहीं चलता; इसलिए असली विरोध तो प्रेम और भय में है। जहां प्रेम आया, भय गया। जहां भय आया वहां प्रेम गया।

मैंने सुना है, एक जापानी कथा है: एक युवक विवाह करके. . .एक योद्धा

विवाह करके अपने घर लौट रहा है--अपनी नववधू को लेकर। नाव पर दोनों सवार हैं। तूफान आ गया है। नाव डांवाडोल हो रही है--अब गयी, तब गयी! लेकिन वह युवक निश्चित बैठा है। वह पत्नी उसकी घबड़ाने लगी। वह कंपने लगी। उसने उससे कहा, तुम इस तरह निश्चित बैठे हो जैसे कुछ भी नहीं हो रहा है! देखते नहीं कि नाव डूबी, अब बचना मुश्किल है। अभी हम विवाहित ही हुए थे, अभी विवाह का सुख भी न जाना था-और ये कैसे दुर्दिन आ गये! यह कैसी दुर्घटना हुई जा रही है। तुम बैठे क्यों हो? तुम ऐसे निश्चित बैठे हो जैसे घर में बैठे हो, जैसे कुछ भी नहीं हो रहा!

उस युवक ने अपने म्यान से तलवार निकाल ली--और तलवार उस युवती के, अपनी पत्नी के गले के पास ले गया। ठीक बिलकुल पास ले गया कि जरा बाल भर का फासला रह गया--जरा-सी-चोट की कि गरदन अलग हो जाये। वह युवती हंसने लगी। उस युवक ने कहा, तू हंसती है? घबराती नहीं? तलवार तेरे गरदन पर है-- नंगी तलवार; जरा-सा इशारा और तू गयी। घबड़ती नहीं?

उसने कहा, क्या घबड़ाना? तलवार जब तुम्हारे हाथ में है . . .।

उस युवक ने कहा, यही मेरा उत्तर है। जब तूफान परमात्मा के हाथ में है तो क्या घबड़ाना?

तलवार उसने वापिस म्यान में रख ली। इधर वह तलवार म्यान में वापिस रख रहा था कि उधर तूफान भी म्यान में वापिस रख लिया गया।

प्रेम जहां है वहां भय नहीं। इसलिए भक्त से ज्यादा निर्भय कोई भी नहीं होता। जिसको तुम ध्यानी कहते हो, वह भी डरा रहता है--बहुत बार डरा रहता है कि कहीं यह न चूक जाये, कहीं यह भूल न हो जाये, कहीं यह पाप न हो जाये, कहीं यह नियम उल्लंघन न हो जाये!

बुद्ध के भिक्षु के लिये तैंतीस हजार नियम! सोचो, चिंता तो रहती होगी- तैंतीस हजार नियम! याद ही रखना मुश्किल है; कुछ न कुछ तो भूल होने ही वाली है। नरक निश्चित ही है। तैंतीस हजार नियम हों तो नरक से बचोगे कैसे?

लेकिन प्रेमी को कोई भय नहीं। वह कहता है, तुम जानो। अगर भूल करवानी हो भूल करवा लेना; अगर न करवानी हो मत करवाना।

भक्त का अभय पूरा है; समग्र है।

सब्द गहा सुख ऊपजा. . .। तुम्हारे शब्द को गहा ही नहीं कि सुख उपज गया।

यह गहा शब्द भी खयाल रखना-- जैसे स्त्री ग्रहण करती है। जब एक नया जीवन जन्मता है जगत में तो पुरुष देता है, स्त्री ग्रहण करती है। सिर्फ गहती

है। ग्रहण करते ही उसके गर्भ में अंकुरण हो जाता है। जैसे पृथ्वी बीज को ग्रहण करती है, ग्रहण करते ही बीज में अंकुरण पैदा हो जाता है। जन्म शुरू हुआ, जीवन की यात्रा हुई, उत्सव का प्रारंभ हुआ।

कहते हैं दरिया, सब्द गहा सुख ऊपजा। इधर मैंने तुम्हारा शब्द अपने भीतर लिया कि उधर मैंने पाया कि सुख की वर्षा हो गयी; सुख ही सुख के फूल खिल गये।

गया अंदेशा मोहि। और बड़े चकित होने की बात है कि उस क्षण मैंने पाया कि सब भय मेरे विसर्जित हो गये। कोई भय नहीं बचा। प्रेम में भय कहां! जैसे रोशनी में अंधेरा नहीं, ऐसे प्रेम में भय नहीं। लाये दिया कि रोशनी आयी नहीं कि अंधेरा गया नहीं। ऐसे ही जला दिया प्रेम का, कि भय समाप्त हो जाता है। और जिसके जीवन में भय न रहा, उसके जीवन में ही आनंद हो सकता है।

भक्त के जीवन में भय नहीं, क्योंकि यह जगत दुर्घटना नहीं है, यह जगत परमात्मा के हाथों में है। यह तूफान उसके हाथ में है। यह तलवार उसकी है।

भक्त मौत के सामने भी भयभीत नहीं होता, क्योंकि वह मौत भी उसकी ही सेविका है, उसके ही ईशारे पर आई है। भक्त मौत को भी आलिंगन कर सकता है। करता है। मौत में भी मित्रता बांध लेता है। क्योंकि जो भी उसने भेजा है, सभी उसका है।

मैंने सुना है, महमूद गजनवी का एक दास था, जिससे उसका बड़ा लगाव था। लगाव के लायक था भी आदमी। कहते हैं कि महमूद अपनी पत्नियों को भी . . . बहुत उसकी पत्नियां थी . . . उनको भी अपने कमरे में रात नहीं सोने देता था, डरा रहता था--कोई मार डाले, कोई दुश्मन से मिल जाये; कोई झगड़ा झंझट, कोई जहर पिला दे! लेकिन यह दास उसके कमरे में सोता था। इससे उसे कोई भय ही नहीं था। एक दिन दोनों जंगल में खो गये। शिकार करने गये थे, रास्ता भटक गये; साथी बिछुड़ गये। सिर्फ यह दास ही उसके साथ था। भूखे-प्यासे एक बगीचे में पहुंचे। एक वृक्ष में सिर्फ एक ही फल लगा है। पता नहीं किस जाति का फल है, कैसा फल है, कभी देखा भी नहीं! महमूद ने उसे तोड़ा। जैसी उसकी सदा की आदत थी, उसने चाकू निकाला, फल को काटा। वह पहली कली हमेशा अपने दास को देता था, उसने दास को दी। उसने कली ली। बड़ा प्रसन्न हुआ दास। उसने कहा, 'एक और। ऐसा सुस्वादु फल कभी चखा नहीं।' तो महमूद ने एक कली और दे दी। अब आधा ही फल बचा। और दास बोला कि एक और। तो महमूद ने एक और दे दी--अब एक ही पंखुरी बची; चौथाई हिस्सा बचा। और दास कहने लगा, यह भी मुझे दे दो। महमूद ने कहा, यह जरा

ज्यादती है। मैं भी भूखा हूं और एक ही फल है इस वृक्ष पर; तीन हिस्से तूने ले लिये, एक मुझे भी लेने दे। लेकिन यह दास बोला कि नहीं मालिक, दे दो मुझे। हाथ से छीनने लगा। महमूद ने कहा कि ठहर, यह जरा सीमा के बाहर बात हो गयी। लेकिन दास कहता रहा कि मुझे दे दो, दे दो। कहते-कहते भी महमूद ने वह कली चख ली। वह कड़वा जहर थी। थूक दी, कली फेंक दी। कहा कि पागल, तूने कहा क्यों नही कि यह जहर है? और इसको भी तू मांग रहा था। और तीन टूकड़े तू इस तरह खा गया जैसे अमृत है!

उस दास ने कहा कि जिन हाथों से बहुत सी सुस्वादु चीजें मिली हों उनसे कभी एकाध अगर कड़वी भी चीज मिल जाये तो इसमें शिकायत की बात नहीं है। जिन हाथों ने इतना सुख दिया है, उन हाथों से अगर थोड़ा दुख भी मिल जाये तो वह भी सौभाग्य है। वह उन्ही हाथों से आ रहा है। आपके हाथों ने छुआ, इतना ही काफी था।

महमूद ने अपने संस्मरणों में यह बात लिखी है। भक्त की यह दृष्टि है जगत के प्रति। इतना आनंद परमात्मा देता है कि अगर कभी एकाध कांटा कहीं रास्ते पर चुभ जाता है तो कोई शिकायत की बात है? छिपाकर जल्दी से निकाल लेना कि उसको पता न चल जाये, कि कहीं अनजाने शिकायत न हो जाये, कि कहीं आह न निकल जाये! जिससे इतना मिलता हो उसके लिये हम जरा भी धन्यवाद नहीं देते; लेकिन जरा-सी अड़चन आ जाये--जरा-सी अड़चन, जरा सिरदर्द हो जाये, कि आदमी नास्तिक हो जाता है। काफी है सिरदर्द नास्तिक होने के लिये। सब आस्तिकता इत्यादि एक क्षण में खतम हो जाती है। लड़के को नोकरी न मिले और नास्तिकता सिर उठाने लगती है। बेटा मर जाये और तुम मूर्ति इत्यादि फेंक देते हो घर से निकालकर कि हो गया बहुत।

तुम्हारा भगवान दो कौड़ी का है। तुम्हारी भगवान से कोई पहचान नहीं है। तुमने कोई संबंध जोड़ा नहीं है।

सब्द गहा सुख ऊपजा, गया अंदेसा मोहि

कहते हैं दरिया: सब भय मिट गया, अंदेशा मिट गया। कैसा तुमने गजब किया! कैसा तुमने चमत्कार किया! और मैंने कुछ किया नहीं--सिर्फ शब्द गहा! मेरी तरफ से कुछ करा-किया-धरा नहीं। मेरी तरफ से तो सिर्फ ग्रहण हुआ। सिर्फ मैंने, तुमने जो दिया, वह ले लिया। मैं तो भूमि बन गया, तुम्हारा शब्द बीज बन गया। मैं तो स्त्री बन गया, तुम्हारा शब्द मेरे भीतर आकर गर्भ बन गया, अंकुरित होने लगा।

सतगुरु ने किरपा करी, खिड़की दीन्ही खोहि

और तुम्हारी कृपा, कि खोल दिया द्वार जिसकी मैं तलाश कर रहा था--प्रेम का द्वार। क्योंकि प्रेम के द्वार से ही जाना जाता है परमात्मा। ध्यान के द्वार से जानी जाती है आत्मा। प्रेम के द्वार से जाना जाता है परमात्मा। आत्मा भी परमात्मा है, परमात्मा भी आत्मा है। लेकिन इसलिए ध्यानी आत्मा की बात करते हैं, परमात्मा की नहीं। महावीर परमात्मा की बात नहीं करते--आत्मा की।

ध्यान से खिड़की खुलती है अपने भीतर को; अंतर्मुखता पैदा होती है। और प्रेम से खिड़की खुलती है समस्त की; सब तरह वही दिखाई पड़ने लगता है। और प्रेमी को पहले दिखाई पड़ता है सब तरफ वही--और तब पता चलता है कि मैं भी वही। ज्ञानी को पहले दिखायी पड़ता है मैं वही और तब दिखाई पड़ता है सब वही। इतना फर्क होता है। अंतिम परिणाम एक है।

लेकिन प्रेम का मार्ग बड़ा रसपूर्ण है। रसो वै सः। बड़ा रसभरा है!

सतगुरु ने किरपा करी, खिड़की दीन्ही खोहि

और तुमने द्वार खोल दिये, तुम्हारी कृपा हो गई।

पान बेल से बीछुड़ै परदेसां रस देत
जन दरिया हरिया रहै, उस हरि बेल के हेत

और अब तो मैं तुमसे ही जुड़ा रहूंगा; जैसे पान का पत्ता बेल से जुड़ा रहे तो हरा रहता है।

जन दरिया हरिया रहै, उस हरि बेल के हेत

अब तो मैं तुमसे जुड़ गया, तुमसे एक हो नया; अब मुझे कोई अलग न कर सकेगा।

गुरु से शिष्य को फिर अलग नहीं किया जा सकता। एक दफा घटना भर घट जाये, फिर यह गांठ खुलती नहीं। और सब तरह के प्रेम बनते हैं, मिट जाते हैं; यह प्रेम सिर्फ बनता है, मिटता नहीं। न बने और बात; बन जाये फिर मिटता नहीं।

पान बेल से बीछुड़ै, परदेसां रस देत

पान का पत्ता होता है, बेल से टूट जाता है तो दूसरों को सुख देता फिरता है; किसी के मुंह में पड़ेगा, रस देगा; किसी के मुंह को लाली करेगा।

दरिया कहते हैं, अब मेरी कोई इच्छा नहीं कि कहीं जाऊं, परदेसों में भटकूं, किसी को रस दूं, किसी को प्रभावित करूं, किसी का मुंह रंगूं--इस सबकी मुझ कुछ इच्छा नहीं है। अब तो एक ही इच्छा है: जन दरिया हरिया रहै, उस हरि बेल के हेत। कि तुमसे जो लग गया लगाव वह लगा रहे और वह पत्ता हरा बना रहे।

मगर ऐसा होता ही है। एक बार जुड़ गया जो सद्गुरु से, वह जुड़ गया। क्योंकि सद्गुरु से जुड़ने का आत्यंतिक अर्थ इतना ही होता है कि वह परमात्मा से जुड़ गया है। सद्गुरु तो कोई है ही नहीं। सद्गुरु तो शून्य मात्र है। सद्गुरु तो शून्य मात्र है। सद्गुरु तो एक खिड़की है आकाश की। खिड़की खुल गयी, तुम्हारा संबंध आकाश से हो गया। बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय! अब इस खिड़की से छूटने का उपाय भी क्या है! जब तुम आकाश से ही छूटना चाहो तभी इस खिड़की से छूट सकोगे। और आकाश से कौन छूटना चाहता है! कौन होना चाहता है क्षुद्र! कौन नहीं विराट होना चाहता! कौन सीमा में बंधना चाहता है! जिसको असीम के दर्शन हुए वह क्यों सीमा में लौटना चाहे!

हमारी सारी खोज एक ही है कि कैसे असीम हो जायें, कैसे अनंत हो जायें, कैसे विराट और विभु हो जायें।

'सद्गुरु' शब्द पर थोड़ी-सी बातें। सद्गुरु का अर्थ होता है जिसने जाना; जिसने अनुभव किया; जिसकी ज्योति जली। अब अगर तुम्हारी ज्योति बुझी है तो किसी जले हुए दिये के पास जाओ। और कोई उपाय नहीं है। निकट आओ किसी दिये जले हुए दिये के। आते जाओ निकट। निकटता की ही एक सीमा है, जब अचानक तुम पाओगे जले दिये की लपट बुझे दिये पर छलांग लगा गयी। एक क्षण में क्रांति घट जाती है। जले दिये का कुछ नुकसान नहीं होता। जला दिया अब भी वैसा ही जलता है। बुझे दिये को मिल जाता है, जले दिये का कुछ खोता नहीं है। एक दिये से हजार दिये जला लो, तो भी जलता दिया जल ही रहा है, वैसा ही जल रहा है जैसा जलता था। उसने जरा भी नहीं खोया।

गुरु का कुछ खोता नहीं, शिष्य को बहुत कुछ मिल जाता है, अनंत मिल जाता है। ऐसा अपूर्व यह व्यवसाय है। यहां खोया कछ जाता ही नहीं। तो गुरु यह भी नहीं सोचता एक क्षण को भी कि उसने तुम पर कोई कृपा की। सच तो यह है, गुरु तुम्हारा धन्यवादी होता है कि तुम करीब आये, तुमने इतनी हिम्मत की क्योंकि गुरु की ज्योति जितने-जितने दियों में फैलने लगती है उतना ही गुरु का आनंद गहन होने लगता है। जैसे माली को देखकर आनंद होता है जब उसके वृक्षों पर फूल खिल जाते हैं, ऐसे गुरु को परम आनंद होता है जब उसके शिष्य खिल जाते हैं। गुरु अनुगृहीत होता है कि तुम इतने करीब आये, कि तुमने थोड़ा-सा उसका बोझ बंटा लिया।

आनंद भी बंटना चाहता है। आनंद भी घनीभूत हो जाता है। जैसे बादल जब भर जाते हैं जल से तो बरसना चाहते हैं। तो तुम यह मत सोचना कि जब प्यासी धरती पर बादल बरसते हैं तो सिर्फ धरती ही धन्यवाद करती है। बादल

भी धन्यवाद करते हैं। चूंकि बादल खाली हो गये, बोझ से मुक्त हो गये, धरती ने उन्हें मुक्त कर दिया बोझ से।

जब फूल सुगंध से भर जाता है तो खिलता है—खिलता ही है, खिलना ही पड़ता है। और हजार-हजार मार्गों से बिखरता है, अपनी सुगंध को बिखेरता है। रंग में और गंध में यात्रा करता है दूर-दूर हवाओं की, कि पहुंच जाये उन नासापुटों तक जो प्रफुल्लित होंगे और आनंदित होंगे।

यह अकारण ही तो नहीं है कि बुद्धपुरुष भटकते हैं गांव-गांव, द्वार-द्वार, आदमी-आदमी को खोजते हैं, दस्तक देते फिरते हैं। शिष्य जैसे गुरु को खोजते हैं वैसे ही गुरु शिष्य को भी खोजता है। और जब कभी किसी सद्गुरु का सद्शिष्य से मिलना हो जाता है तो सारा जगत आनंद से भरता है। क्योंकि वही घटना इस जगत में परम घटना है।

जन दरिया हरिभक्ति की, गुरां बताई बाट
भूला ऊजड़ जाय था, नरक पड़न के घाट

दरिया के इन वचनों में डूबना। दरिया को तीर्थ बनाना। दरिया से कुछ सीखो। दरिया से मिटने की कला सीखो।

और मिटना आ गया तो सब आ गया।

आज इतना ही।

रंजी सास्तर ग्यान की

प्रवचन : २
दिनांक १२।७।१९७७
श्री रजनीश आश्रम, पूना.
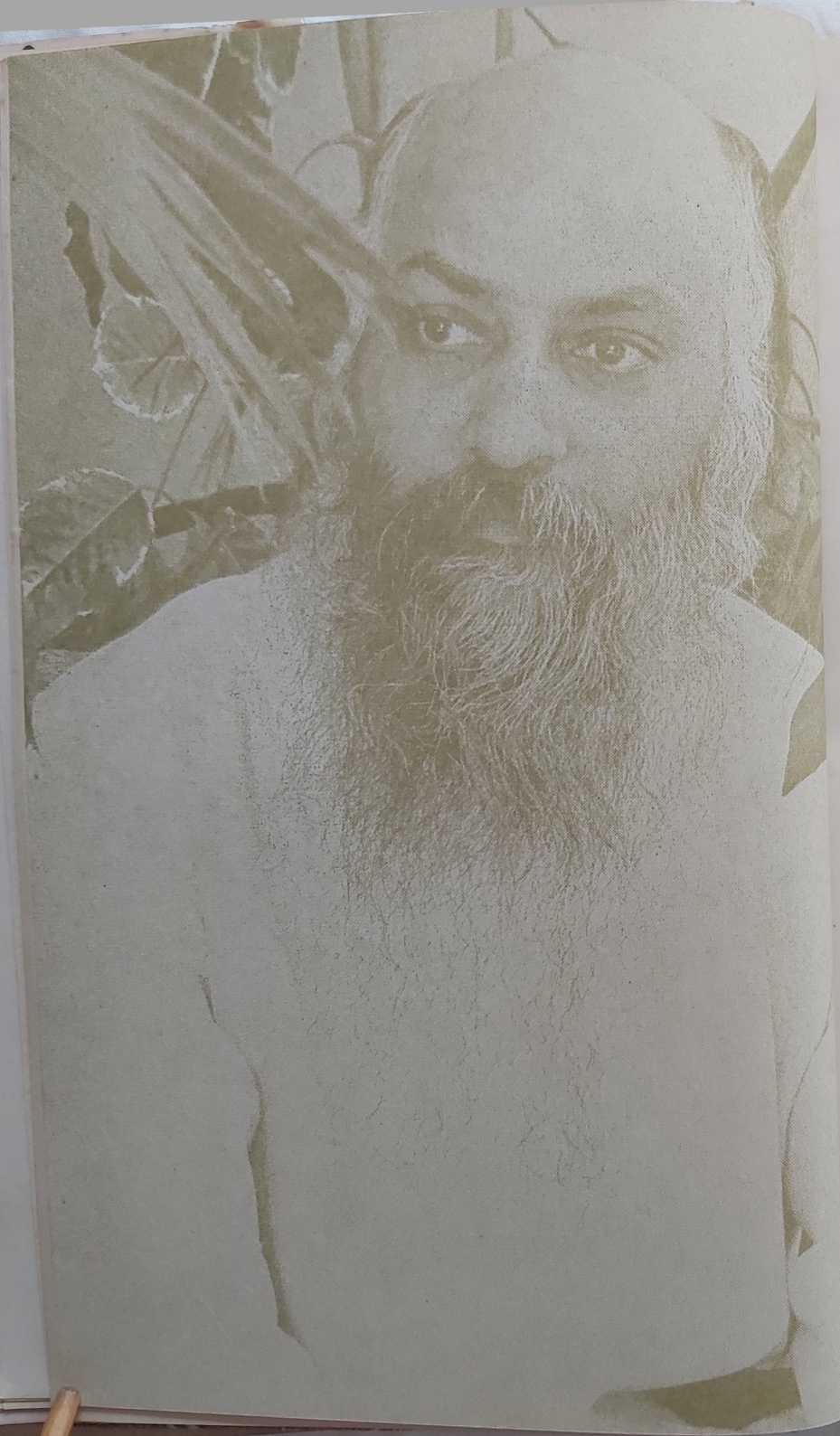
प्रश्न सार

- गैर-पढ़े-लिखे लोगों के मन पर शास्त्रों की धूल कैसे जमती है ?
- गुरु के निकट अपना हृदय खोलना इतना कठिन क्यों मालूम पड़ता है ?
- राम सदा कहत जायी, राम सदा बहत जायी ?
- क्या दादू की तरह आप भी सौ साल बाद की भविष्यवाणी करेंगे ?

पहला प्रश्न : दरिया साहब पंडित नहीं थे, पढ़े लिखे भी नहीं थे फिर उनपर शास्त्रों की धूल कैसी जमी, कि गुरु को उसे उड़ाना पड़ा ?

पहली बात, यह जन्म ही तुम्हारी सारी कथा नहीं है। इस जन्म के पीछे बहुत जन्मों की धूल है। दरिया पढ़े-लिखे नहीं थे यह इस जन्म की बात हुई। लेकिन जन्मों-जन्मों में न मालूम कितने कितने शास्त्र जाने होंगे, न मालूम कितने शब्द सुने होंगे। तो एक तो, जब भी हम एक जन्म की बात कर रहे हैं तो भूल मत जाना कि इस जन्म के पीछे कतार है, पंक्तिबद्ध जन्म खड़े हैं; पर्त पर पर्त संस्कारों की है।

तो छोटा सा बच्चा भी पूरा-पूरा निर्दोष थोड़े ही होता है! सब तरह के दोष भीतर इकट्ठे पड़े हैं। समय पाकर प्रगट होंगे। अभी बीजरूप हैं, तो दिखाई नहीं पड़ते। जब अंकुरित होंगे, और शाखायें और पत्ते फेलेंगे तब दिखाई पड़ेंगे। छोटे से छोटा बच्चा भी, जिसकी आंख मे अभी कोई धूल नहीं दिखाई पड़ती वह भी बड़ी आंधियां लिए बैठा है। बड़ी आंधियां भीतर तैयार हो रही हैं। अभी आंख खाली मालूम पड़ती है। अभी पर्दा खाली मालूम पडता है। तैयार हो रहा है। जल्दी हमले शुरू हो जायेंगे। उसके भोतर छिपे हुए संस्कारों की भीड़ प्रगट होगी। जसे-जैसे बच्चा बड़ा होगा वैसे-वैसे भीड़ उमगेगी, आंधिया उठेंगी, अंधड़ घेरेगा। इसलिए निर्दोष तो छोटा बच्चा भी नहीं है। लगता है।

निर्दोष तो केवल संत ही होता है, जिसने सारे जन्मों की धूल पोंछ ड़ाली। जिसने धूल मात्र पोंछ डाली। जिसका कुछ पीछा न रहा और जिसका कुछ आगा भी न रहा। जिस दिन पीछा नहीं रह जाता उसी दिन आगा भी नहीं रह जाता। क्योंकि पीछे से ही आगा पैदा होता है। अतीत ही भविष्य का निर्मात्रा है, निर्माता है। अतीत ही भविष्य की कुंजी है।

तुम जो रहे हो पहले और तुमने जो संग्रहित कर लिया है वही तुम्हारे भविष्य को भी प्रभावित करता रहेगा। जिस दिन अतीत से पूरा छुटकारा हो

जाता है उसी दिन व्यक्ति भविष्य से भी छूट गया। जिस दिन पुराने सारे संस्कारों की धूल विदा हो गयी उस दिन करने को कुछ भी न बचा; दर्पण खाली हो गया।

इसको भी हम ठीक-ठीक बचपन कहते हैं। संत ही बालक होता है। बालक बालक नहीं है, बालक तो केवल बड़े होने की तैयारियां है। बालक तो प्रतीक्षा कर रहा है कि कब तैयार हो जाए, कब कूद पड़े संसार में। बालक तो संसार के किनारे खड़ा प्रशिक्षण ले रहा है संसार का।

जो संसार में उतर चुका, बहुत बार उतर चुका, ऊब चुका, हार चुका, हताश हो चुका, जिसने देख लिया संसार सब कोनों से; सब तरफ से पहचान लिया और पाया कि व्यर्थ है, कूड़ा करकट है। सोना इसमें है ही नहीं। हीरे यहां पाये ही नहीं जाते। जिसने असफलता को परिपूर्णता से पहचान लिया, जिसकी हार आखरी हो गयी, वह आदमी संसार की आंधियों के बाहर निकल आता है। तब सच्चे अर्थों में बच्चा हुआ।

इसको ही हम द्विज कहते हैं क्योंकि यह दूसरा जन्म हुआ। एक जन्म मां-बाप से मिला था; मन तो पुराना ही रहा था। बोतल बदल गयी थी, शराब तो पुरानी ही रही थी। पुरानी शराब को भी नयी बोतल में रखो तो भ्रम पैदा होता है कि शराब नयी है। बच्चे की देह नयी है, बच्चे का संस्कार थोड़े ही नया है! बच्चे के प्राण तो बड़े प्राचीन हैं। उतने ही प्राचीन हैं जितना यह संसार प्राचीन है। हम सदा से चल रहे हैं इस संसार में। हमने न मालूम कितनी यात्रायें की हैं। हमने न मालूम कितने-कितने मार्गों पर भीख मांगी है। और हमने न मालूम कितने-कितने दुख झेले हैं, कितने विषाद पाये हैं, कितनी चिंताओं से गुजरे हैं। और हमने बहुत बार शास्त्र भी पढ़े हैं। अगर खुद भी न पढ़े हों तो सुने हैं।

और शास्त्र तो हवा में तैर रहे हैं। कोई पढ़ा-लिखा होना थोड़े ही जरूरी है! शास्त्रों की धूल तो हवाओं में उड़ रही है। शब्द तो हवा में तैर रहे हैं। संस्कार को पकड़ने के लिए पढ़ना-लिखना ही थोड़ी आवश्यक हैं। संस्कार से मुक्त होने के लिए दूसरे से मुक्त होना जरूरी है, सिर्फ शास्त्र से मुक्त होने से न चलेगा। लोगों की बात तो सुनते हो!

बच्चा बड़ा होगा तो मां-बाप की बात सुनेगा, परिवार की बात तो सुनेगा, आस-पास की बात, खबरें तो सुनेगा, मंदिर का घंटानाद तो सुनेगा। मंदिर म होती पूजा तो देखेगा। पंडित दोहरायेगा शास्त्र, तोते गुनगुनायेंगे शास्त्र, बच्चा सुनेगा। संस्कार पड़ने लगे। पढ़ने से थोड़े ही संस्कार पड़ते हैं! अगर पढ़ने से ही संस्कार पड़ते होते तो गैर पढ़े-लिखे तो सभी मुक्त हो जाते।

गैर पढ़ा-लिखा ही संस्कार इकट्ठे करता है। उसके संस्कार इकट्ठे करने के

ढंग जरा पुराने ढंग के हैं। वह नये ढंग से इकट्ठा नहीं करता; निजी ढंग से शास्त्रों में नहीं जाता। कोई दूसरा शास्त्रों में गया है, उसकी सुन लेता है।

तो पहली तो बात: एक जन्म के पीछे अनंत जीवन कतारबद्ध है।

दूसरी बात। अगर न भी पढ़े-लिखे हो, कुछ भेद नहीं पड़ता। शास्त्र तो सब तरफ तैर रहे हैं। उनकी गूंज हो रही है। मस्जिद के पास निकलोगे तो अल्लाह का नाम सुनाई पड़ जायेगा। मंदिर के पास से निकालोगे तो राम का नाम सुनाई पड़ जायेगा। सुन लिया कि संस्कार बना। मां को पूजा करते देखोगे, पिता को पूजा करते देखोगे, झुकते देखोगे कहीं मंदिर में।

संस्कार बहुत-बहुत रूपों में चारों तरफ से आते हैं। असंस्कारित रह जाना असंभव है। कोई उपाय नहीं है। किसी न किसी तरह का संस्कार तो पड़ेगा ही। असंस्कारित होने का तो एक ही उपाय है कि किसी दिन जागकर तुम सारे संस्कारों को, संस्कारों में हुए तादात्म्यों को तोड़ दो। किसी दिन जागकर पोंछ डालो सारी धूल।

सोये-सोये तो धूल इकट्ठी होती ही है। ऐसा मत सोचना कि हम सोये थे तो कैसे धूल इकट्ठी होगी? सपनों में धूल उड़ती रहेगी। रात तुम सो जाओ तो भी हवा में धूल है, तुम्हारे कपड़ों पर जमती रहेगी। सुबह तुम पाओगे, कपड़े थोड़े गंदे हो गये। तुम तो सोये ही रहे थे, तुमने कुछ भी न किया था। धूल तो चल ही रही है।

और जितने तुम सोये हुए हो उतनी जल्दी धूल जम जाती है। क्योंकि झाड़नेवाला तो मौजूद नहीं है। जागो तो झाड़नेवाला तैयार होता है। प्रतिपल पड़ती धूल को झाड़ता जाता है, इकट्ठी नहीं होने देता। बहुत पर्तें इकट्ठी नहीं होने देता।

वह जो दरिया ने कहा कि शास्त्रों की जो धूल मुझ पर जमी थी गुरु ने एक फूंक मार दी, एक शब्द से सब उड़ गयी। क्या अर्थ होगा इसका? इतने संस्कारों की पुरानी और एक शब्द से उड़ गयी! जंचती नहीं बात। गणित की नहीं मालूम होती, बेबूझ लगती है। लेकिन जरा भी बेबूझ नहीं है; गणित की है।

जैसे कि किसी कमरे में हजार साल से अंधेरा हो और तुम एक दिया ले आओ तो क्या तुम सोचते हो कि अंधेरा कहेगा, मैं हजार साल पुराना हूं, इतनी आसानी से हटूंगा नहीं। हजार साल पुराना हो कि करोड़ साल पुराना हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? आया दिया, कि गया अंधेरा। आते ही गया। एक क्षण भी झिझक नहीं सकता। एक क्षण भी यह नहीं कह सकता कि मैं कोई नया वासी नहीं हूं इस कमरे का। कोई ऐसा नहीं कि कल ही रात आकर ठहर गया हूं। यह कोई

धर्मशाला नहीं है, यह मेरा घर है। यहा मैं हजारों-करोड़ों साल से रहा हूं। और ऐसे तुम आ जाओ और मुझे अलग कर दो, यह नहीं चलेगा। नहीं, अंधेरा कुछ भी नहीं कर सकता। अंधेरा नपुंसक है। बल ही नहीं है अंधेरे में। अंधेरा का कोई अस्तित्व ही नहीं है। जरा सी किरण, दिये की जरा सी लपट, और बड़े पुराने अंधेरे को तोड़ देती है।

ऐसा ही होता है गुरु के पास। वह सत्य की जो छोटी सी किरण है, पर्याप्त है, सारे शास्त्रों की धूल को झाड देने के लिये। क्यों पर्याप्त है? क्योंकि जो तुमने शब्द से पकड़ा है, सुन कर पकड़ा है वह तुम्हारा तो नहीं है। जो तुम्हारा नहीं है वह झूठ है।

मुझे इसे दोहराने दो। इसे तुम गांठ बांध लेना: जो तुम्हारा नहीं है वह झूठ है। झूठ का और कोई अर्थ नहीं होता। झूठ का यह अर्थ नहीं होता कि तुम जो कह रहे हो वह झूठ है। वह हो सकता है कि झूठ न हो, क्योंकि वही किसी संत ने कहा हो। लेकिन जब संत ने कहा था तो सच था, जब तुमने दोहराया तो झूठ हो गया। तुम्हारा दोहराना तो तोता-रटन्त है। तोता-रटन्त में कैसे सच हो हो सकता है?

दरिया ने कुछ कहा—सच। कहा दिया, अब तो शब्द तुम्हें मालूम है, तुम याद कर लो, दरिया के पद कंठस्थ कर लो। और हो सकता है तुम्हारा कंठ दरिया से बेहतर हो। और हो सकता है तुम दरिया से ज्यादा शुद्ध भाषा का उच्चार कर सको। हो सकता है दरिया भी तुम्हारे सामने शब्द दोहरायें तो तुम्हारा शब्द ज्यादा बलशाली मालूम पड़े।

अंधों की इस दुनिया में बड़ी अड़चन है। यहां कभी-कभी तो झूठ बड़ा बलशाली मालूम पड़ता है क्योंकि झूठ हजार तर्क जुड़ा लेता है। कभी-कभी सच यहां बिलकुल ही शक्तिहीन मालूम पड़ता है। क्योंकि सच तर्क तो जुटाता नहीं। सच कोई प्रमाण तो इकट्ठे नहीं करता। सच तो बड़ा नग्न होता है। आभूषण भी नहीं होते, वस्त्र भी नहीं होते, सजावट भी नहीं होती। और तुम आभूषण, वस्त्रों और सजावट में इतने उलझ गये हो, कि जब कोई सत्य नग्न खड़ा हो जाये तो तुम पहचान ही न सकोगे।

मैंने सुना, दो छोटे बच्चे एक न्यूडिस्ट कॅम्प के पास से निकल रहे थे। नंगों की बस्ती थी। दीवाल से झांककर दीवाल में छेद थे—नाली का छेद—उसमें से दोनों ने भीतर देखा, वहां सभी लोग नग्न थे। स्त्रियां भी नग्न थीं, पुरुष भी नग्न थे। दोनों छोटे-छोटे बच्चे होंगे छह-सात साल के, अपना बस्तर लटकाये स्कूल से लौटते थे। दोनों बड़े विचार में पड़ गये कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष? क्योंकि

उन्होंने कभी नंगी स्त्री, और नंगे पुरुष देखे नहीं थे वे तो एक ही फर्क जानते थे कि साड़ी पहने हो तो स्त्री, और साड़ी न पहने हो तो पुरुष । आज बड़ी मुश्किल में पड़ गये । घर लौटकर आये तो उन्होने अपने मां-बाप को को कहा कि हम नंगों की बस्ती से गुजरते थे, हमने देखा झांककर । तो मां ने पूछा कि कौन थे वहां, आदमी था कि औरतें ? उन्होंने कहा, अब हम कैसे बतायें ? वस्त्र तो पहने ही नहीं थे ।

उन बच्चों की बात समझे ? बच्चों की पहचान तो वस्त्रों की पहचान है । मगर तुम्हारी पहचान भी वस्त्रों से ज्यादा कहां है ? सत्य अगर नग्न खड़ा होगा, तुम न पहचान सकोगे । तुम तो सत्य के वस्त्र पहचानते हो । अगर हिन्दू के वस्त्र पहने खड़ा है और तुम हिन्दू के घर में पैदा हुए हो तो, तो पहचान लोगे कि हां, ठीक है । यही तो लिखा है रामायण में; यही तो गीता कहती है । और अगर तुम इस्लाम के परिवार में पैदा हुए हो तो शायद न पहचाना पाओ क्योंकि यह वस्त्र अपरिचित है । तुम तो कुरान की आयत होगी तो पहचान पाओगे ।

मगर सत्य क्या कुरान से बंधा है कि गीता से बंधा है ? सत्य के क्या कोई वस्त्र हैं ? सत्य तो निर्वस्त्र है । वस्त्र तो हमने ओढ़ा दिये । वस्त्र तो हमने लगा दिये । वस्त्र तो हमारा दान है सत्य को ।

तो खयाल रहे, कभी-कभी तुम ठीक वे ही शब्द उपयोग करते हो जो संतों ने किये, फिर भी तुम्हारे शब्द झूठे होते हैं और संतों के सच । सच का शब्दों से कुछ नाता नहीं है, अनुभव से नाता है । तुम्हारे अनुभव से जो आये, सत्य; उधार जो हो, बासा जो हो, झूठ । यही कसौटी है ।

तो शास्त्रों से जो सुना था वह झूठ था । खयाल रखना, फिर दोहरा दूं । ऐसा मत समझ लेना कि शास्त्रों में जो लिखा है, वह झूठ है । शास्त्रों को दोहराओगे तो झूठ हो जायेगा । शास्त्रों में जो लिखा है, अगर तुम्हारा भी अनुभव हो जाये तो सच हो जायेगा ।

तो दरिया कहते हैं कि धूल बहुत जमी थी शास्त्रों की, गुरु ने एक फूंक मार दी और उड़ गयी । सत्य की एक किरण आयी और जन्मों-जन्मों का अंधेरा, झूठ का अंधेरा टूट गया । झूठ अंधेरे जैसा है, सत्य प्रकाश जैसा । फिर एक ही किरण काफी है कोई पूरे सूरज को थोड़े ही घर में लाना पड़ता है ! एक छोटा सा दिया काफी है । इसलिए कहा, एक शब्द से ।

सच तो यह है कि शब्द कि भी शायद जरूरत न पड़ी होगी । यह सब कहने की बात है । गुरु की मौजूदगी काफी हो गयी होगी । वह मौजूदगी का संस्पर्श, वह मौजूदगी की चोट, वह गुरु की उपस्थिति, वह आघात तोड़ गया होगा अंधेरे को ।

शास्त्रों की धूल झड़ गयी ।

जिस दिन शास्त्रों की धूल झड़ जाती है उसी दिन तुम्हें अपने भीतर का शास्त्र उपलब्ध होता है । उसी दिन फिर तुम बासे नहीं रह जाते । अब तुम स्वयं जानते हो । अब ये बातें तुम्हारी मान्यता की नहीं है, अब यह तुम्हारा अपना अनुभव, अपनी प्रतीति, अपना साक्षात्कार, अब तुम स्वयं गवाह हो । अब तुम यह न कहोगे, गीता कहती है इसलिए सच । अब तुम कहोगे मैं कहता हूं । अब तुम इसलिए नहीं कहोगे सच, कि कुरान में लिखा है । अब तुम कहोगे कि वह कुरान सच है क्योंकि मेरे अनुभव में आ गया है । पहले तुम कहते थे मेरी मान्यता ठीक है क्योंकि कुरान में लिखी है । कुरान प्रथम था, तुम द्वितीय थे । अब तुम प्रथम हुए, कुरान द्वितीय हुआ ।

जिस दिन शास्त्र नंबर दो हो जाता है, जिस दिन तुम प्रथम हो जाते हो, जिस दिन तुम अपनी छाती पर हाथ रखकर कह सकते हो यह मेरा अनुभव, जिस दिन तुम कह सकते हो कि मैंने भी जाना जो शास्त्र में लिखा है, उस दिन शास्त्र को पकड़े रहने की कोई जरूरत नहीं रह जाती । क्या जरूरत रही ? जिसके पास अपनी अनुभूति की संपदा है वह शास्त्र को भूल जाये ।

और मजा यह है कि जो शास्त्र को भूल सकता है वही शास्त्र का सबसे बड़ा व्याख्याकार है । यह विरोधाभास है । जो शास्त्र की धूल से मुक्त हो गया, वही शास्त्रज्ञ है । उसने ही जाना, उसने ही पहचाना । वही जो कहेगा, फिर शास्त्र बन जायेगा । दरिया की वाणी शास्त्र बन गयी । धूल झाड़ दी गुरु ने दरिया की, और दरिया की वाणी शास्त्र बन गयी । समझने की बात इतनी ही है, शास्त्रों में जो लिखा है, जिन्होंने लिखा था सच ही जानकर लिखा था; लेकिन लिखे हुए को जब तुम मान लेते हो तो तुम्हारे पास आकर सब झूठ हो जाता है ।

मैंने प्रेम किया, मैंने प्रेम जाना, मैंने तुमसे प्रेम की बात कही । तुमने न कभी प्रेम किया, न कभी प्रेम जाना, बात सुनी, पकड़ ली, दोहराने लगे । तुम्हारे लिये बात सब झूठी-झूठी है; थोथी, उथली-उथली है । तुम स्वयं उसके गवाह नहीं हो । आंख देखी नहीं है, कानों सुनी है : कानों सुनी सो झूठ सब । अपनी देखी हो ।

इसीलिए तो हम द्रष्टा को मूल्य देते हैं, श्रोता को नहीं । क्यों द्रष्टा को मूल्य देते हैं ? आंख से देखी हो । परमात्मा आंख के सामने देखा गया हो । कान से सुना गया हो, फिर किसी की कही हुई बात अफवाह है । कौन जाने ठीक हो । कौन जाने न ठीक हो । भरोसे की बात है । जब तुम किसी पर भरोसा करते हो तो यह कभी पूर्ण श्रद्धा तो हो ही नहीं सकती । पूर्ण श्रद्धा तो सिर्फ अपने ही

अनुभव पर होती है, निज अनुभव पर होती है। दूसरे पर तो थोड़ा-न-बहुत शक बना ही रहता है, कि कौन जाने। आदमी तो भला है, भरोसे योग्य है। न चोरी की कभी, न किसी को धोखा दिया है, न बेईमानी की है, तो ठीक ही कहता होगा मगर कौन जाने! यह भी तो हो सकता है कि खुद ही भ्रम में पड़ गया हो। झूठ भी कहता हो मगर खुद ही भ्रम में पड़ गया हो। खुद ही धोखा खा गया हो। यह भी तो हो सकता है क्योंकि मृग-मरीचिकायें भी तो होती हैं।

रेगिस्तान से एक आदमी आये––सत् चरित्र, सब तरह से परखा जोखा, और कहे कि मैंने एक मरूद्यान देखा। दूर मैंने एक मरुद्यान देखा। इसकी बात झूठ नहीं होगी क्योंकि यह झूठ बोलने का आदी नहीं है। तुम मान ले सकते हो ठीक कहता है लेकिन दूर देखा मरुद्यान, हो सकता है मृग-मरीचिका रही हो। मरीचिका भी होती है।

फिर जो आदमी आज तक झूठ नहीं बोला वह आज झूठ बोल सकता है। ऐसी अड़चन क्या है? जो आज तक झूठ बोलता रहा वह आज सच बोल सकता है। एक क्षण में रूपांतर हो सकते हैं। कहावत है, हर संत का अतीत है, और हर पापी का भविष्य। अगर जो आदमी आज तक झूठ बोला है, कभी सच बोल ही न सके, फिर तो कोई आशा ही न रही; फिर तो कोई संभावना ही न रही। जो आदमी आज तक पाप ही करता रहा है, हत्यारा है, झूठा है, चोर है, बेईमान है वह भी तो किसी दिन वाल्या भील की तरह वाल्मीकि बन जाता है।

तो कौन जाने, जो आदमी बिल्कुल झूठ बोलता रहा हो वह आज सच बोल रहा हो। और कौन जाने, क्योंकि संत भी भ्रष्ट हो जाते हैं, पतित हो जाते हैं। योगभ्रष्ट शब्द है हमारे पास। गिर जाते हैं ऊंचाइयों से। सच तो यह है, जो ऊंचाइयों पर होता है वही गिर सकता है। जो नीचाइयों पर होता है वह गिरेगा कैसे? इसलिए भोगभ्रष्ट शब्द हमारे पास नहीं है, योगभ्रष्ट। भोगी तो कैसे भ्रष्ट होगा? कहां भ्रष्ट होगा? अब गिरने को और जगह कहां है? गिरा ही हुआ है। आखरी जगह तो पहले से ही है। अब इसके पार और कहां गिरेगा? स्वर्ग से लोग गिरते हैं, नर्क से नहीं गिरते। नर्क से कहां गिरेंगे? नर्क से गिरे तो सौभाग्य। क्योंकि नर्क से गिरेंगें तो कहीं न कहीं ऊपर ही गिरेंगे, नीचे तो और बचा नहीं कुछ।

तो जो आदमी आज तक सच्चा था, ईनामदार था, सब तरह से ठीक था, वह आज झूठ हो सकता है। भरोसा कैसे करोगे दूसरे पर?

और फिर शास्त्र जिसने लिखा हो वह कब हुआ इसका भी पता नहीं, कौन था इसका भी पता नहीं। किसी जाननेवाले ने लिखा कि दूसरों के उधार, उच्छिष्ट

को इकट्ठा करके लिख दिया! सभी किताबें अनुभव से तो नहीं लिखी जातीं। सौ में से एखाद किताब कभी अनुभव से लिखी जाती है। निन्यानबे किताबें तो सब उधार और बासी होती हैं।

तो कैसे भरोसा करोगे? इसलिए संदेह तो बना ही रहेगा। अनुभव से ही जाता है संदेह––समग्रीभूत। और जब तुम्हें अपने पर अनुभव आ जाता है, अपने पर भरोसा आ जाता है, अपनी में प्रतीति हो जाती है, उस दिन तुम्हारे लिए सारे शास्त्रों में––ध्यान रखना सारे शास्त्रों में; फिर ऐसा नहीं होता कि हिंदू शास्त्र ठीक हो गये और जैन शास्त्र गलत हो गये और मुसलमान शास्त्र गलत हो गये। नहीं, जिस दिन तुम्हें अपना अनुभव होता है, उस दिन तुम पाते हो कि अल्लाह के नाम से जिसको पुकारा गया है वह यही है। और राम के नाम से जिसको पुकारा गया है वह भी यही है। उस दिन सारे शास्त्र, सारे पृथ्वी के शास्त्र सत्य हो जाते हैं। तुम्हारा एक छोटा सा अनुभव सारे जगत के मनिषियों के लिए गवाही बन जाता है। तुम प्रमाण हो जाते हो। और कोई प्रमाण नहीं है। परमात्मा का और कोई प्रमाण नहीं है। जब तक तुम ही प्रमाण न हो जाओ तब तक कोई प्रमाण नहीं है।

रामकृष्ण से किसी ने पूछा है कि आप ईश्वर का कोई प्रमाण दें। रामकृष्ण ने कहा, मैं मौजूद हूं। तुम देखो मेरी आंखों में। तुम पकड़ो मेरा हाथ। तुम नाचो मेरे साथ। तुम बैठो प्रार्थना में मेरे निकट, मैं मौजूद हूं। वह आदमी थोड़ा तिलमिला गया। उसने कहा कि यह तो ठीक है, आप मौजूद हैं वह मुझे पता है। मैं प्रमाण मांगता हूं परमात्मा का। अब और क्या प्रमाण हो सकता है? रामकृष्ण कहते हैं, झांको मेरी आंखों में, पकड़ो मेरा हाथ, चलो मेरे साथ, उठो-बैठो मेरे पास, डूबो। में प्रमाण हूं। लेलिन वह आदमी तो राजी नहीं होता। वह कहता है, हम प्रमाण मांगने आये हैं, आपको थोड़े ही मांगते हैं। आपसे क्या होता है?

यह अंधा आदमी है। रामकृष्ण का जवाब एकमात्र जवाब है; और जवाब हो भी नहीं सकता। तुम प्रमाण हो सकते हो, तुम प्रमाण दे नहीं सकते।

जिस दिन शास्त्रों की धूल झड़ गई होगी दरिया की, उस दिन दरिया स्वयं शास्त्र बने। उस दिन उनकी वाणी वेद हो गयी। उस दिन उनकी वाणी में उपनिषद का सार आ गया। उस दिन उनकी वाणी में कुरान का गीत आ गया। थे मुसलमान; लेकिन उस दिन से फिर न मुसलमान रहे न हिंदू रहे। उस दिन से तो बस धार्मिक हो गये। धार्मिक आदमी न हिंदू होता है, न मुसलमान है, न ईसाई। धार्मिक आदमी तो बस धार्मिक होता है। और सारे जगत की संपदा उसकी अपनी होती है।

दूसरा प्रश्न: शिष्य गुरु के निकट हो और अपना हृदय खोले, इसका क्या तात्पर्य है ? कृपया अच्छी तरह से समझायें । और आखिर यह इतना मुश्किल क्यों है और भय क्यों होता है ?

तात्पर्य में गये तो भटके । बात सीधी-साफ है, उलझाओ मत । शिष्य गुरु के निकट हो । निकट होने का अर्थ होता है शिष्य अपनी रक्षा न करे ।

तुम सदा अपनी रक्षा कर रहे हो । तुम अगर गुरु के पास भी जाते हो तो बस एक सीमा तक जाते हो—जहां तक तुम्हें लगता है खतरे के बाहर हो । तुम गुरु से भी अपनी रक्षा करते हो । तुम बड़े भयभीत हो । तुम डरे रहते हो कि कहीं कुछ ऐसा न गुरु कर दे, जो मेरे खिलाफ है । क्योंकि तुम झूठ हो, इसलिए गुरु को ऐसा तो करना ही पड़ेगा जो तुम्हारे खिलाफ जायेगा । तुम जैसे हो इसे तो मिटाना ही होगा; तुम जैसे हो ऐसे तो तुम्हें मारना ही होगा; तो ही तुम्हारा नया जन्म होगा ।

शिष्य का निकट होने का एक ही अर्थ होता है, वह अपने शस्त्र रख दे । वह कह दे कि अब मैं निरस्त्र हुआ । यह मैंने छोड़ दी मेरी तलवारें और कवच, और ढाल और तीर-कमान, ये सब मैंने छोड़ दिये । अब मैं तुमसे लड़ूंगा नहीं । अब तुम्हें मुझे मारना हो तो मार डालो, बचाना हो तो बचा लो । अब तुम्हें जो करना हो, जैसी तुम्हारी मर्जी ।

निकट होने का अर्थ है, आज मैं अपनी मर्जी से छोड़ता हूं । यही संन्यास का अर्थ है, यही शिष्य का अर्थ है, यही दीक्षा का अर्थ है कि आज से मैं अपनी मर्जी छोड़ता हूं । अपनी मर्जी से रहकर मैंने देख लिया । भटका, दुख पाया, कहीं पहुंचा नहीं । अपनी मर्जी के सब आयोजन कर लिये, सब तरफ विफलता हाथ लगी, अपने से जो मैंने किया, गलत गया ।

अहंकार के साथ लंबी यात्रा कर-करके आये हो तुम । गौर से देख लो अपनी अहंकार की यात्रा को । कहां पहुंचे हो ? अगर कहीं पहुंच रहे हो तब तो कोई जरूरत नहीं है गुरु की । अगर तुम्हें लग रहा है कि यात्रा बिलकुल ठीक चल रही है, तुम मार्ग पर हो, चित्त में सुगंध बढ़ रही है, शांति बढ़ रही है, आनंद की वर्षा हो रही है, मेघ घिर रहे हैं, और भी वर्षा होगी । ऐसी तुम्हें प्रतीति होती है तो गुरु की कोई जरूरत नहीं है, दीक्षा की कोई जरूरत नहीं है । तुम ठीक रास्ते पर हो । तुम चले जाओ, चलते जाओ । फिर न कोई समर्पण चाहिये, न किसीके निकट होने की कोई आवश्यकता है ।

लेकिन अगर ऐसा मालूम न पड़ता हो, लगता हो कि हाथ खाली के खाली हैं । और जिन चीजों को भी संपदा समझा आखिर में पाया कि वह सब ठीकरे सिद्ध हुए । स्वर्ण समझ कर गये थे लेकिन केवल पीतल को चमकता हुआ पाया । हीरे-

जवाहरात समझकर जिसे इकट्ठा किया था वे केवल कांच के टुकड़े थे । अगर हर जगह विफलता हाथ लगती हो, और हर जगह हार हाथ लगती हो, और ऐसा लगता हो कि जीवन विषाद से विषादमय होता जा रहा है, और तुम नरक की यात्रा पर हो, तो फिर जरूरत है कि तुम किसीका हाथ गहो; तुम किसीके चरणो में गिरो और तुम कह दो कि अब आपली मर्जी मेरी मर्जी होगी ।

निकट होने का अर्थ है, तुमने अपना संकल्प छोड़ा । संकल्प का त्याग है निकटता । अगर कहीं भीतर तुम अपने संकल्प को अभी बचाये हुए हो, अगर तुमने गुरु के पास दीक्षा भी ली है, संन्यस्त भी हुए हो, और यह भी तुम्हारा ही संकल्प, है, तो तुम चूकोगे; तो तूम दूर रहोगे । तुमने कहा कि यह मेरा निर्णय है कि मैं संन्यास लेता हूं । संन्यास भी ले लोगे और चूक भी जाओगे, क्योंकि तुम्हारा निर्णय ? तो फिर तुम्हारी अभी पुरानी मर्जी कायम है । अभी पुरानी अकड़ कायम है । रस्सी जल गयी, अकड़ नहीं गयी । अब तुम आखरी अवस्था में भी अपनी अकड़ को बचाने की कोशिश कर रहे हो । तुम कहते हो, मैंने संन्यास लिया । मैंने दीक्षा ली । अभी भी मैं बचा है, अभी भी मैं बोल रहा है । अभी भी मैं काफी मुखर है-तो चूक गये । तो तुम चरण पकड़कर भी बैठ जाओ तो भी तुम हजारों कोस दूर हो ।

और अगर तुमने 'मैंने लिया है' ऐसे भाव से नहीं, वरन् इस अनुभव से कि मैं तो हार चुका—हारे को हरिनाम; मैं तो हार चुका, अब मैं क्या लूंगा ? अब तो अपनी हार में इन चरणों में गिर जाता हूं । तब तुम्हारी प्रतीति बड़ी भिन्न होगी । तुम्हारी प्रतीति ऐसी होगी, गुरु ने दीक्षा दी । तुमने ली ऐसा नहीं, गुरु ने दीक्षा दी; तुम्हें प्रसाद दिया । और उसी घड़ी से तुम पास होने लगे । फिर तुम हजार कोस दूर भी रहो गुरू से तो कुछ भेद नहीं पड़ता । तुम निकट हो ।

निकट का अर्थ भौतिक निकटता नहीं । निकट का अर्थ शारीरिक निकटता नहीं । निकट का अर्थ है, आत्मिक निकटता । और आत्मिक निकटता तभी होती है जब तुम्हारा अहंकार, संकल्प, तुम्हारी पुरानी अकड़ खो जाए । तुम एक ढेर की तरह होकर गिर जाओ चरणों में ।

'शिष्य गुरु के निकट हो और अपना हृदय खोले इसका क्या तात्पर्य ?'

और हृदय खोलने का अर्थ होता है, तुम कुछ छिपाओ मत । तुमने सब से छिपाया है । तुमने अपने प्रेमी से भी छिपाया है । तुमने अपने राज कायम रखे हैं । तुमने अपनी पत्नी से भी पूरी बात नहीं कही है । तुमने अपने पति से भी पूरा राज नहीं कहा है । तुमने कुछ बातें छिपा रखी हैं । तुम रोज छिपाते हो । तुमने कभी भी कहीं अपने हृदय को पूरा नहीं खोला है । खोल भी नहीं सकते थे । तुम्हें मैं

दोष भी नहीं देता, क्योंकि जिनके भी सामने तुम पूरा हृदय खोलते वे ही तुम्हारे खिलाफ हो जाते।

तो तुम्हारा डर नैसर्गिक है। अगर तुम अपनी पत्नी से आकर कह देते कि आज रास्ते पर एक सुंदर स्त्री को गुजरते देखकर मेरा मन ऐसा हो आया कि काश में इससे विवाह कर लूं, तो अड़चन ही खड़ी होगी। इसकी बहुत कम संभावना है की तुम्हारी पत्नी समझे। पत्नी सिर पीटने लगेगी, हाथ-पैर मारने लगेगी, रोने लगेगी, धुंवा-उपद्रव मचा देगी, पास पड़ोस के लोगों को इकट्ठा कर देगी। और तुम्हें कभी क्षमा नहीं कर पाएगी। और उस दिन से तुम पर ज्यादा पाबंदी और ज्यादा इंतजाम शुरू हो जायेंगे। तुम्हें कहीं अकेला भी न जाने देगी। किसी स्त्री की तरफ आंख उठाकर देखोगे तो तुम्हें अपराध के भाव से भर देगी।

तो कह भी नहीं सकते हो। इसे तो सरकाकर रख देना होगा। इसे छिपाना होगा। इसे प्रगट नहीं किया जा सकता। हृदय को खोला नहीं जा सकता। क्योंकि तुम्हारे चारों तरफ लोग हैं, जो चाहते हैं तुम्हें, एक खास ढंग का जीवन तुम बिताओ। चुनाव करते हैं जो। कहतें हैं, ऐसे होना तो स्वीकार हो; अगर ऐसे हुए तो अस्वीकार हो जाओगे। तुमने अगर अपनी कमजोरियां प्रगट कीं तो तुम निंदित हो जाओगे। तुमने अपने हृदय को खोलकर अगर वैसा ही रख दिया जैसा तुम्हारे भीतर है--कच्चा बिना रंग-रोगन लगाये, बिना टचअप के, जैसा है कच्चा; सुंदर तो सुंदर, कुरूप तो कुरूप, अनगढ़, बेबना--ऐसा का ऐसा रख दिया तो तुम्हें कोई भी सम्मान न देगा। सम्मान तो तुम्हारे पाखंड को मिलता है। तो जितना बड़ा पाखंडी उतना सम्मानित हो जाता है।

तो तुम्हें दिखाना पड़ता है--चाहे तुम महात्मा हो या न हो--तुम्हें दिखाना पड़ता है कि महात्मा तुम हो। तुम आखरी दम तक दिखाने की कोशिश करते हो कुछ, जो तुम नहीं हो। और छिपाने की कोशिश करते हो वह, जो तुम हो।

यह तुम्हारे जीवन की प्रक्रिया है। इसी प्रक्रिया को गुरु के पास ही रखोगे जारी तो फिर तुम्हें गुरु मिला ही नहीं। और फिर जिस गुरु से डरना पड़े तुम्हें वैसा ही, जैसे तुम पत्नी से डरते हो, पति से डरते हो, पिता से, मां से डरते हो, मित्र से डरते हो, ग्राहक से डरते हो, मालिक से डरते हो, नौकर से डरते हो अगर ऐसा ही तुम्हें गुरु से भी डरना पड़े तो यह गुरु भी सांसारिक है। समझना : गुरु तभी सांसारिक नहीं है, जिसके सामने तुम सब खोलकर रख दो और उसकी आंख में जरा सा भी निंदा का भाव न उठे। निंदा का भाव जिसकी आंख में उठ आये, वह गुरु नहीं है।

इसलिए तुम्हारे सौ गुरुओं में से निन्यानबे तथाकथित हैं, सांसारिक हैं। तुम्हें

डराये हुए हैं वे। उतना ही डराये हुए हैं जितना कोई और डराये हुए है। सच तो यह है कि तुम अपने तथाकथित महात्माओं के पास और भी ज्यादा डर जाते हो, जितना तुम और कहीं डरते हो। अपने महात्मा से तुम यह भी नहीं कह सकते कि मैं चाय पीता हूं। क्योंकि चाय यानी पाप। तुम अपने महात्मा से यह भी नहीं कह सकते कि मुझे जरा धूम्रपान की आदत है। धम्रपान यानी नर्क जाने का सुनिश्चत उपाय। छोटी-छोटी बातें, उनको भी तुम खोल नहीं सकते। क्योंकि वह जो आदमी वहां बैठा है, तत्क्षण तुम्हारी गरदन पकड़ लेगा कि तुम और ऐसा करते हो? त्याग करो इसका इसी वक्त। और तुम सदा के लिए अप्रतिष्ठित हो जाओगे उसकी आंखों में। पाखंड की प्रतिष्ठा है। जब तक कोई व्यक्ति तुमसे अपेक्षायें कर रहा है कि तुम्हें ऐसा होना ही चाहिये तब तक तुम कैसे अपने हृदय को खोलोगे? इसलिए संसार में चलता निन्यानबे गुरु, गुरु नहीं हैं।

गूरु कि परिभाषा यही है, सदगुरु की परिभाषा यही है, कि जिसके पास जाकर तुम सब खोल सको। जो तुम्हें ऐसी सुगमता दे, जो तुम्हें ऐसा अवसर दे कि तूम बिना निंदा-स्तुति के, बिना डरे अपने हृदय को खोलकर रख सको। तुम कह सको कि मैं ऐसा हूं। क्योंकि जब तक गुरु तुम्हें वैसा ही न जान ले जैसे तुम हो, तो काम ही शुरू न होगा।

गुरु से छिपाना तो ऐसे ही है जैसे डॉक्टर के पास गये और बीमारी छिपा रहे हो। मरे जा रहे हो, मगर बीमारी डॉक्टर से छिपा रहे हो। और गये हो डॉक्टर के पास। किसलिए गये हो? इलाज के लिए गये हो, निदान के लिये गये हो, की डॉक्टर पकड़ ले कि बीमारी क्या है तो निदान कर दे।

डॉक्टर के पास तुम अपनी बीमारी नहीं छिपाते न? तुम डरते तो नहीं कि डॉक्टर को कह देंगे कि मुझे खांसी आती है, और खांसी में कभी-कभी खून भी आ जाता है तो डॉक्टर एकदम मेरे खिलाफ हो जायेगा और कहेगा कि अरे पापी! कि कहीं नौकरी से निकलवा दे, कि सबको पता हो जाये। सब ठीक ठाक चल रहा है, चुनाव में खड़े हुए हैं, पता चल जाये वोटरों को कि खांसी आती है, और खून भी गिरता हो तो कौन वोट देगा?

तो नेतागण अपनी बीमारी की खबर अखबारों में नहीं छपने देते। अखबारों पर बड़े नाराज हो जाते हैं अगर उनकी बीमारी की कोई खबर छाप दे। मरते दम तक नेता दुनिया को यही दिखलाता रहता है कि मैं परम स्वस्थ हूं। क्यों? क्योंकि नहीं तो वोट कौन देगा? मुरदों को तो कोई वोट नहीं देता। मरते दम तक नेता यही कहता रहता है कि कोई मुझे खराबी नहीं, सब तरह से ठीक हूं। यह उसे दिखाना ही पड़ता है। तो नेता अपने डॉक्टर को भी छिपाकर रखता है।

यह तो बहुत बाद में पता चला कि स्टेलिन बहुत बीमार था। यह तो बहुत बाद में पता चला हिटलर के हार जाने के बाद कि हिटलर बहुत बीमारियों से रुग्ण था। लेकिन यह कभी पता नहीं चला जब हिटलर ताकत में था। किसीको कभी पता नहीं चला। बहुत बीमारियों से परेशान था। मिरगी की भी बीमारी थी। और भी तरह के रोग थे, जो खतरनाक थे। अगर पता चल जाता तो हिटलर एक दिन सत्ता में नहीं रह सकता था। इन सब को छिपाकर रखना पड़ता है। जनता के सामने एक चेहरा बताना पड़ता है।

स्टेलिन के फोटो बिना सरकारी आज्ञा के छपते नहीं थे क्योंकि उसके मुंह पर चेचक के दाग थे। सिर्फ एक फोटो में भूल से पकड़े गये हैं, बाकी कभी किसी फोटो में नहीं पकड़े जा सके। चेचक के दाग से भी इतना बचना पड़ता है। नेता को ऐसा होना चाहिये कि सर्वांग-सुंदर। चेचक के दाग और नेता में जरा जंचते नहीं। तो किसी चित्र में छपने नहीं दिये गये हैं। सब चित्र टच अप किये गये हैं। पहले टच अप हो जायेंगे तब छपेंगे। माओ के हाथ-पैर कंपते थे लेकिन यह बात अखबारों तक नहीं पहुंच पाती थी। बोलता था तो ठीक से बोल नहीं सकता था, जबान लड़खड़ाती थी। उम्र हो गयी थी। लेकिन यह बात जब तक माओ मर नहीं गया तब तक जाहिर नहीं हो सकी।

तो हो सकता है, तुम चुनाव में खड़े हो, हो सकता है कि तुम कहीं नौकरी के लिए आवेदन किये हो, और पता चल जाये। हो सकता है कि तुम किसी स्त्री से विवाह का निवेदन किये हो और पता चल जाये कि खांसी आती है और खून के कतरे भी गिरते हैं; तो डर से तुम डॉक्टर को न बताओ तो फिर इलाज कैसे होगा? फिर गये ही किसलिये? डॉक्टर के पास तो तुम खोल देते हो। यह तो डॉक्टर की नीति का हिस्सा है कि अपने मरीज की बीमारी किसीको न बताये। अपने मरीज के संबंध में एक शब्द भी कहीं न कहे, यह डॉक्टर की नीति का हिस्सा है। यह मारल कोड है। इसलिए तुम डॉक्टर के पास जाकर बता भी देते हो और फिर बीमारी से तुम छूटना चाहते हो।

गुरु के पास जब तुम आते हो तुम और भी बड़ी बीमारियां लेकर आये हो। वह क्षय रोग का मामला नहीं है, और न कैन्सर का मामला है। जन्मों-जन्मों की आध्यात्मिक बीमारियां हैं। तुम इन्हें छिपाओगे? तुम गुरु से छिपाओगे? तब तो फिर ऐसा ही हो गया, तुम अपने को औषधि से ही बचा रहे हो। गुरु तो वैद्य है; उससे छिपाया नहीं जा सकता। उसके सामने तो सब खोलकर रख देना होगा। पाप का, पुण्य का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख देना होगा। सब बुरा भला खोलकर रख देना होगा। और तुम एक उपद्रव हो भीतर, जहां हर तरह के पाप दबे पड़े हैं।

जहां हर तरह की बुराई दबी पड़ी है। निःसंकोच छोड़ देना होगा अपने को। इसलिए मैंने कहा, हृदय खोलकर गुरु के सामने रखना होता है।

हृदय खोलने का अर्थ है, तुम गुरु के सामने अपनी किसी भी तरह की प्रतिमा बचाने की कोशिश मत करना। तुम कहना, जैसा मैं हूं, यह हूं—बुरा-भला। और सद्गुरु वही है कि तुम जब अपने प्राणों की सारा का सारा मवाद भी खोलकर उसके सामने रख दो, तब भी तुम्हारे बुद्धत्व में उसे जरा भी शक पैदा न हो। तुम्हारे परमात्म-स्वरूप में उसे जरा भी शंका न आये; वही तो सद्गुरु है। यह सारी बीमारियां ठीक हैं, इन सबके बावजूद भी तुम हो तो परमात्मा। इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। तुमने हजारों पाप किये हों तब भी तुम्हारा परमात्म-स्वरूप नष्ट नहीं होता। तुम कितने ही अंधेरे में भटके हो तो भी तुम्हारा स्वभाव चिन्मय है। सदगुरु तो वही है, जिसने अपने चिन्मय को देख लिया, वह तुम्हारे चिन्मय को भी देख रहा है। वह तुमसे कहेगा ठीक है, यह कबाड़-खाना ठीक है, मगर यह तुम नहीं हो। फिक्र मत करो। मगर यह अवस्था— वह तुम्हें सजग कर सके कि यह तुम नहीं हो— तभी बनेगी जब तुम खोल दो अपना हृदय पूरी तरह।

और आखिर यह इतना मुश्किल क्यों है और भय क्यों होता है?

मुश्किल है क्योंकि जब भी कहीं हृदय खोला तभी घाव लगा। इसलिए मुश्किल है। अनुभव के कारण मुश्किल है। जब भी कहीं सच्ची बात कही तभी नुकसान हुआ है। लोग कहते हैं कि सत्यमेव जयते। अनुभव उलटा ही है: जहां सच बोले वहीं हारे। कभी-कभी झूठ तो जीता, सच कभी जीतता हुआ अनुभव में नहीं आया। जहां ईमानदारी बरती, वहीं नुकसान हुआ। जहां बेईमानी की, कभी-कभी लाभ भी हुआ। बेईमानी से कभी नुकसान नहीं हुआ, पकड़ी गयी तो नुकसान हुआ। इसलिए तुम्हारे समस्त जीवनों का अनुभव यह है कि बेईमानी से नुकसान नहीं होता, पकड़े जाने से नुकसान होता है। पकड़े भर मत जाओ, और फिर करो बेईमानी जितनी करनी है, लाभ ही लाभ है।

सत्य नहीं हारता, न सत्य जीतता—तुम्हारा अनुभव यह है। तुम अगर झूठ को भी सत्य की तरह सिद्ध कर सको तो जीत हो जाती है। पकड़े भर न जाओ। तो तुम संत हो, अगर पकड़े न जाओ। पकड़े गये तो पापी।

तो असली सवाल पकड़े न जाने का है। तो कैसे हृदय खोलो? हृदय खोला तो अपने ही हाथ से पकड़े गये। यह तो अपने ही हाथ से जाकर और समर्पण कर दिया। इसलिए सारे जीवन तुम्हारा अनुभव यह है कि कहो मत, सचाई क्या है। जितना बन सके, झुठलाओ। और फिर जिससे भी तुमने कहा उसीसे हानि हुई। अगर मित्र को कह दी सच्ची बात तो मित्र शत्रु हो गया।

फ्रायड ने कहा है, अगर सभी मित्र एक दूसरे के संबंध में सच बातें कह दें तो दुनिया में तीन मित्रतायें भी न बचें। तुम जो मित्र के संबंध में सच-सच सोचते हो अगर वही कह दो तो मित्रता बचनी बहुत मुश्किल है। लोग झूठ में जी रहे हैं। लोग झूठ में पगे हैं।

राह पर कोई मिल जाता है, तुम कहते हो, बड़ी दुआ-सलाम कहते हो, गले मिलते हो, कहते हो बड़ा सौभाग्य, दर्शन हो गये। शुभ मुहूर्त में घर से निकलते ही दर्शन हो गये। बड़े दिनों बाद दर्शन हुए। और भीतर सोच रहे हो कि दुष्ट का चेहरा कहां से दिखाई पड़ गया। अब पता नहीं दिन कैसा जाये! भीतर तुम यह सोच रहे हो, कि यह महाराज कहां से मिल गये। शुभ काम करने निकले थे और यह सज्जन बीच में ही मिल गये। मगर इनसे तुम यही कह रहे हो कि बड़ी कृपा की।

घर में मेहमान आते हैं, तुम कहते हो आओ। पलक-पांवड़े बिछाये हैं। और भीतर रो रहे हो कि फिर आ गये! अब पता नहीं कब जायेंगे। पता नहीं कितनी देर पेरेंगे, परेशान करेंगे। ऊपर से कह रहे हो, अतिथि देवता है और भीतर से तुम जानते हो, कि अतिथि से ज्यादा शैतान और कोई भी नहीं।

तो तुम दो तल पर जीते हो। यह दो तल पर जीना इतना तुम्हें रास आ गया है, इतना सघन हो गया है, इसलिए कठिनाई है। इसलिए गुरु के पास भी आते हो तो पुरानी आदतें एकदम कैसे छूट जायें? कुछ का कुछ दिखलाने लगते हो, कुछ का कुछ कहने लगते हो।

मैं रोज अनुभव करता हूं। लोग कुछ प्रश्न पूछने आते हैं और कुछ पूछने लगते हैं। मैं देख रहा हूं कि उनका प्रश्न कुछ और है। मुझे उन्हें लाना पड़ता है फुसला-फुसलाकर असली प्रश्न पर। मगर जब प्रश्न पूछते हैं लोग, तब भी झूठ कर जाते हैं। क्यों? क्योंकि प्रश्न भी ऊँचा पूछना चाहिये। उसका प्रभाव पड़ता है। हो सकता है उसकी समस्या हो कामवासना की लेकिन प्रश्न उठायेंगे राम का। काम का होगा प्रश्न और उठायेंगे राम की बात। कहेंगे कि परमात्मा से कैसे मिलें? अब मैं उनको देख रहा हूं कि यह परमात्मा की कोई चाह ही कहीं दिखायी नहीं पड़ती उनके....उनकी ऊर्जा में, उनको आभा में, कहीं परमात्मा से कोई मतलब नहीं दिखायी पड़ता। पूछते हैं परमात्मा कैसे मिले? मुझे उन्हें फुलसाना पड़ता है, समझाना पड़ता है कि आओ, असली पर आओ। धीरे-धीरे-धीरे बामुश्किल वे असली पर आते हैं; वह भी बड़ी बेचैनी से आते हैं। और असली को ही सुधारा जा सकता है, नकली को तो कुछ किया नहीं जा सकता।

अगर तुमने प्रश्न ही झूठा पूछा तो मेरे उत्तर का क्या होगा? क्या करोगे उस उत्तर का? मैं जो तुम्हें दवा बता दूंगा वह किस काम आयेगी? वह बीमारी ही तुम्हारी नहीं। अपनी बीमारी छिपा गये, किसी और की बात बता दी।

एक सज्जन आये, वे कहने लगे कि मेरे एक मित्र हैं, बड़ी कामी हैं। उनका मन बस कामवासना ही से भरा रहता है। उनके लिये कुछ उपाय बतायें। मैंने कहा, मित्र को ही भेज देते और वे मुझसे कह देते कि मेरे एक मित्र हैं। इतनी काहे को झंझट की? तब वे थोड़े चौंके। चौंककर चारों तरफ देखा कि... । लेकिन आदमी हिंमतवर थे, कहा कि आपने पकड़ लिया। बात तो यही है। यह उपद्रव तो मेरा ही है। लेकिन मैंने यह सोचा कि सीधा यह पूछता कि मैं बहुत कामी हूं.... मैंने सोचा, एक मित्र के बहाने पूछ लूं। जो आप बतायेंगे वह मैं कर लूंगा।

मगर मित्र का प्रश्न मित्र का प्रश्न है। और कभी-कभी बीमारी भी एक जैसी हो तब भी दो आदमियों को दो तरह की दवाए लगती हैं। ऐसा मत सोचना कि तुम्हारी बीमारी भी तुम्हारे मित्र जैसी बीमारी है तो एक ही दवा दोनों को काम कर जायेगी। तुम्हारा मित्र अनंत जन्मों से अलग तरह की यात्रा कर रहा है। उसके सारे व्यक्तित्व की संरचना भिन्न है, तुम्हारी संरचना भिन्न है। एक ही औषधि काम न पड़ेगी। मित्र के लिये जो औषधि बताई जायेगी वह तुम लेकर और झंझट में पड़ जाओगे। बीमारी तो बनी ही रहेगी, औषधि शायद और नयी बीमारियां ले आये। तो अनेक बार तुम्हारी औषधियों ने तुम्हें और बीमार बनाया है।

इसलिए कहता हूं, हृदय को खोलना। कठिनाई है। तुमने जब भी हृदय खोला तभी हानि हुई। कहते हैं न, दूध का जला छांछ भी फूंक-फूंकर पीने लगता है। ऐसी तुम्हारी अवस्था है। तुम इतनी बार जल गये हो। किसीसे भी सच कहा कि मुश्किल हुई। किसीसे भी सच कहा कि मुश्किल हुई। यह सारा संसार झूठ का संसार है। यहां सच बोलने से चलता ही नहीं। यहां झूठ ही यात्रा का पाथेय है, वही कलेवा है। उसीके सहारे सब चलता है। यहां हम झूठ से बंधे हैं एक-दूसरे से।

तुम्हें पत्नी से रोज-रोज कहना ही पड़ता है, मैं खूब प्रेम करता हूं तुम्हें। तुम्हारे बिना एक क्षण न रह सकूंगा। तुम न होओगी तो मेरा क्या होगा? मैं रह न सकूंगा एक दिन। और तुम भलीभांति जानते हो कि पत्नी न रह जायेगी तो ऊपर तुम कितना ही रोओ, भीतर तुम प्रसन्न होओगे कि चलो झंझट मिटी, उपद्रव मिटा। चलो फिर स्वतंत्र हुए। चलो फिर कोई स्त्री खोज लें।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी। वह बैठा है खाट के पास। जैसा

उदास पतियों को बैठना पड़ता है वैसे ही। गुण-तारे तो और बिठा रहा है भीतर, वह बात अलग। वह तो किसीसे कहनी ही नहीं है। पत्नी भी मरते वक्त .... पत्नियां भी खूब हैं, मरते दम तक ऐसे सवाल उठा देती हैं। पत्नी ने मरते-मरते आंखें खोलीं, और कहा कि एक बात पूछनी मुल्ला। मैं मर जाऊंगी, तो फिर तुम क्या करोगे ? मुल्ला ने कहा, क्या करूंगा ? मर जाऊंगा। क्या करूंगा ! एक क्षण जी न सकूंगा, क्या करूंगा ! तेरे बिना सोच ही नहीं सकता। पत्नी ने कहा, छोड़ो जी ! ये सब बातें छोड़ो। किससे बातें कर रहे हो, ये बातें छोड़ो। यह मुझे बताओ, विवाह तो तुम करोगे ही। कभी नहीं, मुल्ला ने कहा, कभी नहीं। कसम खाता हूं कभी नहीं। तेरी कसम खाता हूं।

पत्नी ने कहा, मेरी कसम मत खाओ, क्योंकि मैं तो मरी ही जा रही हूं। एक ही मेरी प्रार्थना है—वह मुझे पता है, इधर मैं मरी नहीं, इधर मेरा जनाजा उठा नहीं, कि उधर तुम विवाह का इंतजाम कर लोगे। एक ही मेरी प्रार्थना है कि विवाह तो तुम करके लाओगे ही, इतना ही खयाल रखना कि जिस स्त्री को तुम लेकर आओ, वह मेरे कपड़े न पहने, मेरे जेवर न पहने। इससे मेरी आत्मा को बड़ा कष्ट होगा। मुल्ला ने कहा, तू उसकी फिक्र ही मत कर, गुलाबों को तेरे कपड़े आयेंगे ही नहीं— गुलाबी से चल ही रहा है ! — उसकी तू फिक्र ही मत कर।

समझदार आदमी पहले ही से इंतजाम बना लेता है। ऐसा थोड़ी है कि पत्नी मरेगी, फिर इंतजाम करेंगे। अब पत्नी तो मर ही रही है ....।

एक जगत है हमारा, जहां झूठ ही हमारी व्यवस्था है। जहां झूठ ही हमारे संबंधों का सारा सार सूत्र है। गुरु के साथ भी ऐसा ही संबंध बनाओगे क्या ? तो फिर गुरु भी तुम्हें इस संसार के बाहर न ले जा सकेगा। गुरु का अर्थ है, जो तुम्हें इस झूठ के जाल के बाहर ले जाये। तो उसके पास तो तुम्हें ये पुराने अनुभव सब छोड़ देने पड़ेंगे। और जिसके पास तुम छोड़ सको निःसंकोच, वही तुम्हारा गुरु है। नहीं तो तुम्हारा गुरु नहीं। फिर तुम खोजो, अभी और गुरु खोजो, कहीं न कहीं कोई आदमी तुम खोज पाओगे, जिसके पास तुम सब निःसंकोच छोड़ दोगे। कहीं तो कोई आदमी तुम्हें मिल जायेगा जिसकी आंखों मे तुम्हारी निंदा न होगी। और जिससे सच कहकर भी तुम हारोगे नहीं बाजी। जिससे सच कहकर ही जीतोगे।

सत्गुरु का यही अर्थ होता है। सत्गुरु में निंदा तो होती नहीं। तुमने क्या किया है इसके प्रति अपरंपार करुणा होती है। तुमने पाप किया है उसके प्रति भी करुणा होती है, ध्यान रखना। तुम्हारे पाप को भी वह समझता है कि मनुष्य की कमजोरियां है, क्योंकि वह खुद भी उन्हीं कमजोरियों से गुजरा है। खुद भी उन्हीं गड्ढों में गिरा है, खुद भी उन्हीं कंटकाकीर्ण मार्गों से निकला है, खुद भी उसने...

वे कांटे चुभे हैं उसे, वह जानता है, भलीभांति जानता है। सद्‌गुरु का अर्थ है कि जो कल तक तुम्हारे ही जैसा था। आज भूल नहीं गई है बात। अब तो और भी ठीक से समझ में आती है।

सद्‌गुरु के मन में अपरंपार करुणा होती है। तुमने कितना ही गहन पाप किया हो तुम सद्‌गुरु के पास सिवाय क्षमा के और कुछ भी न पाओगे। और अगर कुछ और मिले तो समझ लेना कि यह सद्‌गुरु नहीं है। तुम बचो। यह तुम्हारे झूठे जंजाल का ही हिस्सा है। यह होगा पंडित होगा, पुजारी होगा, तथाकथित महात्मा होगा, लेकिन अभी इसे खुद भी नहीं मिला है।

एक बात समझना—बहुत मनोवैज्ञानिक—अगर तुम किसी गुरु के पास जाकर कहो कि मैं बहुत क्रोधी हूं और वह तुम से तब कहने लगे कि क्रोध पाप है, और नरक में सड़ोगे, और ऐसा- वैसा तुम्हें डराने लगे, धमकाने लगे। तुम कहो कि मैं कामी हूं और वह एकदम क्रुद्ध हो जाये, कि कामी हो तो यहां किसलिये आये ? ब्रह्मचर्य का पालन करो नहीं तो सड़ोगे नर्क में, कीड़े काटेंगे और कड़ाहों में जलाये जाओगे और एकदम आगबबूला होने लगे तो एक बात पक्की है कि वह अभी कामवासना से मुक्त नहीं हुआ, अभी क्रोध से मुक्त नहीं हुआ।

इसे तुम समझो। तुम नाराज उसी बात पर हो जाते हो जो बात तुम्हें अभी भी सताती है। नहीं तो नाराजगी क्या है ? एक समझ होती है, शांत, शीतल। नाराजगी की बात क्या है ?

संत राबिया के पास एक फकीर हसन ठहरा। दोनों बैठे थे; एक आदमी आया, इस आदमी ने हसन के चरणों में अशर्फिया रखीं--सोने की अशर्फिया रखीं, हसन तो एकदम नाराज हो गया। उसने कहा, तू यह--- सोना लेकर यहां क्यों आया ? सोना मिट्टी है, धूल है। हटा यहां से सोने को।

राबिया हंसी। हसन ने पूछा, क्यों हंसती हो ? राबिया ने कहा, हसन, तो तुम्हारा सोने से मोह अभी तक गया नहीं ? सोने से मोह ! हसन ने कहा, मोह नहीं है इसलिए तो मैं इतना चिल्लाया कि हटा यहां से।

राबिया ने कहा, मोह न होता तो चिल्लाते ही क्यों ? अगर मिट्टी ही है सोना, तो मिट्टी तो बहुत पड़ी है तुम्हारे आसपास, तुम नहीं चिल्ला रहे हो। यह आदमी थोड़ी मिट्टी और ले आया, क्या चिल्लाना है ? इतने आगबबूला क्यों हो गये ? इतने उत्तेजित क्यों हो आये ? यह उत्तेजना बताती है कि अभी भीतर डर है। यह उत्तेजना बताती है कि दबा लिया है सोने के मोह को, मिटा नहीं है। नहीं तो क्या इसमें उत्तेजित होने की बात है ? इस आदमी को तो देखो। इस आदमी को तो देखो। यह बेचारा गरीब है, इसके पास सोने के सिवाय कुछ भी नहीं है।

यह बहुत गरीब है। इस गरीब को ऐसे मत दुतकारो। यह इतना गरीब है और कुछ देना चाहता है। इसका तुमसे लगाव है, और सोने के अलावा इसके पास कुछ भी नहीं है।

ऐसा हुआ, मैं जयपुर में था और एक बहुत अपूर्व आदमी थे सोहनलाल दुगड़। जुआरी थे ऐसे तो वे, सटोरिया थे, भारत के सबसे बड़े सटोरिया थे। मगर बड़े हिंमत के आदमी थे। सटोरिया थे, हिंमत के होने ही चाहिये। एक झोले में भरकर बहुत से नोट ले आये। पहली दफा मुझे सुना था, दूसरे दिन आये और पूरा झोला नोट से भरा हुआ मेरे पैरों पर उलटा दिया। मैंने उनसे कहा कि इनको संभालकर रख लें, जब मुझे जरूरत होगी, मैं खबर करूंगा। अभी जरूरत नहीं है। जरूरत जरूर कभी हो सकती है। तो यह मेरी तरफ से रख लें अमानत आपके पास।

वे रोने लगे। मैंने सोचा नहीं था कि कोई आदमी रोने लगेगा। वे रोने लगे। उन्होंने कहा कि नहीं, मैं सटोरिया हूं। आज है, कल नहीं है। यह झंझट मुझे मत दें। आपकी झंझट आप जानो, मैं नहीं रखूंगा। मैं जुआरी आदमी! कभी मेरे पास लाखों होते हैं, कभी करोड़ो भी होते हैं, और कभी मेरे पास कौड़ी नहीं होती। तो यह मैं नहीं रख सकता। आप किसी और को दे दो। तो मैंने कहा, कोई फिकर न करें। नहीं होंगे उस समय तो कोई मैं मुकदमा नहीं चलाउंगा। मैं भी सटोरिया हूं। गये तो गये। तुम रखो।

वे तो रोने लगे। वे कहने लगे कि नहीं, मैं वापिस न ले जा सकूंगा। मैं बहुत गरीब आदमी हूं क्योंकि मेरे पास सिवाय रुपयों के और कुछ भी नहीं है। और मैं कुछ देना चाहता हूं और मैं क्या दूं? मेरे पास और कुछ है ही नहीं। प्रेम मैं जानता नहीं, समर्पण का मुझे कुछ पता नहीं है, आत्मा मैंने देखी नहीं है। ये सब बातें हैं, मैंने सुनी हैं, लेकिन मेरे पास कुछ हैं नहीं। मेरे पास सिवाय रुपयों के और कुछ भी नहीं है। मैं बहुत गरीब आदमी हूं।

सुनते हो उनकी परिभाषा गरीब आदमी की? कि मेरे पास सिवाय रुपयो-के और कुछ भी नहीं है। मैं बहुत गरीब आदमी हूं। मैं बहुत गरीब आदमी हूं। मैं कुछ देना चाहता हूं। अगर रुपया आप न लेंगे तो मेरे हृदय को बड़ी चोट पहुं-चेगी। मुझे लगेगा कि मैं इतना दीन कि कुछ भी न दे लका।

राबिया ने हसन से कहा कि उस गरीब को देख, वह किस भाव से लेकर आया है। और हसन ने कहा कि राबिया तूने मुझे खूब चेताया। बात मेरे समझ में आ गयी। मैंने यह कांचन का जो मोह है, दबा लिया है, यह मिटा नहीं।

सद्गुरु वही है, जो सच में जाग गया है। जो जाग गया है, तुमने क्या किया है इससे कोई निंदा उसके मन में पैदा नहीं होगी। और न ही तूम्हारे लिये नर्क भेज

देगा, न तुम्हें डरायेगा। क्योंकि सद्गुरु तुम्हें देखता है, तुम्हारे कृत्यों को नहीं। कृत्यों का कोई मूल्य नहीं है। कृत्य तो माया है। तुमने जो किया, उसका कोई मूल्य नहीं है, तुम जो हो वही मूल्यवान है। और तुम जो हो वह तो साक्षात परमात्मा है। जिसने अपने भीतर के परमात्मा को देख लिया उसने सारे जगत में छिपे परमात्मा को देख लिया। फिर तुम लाख छिपाओ परमात्मा को चोर के भीतर, तो भी सद्गुरु देखता है। पापी के भीतर, तो भी देखता है; हत्यारे के भीतर, तो भी देखता है। तुम सद्गुरु से छिपा नहीं सकते अपने परमात्मा को।

तो जब तुम अपने सारे पाप खोलकर रख देते हो-- अच्छा बुरा जो भी है, जैसा भी है--सद्गुरु के पास खोलकर रखने में ही तुम्हें पहली दफा कर्मों से छुटकारा मिलता है। यह कर्म-मुक्ति का उपाय है। जब तक तुम दबाते हो, बंधे रहते हो; छिपाते हो, अटके रहते हो। कहीं तो कोई जगह होनी चाहिये, जहां तुम सब खोल-कर रख दो। उसको खोलकर रखते ही तुम्हें एक बात दिखाई पड़ती है कि मैं तो पृथक् हूं-- साक्षी मात्र; मैं तो द्रष्टा मात्र हूं। न तो कृत्य का कोई मूल्य है, न विचार का कोई मूल्य है। ये सब सपने की बातें हैं। कुछ सपने आंख बंद करके देखते हैं हम, कुछ सपने आंख खोलकर देखते हैं हम। लेकिन तुम्हारी अड़चन मैं जानता हूं। तुमने जब भी हिंमत की, तभी अड़चन आई।

बादलों के पास आना नहीं
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं
है अंधेरी रात, मैं भटकी हुई
और सिर से पांव तक अटकी हुई
भाल पर की रेख सी अंधी हुई
पायलों सा और तड़पाना नहीं
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं
फिर मुझे इस बार भी भ्रम हो गया
यूं छला जाना सहज क्रम हो गया
जिंदगी का व्यर्थ सब श्रम हो गया
आस के उस गांव से आना नहीं,
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं

कभी तुमने इतने-इतने आंखों में आंखें डालीं, सदा दुख पाया। तुम इतने डर जाते हो कि परमात्मा से भी कहते हो कि :

आस के उस गांव से आना नहीं

दे नयन में नयन मुस्काना नहीं
बादलों के पास से आना नहीं
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं
है अंधेरी रात, मैं भटकी हुई
और सिर से पांव तक अटकी हुई
भाल पर की रेख सी अंधी हुई
पायलों सा और तड़पाना नहीं
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं

जब भी तुमने किसीकी आंख में आंखें डालीं और अपनी सचाई को खोला, तभी तुमने कष्ट पाया, तभी चोट पाई, तभी कांटा चुभा, तभी घाव बना। वे घाव बढ़ते चले गये। वे घाव भरे नहीं। वे घाव सब हरे हैं। तो तुम डरते हो, परमात्मा तक से डरते हो कि कहीं वह फिर तुम्हें किसी नये प्रेम में न उलझा दे, फिर कहीं आंख में आंख डालकर तुम्हें किसी और झंझट में डाल दे।

आस के उस गांव से आना नहीं
दे नयन में नयन मुस्काना नहीं
फिर मुझे इस बार भी भ्रम हो गया
यूं छला जाना समझ क्रम हो गया
जिंदगी का व्यर्थ सब श्रम हो गया

हर बार जब भी तुमने किसी की आंख में आंख डाली तभी भ्रम हुआ, तभी छल हुआ। तो तुम गुरु के पास भी जाकर आंख में आंख डालकर नहीं देखते हो। इधर उधर देखते हो। आसपास देखते हो। तुमने प्रेम से इतने धोखे खाये हैं कि तुम गुरु के प्रेम में भी पूरे नहीं उतरते हो। वहां भी तुम सुरक्षा रखते हो। वहां भी तुम आयोजन रखते हो कि अगर जरूरत पड़े तो अपनी रक्षा कर सको। वहां भी तुम अरक्षित नहीं छोड़ते अपने को। वहां भी समर्पण पूरा नहीं होता।

तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं। तुम्हारे प्राचीन अनुभव, सनातन के अनुभव इसी बात के लिये तुम्हें तैयार किये हैं। लेकिन अगर तुम इसी में उलझे रहे, तो तुम चूक जाओगे। कभी तो हिंमत करो। क्या होगा? ज्यादा से ज्यादा एक धोखा और होगा, यही न! इतने धोखे खाये, एक धोखा और सही। खोने को क्या है तुम्हारे पास? लुट तो गये हो। लुटे खड़े हो, सर्व हारा हो। चलो, यह आदमी और थोड़ा लूट लेगा, और क्या होगा? तुम्हारी लुटाई इतनी हुई है कि अब और थोड़े लुट गये तो क्या फर्क पड़ जायेगा? इसलिए हिंमत करो।

इसलिए अगर कभी किसी के प्रेम में उतर रहे हो, कभी किसीकी पुकार

तुम्हें सुनाई पड़ती हो और कभी किसी के आसपास परमात्मा की किरण दिखाई पड़ती हो तो चूक मत जाना अवसर। खोने को क्या है? एक भ्रम और होगा इतना ही ना! चलो ठीक, एक भ्रम और सही। करोड़ो भ्रम में एक भ्रम जुड़ जायेगा तो क्या अड़चन होनेवाली है? इतने कांटे गड़े, एक कांटा और गड़ जायेगा। इतने लोगों ने धोखा दिया, एक आदमी और धोखा दे जायेगा।

इसको मैं साहस कहता हूं। साहस का अर्थ है, एक बार और प्रयोग करें। साहस का अर्थ है, अतीत के अनुभव को ही सब कुछ न मान लें। संभव है, कुछ और हो, नया हो। नया हो सकता है, इस बात का भरोसा ही श्रद्धा है। जो अब तक हुआ है वही सदा होता रहेगा ऐसा मान लेना तो फिर विषाद में घिर जाना है, निराश हो जाना है। सच, बहुत मार्गों पर तुम गये, कोई मार्ग कहीं नहीं ले गया इससे कुछ घबड़ाने की बात नहीं है।

मैंने सुना है, अमरीका का प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडीसन एक प्रयोग कर रहा था। सात सौ बार हार गया। रोज प्रयोग चलता सुबह से सांझ तक, और रोज हार होती। वह प्रयोग सफल होता न मालूम होता। सात सौ बार काफी होता है। कोई तीन साल बीत गये। चौथा साल बीतने लगा। उसके सहयोगी तो थक मरे। आखिर उसके सहयोगियों ने एक दिन इकट्ठा होकर कहा कि बहुत हो गया। कुछ और करना है कि जिंदगी भर इसी को करते रहना है? और यह कुछ होता दिखाई पड़ता नहीं। और आपसे हम घबड़ा गये हैं क्योंकि आप रोज सुबह आ जाते हैं फिर उत्साह से भरे, फिर उमंग से भरे, फिर शुरू कर देते हैं। आप थकते ही नहीं। क्या जिंदगी भर यही करना है?

एडीसन ने कहा, अब रुकने की जरूरत है? सात सौ रास्ते हम देख चुके, गलत सिद्ध हो गये, अब ठीक रास्ता करीब ही आता होगा। आखिर कितने गलत होंगे? समझो कि हजार रास्ते हैं अगर कुल मिलाकर, तो सात सौ तो हमने जांच लिये, अब तीन सौ ही बचे। जीत रोज करीब आ रही है पागलों, किसने तुमसे कहा कि हार हो रही है? जीत रोज आ रही है। हर हार जीत की तरफ एक कदम है। और यह तो ठीक ही है, एडीसन ने कहा कि ठीक रास्ता एक ही होगा। गलत नौ सौ निन्यानवे हो सकते हैं। ठीक तो एक ही होगा। तो नौ सौ निन्यानवे से गुजरना तो होगा ही। उसके बिना कोई उपाय नहीं है उस एक तक पहुंचने का।

हिंमतवर आदमी का यह लक्षण है। उसकी आशा नहीं टूटती। उसका भरोसा नहीं खोता। वह कहता है इतने धोखे खा लिये, इतने आदमी जांच लिये, इतने प्रेम परख लिये, इतने संबंध टटोल लिये अब तो ठीक संबंध करीब आता ही होगा। अब कब तक दूरी रहेगी? अब घड़ी करीब आती ही होगी। इतने-इतने

जन्मों तक भटके, अब और कब तक भटकना होगा ? इसलिए अब ठीक के करीब आते हैं। और हिंमत करें, और साहस करें और उमंग, और उत्साह।

खयाल रखना, इस संसार में और सब तो तुम्हारे विरोध में हैं, इसलिए उनके साथ अगर तुम सच खोलोगे तो अड़चन में पड़ोगे। वे तुम्हारा सब शोषण करेंगे। इस जगत में सब तुम्हारे प्रतिस्पर्धी हैं, सब तुम्हारे प्रतियोगी हैं। उन्हें तो तुम्हें कुछ का कुछ बताना पड़ेगा।

मैंने सुना है कि दो दलाल -- शेयर मार्केट बंबई के दो दलाल -- ट्रेन में मिले। पहले ने दूसरे से पूछा, कहां जा रहे हो ? दूसरे ने कहा, पूना जा रहा हूं। पहले ने कहा, बनो मत। तुम मुझसे झूठ मत बोलो। मुझे पक्का पता है कि तुम पूना जा रहे हो, तुम मुझसे झूठ मत बोलो। वह पहला बहुत हैरान हुआ। उसने कहा कि मैं ही तो कह रहा हूं कि पूना जा रहा हूं। वह दूसरा बोला, तुम मुझसे झूठ मत बोलो, मुझे पक्का पता है। मैं तुम्हारे ऑफिस से पता लगाकर आ रहा हूं कि तुम पूना ही जा रहे हो।

मतलब समझे आप ? वह यह कह रहा है। कि दलाल तो ऐसा झूठ बोलते हैं। 'पूना जा रहा हूं' मतलब तुम कहीं और जा रहे हो; तुम्हारा प्रयोजन यह है। पूना की कह रहे हो तो कहीं और जा रहे हो इतना पक्का। इगतपुरी जा रहे, कि कल्याण जा रहे, कि उल्हासनगर; मगर पूना नहीं जा रहे इतना तो पक्का है। इसलिए वह दूसरा कहता है कि तुम मुझसे झूठ मत बोलो कि पूना जा रहे हो, तुम पूना ही जा रहे हो।

ऐसी दुनिया है। यहां सब ऐसा ही चल रहा है। यहां बड़ी प्रतिस्पर्धा है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने एक मित्र को शिकार के किस्से बता रहा था। तब उसके मित्र ने पूछा, बड़े मियां, अगर आप जंगल में निहत्थे हो और शेर आपका पीछा करना शुरू कर दे तो आप क्या करेंगे ? मुल्ला ने उत्तर दिया, अगर वहीं कोई नदी पास में होगी तो उसमें कूद जाऊंगा। मित्र बोला, अगर शेर भी नदी में कूद जाये तो ? मुल्ला ने कहा, मैं नदी पार कर जाऊंगा। मित्र ने कहा, अगर शेर भी नदी पार कर जाये तो ? तब मैं पेड़ पर चढ़ जाऊंगा, मुल्ला ने कहा। मित्र ने फिर कहा, शेर भी अगर पेड़ पर चढ़ जाये तो ? अब की बार मुल्ला झुंझला गया और बोला कि यार, पहले यह तो बता दो कि तुम मेरी तरफ हो कि शेर की तरफ ?

यही अड़चन है। यहां संसार में कोई तुम्हारी तरफ तो है नहीं। इसलिए सच बोलना खतरे से खाली भी नहीं है।

लेकिन सद्गुरु का तो अर्थ ही होता है कि यह आदमी तुम्हारी तरफ है।

इससे तुम्हारा क्या विरोध हो सकता है ! यह तुम्हें किस भांति की हानि पहुंचा सकता है ? इससे तुम्हारी किसी भी तरह की प्रतिस्पर्धा की संभावना कहां है ? तुम्हारे पास जो हैं उसमें इसकी उत्सुकता नहीं है। तुम्हारी जो आकांक्षायें हैं वे इसकी आकांक्षायें नहीं हैं। अगर तुम धन पाने में लगे हो, यह ध्यान पाने में लगा है। अगर तुम पद पाने में लगे हो, यह परमात्मा पाने में लगा है।

और एक मजा कि अगर धन पाने में दो आदमी लगे हों तो दुश्मन हो ही जायेंगे, क्योंकि धन सीमित है। और अगर ध्यान पाने में दो आदमी नहीं, दो करोड़ आदमी लगे हों तो भी कोई दुश्मनी का कारण नहीं है। क्योंकि ध्यान असीम है। अगर मुझे ध्यान उपलब्ध हो गया तो इसका यह अर्थ थोड़े ही है कि अब तुम्हारे लिये कुछ कम बचा दुनिया में। अब तुम क्या करोगे ? अगर कोई दो आदमी पद पाने में लगे हों तो एक ही पा सकेगा, दोनों न पा सकेंगे। लेकिन कोई अगर परमात्मा को पाने में लगा हो किसी से कोई स्पर्धा ही नहीं है।

मैं परमात्मा को पा लूं इससे मैं तुम्हारा दुश्मन थोड़े ही हूं ! इससे कुछ परमात्मा तुम्हारे लिये कम थोड़े ही बचा ! कि अब तुम पाओगे तो थोड़ा तो पहले ही कोई ले जा चुका है, अब तुमको अधूरा ही मिलेगा। आश्चर्य की बात तो यही है कि अगर किसी एक व्यक्ति ने परमात्मा को पा लिया तो तुम्हारे पाने की संभावना बढ़ गयी। घटी नहीं, बढ़ गयी। और अगर किसी एक व्यक्ति ने पद पा लिया तो तुम्हारे पाने की संभावना समाप्त हो गयी। अब या तो मोरारजी बैठ जायें या इंदिरा बैठ जाये। एक ही बैठ सकते हैं। दूसरा या तो जेल होगा या जेल के बाहर, जेल से भी बदतर हालत में होगा। जहां पद का संघर्ष है, वहां तो स्पर्धा है; वहां तो दुश्मनी है, वहां मैत्री कैसी ?

तो राजनीतिज्ञ मित्र हो ही नहीं सकते। मित्र भी जो दिखाई पड़ते हैं, वे भी मित्र नहीं होते। जो एक ही पार्टी में होते हैं, वे भी मित्र नहीं होते। कैसे हो सकते हैं ? मित्रता सब दिखावा है, ऊपर-ऊपर है, धोखा है। मित्रता सब औपचारिक है। भीतर दुश्मनी चल रही है। भीतर एक-दूसरे को काटने के सब उपाय चल रहे हैं।

राजनीति में मित्रता होती ही नहीं, धर्म में शत्रुता नहीं होती। हो कैसे सकती है ? अगर मुझे कुछ मिल गया है, तो इससे तुम्हारे मिलने की संभावना कम नहीं हुई, बढ़ गयी। अगर आदमी को मिल सकता है, तो तुम्हें भी मिल सकता है यह भरोसा आ सकता है। अगर तुम जैसे ही हड्डी-मांस-मज्जा के आदमी को मिल सकता है तो तुम्हें क्यों नहीं मिल सकता ? तुम्हारी हिंमत जगेगी। तुम अपने खोये उत्साह को पुनः पा लोगे। तुम्हारा आत्म-विश्वास पैदा होगा।

सद्गुरु का अर्थ है, उसने कुछ ऐसे जगत में पाया है जहां प्रतिस्पर्धा होती ही नहीं। उसने ध्यान पाया, समाधि पायी, परमात्मा पाया, धर्म पाया। एक तो तुम्हारी आकांक्षा नहीं है इन बातों की, अगर तुम्हारी आकांक्षा है तो भी कोई स्पर्धा नहीं है। तुम सद्गुरु के सामने सब खोलकर रख सकते हो। तुम्हें अपने ताश के पत्ते छिपाने की जरूरत नहीं है; ट्रम्प कार्ड भी छिपाने की जरूरत नहीं है। तुम सारे पत्ते खोलकर रख सकते हो। अच्छा यही होगा कि तुम सारे पत्ते खोल दो तो सद्गुरु तुम्हे ठीक-ठीक से रास्ते पर ले चले। तुम्हारा हाथ पकड़ ले। तुम्हारे सारे पत्ते खोलकर रख देने में ही तुमने अपना हाथ सद्गुरु के हाथ में रख दिया। उसके पहले तुम रखोगे नहीं। उसके पहले तुम मुट्ठी बांधे हुए हो। कुछ छिपाये हुए हो। बचाना है, ज्यादा करीब न आओगे, जरा दूर-दूर रहोगे, दीवाल रखोगे, ओट रखोगे, परदा रखोगे, क्योंकि कहीं सब बात खुल न जाये। सब बात खोल ही दो, ताकि बचाने को कुछ न रहे। जब बचाने को कुछ न रहेगा, कुछ राज न रहेगा, कुछ रहस्य न रहेगा, तो फिर किसलिये ओट करोगे? फिर किसलिये परदे डालोगे? फिर सब ओट मिट जायेगी। और जहां ओट मिटती है वहीं क्रांति घटती है।

तीसरा प्रश्न : राम राम करत काही राम ऐसे मिलत नाहीं,
राम सदा कहत जायी, राम सदा बहत जायी,
कहत पकड़ो राम नाहीं, चलत पकड़ो राम नाहीं,
राम सदा विराजत मांही सब दिशत राम सही

सुंदर वचन हैं। लेकिन इनको प्रश्न क्यों बनाया? इनमें उत्तर है। सीधे–सरल वचन हैं। इनकी व्याख्या की भी जरूरत नहीं है। इससे सीधा, सरल और क्या होगा?

राम-राम कहत काही? राम-राम किसलिये कहते हो? कहने की बात नहीं है राम। हृदय में संभालने की बात है राम। कहना किसको है? पुकारना किसको है? चीखना-चिल्लाना किसको है। राम कहीं दूर थोड़े ही है!

कबीर कहते हैं, क्या बहरा हुआ खुदा है? क्या तेरा खुदा इतना बहरा हो गया है, जो इतने ऊंचे मीनार पर चढ़कर चिल्ला रहा है? राम शब्द को भी दोहराने की क्या जरूरत है? भाव को गहो। भाव को संभालो हृदय में। जैसे गर्भिणी स्त्री अपने बच्चे को संभालती है गर्भ में, ऐसे राम के भाव को संभालो।

राम राम कहत काही, राम ऐसे मिलत नाहीं

ऐसे बोलने से, राम-राम दोहराने से, राम-नाम की चदरिया ओढ़ने से राम

मिलते होते तो बड़ा सस्ता हो जाता। फिर तो तोतों को भी मिल जाते।

राम सदा कहत जायी... सुंदर वचन है कि तुमने कहा राम कि गये राम, हाथ से चूके। कहे कि चूके। यह शब्द की बात नहीं है, निःशब्द में संभालना है। शून्य में, मौन में पकड़ना है। शब्द बना कि तुम राम से दूर हो गये। शब्द बना कि मन बन गया। जहां मन आया, राम दूर हो गये। जहां मन नहीं होता वहां राम विराजमान है। राम कोई नाम थोड़े ही है! यह तो प्रतीक है नाम। भाव की बात है।

इसीलिए तो कहते हैं वाल्मीकि मरा-मरा जपते-जपते भी राम को पा गया। भाव की बात है। गंवार थे, पढ़े-लिखे न थे। गुरु तो कह गया कि राम-राम जपना; भूल गये। सीधे-सादे आदमी थे। इसलिए कभी-कभी गंवार पहुंच जाते हैं मगर पंडित कभी पहुंचे हों ऐसा सुना नहीं। पंडित बिलकुल शुद्धोच्चारण करता है। व्याकरण, भाषा, सबका आयोजन रखता है। मगर यह कोई शुद्धोच्चारण की बात थोड़े ही है! यह कोई भाषा की बात थोड़े ही है, भाव की बात है।

भूल गये। राम-राम कहते-कहते-कहते––जल्दी-जल्दी दोहरा रहे होंगे: 'राम राम-राम-राम, वह मरा-मरा हो गया। तो वे उसीको दोहराते रहे। उसीको दोहराते-दोहराते पा गये। जब गुरु वापिस आया और देखा कि वाल्या तो वाल्मिकि हो गया है, अपूर्व शांति में विराजा है। आनंद झर रहा है, अमृत बरस रहा है। तो गुरु ने पूछा, मिल गया? राम-राम जपते-जपते मिला? तब कहीं वाल्या को याद आया। उसने कहा, अरे, बड़ी भूल हो गयी। राम-राम कहा था। मैं तो मरा-मरा जपता रहा। मगर मिल गया।

तो न तो राम जपने की बात है, न राम शब्द से कुछ लेने-देने की बात है।

यहां पुष्पा बैठी है। वह यहां नाद का प्रयोग करती है। एक छोटा सा संन्यासियों का समुदाय उसके पास बैठकर नाद का प्रयोग करता है, नाद में डूबता है। पुष्पा होलेन्ड से आयी है, संस्कृत जानती नहीं। तो कुछ संस्कृत की भूल-चूक हो जाती होगी।

फिर यहां तो संस्कृत जाननेवाले भी आ जाते हैं। आना तो नहीं चाहिये, मगर आ जाते हैं। तो किसी संस्कृत जाननेवाले ने ऐतराज उठाया होगा, पुष्पा को समझाया-बुझाया कि इस तरह का नहीं, ठीक-ठीक उच्चारण होना चाहिये। नाद का ठीक स्वर होना चाहिये, ठीक व्याकरण होना चाहिये। तो बेचारी पुष्पा बात में पड़ गयी।

जब यह हमेशा अपने समूह को लेकर आती थी तो परम आनंद की घटना घटती थी। वे खूब गहरे डूबते थे। इस बार जब आई मेरे पास और उसके समूह

ने जब नाद का उच्चार किया तो उच्चारण तो सही था, बाकी सब खो गया। व्याकरण बिलकुल ठीक हो गयी, मगर न भाव था, न रस था, न डुबकी थी। डर दूसरा लगा था। डर यह लगा था कि कहीं कोई भाषा की भूल-चूक न हो जाये ! तो गौण तो पकड़ में आ गया, मूल खो गया।

मैंने उससे बुलाकर पूछा कि तू जरूर किसी संस्कृत जाननेवाले के चक्कर में आ गयी। उसने कहा कि हां, कुछ गलती हुई ? मैंने कहा, सब गड़बड़ हो गया, गलती नहीं हुई। यह ऐसे ही हुआ, जैसे कि वाल्या मरा-मरा जप रहा था, वह तो संयोग की बात है, प्रभु ने बड़ी कृपा की कि कोई पंडित नहीं भेजा इस वक्त, नहीं तो वाल्मीकि अभी तक भटकते। पहुंचते ही नहीं। कोई पंडित आकर ठीक कर देता कि यह क्या कर रहे हो——मरा-मरा ? राम-राम कहो। और याद रखना, इस तरह की भूल-चूक न हो। तो फिर डर पैदा हो जाता है। और डर में कहां प्रेम ! जहां भय आया , संकोच आ गया सिकुड़ गया आदमी ! फिर वह पूरे वक्त खयाल रखते हैं कि कहीं मरा तो नहीं हो रहा है। फिर तो नहीं हो रहा है मरा। बस चूक जाते। फिर लीनता ही न बनती, फिर तल्लीनता ही न तो पैदा होती।

तो मैंने उनसे कहा, भूल सब भाषा-व्याकरण। यहां कोई मैं भाषा-व्याकरण थोड़े ही सिखाने को बैठा हूं। यहां असली की बात चल रही है, नकली की बात मत कर। भूल सब। कोई भी शब्द काम देगा। अपना ही नाम अगर दोहरा लो, तो भी हो जायेगा। यह प्रश्न ही शब्दों का नहीं है।

इसलिए कहते हैं, 'राम सदा कहत जायी'। कहा कि चूके, कहा कि गया।

राम सदा बहत जायी।

और राम तो प्रवाह है। तुमने पकड़ने की कोशिश की कि चूका। मुट्ठी बांधी कि गया। राम के साथ बहो। यह प्रवाह है, जीवंत प्रवाह है। यह कोई मुर्दा चीज नहीं है कि बांध ली गांठ और रख ली संभालकर पोटली में। यह कोई हीरा नहीं है, यह नदी है, बहती हुई है, यह सरित्-प्रवाह है।

...राम सदा बहत जायी
कहत पकड़ो राम नाहीं

और तुमने कहकर पकड़ लिया राम——चूके। राम बह रहा है, तुम भी उसके साथ बहो। बहो धारा के साथ। यही समर्पण का अर्थ है।

चलत पकड़ो राम नाहीं, राम सदा बिराजत मांही

और राम तुम्हारे भीतर बैठा है, बुला किसको रहे हो ? बुला कौन रहा है? जो बुला रहा है वही राम है। अब राम से ही राम-राम कहलवा रहे हो। काहे को कष्ट दे रहे हो? राम से राम-राम कहलवा के क्या सार होगा ? जो भीतर

पुकार रहा है उसमें ही डुबकी ले लो।

सब दिशत राम सही

जब भीतर राम दिखने लगेगा तो तुम पाओगे, सब दिशाओं में राम है।

चौथा प्रश्न : आपने कल महमंद गझनी और उसके गुलाम के प्रेम की कहानी कही, लेकिन मुझे एक सत्य घटना मालूम है, जिसमें गुरु ने शिष्य के प्रति ऐसा भाव प्रगट किया। आप अपनी अमृतसर की एक यात्रा में लगातार तीन दिनों तक कड़वा रस पीते रहे और शिष्य को इसकी खबर नहीं होने दी। इसे समझाने की अनुकंपा करें।

पूछा है चमनलाल भारती ने। उन्हीं के घर की बात है, इसलिए वे ठीक ही कहते हैं। सब ही है बात। लेकिन इतने प्रेम से पिला रहे थे ...। मैं बहुत घरों में रुका हूं। पत्नियां तो मुझे बहुत अनेक घरों में मिलीं जिन्होंने बड़े प्रेम से सेवा की, लेकिन जहां तक पतियों का संबंध है, चमनलाल अनूठे हैं। खुद ही सारी देखभाल करते। रात बारह बजे मुझे विदा करके फिर सुबह का इंतजाम करने में लग जाते। चार बजे उठकर फिर सुबह का इंतजाम। रस भी खुद लाते, पानी भी खुद लाते, भोजन भी खुद लाते।

इतने प्रेम से सेवा कर रहे थे कि कड़वे रस की बात उठानी ठीक नहीं थी। और उनका क्या कसूर था ? कुछ कड़वे फल आ गये होंगे। इतना प्रेम डाला था कुछ कड़वे फल आ गये होंगे। इतना प्रेम डाला था उसमें कि वह कड़वाहट कड़वाहट नहीं रही थी। जीभ तो जानती थी कि कड़वा रस है, लेकिन मैं तो कुछ और भी देख रहा था जो उसके साथ बह रहा है। वह इतना ज्यादा था कि उसने उस कड़वेपन को ढांक दिया था। कभी-कभी तो बेमन से कोई मीठा रस भी पिला दे तो कड़वा हो जाता है। और कभी कोई पूरे हृदय से कड़वा रस भी पिला दे मीठा हो जाता है। एक और भी मिठास है—— प्रेम की।

आखरी प्रश्न : संत दादू ने अपने शिष्यों की पीड़ा समझकर भविष्यवाणी की थी कि सौ साल बाद एक संत प्रगट होगा। वही पीड़ा मेरे समेत आपके सभी शिष्यों में मौजूद है। लगता है कि आपकी अनुपस्थिति हमें अनाथ बना देगी। हमारे अंदर भी यही गहरी आकांक्षा जगती है कि हमें भी कोई सौ साल बाद संभालनेवाला हो। कृपा कर प्रकाश डालें।

पहली तो बात, मेरे रहते तुम सनाथ क्यों नहीं हो जाते हो ? तुम्हारे इरादे अनाथ रहने के ही हैं ? मैं तैयार हूं तुम्हें सनाथ करने को, और तुम कह रहे हो

कि जब आप चले जायेंगे। अगर तुम एक बार सनाथ हो गये तो सनाथ हो गये; फिर अनाथ नहीं होते। अनाथ वे ही हो जायेंगे मेरे जान के बाद, जो मेरे होते हुए भी अनाथ थे। इसे खूब खयाल में ले लेना।

अगर मुझसे संबंध जुड़ गया तो परम से संबंध जुड़ गया। वही नाथ है। उसके बिना तो अनाथ ही रहोगे। और अगर मुझे चूक गये तो सौ साल बाद अगर कोई आ भी जाये तो उसको भी चूक जाओगे। सौ साल में चूकने की आदत और मजबूत हो जायेगी। सौ साल अभ्यास कर लोगे न चूकने का! सौ साल के बाद की फिक्र कर रहे हो। मैं अभी मौजूद हूं, दरवाजा अभी खुला है। तुम कहते हो, जब दरवाजा बंद हो जायेगा, सौ साल बाद कोई दरवाजा खुलेगा कि नहीं? अभी दरवाजा खुला है। तुम्हें सौ साल के बाद ही प्रवेश करना है? सौ साल और संसार में रहना है? अभी थके नहीं? अभी ऊबे नहीं?

जो अभी हो सकता है उसे कल पर मत टालो। और अगर अभी न कर सके तो कल कैसे कर सकोगे? करना है तो इस क्षण हो सकता है।

इसलिए मैं सौ साल के बाद की कोई भविष्य-वाणी न करूंगा। मैं भविष्य की तरफ तुम्हें उन्मुख ही नहीं करना चाहता। वर्तमान मेरे लिये सब कुछ है, यही क्षण सब कुछ है। कल न तो आता है, न कभी आयेगा, न कभी आया है। कल की आशा ही संसार है। आज में प्रवेश कर जाना ही धर्म है। धर्म बिलकुल नगद बात है। उधारी की बातें करो।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन एक दुकान पर गया। देखा कि दुकानदार एक तख्ती लगा रहा है। तो मुल्ला ने पूछा कि बड़ी प्यारी तख्ती है। उसने कहा, पढ़ो भी तो क्या लिखा है! वह मुल्ला जैसे आदमियों के लिये ही तख्ती लगा रहा था, तख्ती पर लिखा था 'आज नगद कल उधार'। मुल्ला थोड़ी देर चुप बैठा रहा, फिर बोला, अच्छा भाई चलते हैं। तो दुकानदार ने कहा, कैसे आये, कैसे चले? उसने कहा कि अब जैसे आये थे .... यह तख्ती देखकर जा रहे हैं। अब कल आयेंगे। 'आज नगद कल उधार' — तो जिस हिसाब से आये थे, अब वह तो आज चलेगा नहीं। कल आयेंगे। उधार लेने आये थे।

मगर कल फिर आज की तरह आयेगा न! कल जब आओगे, फिर तख्ती पर फिर लिखा होगा: आज नगद कल उधार।

ऐसी जिंदगी तख्ती है, जिस पर लगा है: आज नगद कल उधार। तुम कल के लिए प्रतीक्षा कर रहे हो, कल कभी आता है? आज ही आता है। जो आता है वह आज है। द्वार खुला है। हिंमत हो, प्रवेश कर जाओ। क्या हिसाब रख रहे हो? सौ साल बाद जब जो होगा, होगा। अगर हिंमत होगी तो उस दिन भी

दरवाजे मिल जायेंगे। हिंमतवर को सदा दरवाजा है। अगर हिंमत न होगी, तो कायर को कभी भी दरवाजा नहीं है। दरवाजे कभी समाप्त नहीं होते। कहीं न कहीं दरवाजा बंद होता है, कहीं न कहीं दरवाजा खुल जाता है। ऐसा तो कभी नहीं होता कि परमात्मा तक पहुंचने का कोई उपाय न हो। सदा उपाय है। परमात्मा किसी न किसी रूप में, किसी न द्वार से तुम्हें पुकारता ही रहता है। तुममें भर हिंमत होनी चाहिये।

अब तुम कह रहे हो कि सौ साल बाद आप की अनुपस्थिति हमें अनाथ बना देगी। मेरी उपस्थिति तुम्हें सनाथ बना रही है? अगर मेरी उपस्थिति तुम्हें सनाथ बना रही है तो अनाथ होने का फिर कोई उपाय नहीं रहा। बात ही खतम हो गई फिर तुम अनाथ कभी नहीं हो सकोगे। यह नाता कोई दिन-दो दिन का नहीं है। यह नाता फिर शाश्वत है। जो तुम्हें चाहिये वह मैं तुम्हें देने को तैयार हूं, तुम भर लेने को तैयार हो जाओ। तुम भर अपना हृदय खोला।

मैथिली में एक लोककथा है। गोनू झा का नाम बिहार में खूब प्रचलित है। मुल्ला नसरुद्दीन जैसा आदमी रहा होगा गोनू झा। गोनू झा मेले से सुंदर बछड़ा मोल लेकर अपने गांव लौट रहे थे। अभी वे गांव की सीमा में प्रवेश कर ही रहे थे। कि एक चरवाहे ने पूछा कि पंडित जी, बछड़ा तो बहुत सुंदर है, कितने में मोल लिया? 'पचहत्तर रुपये में', गोनू झा ने उत्साह से उत्तर दिया और आगे बढ़े। वे गांव में प्रवेश कर चुके थे कि पाठशाला में जाता हुआ एक छात्र पूछ बैठा 'बाबा, बछड़ा तो बहुत सुंदर है, कितने में मोल लिया?' 'पचहत्तर रुपये में', गोनू झा ने झल्लाकर कहा। आगे गांव का कुंआ था जिस पर एक पनिहारन पानी भर रही थी। पनिहारन भी पूछ बैठी, 'पंडित जी, महाराज, बछड़ा तो बड़ा सुंदर है...' और अभी वह इतना ही कह पायी थी कि गोनू झा बछड़े को वहीं छोड़कर झप से कुएं में कूद पड़े।

पनिहारिन के शोर मचाते ही बात की बात में समूचा गांव इकट्ठा हो गया और एक रस्सी डालकर गोनू झा को किसी तरह बाहर निकला गया। बाहर नकालते ही गोनू झा जोर से चिल्लाये, 'पचहत्तर रुपये।'

'क्यों गोनू, दिमाग तो ठिकाने है?' एक अत्यंत वृध्द व्यक्ति ने पूछा।

'बिलकुल होश में हूं।'

'तो यह क्या बक रहे हो? पचहत्तर रुपये और कुएं में कूदने से क्या लेना-देना? और कुएं में कूद ही क्यों थे?'

'ताकि सभी गांव वालों के प्रश्न का एक ही बार में उत्तर देकर छुट्टी पा लूं अब एक-एक आदमी को अलग-अलग उत्तर देते फिरना, और गांव भर पूछेगा कि

बाबा, बछड़ा बड़ा सुंदर है। 'पचहत्तर रुपये पचहत्तर रुपये' तो गोनू झा ने ठीक उपाय किया, कूद पड़े कुएं में। सारा गांव अपने आप इकट्ठा हो गया, एक दफा पचहत्तर रुपया छुटकारा पा लिया।

जो प्रश्न तुमने पूछा है, वह प्रश्न औरों के मन में भी हो सकता है। वह प्रश्न किसी एक का नहीं है। वह मैं बहुतों की आंखों में देखता हूं। अलग अलग उत्तर देने की जरूरत नहीं है। मैं इकट्ठा ही कह देता हूं : पचहत्तर रुपये !

दरवाजा खुला है। आज नगद है और कल उधार हो जायेगा। नगद को स्वीकार कर लो। हिंमत करो। चुनौती लो। अपने को खोओगे तो ही सनाथ हो सकोगे।

स्वयं मिटे बिना कोई सनाथ नहीं होता। क्योंकि जब अहंकार मिटता है तब परमात्मा प्रवेश करता है।

आज इतना ही।

सूर न जाने कायरी

प्रवचन : ३
दिनांक १३।७।१९७७
श्री रजनीश आश्रम, पूना.
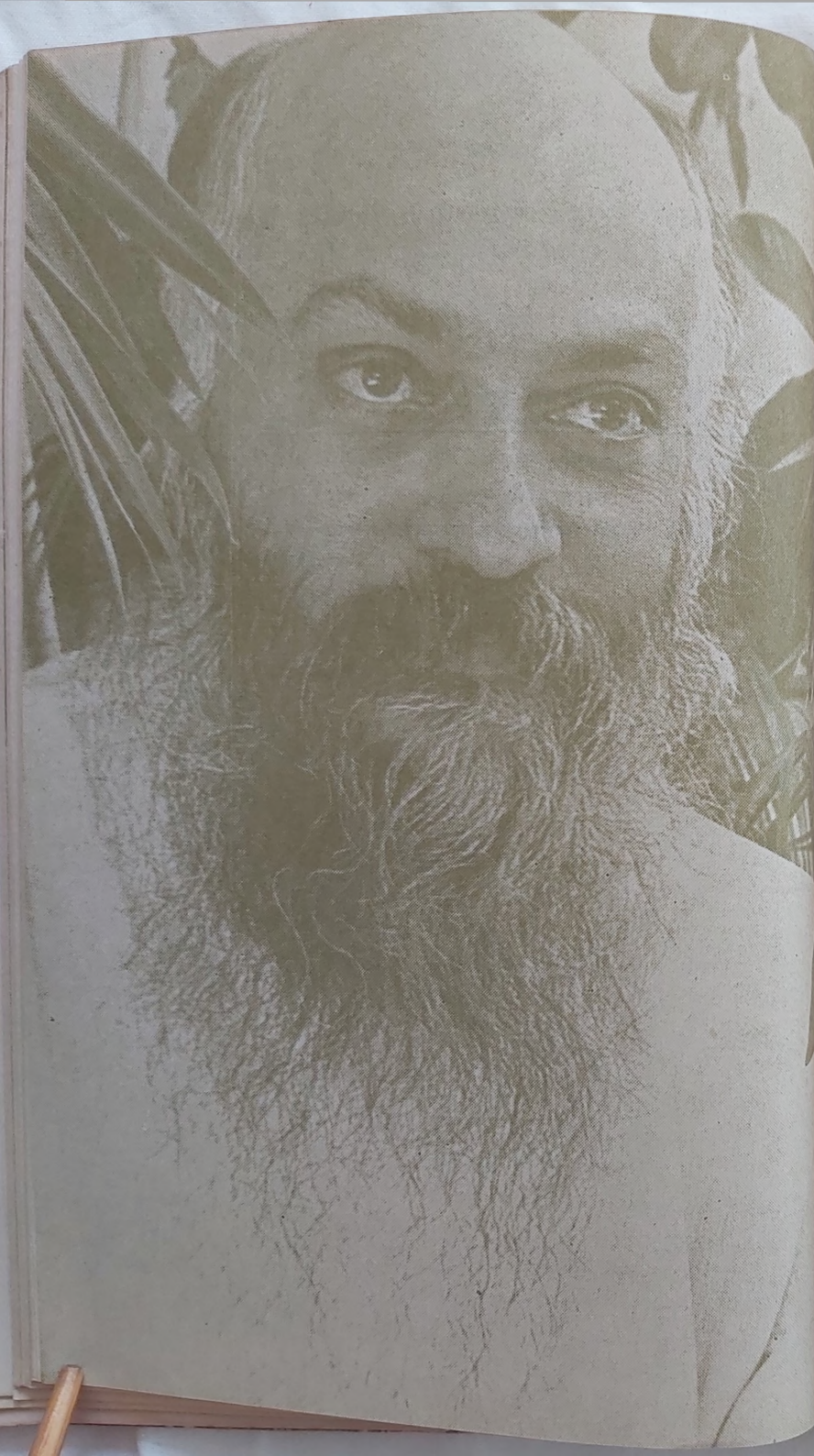
पंडित ग्यानी बहु मिले बेद ग्यान परबीन।
दरिया ऐसा न मिला रामनाम लवलीन ॥
बक्ता स्त्रोता बहु मिले करते खैंचातान।
दरिया ऐसा न मिला जो सन्मुख झेले बान ॥
दरिया सांचा सूरमा सहै सब्द की चोट
लागत ही भाजै भरम निकस जाय सब खोट ॥
सबहि कटक सूरा नहीं कटक माहिं कोई सूर।
दरिया पड़े पतंग ज्यों जब बाजे रन तूर ॥
भया उजाला गैब का दौड़े देख पतंग।
दरिया आपा मेटकर मिले अगिन के रंग ॥
दरिया प्रेमी आतमा रामनाम धन पाया।
निर्धन था धनवंत हुआ भूला घर आया ॥
सूर न जाने कायरी सूरातन से हेत ॥
पुरजा-पुरजा हो पड़े तऊ न छांड़े खेत ॥
दरिया सो सूरा नहीं जिन देह करी चकचूर।
मन को जीत खड़ा रहे मैं बलिहारी सूर ॥

ज्ञान और ज्ञान में बड़ा भेद है––आकाश पाताल का। एक ज्ञान है जो स्वयं का है, एक ज्ञान है जो स्वयं का नहीं है। जो स्वयं का नहीं है जो स्वयं का नहीं है वह केवल अज्ञान को ढांकने का उपाय है। जो स्वयं का है उससे ही मिटता है भीतर का अंधियारा।

उधार ज्ञान बुझा हुआ दिया है। शायद बुझा दिया भी नहीं, दिये की तस्वीर है। दिये की तस्वीर से अंधेरा नहीं मिटता; सत्य की तस्वीर से भी नहीं मिटता है। उधार ज्ञान मात्र स्मृति है, बोध नहीं। तुम जागे नहीं, नींद में पड़े हो। स्वप्न में ही तुमने दूसरों की आवाजें सुन ली और संग्रहीत कर ली हैं। किसीने कहा ईश्वर है, और तुमने मान लिया। ईश्वर है इसलिए नहीं, किसी भय के कारण, किसी प्रलोभन के कारण।

दुनिया में तीन तरह के धार्मिक लोग हैं। एक वे जो भय के कारण धार्मिक हैं। डरे हैं। कहीं कुछ भूल-चूक न हो जाये। कहीं नर्क न पड़ना पड़े। कहीं कोई पाप न हो जाये।

एक वे, जो लोभ के कारण धार्मिक हैं––स्वर्ग मिले, सुख मिले, भविष्य सुंदर हो। यहां तो बहुत पीड़ा उठा ली है, आगे न उठानी पड़े।

मगर ये दोनों ही धार्मिक नहीं हैं। धार्मिक व्यक्ति लोभी होगा, भयभीत होगा तो धार्मिक कैसे होगा ? धार्मिक होने की तो अनिवार्य शर्त है कि लोभ और भय विदा हो जाये।

मैंने सुना है, राजा भोज के दरबार में बड़े पंडित थे, बड़े ज्ञानी थे। और कभी-कभी राजा भोज उनकी परीक्षा लिया करता था। एक दिन वह अपना तोता राजमहल से ले आया दरबार में। बस तोता एक ही रट लगाता था, एक ही बात दोहराता था बार-बार : 'बस एक ही भूल है, बस एक ही भूल है, बस एक ही भूल है।' राजा ने अपने दरबारियों से पूछा, यह कौन सी भूल की बात कर रहा है तोता ? पंडित बड़े थे, मुश्किल में पड़ गये। और राजा ने कहा, अगर ठीक

जवाब न दिया तो फांसी। ठीक जबाब दिया तो लाखों का पुरस्कार और सम्मान। अटकलबाजी भी नहीं चल सकती थी, खतरनाक मामला था। ठीक जवाब क्या हो ? तोते से पूछा भी नहीं जा सकता। तोता कुछ और जानता भी नहीं। तोता इतना ही कहता है––तुम लाख पूछो, वह इतना ही कहता है : बस एक ही भूल है।

सोच-विचार में पड़ गये पंडित। उन्होंने मोहलत मांगी, खोज-बीन में निकल गये। जो राजा का सब से बड़ा पंडित था दरबार में, वह भी घूमने लगा कि कहीं कोई ज्ञानी मिल जाये। अब तो ज्ञानी से पूछे बिना न चलेगा। शास्त्रों में देखने से अब कुछ अर्थ नहीं है। अनुमान से भी अब काम नहीं होगा। जहां जीवन खतरे में पड़ा हो, वहां अनुमान से काम नहीं चलता। तर्क इत्यादि भी काम नहीं देंगे। तोते से कुछ राज निकलवाया नहीं जा सकता है। तो पुराने जितने हथकंडे थे, सब फिजूल हो गये। वह अनेकों के पास गया लेकिन कहीं कोई जवाब न दे सका कि तोते के प्रश्न का उत्तर क्या होगा।

बड़ा उदास लौटता था राज-महल की तरफ, कि एक चरवाहा मिल गया। उसने पूछा पंडित जी, बहुत उदास हैं ? जैसे पहाड़ टूट पड़ा आप के ऊपर, कि मौत आनेवाली हो, इतने उदास ! बात क्या है ? तो उसने अपनी अड़चन कही, दुविधा कही। उस चरवाहे ने कहा फिकर न करें, मैं हल कर दूंगा। मुझे पता है। लेकिन एक ही उलझन है। मैं चल तो सकता हूं लेकिन मैं बहुत दुर्बल हूं। और मेरा यह जो कुत्ता है इसको मैं अपने कंधे पर रखकर नहीं ले जा सकता। और इसको पीछे भी नहीं छोड़ सकता हूं। इससे मेरा बड़ा लगाव है। पंडित ने कहा तुम फिकर छोड़ो। मैं इस कंधे पर रख लेता हूं।

उन ब्राह्मण महाराज ने कुत्ते को कंधे पर रख लिया। दोनों राजमहल में पहुंचे। तोते ने वही रट लगाई––एक ही भूल है, बस एक ही भूल है। चरवाहा हंसा उसने कहा महाराज, देखें भूल यह खड़ी है। वह पंडित कुत्ते को कंधे पर लिये खड़ा था। भूल यह खड़ी है। राजा ने कहा, मैं समझा नहीं। उसने कहा कि शास्त्रों में लिखा है कि कुत्ते को पंडित छुए तो स्नान करे। और आपका महापंडित कुत्ते को कन्धे पर लिये खड़ा है। लोभ जो न करवाये सो थोड़ा है। बस, एक ही भूल है–– लोभ।

और भय लोभ का ही दूसरा हिस्सा है, नकारात्मक हिस्सा। यह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं–– एक तरफ भय, एक तरफ लोभ।

ये दोनों बहुत अलग-अलग नहीं हैं। इसलिए जो भय से धार्मिक है, डरा है दंड से, वह धार्मिक नहीं है। और जो लोभ से धार्मिक है, जो लोलुप हो रहा है, वासनाग्रस्त है स्वर्ग से, वह धार्मिक नहीं है।

फिर धार्मिक कौन है ? धार्मिक वही है जिसके पास न लोभ है, न भय। जिसे कोई चीज लुभाती नहीं और कोई चीज डरायेगी भी नहीं। जो भय और प्रलोभन के पार उठा है वही सत्य को देखने में समर्थ हो पाता है।

सत्य को देखने के लिये लोभ और भय से मुक्ति चाहिये। सत्य की पहली शर्त है अभय। क्योंकि जहां तक भय तुम्हें डांवाडोल कर रहा है वहां तक तुम्हारा चित्त ठहरेगा ही नहीं। भय कंपाता है, भय के कारण कंपन होता है। तुम्हारी भीतर की ज्योति कंपती रहती है। तुम्हारे भीतर हजार तरंगें उठती हैं लोभ की, भय की।

चीन में एक सम्राट हुआ। वह अपने महल के ऊपर ऊपर खड़ा है छत पर; और उसने देखा सागर में बहुत सी नौकायें चल रही हैं, हजारों नौकायें। उसने अपने बूढ़े वजीर से कहा देखते हैं, हजारों नौकायें चल रही हैं। उस बूढे वजीर ने कहा मालिक, हजारों नहीं हैं, नौकायें तो दो ही हैं। उस सम्राट ने कहा, दो ? तो क्या मैं अंधा हूं ? मुझे इतनी हजारों नौकायें दिखाई पड़ती हैं, तुम्हें दो ही दिखाई पड़ती हैं ?

उस वजीर ने कहा, आपकी आंखें मुझ से बेहतर, लेकिन आपकी दृष्टि मुझ से बेहतर नहीं है। आप जवान हैं, आप दूर तक देख सकते हैं। मैं बूढ़ा आदमी मुझे साफ-साफ दिखाई भी नहीं पड़ता। लेकिन जिंदगी भर के अनुभव से कहता हूं कि दुनिया में दो नौकाये हैं। कुछ लोग भय की नौका में सवार हैं, कुछ लोभ की नौका में सवार हैं। और तो सब बातें हैं।

उस बूढ़े ने बड़े काम की बात कह दी। लेकिन जो भय की नौका में सवार है या लोभ की नौका में सवार है, ये दोनों ही धर्म के तट तक नहीं पहुंचेंगे। ये तो बहुत सांसारिक वृत्तियां है। इन से ज्यादा तो और कोई सांसारिक वृत्ति होती नहीं। फिर सारे उपद्रव तो इन्हीं से पैदा होते हैं। लोभ अगर है तो काम भी रहेगा। लोभ अगर है तो क्रोध भी रहेगा। क्योंकि जहां लोभ में बाधा पड़ेगी वहीं क्रोध उठ आयेगा। और जहां लोभ है वहां काम कैसे जायेगा। इसलिए जिन्होंने स्वर्ग कीं कल्पनायें की हैं, वहां भी कामवासना का खूब इंतजाम कर रखा है। शराब के चश्मे बह रहे हैं, सुन्दर अप्सरायें नाच रही हैं। सब तरह का आयोजन कर रखा है। वही लोभ, वही काम, जो यहां टटोलता था अंधेरे में, वही स्वर्ग को भी बना रहा है।

जहां भय है वहां कभी प्रेम का जन्म नहीं होता। भय से तो घृणा पैदा होती है। भय से तो शत्रुता पैदा होती है; मैत्री पैदा नहीं होती। तो जो आदमी भयभीत होकर परमात्मा की तरफ आंखें उठा रहा है, हृदय में तो दुश्मन रहेगा। उसकी

परमात्मा से मैत्री नहीं हो सकती। तुम उसको कैसे प्रेम करोगे जिससे तुम भयभीत हो ? तुम उससे घृणा कर सकते हो। घृणा ही कर सकते हो। हां, ऊपर से चाहो तो प्रेम दिखा सकते हो क्योंकि वह बलशाली है। नौकर मालिक के आसपास जो पूंछ हिलाता है, वह कुछ आत्मा से नहीं हिलती। आत्मा तो सिर्फ एक ही मांग करता है कि मौका मिल जाये तो गरदन काट दें।

मैंने सुना है, एक सिपाही बढ़ते-बढ़ते कप्तान हो गया। जब वह कप्तान हो गया तो दो सिपाही उसके आसपास चलते थे। लेकिन वह दोनों सिपाही बड़े हैरान थे। जब भी कोई दूसरा सिपाही—और सेकड़ों सिपाहियों से मिलना होता दिनभर के आवागमन में— जब भी कोई सिपाही खड़े होकर सलामी मारता, जोर से बूट की ठोकर करता, सलाम करता, तो सलाम तो करता था वह कप्तान, लेकिन धीरे से यह भी कहता : "वही तुम्हारे लिये भी"। वे सिपाही बड़े हैरान थे कि यह क्यों कहता है बार-बार — "वही तुम्हारे लिये भी"।

एक दिन उन्होंने पूछा कि मालिक और तो सब ठीक है लेकिन जब भी कोई आपको सलाम करता है, तो आप भीतर से यह क्यों कहते हैं धीरे से कि वही तुम्हारे लिये भी ?

उसने कहा, इसके पीछे राज है। मैं कभी सिपाही था। मुझे पता है कि जब सिपाही कप्तान को सलाम करता है तो भीतर गाली देता है। मैं जानता हूं। मैं सिपाही था। जब भीतर से—बाहर से सलाम करता है—भीतर से, अच्छी गालियां देता है। तो ऊपर से तो मैं सलाम कर लेता हूं। भीतर से मुझे पता है कि भीतर असली में वह क्या कह रहा है। तो उसके भीतर के लिये मैं जवाब देता हूं कि वही तुम्हारे लिए भी। जो तुम मेरे लिये कह रहे हो भीतर से, वही मैं भी तुम्हारे लिये कह रहा हूं। वह उसके लिए उत्तर है। मुझे भीतरी बात का पता है।

यह आदमी ठीक कह रहा है। तुम जानते हो भली भांति, जिसको तुमने भय के कारण नमस्कार किया है उसके लिए तुम्हारे हृदय में गालियों के अतिरिक्त और कुछ भी न होगा। और लोग कहते हैं, धार्मिक आदमी ईश्वर-भीरू होता होता है। यह बात असंभव है। दुनिया की सभी भाषाओं में इस तरह के शब्द है, ईश्वर-भीरू, गॉड फियरींग। ये बिलकुल अधार्मिक शब्द हैं। भीरू, भयभीत तो कैसे ईश्वर को प्रेम करेगा ? जिसका ईश्वर से प्रेम है वह ईश्वर से भयभीत नहीं है। ईश्वर से भयभीत हो अगर तो फिर अभय कहां होगा ? ईश्वर तक से भयभीत हो तो फिर इस जगत में कहां शरण पाओगे ? फिर कहां तुम्हारी प्रार्थना उठेगी ? फिर तो गालियां ईश्वर के पास भी उठ रह हैं।

महात्मा गांधी कहते थे, किसीसे मत डरना लेकिन ईश्वर से डरना। और

मैं कहता हूं सबसे डरना लेकिन ईश्वर से मत डरना। ईश्वर से अगर डरे तो फिर और कहां.... फिर निर्भय की वीणा कहां बजेगी? फिर अभय के स्वर कहां उठेंगे? फिर अभय की अर्चना कहां होगी? फिर अभय की थाली कहां सजेगी? फिर अभय की दीपमाला कहां जलेगी?

ईश्वर के साथ भी अगर भय रहा तो फिर तो इस संसार में अभय कहीं भी नहीं हो सकता। ईश्वर कोई सांप-बिच्छु नहीं है कि तुम उससे भयभीत होओ। ईश्वर तुम्हारा अंतरतम है, तुम्हारे प्राणों का प्राण है। ईश्वर तुम्हारा शुद्धतम रूप है। उससे तुम आये हो, उसमें तुम हो, उसमें ही तुम जाओगे। जैसे लहर सागर से डरे, ऐसा पागलपन ही है ईश्वर से डरना। लहर और सागर से डरे?

लेकिन जिनको हम पंडित कहते हैं, जिनको हम धार्मिक कहते हैं, तपस्वी कहते हैं, महात्मा कहते हैं, जांच कर लेना, दो नावों में सवार मिलेंगे––या तो भय की नाव, और या लोभ की नाव।

फर्क भी साफ है कि भय की नाव में वे लोग सवार होते हैं, जो लोग जीवन में बुरा कर रहे हैं; क्योंकि वे घबड़ाये होते हैं। तो बुरे लोगों को तुम भय की नाव में सवार पाओगे। और जिनको तुम भले लोग कहते हो, जो पुण्य करते हैं, दान करते हैं, तप करते हैं, व्रत करते हैं, त्याग करते हैं, उपवास करते हैं, पूजा-प्रार्थना करते हैं, इनको तुम लोभ की नाव में सवार पाओगे। जो पाप करते हैं उनको तुम भय से कंपते हुए पाओगे। और जो पुण्य करते हैं उनको तुम लोभ से भरे हुए सरोबोर पाओगे। मगर दोनों चूक जायेंगे। परमात्मा तक न तो लोभी पहुंचता है, न भीरु पहुंचता है। परमात्मा तक तो वही पहुंचता है जो लोभ और भय दोनों को छोड़ देता है। छोड़ते ही पहुंच जाता है। छोड़ते ही क्रांति घट जाती है।

एक ज्ञान है, जो लोभ और भय से मुक्त होकर उपलब्ध होता है। एक ज्ञान है, जो केवल लोभ और भय का ही विस्तार है। वह जो दरिया कहते हैं, रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय। वह जो शास्त्र की धूल लगी थी सारे शरीर में, सारे अंग में, वह गुरु ने एक ही शब्द से गिरा दी।

तुम हिंदू क्यों हो? तुम मुसलमान क्यों हो? तुम ईसाई क्यों हो? अपने कारण कि संयोगवशात्? तुमने चुना है? तुमने निर्णय लिया है? या कि यह केवल मात्र संयोग की घटना थी कि तुम हिंदू घर में पैदा हो गये हो तो हिंदू हो; मुसलमान घर में पैदा हो गये तो मुसलमान हो। जो धूल तुम पर पड़ी उसीसे तुम भर गये हो।

गुरु के पास जाकर न तुम हिंदू रह जाओगे, न मुसलमान, न ईसाई। रंजी

सास्तर ग्यान की––वह सारे शास्त्र की ज्ञान की जो धूल है वह झाड़ देगा। वह तुम्हें नहलायेगा, वह तुम्हें धुलायेगा। वह तुम्हें ताजा करेगा। वह तुम्हें वही करेगा जैसे तुम हो। वह ऊपर की सब खोलें अलग कर देगा। तुम्हारे ऊपर जितने वस्त्र हैं, सब हटा देगा। तुम्हारे ऊपर बाहर के तुमने जितने आडंबर कर रखे हैं, वह सब तोड़ देगा। इसलिए धार्मिक व्यक्ति को बड़ा साहसी होना चाहिये। तो भयभीत व्यक्ति तो कैसे इस यात्रा पर जायेगा? यह तो क्रांति की घटना है।

कोई देता है हरे दिल पर मुसलसल आवाज़
और फिर अपनी ही आवाज से घबराता है
अपने बदले हुए अंदाज का एहसास नहीं
मेरे बहके हुए अंदाज से घबराता है
साज उठाया है कि मौसम का तकाजा था यही
कांपता हाथ मगर साज से घबराता है
राज को है किसी हमराज की मुद्दत से तलाश
और दिल सोहबते हमराज से घबराता है
शौक यह है कि उड़े वह तो जमीन साथ उड़े
हौसला यह है कि परवाज से घबराता है
तेरी तकदीर में आशायेश अंजाम नहीं
एक ही शोर से आकाश से घबराता है
कभी आगे, कभी पीछे, कोई रफ्तार है यह?
हमको रफ्तार का आहंग बदलना होगा
जिहन के वास्ते सांचे तो न ढालेगी हयात
जिहन को आप ही हर सांचे में ढलना होगा
यह भी जलना कोई जलना है कि शोला न धुआं
अब जला देंगे जमाने को जो जलना होगा
रास्ते घूमके सब जाते हैं मंजिल की तरफ
हम किसी रुख से चलें, साथ ही चलना होगा

हमारे जीवन की सब से बड़ी पीड़ा यही है कि हम घबड़ाये हुए हैं। साज उठा लेते हैं तो हांथ कंपते हैं वीणा को छूते वक्त। डरते हैं, पता नहीं कैसा संगीत पैदा होगा। अपनी ही वीणा, अपने ही हाथ, अपना ही जीवन, और घबड़ाये हैं।

साज उठाया है कि मौसम का तकाजा था यही

वसंत आ गया था, फूल खिल गये थे, पक्षियों ने गीत गाये थे, सुबह उठी थी नई-नई, घास पर शबनम थी और उठा लिया साज।

साज उठाया है कि मौसम का तकाजा था यही
चारों तरफ वसंत ने घेर लिया था तो उठा ली है वीणा हाथ में।
कांपता हाथ मगर मगर साज से घबराता है

लेकिन कांप रहा है हाथ। क्योंकि संगीत जो तुम पैदा करोगे, वह अज्ञात है। पता नहीं क्या पैदा होगा। इस साज को तुमने कभी छेड़ा नहीं। इस साज को तुमने कभी बजाया नहीं। यह तुम्हारी वीणा अनबजी पड़ी है। --तो पता नहीं क्या होगा!

तुम ज्ञात से बंधे हो। भयभीत आदमी ज्ञात से बधा रहता है। जो उसने किया है उसीको दोहराता रहता है। जो उसने बार-बार किया है उसीमें वह कुशल हो जाता है।

कई बार तो ऐसा होता है कि तुम अपने दुख को भी नहीं छोड़ते, क्योंकि उससे बहुत परिचित हो गये हो। छोड़ने में डर लगता है। पता नहीं फिर किससे मिलना हो जाये। यह दुख है, माना कि दुख है, मगर अपना है और पुराना है और जान-पहचान भी हो गई है। अब इससे राजी भी हो गये हैं। किसी तरह समायोजित भी हो गये हैं। नई झंझट कौन ले?

तुम अपनी जिंदगी को बदलते नहीं। क्योंकि डर लगता है कि बदलकर नये रास्तों पर चलना होगा, नई पगडंडी बनानी होगी, अनजान रास्ते होंगे, जिनका नक्शा भी पास नहीं, जिन पर कभी चले भी नहीं। अंधेरी रातें होंगी। पता नहीं खो न जायें, भटक न जायें। इसलिए घूमते रहो अपनी ही चक्कर में कोल्हू के बेल की तरह।

राज को है किसी हमराज की मुद्दत से तलाश

किसी की तुम खोज कर रहे हो कि कोई हाथ मिल जाये जो तुम अपने हाथ में ले लो।

राज को है किसी हमराज की मुद्दत से तलाश
और दिल सोहबते हमराज से घबड़ाता है

और सत्संग से डर लगता है। क्योंकि सत्संग तुम्हें मिटायेगा। गुरु से मिलने का अर्थ है, अपनी मौत से मिलना - पुराने शास्त्रों ने कहा है, "आचार्यों मृत्यु:"। आचार्य तो मृत्यु है। संभलकर जाना, सोचकर जाना, सब तरह से निर्णय लेकर जाना, क्योंकि फिर लौट न सकोगे। गुरु में गये तो गये; फिर लौटना नहीं है।

शौक यह है कि उड़े वह तो जमीन साथ उड़े

शौक तो हमारे बड़े हैं। दिल में तरंगें तो बहुत उठती हैं। सपने तो हम बहुत लेते हैं। आंखें तो हमारी ख्वाबों से भरी हैं।

शौक यह है कि उड़े वह तो जमीन साथ उड़े
हौसला यह है कि परवाज से घबड़ाता है

और हौसला बिलकुल नहीं है। हिंमत बिलकुल पस्त है। पंख खोलने में प्राण घबड़ाते हैं, क्योंकि पंख खोलने का मतलब है, अनंत आकाश। बैठे हैं अपने घोसले में। सब सुरक्षित है, सब सुविधा है। यह खुला आकाश, यह विराट आकाश, इसमें कहीं खो न जायें। तो सब ने अपने घर बना लिये हैं।

इस घर बनाने की वृत्ति को ही मैं कहता हूं गृहस्थी। गृहस्थ का मतलब मेरे लिये यह नहीं है कि तुम्हारी पत्नी है और बच्चे हैं। पत्नी और बच्चों से क्या कोई घर बनता है? पत्नी और बच्चे से घर नहीं बनता है इसलिए पत्नी-बच्चों को छोड़कर संन्यासी भी नहीं हो सकते। पत्नी-बच्चों से घर ही नहीं बनता तो पत्नी बच्चों को छोड़कर कैसे संन्यासी हो जाओगे? घर बनता है सुरक्षा से, घर बनता है कमजोरी से। घर बनता है भय से। घर बनता है सदा सीमा के भीतर रहने से।

गृहस्थी का अर्थ होता है, जो आदमी कभी अपने घोसले के बाहर नहीं जाता, जो पंख ही नहीं मारता, नये से जो संबंध नही बनाता। हिंदू घर में पैदा हुआ तो हिंदू ही मर जायेगा। हिंदू घर में पैदा हो जाना तो अच्छा है लेकिन हिंदू घर में ही मर जाना दुर्भाग्य। मुसलमान पैदा हुआ तो मुसलमान घर में ही मर जायेगा। जैसा पैदा हुआ है उसी सीमा में घूमता कोल्हू के बैल की तरह वहीं समाप्त हो जायेगा। एक दिन वहीं गिर जायेगा। नये आकाश, नये आयाम, नई दिशायें पुकारती रहेंगी और तुम हौसला न करोगे।

शौक यह है कि उड़े वह तो जमीन साथ उड़े
हौसला यह है कि परवाज से घबड़ाता है

पंख खोलने में प्राण अटकते हैं। जहां पखं खोलने की बात करो वहीं वह बचने की बात करने लगता है। वह कहता है घर बैठे-बैठे बात चले-- राम की हो, कि रहीम की हो, मोक्ष कि निर्वाण की हो; सब सुनेंगे। सत्यनारायण की कथा यहीं करवायेंगे। मगर कहीं जायेंगे नहीं। इंच भर बदलेंगे नहीं।

तेरी तकदीर में आशायेश अंजाम नहीं
एक ही शोर से, आकाश से घबड़ाता है,

अगर ऐसी बात है कि क्रांति से इतना डर है, कि क्रांति की आवाज से इतना डर है तो फिर तेरी किस्मत में सुख की कोई संभावना नहीं। फिर तू पक्का समझ ले कि फिर सुख तुझे मिलनेंवाला नहीं है। फिर आनंद की कभी वर्षा न होगी। अमृत कभी तेरे द्वार पर दस्तक न देगा। और परमात्मा से कभी तेरा मिलन न

होगा।

तेरी तकदीर में आशायेश अंजाम नहीं
एक ही शोर से आकाश से घबड़ाता है

अगर क्रांति की आवाज से घबड़ाता है, अगर इन्कलाब से घबड़ाता है, अगर अपने को बदलने से ऐसा भयभीत है, कि जैसा हूं वैसा ही रहूंगा ....।

सोचो, बच्चा मां के पेट में होता है और घबड़ा जाये, और मां के बाहर न आये तो क्या हो ? एक बात तो साफ है कि जब बच्चा नौ महीने के बाद मां के पेट बाहर आता है तो उसे ऐसा ही लगता होगा कि मर रहा हूं। निश्चित ही लगता होगा कि मर रहा हूं। क्योंकि नौ महीने तक जो जिंदगी जानी, वह तो खतम हो रही है, वह तो समाप्त हो रही है। और नौ महीने तक कैसी मजेदार जिंदगी जानी, कैसे सुख की दुनिया देखी। न कोई चिंता थी, न कोई फिक्र थी, न कोई दायित्व था, न कोई झंझट थी। सोये थे क्षीरसागर में विष्णु बने।

तुम्हें पता है ना। मां के पेट में ठीक समुद्र के जल जैसा जल है। उसी जल में बच्चा तैरता है। मां के शरीर की गर्मी उस जल को गर्भ रखती है। जैसे कभी गर्म टब में तुम बैठ जाते हो और सुख से डूब जाते हो, ऐसा बच्चा नौ महीने उस गर्म जल में तैरता है। वह क्षीरसागर है। कोई चिंता नहीं, कोई फिकर न नहीं। न रोटी कमानी है, न घर बनाना है। श्वास तक अपनी लेने की फिकर नहीं है। मां ही श्वास लेती है, मां भोजन पचाती है, मां ही खून पहुंचाती है। सारा काम कोई कर रहा है। उसे उसका पता भी नहीं है। धन्यवाद भी देने की झंझट नहीं है। सब हो रहा है, अपने आप हो रहा है। परमात्मा सब कर रहा है। फिर एक दिन अचानक इस अपूर्व घर से उजड़ने की घड़ी आ जाती है। निकलना पड़ता है इस घोंसले के बाहर। तो बच्चा घबड़ाता है—घबड़ाता ही होगा।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जीवन की सब से बड़ी पीड़ा जीवन के पहले दिन घटती है। फिर तो सब पीड़ायें छोटी हैं। उसको ट्रॉमा कहते हैं मनोवैज्ञानिक। वह इतना बड़ा घाव हो जाता है बच्चे को, अचानक उखड़ना पड़ता है। बस गये थे। और नौ महीने तुम थोड़ा मत समझना। तुम्हें थोड़े लगते हैं नौ महीने, बच्चे के लिये तो नौ महीने अनंत काल है। क्योंकि न तो घड़ी है, न केलेन्डर है। कोई जांच-पड़ताल तो है नहीं।

और एक बात और खयाल रखना, सुख की घड़ियां खूब लंबी होती हैं। अनंत काल मालूम पड़ता है। सुख ही सुख है। कहीं दुख की कोई किरण भी नहीं है। तो नौ महीने जैसे शाश्वत ! कोई शुरू नहीं, कोई अंत नहीं। एक ही स्वर बजता रहता है। तो बच्चे के लिये नौ महीने नौ महीने नहीं हैं, वह तो अनंतकाल रह

लिया।

अब इस अनंतकाल रहने के बाद अचानक एक दिन उखड़ना पड़ रहा है, सब छोड़ना पड़ रहा है। जिसे जीवन जाना था वह छूट रहा है, और कहां जाना होगा इसका कुछ पता नहीं है। तो बच्चा भी रुकने की कोशिश करता है। इसीसे पीड़ा होती है मां को। बच्चा रुकने की कोशिश करता है। बच्चा अपने को वहीं जमाये रखने की चेष्टा करता है, आना नहीं चाहता। जगत का उसे पता भी नहीं है लेकिन अगर न आये तो मरेगा। जिसको वह मृत्यु समझ रहा है वह एक नये जीवन की शुरुआत है। और अगर वह जिद करके वहीं रुक जाये, तो जिसे वह अब जीवन समझ रहा है वह मृत्यु में परिणत हो जायेगा।

वह कक्षा पार हो गयी, अब उसके आगे जाना है। अब खतरा मोल लेना है। क्योंकि खतरा मोल लिये बिना जीवन में कोई विकास नहीं होता। अब चुनौतियां झेलनी हैं। बच्चा पैदा होगा, रोज-रोज चुनौतियां बढती जायेंगी। रोज-रोज ! जैसे-जैसे बड़ा होगा वैसे-वैसे संसार का दायित्व और संघर्ष, उपद्रव बढ़ते जायेंगे। और जैसे-जैसे बड़ा होगा वैसे-वैसे और-और घर भी छोड़ने होंगे।

पांच-सात साल का हो जायेगा तो स्कूल जाना पड़ेगा। फिर एक झंझट। यह घर की चार-दीवारी बड़ी सुखद थी। यहां सब अपने थे, अब परायों में जाना होगा। अब पता नहीं वह कैसा व्यवहार करेंगे। निश्चित वह ऐसा ही व्यवहार तो नहीं करेंगे जैसा मां करती थी, पिता करते थे, भाई-बहन करते थे। डरता है बच्चा। तुमने देखा है न ! छोटे बच्चे को स्कूल भेजते वक्त कैसी घबड़ाहट होती है। कैसा लौट-लौटकर घर की तरफ देखता है। वह गृहस्थी का मन है। अनजान में जा रहा है। पता नहीं कौन मिलेंगे। कैसे लोग मिलेंगे। क्या व्यवहार करेंगे। अब तक सुरक्षा में पला है, अब असुरक्षा में उतर रहा है।

फिर स्कूल है, और कॉलेज है और विश्वविद्यालय है। और फिर विश्वविद्यालय के बाद एक दिन विवाह है, और एक नया घर उसे अपना बनाना होगा। अब सारा दायित्व उसका है। अब उसकी जिम्मेदारियां बढ़ती जाती हैं। अब उसके बच्चे होंगे उनकी भी जिम्मेदारी उस पर होगी। अब संघर्ष में उतर गया पूरे संसार के; बाजार में खड़ा होगा।

यह आत्मविकास के लिये अनिवार्य है। ऐसी ही अंतर्यात्रा पर भी घड़ियां हैं। ऐसे ही ठीक मील के पत्थर हैं। वहां भी क्रांति के लिये तैयार होना पड़ता है। तुमने जो ज्ञान इकट्ठा कर लिया है शास्त्रों का वह तो ठीक है, कामचलाऊ है; उसे छोड़ना होगा। तुम्हें स्वयं ही उतरना होगा इस अनंत के आकाश में, पर मारने होंगे।

कभी आगे, कभी पीछे, कोई रफ्तार है यह !
हमको रफतार का आहंग बदलना होगा
हमें रफतार का ढंग बदलना होगा।
जिहन के वास्ते सांचे तो न ढालेगी हयात

और जिंदगी तुम्हारे ढंग से नहीं चल सकती, याद रखना। तुमने जिंदगी को अपने ढंग से चलाना चाहा कि तुम दुख में पड़े। यही तो दुख है। सारा संताप यही है। जगत का दुख क्या है? कि तुम जिंदगी को अपने ढंग से चलाना चाहते हो। तुम कहते हो कि यह जिंदगी का व्यवहार मेरे ढांचे में हो। मैं जैसा चाहूं, वैसा हो। तुम चाहते हो यह नदी मेरे पीछे चले।

यह नदी तुम्हारे पीछे नहीं चलेगी। तुम इसी नदी की छोटीसी लहर हो। लहर के पीछे नदी कैसे चल सकती है? लहर को ही नदी के साथ चलना होगा। अंग को विराट के साथ चलना होगा। विराट अंग के साथ नहीं चल सकता। हम तो छोटे-छोटे हिस्से हैं। मगर जिंदगी भर हम यही तो कोशिश करते हैं।

यही तो अहंकार की घोषणा है; कि मैं सिद्ध कर दूंगा कि जिंदगी मेरे पीछे चलती है; कि अस्तित्व मेरे पीछे चलता है; कि परमात्मा साये की तरह मेरे पीछे आता है। यही दुख है। अहंकार दुख का मूल है।

जिहन के वास्ते सांचे तो न ढालेगी हयात

तुम याद रखो, जिंदगी तुम्हारे लिए तुम्हारे बनाये सांचों में नहीं ढलेगी।

जिहन को आप ही हर सांचे में ढलना होगा।

तुम्हीं को जिंदगी के सांचों में ढलना होगा। इसका नाम समर्पण है। जिस दिन यह समझ आ जाती है कि नदी के साथ मुझ ही को बहना होगा, जिस दिन तुम अपने अहंकार को उतारकर रख देते हो और तुम कहते हो, अब मैं तैरूंगा भी नहीं; अब तो सिर्फ बहूंगा। ले जाये जहां नदी, गिराये पर्वतों से तो गिरूंगा। डुबाये सागरों में तो डूबूंगा। ले जाये जहां नदी। भाप बनकर उड़ेगी बादलों में तो उड़ूंगा। ले जाये जहां नदी। अब अपनी इच्छा छोड़ता हूं। अब अपनी मर्जी छोड़ता हूं। यही तो राम के होने का अर्थ है।

तो ज्ञान और ज्ञान में बड़ा भेद है। एक तो ज्ञान मिलता है, पोथी से। पोथी यानी थोथी। पोथी से जो मिले, उसपर भरोसा मत करना। और एक ज्ञान मिलता है साहस करके, जीवने में उतरने से। शूरवीर चाहिये।

आज के इन पदों में उसी शूरवीर की प्रशंसा है। ये अद्भुत पद हैं। एक-एक पद पर ठीक-ठीक ध्यान देना।

पंडित ग्यानी बहु मिले वेद ज्ञान परबीन

दरिया ऐसा ना मिला राम नाम लवलीन

दरिया कहते हैं, खोजते-खोजते थक गया। बहुत लोग मिले, पंडित थे, ज्ञानी थे, वेद-शास्त्र के ज्ञाता थे, कंठस्थ थे वेद, उपनिषद वाणी से झरती थी। तोते थे लेकिन। सब दोहरा रहे थे। अपना जाना कुछ भी न था। निज की संपदा जरा भी न थी। सब बासा, उच्छिष्ट, उधार।

पंडित ग्यानी बहु मिले वेद ग्यान परबीन

बड़ी कुशलतायें थी उनकी। प्रवीण थे बहुत शब्दों में, तर्कों में, खंडन-मंडन में, शास्त्रार्थ में, वाद-विवाद में, अनुमान में, दर्शन में बड़े प्रवीण थे। मगर इस प्रवीणता का क्या करना? भीतर तो दिया जला न था। भीतर तो गहन अंधेरा था।

दरिया ऐसा न मिला राम नाम लवलीन

तलाश दरिया को उसकी थी जो राम में डूबा हो। क्योंकि जो राम में डूब सकता हो वही तुम्हें भी राम में डुबा सकता है। शास्त्र में जो डूबा है वह तुम्हें भी शास्त्र में ही डुबायेगा, और तो कुछ कर नहीं सकता। वेदपाठी के पास जाओगे, वेदपाठी हो जाओगे। व्याकरण सिखायेगा, भाषा सिखायेगा; शब्द की महिमा सिखायेगा लेकिन निःशब्द शून्य का चमत्कार तो उसके पास नहीं। मौन तो उसके पास नहीं पा सकोगे। उसके हृदय में ध्यान तो नहीं। सुरति तो उसकी नहीं जगी। तो उसके पास से तुम भी खूब कूड़ा-करकट इकट्ठा करके लौट आओगे। जान लोगे बहुत और जानोगे कुछ भी नहीं। ज्ञान खूब इकट्ठा हो जायेगा और भीतर का अज्ञान जहां का तहां, जैसा का तैसा।

दरिया ऐसा न मिला राम नाम लवलीन

तलाश थी किसी की जो राम में डूबा हो; जिसने अपने अहंकार को छोड़ा हो; जिसने अनंत को वरा हो। तलाश थी किसी ऐसे की जो अब तैरता न हो—धारा के विपरीत की तो बात ही नहीं, जो तैरता ही न हो। जिसने अब छोड़ दिया हो अपने को परम विश्राम में। परमात्मा जहां ले जाये, उसकी जो मर्जी। जो इसके ही इशारे पर जीता हो। जो बांस की पोंगरी हो। परमात्मा जो गाये, गाता हो, न गाये, चुप रह जाता हो। जिसकी अपनी पकड़ गयी, वही राम का होता है।

बड़े दर्द से कहते हैं, 'दरिया ऐसा न मिला'—ऐसे गुरु की तलाश थी।

वक्ता श्रोता बहु मिले—

मिले बहुत समझानेवाले, मिले बहुत सुननेवाले।

. . . करते खैंचातान।

और उनके पास खूब तर्क देखा, खूब विवाद देखा, खूब खैंचातान चलती है

दुनिया में।

अब गीता पर हजार टीकायें हैं। कृष्ण का तो मतलब एक ही होगा। पागल तो नहीं थे कि हजार मतलब हों। लेकिन खूब खेंचातान चलती है। ज्ञानमार्गी सिद्ध करता है कि गीता का अर्थ ज्ञान। और भक्तिमार्गी सिद्ध करता है कि गीता का अर्थ भक्ति। और कर्ममार्गी सिद्ध करता है कि गीता का अर्थ कर्म। शंकर से पूछो तो ज्ञान। रामानुज से पूछो तो भक्ति। तिलक से पूछो तो कर्म। कृष्ण से किसको लेना-देना है। ? खूब खेंचातान चलती है। कृष्ण ने क्या कहा है यह तो कृष्ण हुए बिना नहीं कहा जा सकता। कृष्ण ने जो कहा है वह तो कृष्ण होकर ही जाना जा सकता है। कृष्णमय होकर ही कृष्ण की वाणी का अर्थ खुल सकता है, व्याख्याओं से से नहीं खुलेगा। लेकिन खूब खेंचातान चलती है। देखी होगी दरिया ने।

वक्ता श्रोता बहु मिले करते खैंचातान
दरिया ऐसा न मिला जो सन्मुख झेले बाण

लेकिन खोज थी उसकी, जो परमात्मा के बाण को हृदय खोलकर झेल ले ऐसे हिंमतवर की, ऐसे हिंमतवर की, ऐसे दिलवाले की कि जो परमात्मा के बाण को हृदय खोलकर झेल ले; जो कहे कि मुझे मारो ताकि मैं जी सकूं। जो कहे मेरी मृत्यु बनो ताकि तुम मेरे जीवन हो जाओ। जो कहे मुझे मिटा दो, मुझे पोंछ दो, मेरी रूपरेखा न बचे, ताकि तुम ही तुम बचो, मैं न रहूं।

दरिया ऐसा न मिला जो सन्मुख झेले बाण

धार्मिक तो वही सकता है जो मरने को तैयार है। इसीलिए तो मैं कहता हूं कि मेरे पास आये तो सोच-समझकर आना। मैं मृत्यु सिखाता हूं। यह पाठ मरने का पाठ है। मैं यहां तुम्हें सजाने के लिये नहीं हूं। कि तुम्हें थोड़ा सजा दूं, तुम्हें थोड़ा सुंदर बना दूं, कि तुम्हें थोड़े और आभूषण दे दूं, कि तुम थोड़े और पंडित और ज्ञानी होकर लौट जाओ, कि तुम थोड़े और अकड़ से भर जाओ; कि तुम दुनिया को समझाने लगो; कि दुनिया में त्यागी और महात्मा बनने लगो। नहीं, यहां आये हो तो मिटने की तैयारी चाहिये। जो सन्मुख झेले बाण !

ध्यान मृत्यु है। शूली अपने कंधेपर लेकर जो चले वही संन्यासी है। जो अहंकार के जगत में मरने को प्रतिपल तैयार रहे वही संन्यासी है। जो मौत का स्वागत करे वही संन्यासी है। जिसे एक बात समझ में आ गयी है कि मेरे रहते तो दुख रहेगा। मैं ही दुख का मूल हूं। मैं हूं तो दुख है। मैं हूं तो नरक है।

तो जो परमात्मा से एक ही प्रार्थना करे कि प्रभु, मुझे मिटाओ। अब बहुत हो गया यह खेल। अब मुझे डुबाओ। क्योंकि यह कुछ मामला ऐसा है कि यहां

जो डूबते हैं वही किनारे लगते हैं। जिन्होंने किनारे लगने की कोशिश की वे तो डूब जाते हैं। यहां जो डूबते हैं वे किनारे लग जाते हैं।

दरिया ऐसा न मिला जो सन्मुख झेले बाण
दरिया सांचा सूरमा सहे शब्द की चोट
लागत ही भाजे भरम, निकस जाय सब खोट

और जो हृदय को खोलकर प्रभु के बाण को लेने को तैयार है। प्रभु तो शिकारी है। तुम्हें शिकार बनना होगा।

इस देश में हमारे पास बड़े प्यारे शब्द हैं। उन प्यारे शब्दों में परमात्मा के नामों में जो सबसे प्यारा है, वह है हरि। हरि का अर्थ होता है, जो तुम्हारे हृदय को चुराकर ले जाये। हरि का अर्थ होता है, चोर। हर ले, झपट ले, लूट ले। अगर तुम अपने हृदय को बचाये-बचाये फिर रहे हो तो हरि से मिलन न होगा। यह तो सौभाग्य है तुम्हारा कि वह तुम्हारे हृदय की तरफ आकर्षित हो जाये और तुम्हें लूट ले। बुलाओ उसे और हृदय को ऐसी जगह रख दो कि जहां उसे अड़चन न हो लूटने में। खोलकर रख दो।

दरिया सांचा सूरमा सहे शब्द की चोट

वही है सच्चा हिंमतवर, जो सत्य शब्द की चोट सह सके।

बहुत कठिन है। झूठे शब्द बड़े प्यारे लगते हैं। झूठे शब्दों में अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। तुम जांचना, अपनी जिंदगी में जांचना। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं वह हर चीज जिंदगी में जांची जानी चाहिये; वहीं प्रमाण मिलेंगे। तुम जांचना, झूठ शब्द बड़े प्यारे लगते हैं। सच बड़ा अखरता है।

कोई तुमसे कह देता है आप बड़े सुंदर हैं। कैसे गुदगुदी फैल जाती प्राणों में। कैसे कमल खिल जाते हैं। कोई कह देता है, आप बड़े ज्ञानी। आप की कहां उपमा ! आप तो बस आप ही हो अपनी उपमा। किसी और से तुलना आपकी हो ही नहीं सकती। कैसे हिमालय उठने लगते हैं अहंकार के भीतर। यह आदमी कितना प्यारा लगने लगता है।

नहीं तो खुशामत दुनिया में चलती क्यों ? और खुशामत इतनी कारगर क्यों होती ? झूठ प्यारा लगता है इसलिए खुशामत कारगर होती है। झूठ खूब प्यारा लगता है। और ऐसा भी नहीं है कि तुम्हें पता नहीं चलता कि यह झूठ है। तुमने अपनी शकल आईने में देखी है। तुम्हें पता है तुम कितने सुंदर हो। तुम्हें पता है तुम कितने ज्ञानी हो। जीवन की छोटी-मोटी समस्यायें भी तो हल नहीं होतीं। टुच्ची-टुच्ची बातें तो उलझा देती हैं। टुच्ची-टुच्ची बातें तो रात की नींद खराब कर देती हैं। छोटे-छोटे हानि लाभ तो ऐसा डांवाडोल कर जाते हैं। कैसा तुम्हारा

ज्ञान है ? नहीं, लेकिन वह तुम सब भूल जाओगे । जब कोई झूठ बोलेगा तब तुम एकदम भरोसा कर लोगे; तब तुम एकदम मान लोगे । लेकिन अगर कोई सच कह दे तो चोट लगती है । क्योंकि सच का मतलब यह है कि तुमने जो अपनी प्रतिमा बना रखी है अहंकार की, वह खंडित होती है ।

अक्सर ऐसा होता है कि जो तुमसे सच बोल देता है उसे तुम कभी माफ नहीं कर पाते । तुम उससे बदला लेते हो, तुमसे अगर कोई सच कह दे, वैसा का वैसा जैसा है-- नंगा निर्वस्त्र सत्य कह दे, तो तुम उस आदमी के पास फिर दुबारा नहीं फटकते; फिर तुम भूलकर वहां नहीं जाते । सच से आदमी बचता है क्योंकि सच तुम्हारी असली तस्वीर को प्रगट करता है ।

हम सब ने एक प्रतिमा बना रखी है अपनी अपने मन में कि हम ऐसे हैं, या कम से कम ऐसे होने चाहिये, या कम से कम ऐसे होते । और जब भी कोई उस प्रतिमा को सहारा देता है, हमें प्यारा लगता है । किनको तुम अपने मित्र कहते हो ? जिनको तुम अपने मित्र कहते हो अक्सर वे वेही लोग हैं जिन्होंने तुम्हारे आसपास झूठ फैला रखा है ।

कबीर ने तो कहा है "निंदक नीरे राखिये आंगन कुटी छवाय ।" वह जो तुम्हारी निंदा करता हो उसको तो बुला ही लाना, अपने घर में ही ठहरा लेना कि भैया, तू यहां ही रह । अब कहां जायेगा और ? जितना बन सके उतनी निंदा कर। सच तो है कि शायद निंदक से तुम्हें जो लाभ मिल जाये वह प्रशंसक से न मिले । लेकिन कौन निंदक को पसंद करता है ! तुम अपनी असली तस्वीर तो देखना ही नहीं चाहते । तुम तो अपनी नकली तस्वीर देखना चाहते हो जैसा तुम सपनों में सजाये बैठे हो। इसलिए कहते हैं दरिया,

दरिया सांचा सूरमा सहे शब्द की चोट

गुरु के पास तो वे ही लोग आ सकते हैं, सद्गुरु के पास तो बहुत थोड़े लोग आ सकते हैं--विरले, सूरमा, जो शब्द की चोट सहने को राजी हों । क्योंकि सद्-गुरु तुमसे कुछ ऐसा नहीं कहेगा जिससे तुम्हारा अहंकार बढ़े । वह तुम्हारा दुश्मन नहीं है । वह तो जो भी कहेगा उससे तुम्हारा अहंकार टूटे, गिरे, खंडित हो, भस्मी-भूत हो । वह तो तुम्हें मिटाने चला है। वह तो तुम्हें जलाने चला है। वह तो तुम्हें चिता पर चढ़ाने चला है ।

कबीर ने कहा है,

जो घर बारे आपना चले हमारे संग
सब जलाने की तैयारी हो तो आ जाओ ।
कबीरा खड़ा बझार में लिये लुकाठी हाथ

लठ्ठ लिये हाथ खड़े हैं, कबीर कहते हैं, बाजार में । अब जिसकी हिंमत हो, आ जाये । खोपड़ी तुड़वानी हो तो कबीर के साथ चलो । मगर जो कबीर के साथ चले हैं वही पहुंचते हैं । मिटते हैं, वे पहुंच जाते हैं ।

जीसस ने कहा है, जो अपने को बचायेगा वह मिट जायेगा । और जो अपने को मिटाने को तैयार है उसे फिर कोई भी नहीं मिटा सकता । जो बचायेगा, मिटेगा । जो नहीं बचायेगा अपने को, बचेगा । यह विरोधाभास धर्म की बड़ी आत्यंतिक रहस्य की बात है ।

लागत ही भाजे भरम निकस जाय सब खोट

गुरु को अगर मौका दिया चोट करने का, अगर शब्द की चोट सहने की हिंमत रखी, भाग नहीं गये, छोटी-छोटी क्षुद्र बातों में उलझकर भाग नहीं गये, हिंमत रखी, सहते गये, तो एक दिन ऐसी घड़ी आती है कि 'लागत ही भाजे भरम ।' जिस दिन चोट बैठ जाती है, तीर लग जाता है, उसी दिन सारे भ्रम मिट जाते हैं -- 'निकस जाये सब खोट ।'

मगर खोट यानी तुम । तुम्हारा तो कुछ भी नहीं बचेगा । तुम तो खोट ही खोट हो । जब सारी खोट निकल जायेगी तो जो बचेगा वह परमात्मा है, तुम नहीं हो । तुम्हारा तो परमात्मा से कभी मिलना नहीं होगा । तुम्हारा तो परमात्मा से मिलना हो ही नहीं सकता । झूठ तो कैसे परमात्मा से मिले ?

इसलिए कबीर ने कहा है -- बड़ी अद्भुत बात-- कि जब तक मैं था तुम न थे, अब तुम हो मैं नहीं । यह भी खूब रही । खोजने निकला था, हेरत हेरत हे सखी रह्या कबीर हिरायी । गये थे खोजने, खो गये । जिस दिन खो गये उस दिन परमात्मा सामने खड़ा था । खोये नहीं कि परमात्मा हुआ नहीं । जब तक थे तब तक परमात्मा न मालूम कहां था । पता नहीं चलता था, कहां छिपा है ।

तो आदमी का कभी परमात्मा से मिलन नहीं होता । आदमी तो झूठ है, आदमी तो अंधेरा है । अंधेरे का रोशनी से मिलन कैसे होगा ? खोट यानी तुम । यह मत सोचना कि खोट निकल जायेगी तो सब खराब चीजें निकल जायेंगी और अच्छा-अच्छा बच जायेगा । अच्छा तो तुम में कुछ भी नहीं है। यह बड़ी कठिन बात है तय करनी; मान लेना बड़ी कठिन है । इसलिए तो कहते हैं दरिया,

दरिया साचा सूरमा सहे शब्द की चोट

तुम भी सुन रहे हो मेरी बात, तुम्हारा मन भी कह रहा होगा, सब खोट ही खोट ? कुछ तो ठीक होगा । मान लिया कि कभी-कभी चोरी भी करते हैं, बेईमानी भी करते हैं लेकिन दान भी तो देते हैं । लेकिन जो दान चोरी से निकलता है वह दान कैसे होगा ? वह तो चोर की ही तरकीब है । लाख रुपये चुरा लेते हैं, हजार

रुपये दान कर देते हैं। यह हजार रुपये दान करके तुम सोच रहे हो, वह लाख की जो चोरी की थी उसके पाप को धो डाला। दान का उपयोग तुम साबुन की तरह कर रहे हो। वे जो दाग लग गये थे तुम्हारी चादर पर, उनको धो डाला। लाख रुपये की चोरी थी, हजार के दान से कैसे मिटेगी ? सच तो यह है कि लाख रुपये की चोरी लाख रुपये से ज्यादा दान होगा तो ही मिट सकती है। लाख के दान से भी नहीं मिटेगी क्योंकि लाख का दान तो सिर्फ जो लिया था वह वापिस लौटाया। दंड भी कुछ दोगे कि नहीं लेने के बाबत ? लाख चुराये थे, लाख लौटा दिये, चलो ठीक है। हिसाब-किताब ऊपर से तो बराबर हो गया लेकिन लिये थे, लेने चाहे थे, उसके लिये भी कुछ दोगे या नहीं ?

तो तुम कहते हो कि होगा, कुछ-कुछ हममें बुरा भी है, कुछ–कुछ भला भी है। नहीं, बुरा और भला साथ-साथ जीता ही नहीं। जिसको तुम सज्जन कहते हो वह एक तरह का झूठ है, एक तरह का पाखंड है।

संत का अर्थ होता है, जिसके भीतर स्व का होना न रहा––न भला, न बुरा। जिसकी सारी खोट निकल गई। सज्जन का अर्थ होता है बुरे-बुरे को छिपाये हुए है, भले को ऊपर झलकाता फिरता है लेकिन बुरा भीतर छिपा है। बुरे के बिना भला भी न हो सकेगा।

मेरे पास एक दंपति मिलने आये। पति ने खूब दान किया है। पत्नी उसके पति के संबंध में प्रशंसा कर रही थी। यही तो हमारा धंधा है। पति-पत्नी की प्रशंसा करता है, पत्नी पति की प्रशंसा करती है, ऐसे सब पारस्परिक लेन-देन चलता। पत्नी प्रशंसा कर रही थी कि मेरे पति बड़े धार्मिक। आपको शायद पता भी न हो कि उन्होंने लाख रुपयों का दान किया है। पति ने जल्दी उसको हाथ मारा कि लाख. . . ? एक लाख दस हजार ! वह दस हजार चूक गयी।

मैंने पूछा, यह तो ठीक, एक लाख या एक लाख दस हजार, मगर इसके पीछे चोरी कितनी की है ? वे तो नाराज हो गये। वे तो फिर दुबारा नहीं आये। क्योंकि वे आये थे मुझसे सुनने कि मैं उनको एक प्रमाणपत्र दूं कि आप महा-दानवीर हैं। वे मेरे पास लाये भी थे अपनी एक किताब, जिसमें उन्होंने और महात्माओं के प्रमाणमत्र इकट्ठे किये हुए थे कि फलां महात्सा ने ऐसा कहा। वे इसके लिये आये भी थे। इतना ही प्रयोजन था उनका कि मैं दो शब्द कह दूं, लिख दूं उनकी किताब पर।

वे सज्जन जैन हैं, और इरादा रखते हैं कि अगले कल्प में पहले तीर्थंकर होंगे। मुझे चिट्ठी लिखी थी आने के पहले तो उसमें यह लिखा था कि मेरी सारी योजना एक ही है, कि जब अगली सृष्टी होगी तो मैं पहला तीर्थंकर . . .।

उसके लिये मैं सब तरह के तप कर रहा हूं, व्रत कर रहा हूं, दान कर रहा हूं, मैंने इसलिए उनको बुला भी भेजा था कि जरा देख तो लूं पहला तीर्थंकर अगली सृष्टि में कौन होने जा रहा है ! वह एक लाख दस हजार दान किये हैं, खूब सस्ते तीर्थंकर होना चाहते हो ! मैंने उससे पूछा, चोरी कितनी की थी ? ये लाख आये कहां से ? यह किस अपराध के कारण दान करना पड़ा ? वे तो बेचैन हो गये। वे तो आये थे प्रमाणपत्र लेने। उनको तो पसीना आने लगा। मैंने कहा, उस संबंध में कुछ कहें कि लाख आये कहां से ? लेकर आये थे जब पैदा हुए थे ? लाये तो नहीं थे, यहीं किसीसे छीने-झपटे होंगे। कितने छीने-झपटे थे ? क्योंकि ऐसा मुझे नहीं दिखाई पड़ता, कि तुमने जितने छीने-झपटे थे, पूरे दे दिये होंगे। नाराज हैं; फिर दुबारा नहीं आये। सच की चोट सहने की हिंमत नहीं होती है।

दरिया साचा सूरमा सहे शब्द की चोट
लागत ही भाजे भरम निकस जाय सब खोट

यह सब हमारे दान, पुण्य रिश्वतें हैं।

मैंने सुना, एक एक महिला ने एक मंत्री को फोन किया और बोली, कुछ सप्ताह पहले मैं आपके पास सोयी थी। मैं आपको ब्लेकमेल नहीं कर रही हूं, लेकिन क्या आप मेरे घर एक फ्रिज भिजवा सकते हैं ? मंत्री महोदय ने बहुतेरा सोचा लेकिन उन्हें कुछ भी याद नहीं आया, यह औरत कौन है। फिर भी गले में पड़ी बला उतारने के लिये उन्होंने उसे एक फ्रिज भिजवा दिया।

वक्त के साथ महिला की मांगें बढ़ती चली गयीं। कभी वह कीमती हार की फरमाइश करती, कभी दो–जार हजार रुपये नगद की, आखिर जब एक दिन उसने मोटरकार की मांग की तो मंत्री जी ने तंग आकर पूछ ही लिया कि आप आखिर हैं कौन ? और मेरे साथ कहां और कब सोयी थीं ? महिला ने उत्तर दिया, तीनेक महीने पहले विज्ञान भवन में एक संमेलन हुआ था। आप और मैं साथ-साथ बैठे थे, एक निहायत बोर भाषण के दौरान आप भी बैठे-बैठे सो गये थे और मैं भी सो गयी थी।

लेकिन अब मंत्री महोदय तो मंत्री महोदय हैं। डरे होंगे, भयभीत होंगे तो पूछने की हिंमत नहीं कि, कि सोयी कब थी, कहां सोयी थी। अब जो कहती है, ठीक ही कहती होगी। झंझट छुड़ाओ, दे दो पैसे। ले लेने दो इसको।

तुम्हारे दान पुण्य बस ऐसे ही हैं। इधर पाप किये चले जाते हैं, उधर थोड़ा, पुण्य किये चले जाते हैं। तुम किसे धोखा दे रहे हो ? भय के कारण है, कि हो न हो, कहीं परमात्मा हो ही न ! कहीं हो न हो, कर्म का सिद्धांत सही न हो।

हो न हो, नर्क स्वर्ग हो। तो कुछ इंतजाम कर लो, कुछ व्यवस्था कर लो। उसकी भी फिकर रख लो, थोड़ा हाशिये में उसके लिये भी कुछ करते जाओ। जिंदगी की पूरी किताब पर तो जो लिखना है सो लिखो मगर हाशिये में थोड़ा आगे-पीछे का भी हिसाब करते जाओ। हाशिया है तुम्हारा पुण्य, और तुम्हारा त्याग और तुम्हारा धर्म और तुम्हारी प्रार्थना और तुम्हारी पूजा। यह तुम्हारी जिंदगी नहीं है, यह तुम्हारी जिंदगी से पैदा हुए अपराध भाव के लिये किसी तरह अपने को समझाने की सांत्वना है।

इसलिए तुमसे मैं कहना चाहता हूं, तुम तो खोट ही खोट हो। अगर गौर से देखोगे तो खोट ही खोट पाओगे। इसीलिए तो आदमी भीतर नहीं देखता। डरता है कि इतनी खोट दिखाई पड़ेगी तो फिर जिऊंगा कैसे? फिर चलूंगा कैसे एक कदम, जब इतनी खोट दिखायी पड़ेगी? बोलूंगा कैसे, उठूंगा कैसे, श्वांस कैसे लूंगा जब इतनी खोट दिखायी पड़ेगी? इसलिए आदमी भीतर नहीं देखता। आदमी अपने से बचता रहता है। अपने आमने-सामने नहीं आता। तुम अपने ही आमने–सामने आ जाओ तो राज खुल जाये; तो रहस्य खुल जाये। तुम एक बार अपने को ही आमने–सामने देख लो तो कुछ और बचता नहीं जानने को। किसी शास्त्र में जाने की जरूरत नहीं है। अपना आमना–सामना हो जाये तो तुम खोट ही पाओगे। और उस दर्शन में ही कि खोट ही खोट है, तुम्हारे जीवन में अतिक्रमण शुरू होता है।

तो फिर खोट से बचने का सवाल नहीं है कि कुछ पुण्य कर लो, कुछ त्याग कर दो। खोट को आमूल जड़ से ही तोड़ देने का सवाल है। यह खोट कहां से उठती है, उस जड़ को ही काट देना है। नहीं तो पत्ते काटते रहते हैं हम। एक पत्ता दान कर दिया। मगर एक पत्ता कटा कि चार पत्ते निकल आते हैं। वृक्ष समझता है, कलम कर रहे हो। और पत्ते घने हो जाते हैं। जड़ काटनी होती है। जड़ यानी अहंकार। दान पुण्य से कुछ भी न होगा। त्याग तपश्चर्या से कुछ भी न होगा। अगर अहंकार भीतर मौजूद है तो तपश्चर्या से भी अहंकार मजबूत होगा, और त्याग से भी मजबूत होगा, और पुण्य से भी अहंकार ही भरेगा। यह सब पुण्य, त्याग, तपश्चर्या सब पानी बन जायेंगे उसी अहंकार की जड़ को और उसे मजबूत करेंगे। अहंकार को ही काट देना है।

सबहि कटक शूरा नहीं कटक मांही कोई शूर
दरिया पड़े पतंग ज्यों जब बाजे रणतूर
फौज में सभी सैनिक बहादुर नहीं होते।
सभी कटक शूरा नहीं कटक मांही कोई शूर

बड़ी-बड़ी फौजों में कभी एकाध कोई शूरमा होता है। किसको कहते हो सूरमा? किसको कहते बहादुर? हजारों लाखों की भी भीड़ में कभी कोई एकाध आदमी धार्मिक होता है। करोड़ों में कभी कोई एकाध आदमी इतनी हिंमत करता है मिटने की, विसर्जित होने की, शून्य हो जाने की। किसको कहते हैं दरिया सूरमा?

दरिया पड़े पतंग ज्यों जब बाजे रणतूर

जैसे दिया जले और पतंग दौड़कर आग में उतर जाये; कि जब रणभेरी बजे तो भय न उठे और शूरवीर युद्ध में पहुंच जाये।

ऐसा हुआ, बुद्ध एक गांव में ठहरे थे। उस गांव का बड़ा प्रसिद्ध हाथी था राजा का, वह बूढ़ा हो गया था। सारी राजधानी उस हाथी को प्रेम करती थी। उसमें बड़े गुण थे, बड़ा बुद्धिमान था। और उसकी बड़ी जीवन की यशोगाथायें थीं। बड़े युद्ध उसने लड़े थे, और बड़े युद्ध उसने जीते थे। और राजा को उसने अनेक–अनेक कठिनाइयों में युद्ध के मैदान पर बचाया था। राजा पर उसकी बड़ी बड़ी सेवायें थीं। तो उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी नगर में। वह एक दिन गया था तालाब पर पानी पीने और कीचड़ में फंस गया––बूढ़ा हो गया था, शिथिल-गात्र, निकल न सके। जितनी चेष्टा करे निकलने की कीचड़ से उतना फंसता जाये। अब हाथी बजनी, घबड़ाकर बैठ गया कीचड़ में।

राजमहल खबर पहुंची। उस हाथी का जो बूढ़ा महावत था वह तो कभी का अवकाश-प्राप्त हो गया था। नये महावत भेजे गये, उन्होंने उसे बड़े भाले छोंके, उसे बड़ा सताया, निकालने की कोशिश की लेकिन बूढ़ा तो वैसे ही बूढ़ा था, इनकी चोट और मारपीट में और शिथिल हो गया, मरणासन्न हो गया, और कीचड़ में गिर गया। निकलने का कोई उपाय न दिखाई पड़े।

फिर तो स्वयं राजा गया। उस बूढ़े हाथी के आंखों से आंसू बह रहे हैं। वह बूढ़ा हाथी अपनी दयनीयता पर पर पीड़ित हो रहा होगा। बड़े युद्धों में लड़ा था, पहाड़ों से जूझ जाता था, आज यह दशा हो गयी। इस छोटी सी कीचड़ से नहीं निकल पा रहा है? उसकी आंख से आंसू बह रहे हैं। राजा भी बहुत दुखी हो गया। फिर उसे याद आयी, इसके पुराने महावत को बुलाओ। उस बूढ़े को खोजो कहां है। शायद वह कुछ जानता हो। वह इसके साथ जिंदगी भर रहा है, उसे कुछ राज पता हो।

वह बूढ़ा आया। राजधानी इकट्ठी हो गयी थी। बुद्ध के शिष्य भी इकट्ठे हो गये वहां। पास ही बुद्ध ठहरे थे। वह महावत आया, हंसा, और उसने कहा कि यह क्या कर रहे हो? उसे मार डालोगे? हटो। और उसने कहा कि बैंड

लाओ, युद्ध का नगाड़ा बजाओ। और किनारे पर रखकर उसने युद्ध का नगाड़ा बजवाया। युद्ध का नगाड़ा बजना था कि हाथी एक छलांग में बाहर आ गया। एक क्षण की देर न लगी। सूरमा था। उस क्षण में भूल गया जब नगाड़ा बजा, कि मैं बूढ़ा हूं; भूल गया कि कमजोर हूं; फिर जवान हो गया।

हम उतने ही जवान होते हैं जितनी हमारी हिंमत होती है। हम उतने ही युवा होते हैं जितनी हमारी हिंमत होती है। हिंमत से आदमी बूढ़ा होता है, युवा होता है।

उसके साहस पर चोट लगी। यह तो उसने कभी सहा ही नहीं था। युद्ध के बाजे बज जायें और वह रुका रह जाये! वह मर भी गया होता तो शायद निकल आता कीचड़ से।

बुद्ध के शिष्यों ने आकर बुद्ध को कहा, भगवान एक अपूर्व चमत्कार देखा। बुद्ध ने कहा, अपूर्व कुछ भी नहीं है। तुममें भी मेरी पुकार सुनकर वे ही निकल पायेंगे, जो सूरमा हैं। यही तो मैं भी कर रहा हूं नासमझो! तुम कीचड़ में फंसे हो और मैं रणभेरी बजा रहा हूं। तुममें से जो हिंमतवर हैं, जिनमें थोड़ी सी भी क्षमता है साहस की वे निकल आयेंगे; वे चुनौती को स्वीकार कर लेंगे।

सबहि कटक सूरा नहीं कटक मांही कोई सूर
दरिया पड़े पतंग ज्यों जब बाजे रणतूर

जब युद्ध की भेरी बजे तो सूरमा ऐसे उतर जाता है जलते हुये दिये कि ज्योति में। फिर फिकर भी नहीं करता कि बचूंगा, मिटूंगा। सोच-विचार नहीं करता। संन्यास ऐसी ही प्रक्रिया है— सोच-विचार की नहीं —जैसे पतंग उतर जाये जलती हुई ज्योतिशिखा में।

दरिया पड़े पतंग ज्यों जब बाजे रणतूर
भया उजाला गैब का, दौड़े देख पतंग
दरिया आपा भेटकर मिले अगिन के रंग

सुनना। खूब हृदयपूर्वक सुनना। भया उजाला गैब का —— जब भी कोई व्यक्ति कहीं शून्य हो जाता है, शून्य का चमत्कार घटता है, जब भी कोई व्यक्ति निरहंकार को उपलब्ध हो जाता है, जब भी कहीं कोई व्यक्ति की तरह मिट जाता है, शून्य हो जाता है वहीं परमात्मा का रहस्य प्रगट होता है, गैब का चमत्कार होता है।

इस जगत में बड़े से बड़ा चमत्कार एक ही है: तुम मिट जाओ ताकि परमात्मा तुम से प्रगट हो सके। तुम हट जाओ ताकि परमात्मा तुम से बह सके। तुम मार्ग में मत खड़े रहो। तुम दरवाजा खोल दो। तुम द्वार हो। तुम मार्ग के पत्थर

न बनो ताकि झरना बह सके।

भया उजाला गैब का . . .

और जब भी कभी ऐसी कोई घटना घटती है—— कोई बुद्ध हो गया, कोई कृष्ण हो गया, कोई क्राइस्ट हो गया, कोई मोहंमद हो गया, जहां कहीं यह चमत्कार घटा है शून्य का, जहां कहीं परमात्मा प्रगट हुआ है, किसी शून्य में उतर गये व्यक्ति से बहा है—— दौड़े देख पतंग ... तो जिनके भीतर भी थोड़ी हिंमत है, जिनके भीतर थोड़ा साहस है, जो मुर्दे नहीं हैं, जो वस्तुतः जीवित हैं, ऐसे व्यक्तिओं के लिये तो मोहंमद, कृष्ण की बुद्ध मौजूदगी ज्योतिशिखा बन जाती है, दीप-शिखा बन जाती है। दौड़े देख पतंग ... फिर तो सारी दुनिया के कोने-कोने से, जिनमें हिंमत है वे दौड़ने लगते हैं उस शून्य की तरफ।

भया उजाला गैब का दौड़े देख पतंग

इन्हीं पतंगों का नाम प्रेमी, साधक, भक्त, संन्यासी।

दरिया आपा भेटकर मिले अगिन के रंग

और अपने को मिटा देते हैं। अपने आपे को, अपने अहंकार को, अपनी अत्ता को, मैं हूं इस भाव को डुबा देते हैं। उस शून्य के साथ एक हो जाते हैं।

दरिया आपा मेटकर मिले अगिन के रंग

और वह जो सद्‌गुरु है, वह जो अगिन प्रगट हुई है, उसके साथ एक रंग हो जाते हैं। इस देश में संन्यासी का वस्त्र गैरिक इसीलिए चुना गया; वह अग्नि का रंग है। वह प्रतीक है। वह आग की लपट है।

दरिया आपा मेटकर मिले अगिन के रंग

और जब तक यह घटना न घटे तब तक तुम हो न हो, बराबर हो। तुम्हारा होना न होने जैसा है।

जिंदगी मजबूरियों की सहचरी है
एक चादर है जो पैबंदों भरी है
हम जतन से रख सकें इनको असंभव
ज्यो की त्यों केवल कबीरा ने धरी है
एक क्षण का स्वर्ग हो शायद कहीं पर
उम्र का अधिकांश लंबी भुखमरी है
गीत मत खोजो इबारत देखकर ही
यह हमारे आय व्यय की डायरी है
सिर्फ बाहर से सजावट की गयी है

मुस्कुराहट वर्ना रीती गागरी है
रात चिताओं की गूंगी नौकरानी
और दिन बस व्यर्थता की चाकरी है

जब तक जिंदगी उस अग्नि के रंग में एक न हो जाये, जब तक जिंदगी लपट न बने, तब तक बस सिर्फ बाहर से सजावट की गयी है। मुस्कुराहट वर्ना रीती गागरी है। ऊपर-ऊपर लीपे-पोते मुस्कुराहट को, हंसते हुए, तुम गुजार देते जिदगी की इस लंबी यात्रा को। भीतर खाली के खाली। भीतर रिक्त के रिक्त। भीतर ना-कुछ। ऊपर से झंडे उठा लेते हो। बड़े डंडों में झंडे लगा लेते हो। झंडा ऊंचा रहे हमारा, चिल्लाते फिरते हो। मगर भीतर...? भीतर सिर्फ अंधेरा है। भीतर सिर्फ उदासी है, विषाद है।

बेकसों की रात होगी मुक्तसर सुनते तो हैं
एक समा है हब्स का यह क्यों निजामें दहर में
कोई दिलवाला छुड़ाये उनको दस्ते जब्र से
हो गया सूरज का अगपा रात के एक सहर में
कहीं ऐसा न हो आवाज कफन को तरसे
ऊंची दीवारों से टकरा कर सदा खो जाये
मसलहर जब्त की जंजीर लिये बैठी है
जब्र इतना न करो कि दिलपर बेहिश हो जाये
मुझे एहसास अपनी बेबसी का लेकर डूबेगा
कहीं सूराख एक देखा है अब अपने सफीने में
किसीने जिंदगी में खौफ के वे बीज बो डाले है
वे जिनसे जहर के पौधे उगेंगे मेरे सीने में

हमारी जिंदगी की नाव में एकाध छेद हो ऐसा भी नहीं है, छेद ही छेद हैं। हमारी यह जिंदगी की नाव छेदों से जुड़कर बनी है।

मुझे एहसास अपनी बेबसी का लेकर डूबेगा
कहीं सुराख एक देखा है अब अपने सफीने में

हम देखते नहीं सुराख अपनी नाव में। कभी एकाध दिखता भी है तो जल्दी से हम उसे ढांक देते हैं, कोई और न देख ले। जैसे कि सुराख देखने से कुछ बड़ा होगा, कि छोटा होगा। जैसे कि सुराख न देखा जायेगा तो सुराख भर जायेगा।

जिंदगी में सुराख हो तो देखना, गौर से देखना और खोजना; क्योंकि सुराख अकेले नहीं होते, उनके भी समुदाय होते हैं। और जो आदमी गौर से

देखेगा, देखेगा यह पूरी नाव ही सुराखों से भरी है। इस नाव में कभी किसी ने कोई भवसागर की यात्रा नहीं की है, डूबा है सिर्फ। इसलिए जो अपनी नाव को पूरा सूराखों से भरा देख लेता है, वह नाव से कूद जाता है। इस कूदने का नाम संन्यास है। वह तैरने पर भरोसा करता है। वह कहता है अपने से ही उतर जायेंगे हम, यह नाव तो डूबने ही वाली है। नाव में रहे तो हम भी डूबेंगे।

मुझे एहसास अपनी बेबसी का लेकर डूबेगा
कहीं सुराख एक देखा है अब अपने सफीने में
किसीने जिंदगी में खौफ के वे बीज डाले हैं
वे जिनसे जहर के पौधे उगेंगे मेरे सीने में

और जिंदगी भर -- बचपन से लेकर अब तक, और जन्मों-जन्मों में बार-बार सिर्फ भय के बीज ही तुम्हारे भीतर डाले गये हैं। धर्मगुरु तुम्हें भयभीत करता है, सिर्फ डराता है। और भय से सिर्फ जहर पैदा होता है। वास्तविक सद्गुरु तुम्हें डराता नहीं, तुम्हें जगाता है, और तुमसे कहता है, तुम्हारे भीतर अदम्य साहस पड़ा है। तुम अग्नि की एक लपट हो। जगो। उठो। तुम्हारे भीतर परम चैतन्य विराजमान है। हिंमत करो। तुम हिंमत करोगे तो ही तुम्हारे भीतर जो बीज है वह टूटेगा, और तुम्हारे भीतर जो वृक्ष छिपा है वह प्रगट होगा।

भया उजाला गैब का दौड़े देख पतंग

और कहीं अगर तुम्हें गैब का उजाला दिखाई पड़े, कहीं अगर तुम्हें शून्य में पूर्ण दिखाई पड़े, कहीं तुम्हें मालूम पड़े कि कोई व्यक्ति मिट गया है और उसकी जगह परमात्मा बहना शुरू हुआ है, तो फिर रुकना मत; फिर हिसाब-किताब मत लगाना।

...दौड़े देख पतंग।

तब तुम पतंगे हो जाना। तुम पतंग जैसे दीवाने हो जाना, ताकि तुम इस मौके से चूक न जाओ। यह द्वार तुम्हारे लिये द्वार बन जाये।

दरिया आपा मेंटकर मिले अग्नि के रंग

अपने अहंकार को छोड़कर अग्नि के रंग में डूब जाना, एक हो जाना। तो खोट ही जलेगी-- याद रखना। तुम जलोगे, यह सच है-- तुम जो कि झूठ हो। और तुम्हारे भीतर जो सत्य है वह तो जल नहीं सकता। जब आग में हम सोने को फेंकते हैं तो कचरा ही जलता है, सोना बच जाता है। सोना निखर कर बचता है, कुंदन होकर बचता है, शुद्ध होकर निकल आता है।

तो तुम्हारे भीतर जो खोट है वह जल जायेगी। अहंकार जल जायेगा, लोभ जल जायेगा, भय जल जायेगा, क्रोध, काम, मत्सर जल जायेगा। तुम्हारे भीतर

शुद्ध सोना बचेगा। उस शुद्ध सोने का नाम ही परमात्मा है। आत्मा बचेगी, अहं-कार जल जायेगा।

दरिया प्रेमी आत्मा रामनाम धन पाया
निर्धन था धनवंत हुआ भूला घर आया
दरिया प्रेमी आत्मा, रामनाम धन पाया

ऐसे प्रेम से ही, ऐसे पागल प्रेम से, जैसा पतंगे का होता है ज्योतिशिखा से, ऐसे पागल प्रेम से ही राम-नाम का धन मिलता है। ऐसे पागल प्रेमी पर ही धन की वर्षा होती है। छप्पर तोड़कर धन बरसता है।

राम नाम धन पाया, दरिया प्रेमी आत्मा—

सिर्फ प्रेमी आत्माओं ने राम-नाम का धन पाया है। न भय, न लोभ; प्रेम। भयभीत आदमी प्रेम नहीं कर सकता। लोभी भी प्रेम नहीं कर सकता। लोभी की नजर किसी और बात पर अटकी होती है, प्रेम पर तो होती नहीं।

अगर लोभी जाकर भगवान से प्रार्थना भी करता है तो वह कहता है कि देखो इस बार लॉटरी का नंबर दिलवा। देखो, इस बार चूक न हो जाये। इतनी इतनी प्रार्थना कर रहा हूं, खयाल रखना। इतना सिर फोड़ रहा हूं तुम्हारे द्वार पर दरवाजे पर। इतनी नाक घसीट रहा हूं, इसका सब हिसाब रखना। अब तो दया करो। लोभी परमात्मा के सामने खड़े होकर भी कुछ और मांगता है, परमात्मा को नहीं मांगता। परमात्मा की किसको पड़ी है? परमात्मा का क्या करोगे?

परमात्मा तो अगर यह भी कहे कि चलो तू इतना मांगता है तो मैं आये जाता हूं तेरे पास। तो तुम कहोगे महाराज, वैसे ही दिक्कत में हूं; अब आप और आ जायें तो एक और झंझट। आप कृपा करें। लाटरी दिलवायें, इतना ही काफी है। आप कष्ट न करें आने का। आप को लेकर और क्या करेंगे? बाल-बच्चे ही तो पल नहीं रहे हैं। और सफेद हाथी घर के सामने बांधकर क्या करना है? आप कृपा करें। मुझ गरीब से आपकी सेवा न हो सकेगी। मुझे तो सिर्फ लाटरी दिलवा दें। मैं तो छोटे ही से राजी हूं। इतना बड़ा तो ... आप बड़े-बड़े महात्माओं के पास जायें। मैं तो छोटा-मोटा आदमी हूं।

परमात्मा तो कोई मांगता भी नहीं, लोभी मांग भी नहीं सकता। कुछ और मांगता है। प्रेमी ही परमात्मा को मांगता है। उसका न कोई लोभ, न भय है। न तो वह नर्क से डरा हुआ है, न स्वर्ग का उसे आयोजन है, न प्रयोजन। वह कहता है, तुमसे लग जाये लगाव। बस तुम्हारी चाहत एक मात्र चाहता हो जाये, सब हो गया। वह कहता है न स्वर्ग चाहिये, न नर्क का भय है मुझे। भक्तों ने तो कहा है हमें मोक्ष भी नहीं चाहिये। क्या करेंगे मोक्ष का? बस तुम्हारे चरण मिल जाये

तुम्हारे चरणों में लग जाये चित्त, बस इतना काफी है। तुम्हारे दर्शन हो जायें। तुम मिले तो सब मिला।

दरिया प्रेमी आत्मा रामनाम धन पाया
निर्धन था धनवन्त हुआ भूला घर आया

एक ही धन है इस जगत में, वह परमात्मा है। उसको छोड़कर हम और सब खोजते हैं। इसलिए हम दरिद्र ही बने रहते हैं। इसलिए सब धन भी इकट्ठा हो जाता है, फिर भी कहां तृप्ति, कहां संतोष! नहीं, सब हो जाता है — बड़े महल बड़ा धन, बड़ी तिजोड़ी, बड़ी प्रतिष्ठा और भीतर? भीतर वैसे के वैसे दरिद्र और भिखमंगे। धन बाहर पड़ा रहता है, भीतर की निर्धनता जरा भी उससे नहीं बद-लती। भीतर की निर्धनता तो तभी जाती है जब असली धन मिलता, परम धन मिलता। उसका नाम ही परमात्मा है।

निर्धन था धनवन्त हुआ भूला घर आया,

और परमात्मा के मिलन में ही भूला घर लौटता है। नहीं तो भटके ही हुए हैं। लाख करो और सब कुछ उपाय, भटकन ही बढ़ती रहेगी। सिर्फ एक ही है, जहां भटकन मिटती है।

क्यों भूला घर आया? क्योंकि परमात्मा हमारा वास्तविक घर है वह हमारा स्वरूप है। उसीसे हम आये हैं, उसीमें हमें जाना है। हम उसीकी तरंग हैं। हमें उसीमें लीन हो जाना है। हम उससे अपने को को पृथक समझें तो हम दरिद्र रहेंगे। हम उसमें अपने को डुबा दें तो सागर का सारा धन हमारा धन है। बूंद डरती है सागर में उतरने से कि कहीं खो न जाऊं! खो तो जायेगी सच! डर भी ठीक है। लेकिन खोने से ही तो सागर बनेगी इसलिए डर ठीक भी नहीं है। मिटने से ही तो कोई पाता है।

निर्धन था धनवन्त हुआ भूला घर आया
सूर न जाने कायरी सूरातन से हेत

साहस से जोड़ो अपनी गांठ, कमजोरियों से नहीं। दरिया बड़े पते की बात कह रहे हैं।

सूर न जाने कायरी सूरातन से हेत
पुर्जा-पुर्जा हो पड़े तऊ छांड़े खेत

हिंमत जगाओ। हिंमत का नाम धर्म है। साहस को जगाओ। साहस का नाम धर्म है। नर्क से डरकर कायर की तरह मत कंपते रहो। और स्वर्ग के लोभ से लोभी होकर गिड़गिड़ाओ मत, पूंछ मत हिलाओ।

सूर न जाने कायरी सूरातन से हेत

उसका तो साहस से और अभियान से ही लगाव है । उसकी गांठ, उसका तो विवाह अभियान से हुआ है । नये अभियान पर जाना है । रोज नये अभियान पर जाना है । रोज नये की तलाश करनी है । रोज अज्ञात पर चरण रखना है । रोज नये शिखर छूने है ऊंचाइयों के, गहराइयों के, नयी तलाशें करनी हैं ।

शूरातन से हेत—साहस से ही जिसका लगाव है, वही धार्मिक हो पाता है।

पुर्जा-पुर्जा हो पड़े तऊ न छांड़े खेत

सब मिट जाये तो भी वह मैदान नहीं छोड़ता, हड्डी-हड्डी गिर जाये, पुर्जा पुर्जा हो पड़े, टुकड़ा-टुकड़ा होकर गिर जाये, तो भी वह खेत नहीं छोड़ता। भागता नहीं । मैदान से हटता नहीं ।

और यह परम घटना तभी घटती है जब सब पुर्जा हो-होकर गिर जाता है । जब तुम्हारे पास कुछ भी नहीं बचता, सब गिर जाता है, तब अचानक तुम पाते हो कि वही रहा है जो तुमसे गिर नहीं सकता; जो तुम्हारा परम धन है; जिससे तुम अलग नहीं हो सकते । सब कटकर गिर जाता है तब जो शेष रह जाता है वही परमात्मा है ।

दरिया सो सूरा नहीं जिन देह करी चकचूर
मन को जीत खड़ा रहे मैं बलिहारी सूर

और दरिया कहते हैं उसकी हम बात नहीं कर रहे हैं—गलती मत समझ लेना ।

दरिया सो सूरा नहीं जिन देह करी चकचूर

यह कोई शरीर की बहादुरी की बातें नहीं हो रही हैं । तो दरिया कहते हैं भूल मत कर लेना, हम यह नहीं कह रहे हैं कि तुम जाकर युद्ध के मैदान पर लड़ो, और तुम्हारा शरीर कट-कट के गिर जाये, तो तुम कुछ बहादुर हो गये । यह कोई बड़ी बात हुई नहीं । यह तो फिर अहंकार में, अहंकार की ही सेवा है।

दरिया सो सूरा नहीं जिन देह करी चकचूर
मन को जीत खड़ा रहे मैं बलिहारी सूर

यह तो भीतर के युद्ध की, भीतर के संग्राम की बात हो रही है । मन को जीत खड़ा रहे—न तो लोभ मन को डिगाये, न भय मन को डिगाये । कोई मन को न डिगाये । तूफान उठे कि आंधियां, मन अडिग और अकंप, निष्कंप बना रहे। जैसे निर्वात घर में जहां हवा को झोंका न आता हो, दिये की लौ अकंप हो जाती, ऐसा तूफानों के बीच में भी जो अकंप बना रहे; हारे तो रोये नहीं; जीते तो हंसे नहीं; सफलता मिले तो गर्व न उठे; पराजय हो जाये तो दीनता न पकड़े; न दिन फर्क करे, न रात, सुख हो कि दुख, सब में समभाव बना रहे ।

मन को जीता खड़ा रहे मैं बलिहारी सूर

मैं उस सूरमा की बात कर रहा हूं, दरिया कहते हैं। उस पर मैं बलिहारी हूं। यह धर्म के रास्ते पर जो पहला गुण है, साहस है। धर्म के रास्ते पर न तो उपवास से कुछ होता है, न व्रत से कुछ होता है, न पूजा-पाठ से कुछ होता है। जो पहला गुण चाहिये वह साहस है । और जिसके पास साहस है उसके पास सब गुण अपने आप आ जाते हैं। साहस सभी गुणों का जन्मदाता है। और जिसके पास साहस नहीं है, भयभीत है जो, उसके भीतर सब दुर्गुण आ जाते हैं। भय दुर्गुण का स्त्रोत है । तुमने देखा नहीं ? जब तुम झूठ बोलते हो, तो झूठ क्यों बोलते हो ? भय के कारण । तुमने देखा नहीं ? जब तुम चोरी कर लेते हो तो चोरी क्यों कर लेते हो ? भय के कारण । भयभीत हो कि पैसा पास में नहीं है, कैसे जिऊंगा ? और हजार रुपये पड़े दिखाई पड़ गये, उठा लेते हो। झूठ बोल देते हो क्योंकि डरते हो, कि अगर सच बोला, पकड़ा गया, बेइज्जती होगी। तो झूठ बोल देते हो।

खयाल करना तुम्हारे जीवन के, सारे दुर्गुणों की जड़ तुम भय में पाओगे, या लोभ में पाओगे । वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ।

आज के सूत्रों का सार इतना ही है कि अगर लोभ और भय छूट जाये तो तुम्हारे जीवन में परमात्मा को आने का द्वार खुल जाता है । भय लोभ छोड़ो।

पंडित ग्यानी बहु मिले वेद ग्यान परवीन
दरिया ऐसा न मिला राम नाम लवलीन

यह भय और लोभ छूट जाये तो तुम रामनाम में लवलीन हो सकते हो। दरिया ने बहुत खोजा—मिला, एक व्यक्ति मिला, जिसके चरणों मे बैठकर क्रांति घटी; जिसके चरणों में बैठकर आकाश में उड़ान हुई; जिसके चरणों में बैठकर अनंत की यात्रा हुई । लेकिन उसके पहले बहुत लोगों के पास गये । तरह-तरह के लोग मिले, उनकी बड़ी कुशलतायें थीं, उनके बड़े गुण थे, लेकिन असली बात नहीं थी । भीतर का दिया बुझा था ।

सद्गुरु को खोजो । और जहां कहीं तुम्हें किसी व्यक्ति के भीतर का दिया जलता हुआ दिखाई पड़ जाये तो फिर लाज-संकोच न करना; फिर भय विचार में न पड़ना । फिर तो पागल पतंग की भांति . . . । फिर तो अदम्य साहस करके उतर जाना उस अग्नि में; अग्निमय हो जाना । यही संन्यास की परिभाषा है।

और एक बार ऐसी घटना घट जाय, तो मौत से मिलती है परम जीवन की कुंजी, हाथ आती है । मिटने से होने का राज हाथ आता ।

हमें अनुवाद करना आंसुओं का आ गया अब तो

कभी कुछ गीत ढल जाते कभी ढलती गझल कोई

फिर तो जीवन में दुख रहता ही नहीं। आंसू भी कभी कुछ गीत ढल जाते हैं। कभी ढलती गजल कोई। आंसू भी ढल-ढ़ल कर गीत बन जाते हैं, गजल बन जाती है। अभी तो मुस्कुराहट भी झूठी है, अभी तो मुस्कुराहट से भी गीत नहीं बनते और गजल नहीं बनती, अभी तो मुस्कुराहट भी धुंआ-धुंआ है। फिर आंसू भी, फिर मृत्यु भी परम जीवन की तरफ ले जाती है। फिर तो मिटना भी होने के मार्ग पर सीढ़ियां बना देता है।

भया उजाला गैब का दौड़े देख पतंग
दरिया आपा मेंटकर मिले अगिन के रंग
दरिया प्रेमी आत्मा रामनाम धन पाया
निर्धन था धनवंत हुआ भूला घर आया

भूले हो अभी, घर आओ। निर्धन हो अभी, धनवान बनो। बाहर मत खोजो इस धन को। इस धन का खजाना तुम्हारे भीतर पड़ा है।

मैंने सुना है, एक राजधानी में एक भिखमंगा मरा। वह तीस साल तक एक ही जगह भीख मांगता रहा। जब मर गया तो गाव के लोगों ने उसे जलाया। और फिर गाव के लोगों ने सोचा, तीस साल यह इसी जगह बैठा रहा चौरस्ते पर, यह जगह भी गंदी हो गयी है। गंदे कपड़े, ठीकरे, बर्तन-भांडे, सब वहीं रखे बैठा रहा। भिखारी तो भिखारी। तो उन्होंने कहा, इसकी थोड़ी मिट्टी भी यहां से निकालकर फेंक दो। यह मिट्टी भी गंदी कर डाली।

तो उन्होंने मिट्टी निकाली। मिट्टी निकाली तो चकित रह गये। वहां एक बड़ा खजाना गड़ा था; बड़े हांडे गड़े थे। अशरफियां ही अशरफियां निकलीं। सारे गांव में एक ही चर्चा हो गयी कि यह भी खूब रही। यह भिखमंगा उसी जगह बैठा जिंदगी भर भीख मांगता रहा, जहां इतना खजाना गड़ा था।

और ध्यान रखना, वह जो गांव में जिन लोगों ने चर्चा की और इस भिखमंगे के दुर्भाग्य पर रोये, उनमें से किसी ने यह न सोचा कि जहां वे खड़े हैं, जहां वे हैं, वहां भी बड़े खजाने गड़े हैं। उससे भी बड़े खजाने गड़े हैं। अनंत खजाने गड़े हैं।

हम सब उस भूमि पर खड़े हैं जहां अनंत खजाना गड़ा है। लेकिन आंख बाहर भटकती है और भीतर नहीं आती, और खजाना भीतर है। पद भीतर, धन भीतर, प्रतिष्ठा भीतर, और तुम भटकते बाहर, इसलिए चूक हो जाती है। खूब भूले, खूब भटके, अब घर आओ।

आज इतना ही।

सुख-दुख से कोई परे परम पद

प्रवचन : ४
दिनांक : १४।७।१९७७
श्री रजनीश आश्रम, पूना
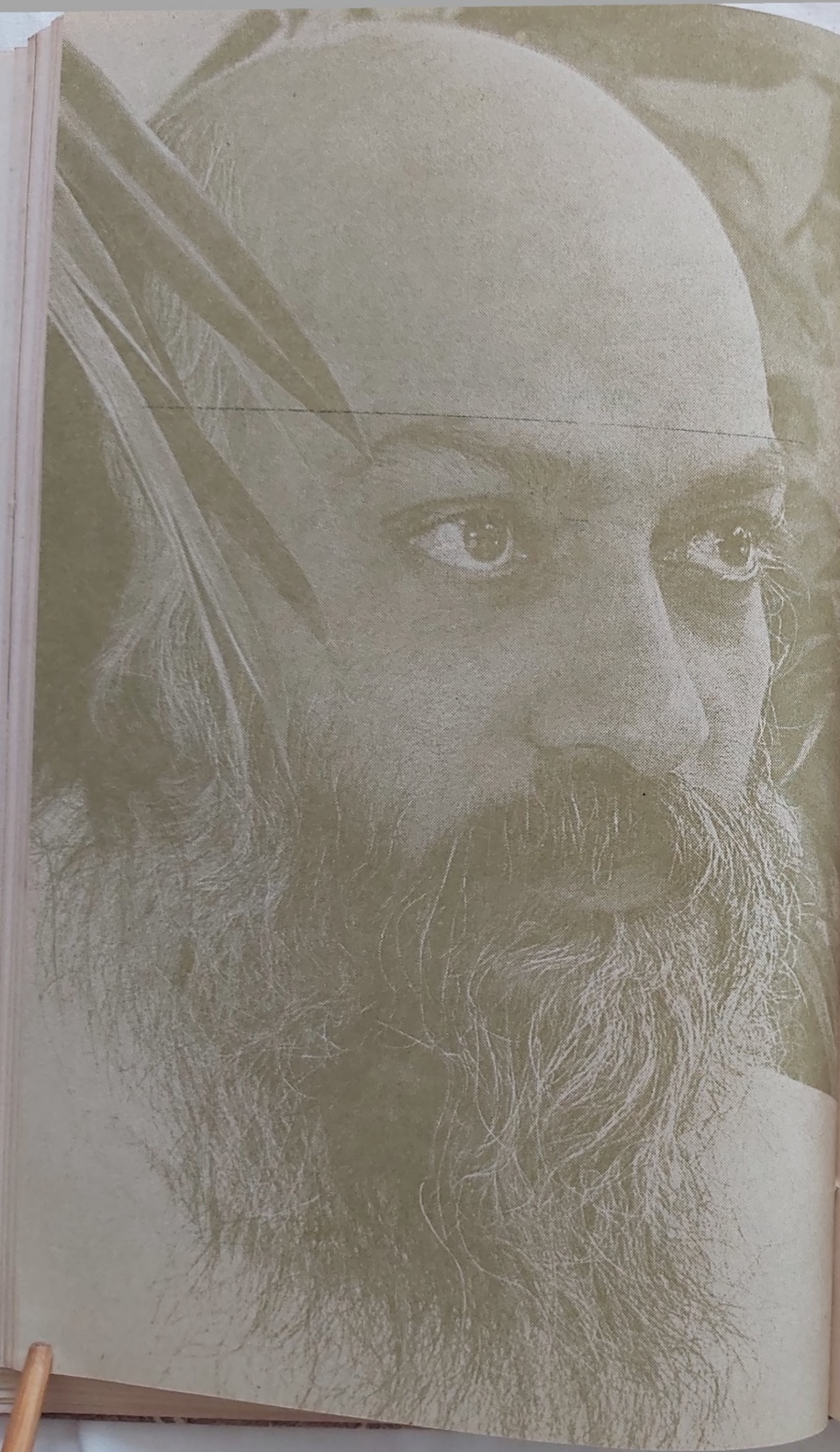
प्रश्न सार

- क्या भक्तिमार्ग पर भी साहस की जरूरत होती है ?
- क्या संप्रदाय से धर्म में प्रवेश नहीं हो सकता ?
- सुख का समय अनंत होता है या दुख का ?
- काम, प्रेम और भक्ति ।
- आपको समझना असंभव सा क्यों लगता है ?

पहला प्रश्न : दरिया साहब के कल के सूत्र शूरता की प्रशस्ति के सूत्र थे। केवल एक शब्द-प्रेमी को ध्यानी से बदलकर वे सूत्र बहुत मजे में जिनेश्वर महावीर के सूत्र कहे जा सकते हैं। भक्ति भी क्या इतनी जुझारू होती है ? और क्या भक्ति और ध्यान में इतना ही फर्क है ?

धर्म के मार्ग पर चाहे कोई भी विधि चुनी जाये, साहस तो चाहिये ही होगा। साहस के बिना तो धर्म नहीं है। भक्ति हो या ध्यान, कमजोर और भीरू के लिये कोई मार्ग नहीं। भीरू न तो हिंमत कर पाता है ध्यान की। क्योंकि ध्यान का अर्थ है पूर्ण होने का प्रयास। ध्यान का अर्थ है स्वयं को उपलब्ध करने की चेष्टा। ध्यान का अर्थ है अपूर्व संकल्प। साहस चाहिये, संघर्ष चाहिये।

प्रेम के मार्ग पर भी उतना ही साहस चाहिये। कोई ऐसा न सोचे कि प्रेम या भक्ति के मार्ग पर साहस की क्या जरूरत ? शायद थोड़ा और ज्यादा ही साहस चाहिये, क्योंकि भक्ति है समर्पण। भक्ति है विसर्जन। ध्यान कहता है स्वयं हो जाओ। भक्ति कहती है स्वयं को मिटा दो। स्वयं को बिलकुल मिटा दो। मिटने के लिये तो और भी साहस चाहिये। ध्यानी को तो थोड़ी आशा है कि मैं बचूंगा। भक्त उतनी आशा भी नहीं रख सकता। ध्यानी भी मिटता है, अंतिम चरण में मिटता है। भक्त पहले चरण में ही मिट जाता है।

ध्यानी भी समर्पण करता है लेकिन आखरी चरण में। शुरूआत से तो अपने अहंकार को शुद्ध करता है। सारे जीवन के जितने भी दोष हैं उन्हें दूर करता है। संघर्ष करता है दोषों से। अंत में बचता है शुद्ध अहंकार। वह अंतिम घड़ी है। उसे भी छोड़ना होता है क्योंकि वह आखरी दोष है —— मैं भाव। अब न चोरी रही, अब न क्रोध रहा, न लोभ रहा, न काम रहा, सब गये। लेकिन सब की जगह बस एक अस्मिता छूट गयी—— मैं हूं। अंततः उसे भी छोड़ता है ज्ञानी। उस आखरी घड़ी में क्रांति घटती है।

लेकिन भक्त और प्रेमी तो पहले ही चरण में छोड़ देता है उसको। फर्क

इतना ही है, ध्यानी और बुराइयों को पहले छोड़ता है और अहंकार की बुराई अंत में छोड़ता है। भक्त अहंकार की बुराई पहले छोड़ता है, और उसी बुराई को छोड़ने के बाद अपने आप दूसरी बुराइयां छूटती चली जाती हैं। क्योंकि सभी बीमारियों की जड़ अहंकार है। तुमने कभी क्रोध भी किया है तो अहंकार के कारण ही किया है। और तुमने अगर कभी लोभ भी किया है तो भी अहंकार के कारण ही किया है। तो भक्त तो सीधा जड़ पर चोट करता हैं। और भी साहस चाहिये। ज्ञानी तो शाखायें काटता है। धीरे-धीरे-धीरे काटते-काटते अब ऐसी घड़ी आती है, जब सारा वृक्ष कट जाता है, केवल जड़ें रह जाती हैं। तब अंततः जड़ों को काट देता है। ज्ञानी की प्रक्रिया तो बहुत क्रमिक है—— कदम-कदम। लेकिन भक्त की प्रक्रिया अक्रमिक है—— एक ही छलांग में। तो भक्त को तो साहस और भी चाहिये।

तो ऐसा तो भूलकर भी मत सोचना कि संकल्प के मार्ग पर साहस ठीक, लेकिन यह दरिया तो प्रेम की बात करते है, यह इतने जुझारू होने की बात कर हैं ? भक्त को मिटना है। इससे बड़ा और साहस क्या होगा ? भक्त को स्वयं को खोना है। इससे बड़ा और दुस्साहस क्या होगा ? इसलिए जो प्रतीक दरिया ने चुना है, ठीक है, प्यारा है। कि जैसे पतंगा दीपशिखा पर आकर मर जाता है, ऐसे ही भक्त सद्गुरु की शिखा पर आकर मर जाता है, मिट जाता है। सद्गुरु में मरकर ही परमात्मा में जन्म होता है।

दूसरा प्रश्न : क्या संप्रदाय से धर्म प्रवेश हो ही नहीं सकता ?

हो सकता है। जहां भी हो वहीं से धर्म प्रवेश हो सकता है। क्योंकि ऐसी तो कोई जगह ही नही है जहां से परमात्मा की तरफ जाने का मार्ग न हो। ऐसी अगर कोई जगह हो तो उसका अर्थ हुआ, ऐसी भी कोई जगह है जहां परमात्मा नहीं है। तो जहां भी तुम हो वहीं से मार्ग है। लेकिन संप्रदाय में अगर तुम हो तो मार्ग का अर्थ होगा, संप्रदाय को छोड़कर।

जैसे कोई कारागृह में बंद है, तो क्या कारागृह से छुटकारे का कोई उपाय नहीं है ? छुटकारे का उपाय है। कारागृह की दीवाल को फांदो और निकलो; कि कारागृह का दरवाजा तोड़ो; कि कारागृह के सींकचे काटो; कि कोई उपाय करो कि दीवाल तुम्हें बाधा न बने, दीवाल में सेंध लगाओ ताकि बाहर निकल जाओ। मार्ग तो कारागृह से भी है; खोजना पड़ेगा।

जिसे नहीं जाना है वह तो स्वतंत्र भी बैठा हो खुले आकाश के नीचे तो नहीं जायेगा। तो तो मार्ग वहां भी नहीं है। तुम खुले आकाश के नीचे बैठे हो, गंगा

सामने बहती है और तुम्हें पानी नहीं पीना है, या तुम्हें प्यास ही नहीं लगी है, तो तुम उठोगे भी नहीं। गंगा बहती रहे, बहती रहे। या तो तुम्हें प्यास नहीं है, या तुम सोचते हो प्यास इस पानी से बुझेगी नहीं। तुम किसी और पानी की तलाश में बैठे हो। तुम्हारी आंखें कहीं और भटक रही हैं तो जो खुला बैठा है, वह भी जरूरी नहीं कि परमात्मा में पहुंचे जाये। जो संप्रदाय के कारागृह में बंद है, वह भी बंद ही रह जाये। इस पर निर्भर करता है कि परमात्मा को पाने की कितनी प्रबल आकांक्षा है। तो कोई बंधन न रोकेगा। जंजीर भी नहीं रोकती। जिसको रुकना ही नहीं है उसे कोई भी नहीं रोकता। और जिसे रुकना है, कुछ भी रोक लेता है; कुछ भी छोटी-मोटी बात रोक लेती है।

कारागृह से भी लोग छूटते हैं। आखिर सभी लोगों का जन्म संप्रदाय में होता है। बुद्ध हिंदू घर में पैदा हुए, नानक हिंदू घर में पैदा हुए, दरिया मुसलमान घर में पैदा हुए, लेकिन छूट गये। खोज हो तो इस जगत में कोई चीज बांधती ही नहीं। खोजी को कभी किसीने नहीं बांधा है। खोज न हो तो जंजीरें न हों, तुम खुले आकाश के नीचे बैठे हो, मगर बैठे रहो, इससे कुछ यात्रा नहीं होगी।

संप्रदाय का अर्थ क्या होता है? संप्रदाय का अर्थ इतना ही होता है, सांप था कभी, निकला था कभी, अब सांप तो नहीं है, धूल पर लकीर रह गयी है। सांप गुजरा था कभी। कभी महावीर थे, अब जैन संप्रदाय है। सांप गुजरा था कभी इस राह से, रेत दर छूटा हुआ चिह्न रह गया है। बुद्ध गुजरे थे कभी, उनके चरणचिह्न रह गये हैं समय की रेत पर। उन्हीं चरणचिह्नों का नाम संप्रदाय है।

चरणचिह्नों में चरण तो नहीं है, ध्यान रखना, चिह्न ही हैं! तुम लाख इन्हें पूजो। अगर तुमने बुद्ध के जीवित पैर पकड़ लिये होते तो उनकी गति के साथ तुम्हारी गति भी जुड़ जाती। वे गत्यात्मक थे, प्रवाह थे, तुम उनके साथ बहे होते। लेकिन अगर तुमने चरणचिह्न पकड़ा तो चरणचिह्न कहीं भी नहीं जाता, वहीं के वहीं पड़ा रहेगा; सदा वहीं पड़ा रहेगा। चरणचिह्न में कोई गति नहीं है।

तुमने अगर बुद्ध को पकड़ा होता तो वे तुम्हें जगाते। तुमने अगर बुद्ध की मूर्ति पकड़ी तो वह तुम्हें कैसी जगायेगी? वह खुद ही जागी नहीं है। तुमने अगर कृष्ण के पास बैठने का सौभाग्य पाया होता, तो शायद उनके वे मधुर शब्द तुम्हारे जीवन को परमात्मा की खोज की अभीप्सा से भर देते। लेकिन गीता से यह बात न हो सकेगी। कोई जीवित आंखें चाहिये जो तुम्हारी आंखों में झांकें, और तुम्हें झकझोरें। कोई जीवंत शब्द चाहिये जो सिर्फ ओठों से न उठा हो, किताबों से न उठा हो। रंजी सास्तर ग्यान की—शास्त्र-ज्ञान की धूल से यह न हो सकेगा। यह तो कहीं कोई हृदय धड़कता हो शब्दों के पीछे, कहीं कोई शून्य विराजमान हो

शब्दों के पीछे, उसी शून्य से उठता हो शब्द और तुम्हारे अंतःस्तल में जाता हो, तो शायद तुम्हारे जीवन में रोमांच हो जाये, तो शायद तुम भी नाचने लगो; पैर में तुम्हारे भी घूंघर बंधें।

मीरा ने भजन गाये। निश्चित ही लता मंगेशकर उन्हीं भजनों को ज्यादा ढंग से गाती है, लेकिन लता मंगेशकर का भजन सुनकर तुम्हारे जीवन में भगवान का पदार्पण नहीं होगा। मीरा को शायद इतना ढंग-ढौल न भी आता हो, शायद संगीत की पूरी कला न भी आती हो, लेकिन जो मस्ती थी, जो जीवंतता थी, वह तो किसी गायक के स्वर में नहीं हो सकती। गायक के स्वर में संगीत होगा, छंद होगा, मात्रा होगी, संगीत के नियमों का अनुसरण होगा, पालन होगा, सब होगा, मगर कुछ बात चूकी-चूकी रह जायेगी।

जैसे लाश पड़ी हो, सजी-संवरी, गहने पहनाये हुए, सुंदर वस्त्रों में ढंकी, चेहरे पर भी पाऊडर लगाया हो, लालिमा लगायी हो, ओंठों पर लिपस्टिक हो और लाश पड़ी हो—ऐसा ही होगा गायक का गाना। लेकिन जीवंत नहीं। यह लाश उठ न सकेगी। यह लाश बोल न सकेगी। तुम पुकारोगे तो यह लाश जवाब न देगी। और इन गहनों और आभूषणों और इन वस्त्रों के भीतर सिर्फ सड़ रही है लाश, जल्दी ही बदबू उठेगी। मृत है।

संप्रदाय मरे हुए धर्म का नाम है। जैसे तुम अपनी मां को प्रेम करते हो लेकिन मां मर जाती है तो क्या करते हो? उसे घर में तो नहीं रख लेते। उसे मरघट ले जाते हो। रोते हो, छाती पीटते हो, विदा कर आते हो। ऐसा ही है संप्रदाय। जिस दिन धर्मगुरु जा चुके, जिस दिन जीवंत प्राण उड़ गये हों, ज्योति विलीन हो गयी हो और सिर्फ बुझा हुआ दिया रह जाये उस दिन उसकी पूजा करते जाना, लाश को घर में विराजमान कर लेना है। इसलिए संप्रदाय से मुक्ति नहीं होती।

और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि संप्रदाय का जो दिया है, उसमें कभी ज्योति नहीं थी, यह मैं नहीं कह रहा हूं। इसमें ज्योति कभी थी; नहीं तो तुम पूजते ही नहीं। दिये को भी नहीं पूजते। तुमने कभी किसी ने ज्योति देखी थी, उसीसे पूजा शुरू हुयी थी। फिर पूजा जारी है। ज्योति कब की बुझ गयी। जिन्होंने देखी थी वे भी हजारों साल हुए विदा हो गये। फिर उनके बेटों के बेटे, बेटों के बेटे, बेटों के बेटे, इस आशा में कि उनके पूर्वजों को ज्योति दिखी थी, होगी जरूर, अब भी बुझे दिये को पूजे चले जाते हैं। इस तरह वेद पुजता है, इस तरह कुरान पुजती है, इस तरह बाइबल पुजती है।

दरिया कहते हैं, रंजी सास्तर ग्यान की अंग रही लिपटाय।

यह सब धूल है, जो अंग से लिपटी है। खोजो किसी गुरु का झरना कि उसमें डुबकी ले लो, यह धूल बह जाये। खोजो किसी गुरु की संगति की उसके अधंड़ में तुम्हारी धूल उड़ जाये; कि तुम स्वच्छ हो जाओ। शास्त्र से स्वच्छ हो जाओ। शब्द से मुक्त हो जाओ। धारणा और सिद्धांतों का बोझ हट जाय तो तुम्हारा चित्त निर्मल हो। उसी निर्मल चित्त में परमात्मा की छबि बनती है।

लेकिन लाशों को पूजते-पूजते तुम खुद ही लाश हो गये हो। ऐसा हो जाता है। तुम जो पूजोगे वही हो जाओगे। इसलिए अपनी पूजा बहुत ध्यानपूर्वक चुनना। हर कुछ मत पूजने लगना। पत्थर पूजोगे, पत्थर हो जाओगे। तुम जो पूजोगे वही हो जाओगे। क्योंकि तुम पूज रहे हो उसका अर्थ ही यही है, कि तुम अपने से श्रेष्ठ वहां कुछ देख रहे। अगर लाश को पूजा तो तुम जीवन के भक्त नहीं हो, तुम मृत्यु के भक्त हो। तुम जल्दी ही मर जाओगे।

आप अपनी सरहदों में खो गया है आदमी
चीन की दीवार जैसा हो गया है आदमी
शीशियों में भर लिये हैं इसने कुछ चेहरों के घौल
जिससे हर पहचान अपनी धो गया है आदमी
सींपियों को विष की बूंदें, जुल्म को नैनों का नीर
कौन सा मोती कहां पर पो गया है आदमी
एक टुकडा छांव भी है हादसा जिसके लिये
धूप के पेबंद पहने सो गया है आदमी
रोज बनकर टूटता है गर्दिशों के चाक पर
वक्त के हाथों खिलौना हो गया है आदमी
जिस्म से मन को अलग रखकर गये सदियां हुई
आज तक लौटा नहीं है जो गया है आदमी
कौन सी इच्छा बनी थी मकबरा पहले पहल
मकबरों का सिलसिला सा हो गया है आदमी

कब्र जैसे हो गये हो, मकबरे जैसे हो गया हो। मकबारे पूजोगे, मकबरे हो जाओगे। कब्रों की पूजा से सावधान। संप्रदाय अतीत की पूजा है, बीत गये की — जो कभी था और अब नहीं है। संप्रदाय का अर्थ होता है, सत्य को समूह के द्वारा खोजा जा सकता है। और सत्य जब भी खोजा गया है तो व्यक्ति के द्वारा खोजा गया है, समूह के द्वारा नहीं।

सिंहों के नहीं लेहड़े — सिंह तो अकेले होते हैं। उनके लेहड़े नहीं होते। कबीर अकेले, नानक अकेले, दादू अकेले, दरिया अकेले। जब पाया तो अकेले में

पाया। जब भी किसी ने पाया है तो नितांत अकेलेपन में पाया है। जहां दूसरे की कोई छाया भी न पड़ती थी। महावीर ने पाया, बुद्ध ने पाया, क्राईस्ट ने पाया, महंमद ने पाया, अकेले में पाया।

महंमद पर जब पहली दफा कुरान उतरी तो पहाड़ पर अकेले थे, कोई भी न था। महावीर को जब अनुभव हुआ तो वे बारह साल तक मौन जंगल में खड़े रहे थे, चुपचाप। शब्द भी छोड़ दिये थे, बोलना भी छोड़ दिया था, क्योंकि बोलो तो दूसरा आ जाता है। दूसरे को इस तरह विर्सजित कर दिया था कि बोलेंगे ही नहीं तो दूसरा आयेगा कैसे? बुद्ध को जब मिला तो एकांत में अकेले बोधिवृक्ष के नीचे बैठे थे। कोई दूसरा न था। पांच संगी-साथी थे, वे भी छोड़कर चले गये थे।

यह कथा भी प्यारी है। प्रतीकातमक भी हो सकती है, क्योंकि ऐसे बुद्ध पुरुषों के पास जो भी कथायें बनती हैं, वे प्रतीकात्मक हो जाती हैं। ये पांचसंगी-साथी थे, जो सदा उनके साथ रहे थे। पांचों को साथ लेकर वे सत्य की खोज पर निकले थे। लेकिन जब बुद्ध ने देखा कि बहुत तपश्चर्या करके भी कुछ नहीं मिलता। सब तरह से शरीर को सुखा लिया और कुछ भी नहीं हुआ तो उन्होंने तपश्चर्या त्याग दी। संसार छोड़ दिया था एक दिन, फिर एक दिन तपश्चर्या भी छोड़ दी। जिस दिन तपश्चर्या छोड़ी, वे पांचों नाराज हो गये। उन्होंने कहा, यह गौतम तपश्चर्या करता था और अब कुछ भी ले लेता है। भिक्षा भी स्वीकार कर लेता है। अब पुरानी कठोरता न रही। वे छोड़कर चले गये। जिस दिन वे छोड़कर चले गये, उसी रात बुद्ध को ज्ञान हुआ।

यह पांच का प्रतीक पांच इंद्रियों का प्रतीक भी हो सकता है—होना चाहिये। यह पांच इंद्रियों को साथ लेकर जैसे बुद्ध खोज रहे थे, तब तक अड़चन रही। पहले इन पांच इंद्रियों के भोग में खोजते थे, फिर इन पांच इंद्रियों के त्याग में खोजते थे लेकिन यह पांच इंद्रियों का साथ बना रहा था। उस रात इन पांच का साथ छूट गया, अतींद्रिय हो गये, उसी रात घटना घट गयी।

मगर वे पांच शिष्य थे उनके। वे छोड़कर चले गये कि गौतम भ्रष्ट हो गया। जिस दिन वे छोड़कर गये उसी दिन घटना घट गयी। ऐसा भी हो सकता है, उन पांच की मौजूदगी बाधा बन रही थी। ऐसी ही मेरी प्रतीति है। उन पांच की मौजूदगी बाधा बन रही थी। भीड़-भाड़ थी। जमात हो गयी थी। बातचीत भी करते होंगे, विवाद भी करते होंगे। सन्नाटा नहीं था, शून्य नहीं था। समाधि बनना मुश्किल थी। जब भी सत्य अवतरित हुआ है तो नितांत एकांत में व्यक्ति की अंतरात्मा में अवतरित हुआ है।

संप्रदाय का अर्थ होता है, तुम सोच रहे हो कि भीड़-भाड़ में खड़े होने से सत्य मिल जायेगा। हिंदू होने से सत्य मिल जायेगा कि मुसलमान होने से सत्य मिल जायेगा। नहीं, न हिंदू होने से सत्य मिलता है, न मुसलमान होने से सत्य मिलता है; अकेले होने से सत्य मिलता है। हिंदू भी भीड़ है, मुसलमान भी भीड़ है। भीड़ तो राजनीति है। इसलिए संप्रदाय राजनीति है, धर्म कम। यह धर्म के नाम पर बड़ी सूक्ष्म राजनीति है।

अपना नन्हा चिराग जलाये बिना कोई चारा नहीं
कोई चारा नहीं कि जिस प्रकाश के भुलावे में
हमने अपने चिराग बुझा दिये
सारे शक-शुबह सायास सुला दिये
वह झूठा निकला
झूठा निकला यह विश्वास
कि सूरज सबको रास्ता दिखायेगा
मूर्ख होगा जो अपना अलग-अलग चिराग जलायेगा
क्या है जरूरत नन्हे नन्हे चिराग लिये अंधेरे में
टामक-टोये मारने की,
अलग-अलग रास्ता खोजने की,
जीतने की कोशिश में बार-बार हारने की ?
जब कि नये सूरज की किरणों में जगमगाता आसमान खुल गया है
अंधेरा हमेशा-हमेशा के लिये धुल गया है
कोटि-कोटि जन बढ़े जा रहे हैं
जयकारे बुलाते
और नारे लगाते
और अपने नन्हे चिराग सहर्ष बुझाते
झूठा निकला वह विश्वास
जनपथ बियाबान में खो गया
और प्रकाश अंधेरे की चादर ओढ़कर सो गया
अपना नन्हा चिराग जलाये बिना कोई चारा नहीं

रोशनी सामूहिक नहीं है। सत्य का सूरज नहीं है। सत्य का तो छोटासा चिराग जलता है तुम्हारी अंतरात्मा में, तुम्हारे एकांत में, तुम्हारे निबिड़ शांति में। छोटे-छोटे चिराग ही जलाने होते हैं सत्य के। समाधि के दिये होते हैं, सूरज नहीं।

यहां तुम इतने लोग हो, अगर तुम सभी भी ध्यान करने बैठ जाओ तो जैसे ही ध्यान घटेगा, तुम अकेले रह जाओगे, बाकी सब लोग भूल जायेंगे। साथ भला बैठे हो, देह ही साथ होती है। जैसे ही तुम भीतर गये, अकेले हो जाते हो। भीतर तो एकदम अकेलापन है। वहां तुम किसी दूसरे को ले भी न जा सकोगे। चाहो तो भी न ले जा सकोगे। अपने प्रीतम को भी बुलाना चाहो तो न बुला सकोगे। वहां दूसरे के पहुंचने की संभावना ही नहीं है। वहां बस तुम ही विराजमान हो।

उस परमसत्ता को खोज लेना है जहां तुम ही विराजमान हो। उसीको ज्ञानी आत्मा कहते हैं, भक्त परमात्मा कहते हैं। वह तुम्हारा ही निज स्वरूप है. लेकिन उसे पाने के लिये भीड़-भाड़ तो छोड़नी होगी। भीड़-भाड़ से तो बचना होगा। भीड़-भाड़ के उपयोग हैं। और उपयोग हैं, धार्मिक कोई उपयोग नहीं है भीड़-भाड़ का। राजनैतिक उपयोग है; अगर बड़ी भीड़ के हिस्सेदार हो तो तुम ताकदवार हो। अगर छोटी भीड़ के हिस्सेदार हो तो ताकत कम हो गयी। तो ये ताकत की बातें हैं। लेकिन अगर तुम अकेले हो तो धार्मिक हो गये।

और एक बार तुम उस अकेलेपन को जान लो, एक बार तुम्हारा नन्हा सा चिराग जल जाये, तो फिर तुम भीड़ों में रहो, बाजारों में रहो, कोई फर्क नहीं पड़ता। जिसका चिराग जला है उसके लिये बाजार कहीं है ही नहीं। उसके लिये सभी जगह परमात्मा का वास है। उसके लिये सभी जगह हिमालय फैल गया है। उसके लिये सभी जगह सन्नाटा है। और जिसकी अपनी रोशनी जली है उसे कहीं भी अंधेरा नहीं है। तुमने देखा न! छोटासा दिया हाथ में लेकर तुम चलो तो तुम जहां जाओ, तुम्हें रोशनी घेरे रहती है। तुम्हारा छोटासा दिया पर्याप्त है। कम से कम कुछ कदमों तक, चार-छह कदमों तक रोशनी तुम्हें घेरे रहती है। रोशनी का एक वर्तुल तुम्हारे साथ चलता है। जिसके भीतर का दिया जल रहा है उसके लिये अंधेरा है ही नहीं। वह जहां भी जायेगा वहीं रोशनी है। बाजार में बैठे तो बाजार में रोशनी है। पहाड़ पर बैठे तो पहाड़ पर रोशनी है। परिवार में रहे तो परिवार में रोशनी है। परिव्राजक हो जाये तो परिव्राजक होने में रोशनी है। असली बात भीतर की रोशनी का जल जाना है। लेकिन यह संप्रदाय से नहीं होता है, इसके लिये तो तुम्हें स्वयं ही चेष्टा करनी होगी।

दुनिया में धर्म के नाम पर संप्रदाय खोटे सिक्के की भांति हैं, झूठे सिक्के की भांति है। यह प्रलोभन दे देता है। यह कहता है देखो, सम्मिलित हो जाओ। इस संप्रदाय में सम्मिलित हो जाओ, या उस संप्रदाय में सम्मिलित हो जाओ। और पा लोगे, जो तुम्हें पाना है। लेकिन कभी किसीने पाया? जीसस पैदा हुए थे यहूदी घर में लेकिन यहूदी संप्रदाय में नहीं मिला। खोजना पड़ा एकांत में। आज

तक दुनिया में जितने लोगों ने पाया है, सब ने एकांत मे पाया ।

और सबके साथ यह दुर्भाग्य घटता है कि जब उनको मिल जाता है तो उनके दिये की रोशनी देखकर हजारों लोग दौड़े आते हैं, पतंगे आते हैं । पतंगे मरते हैं उनकी ज्योति में आकर; उनकी ज्योति में लीन होते हैं । फिर समय रहते उनकी ज्योति बुझ जाती है । इस जगत में कोई भी चीज शाश्वात नहीं है । सद्गुरू भी घटते हैं और विदा हो जाते हैं । घड़ी भर को द्वार खुलता है, फिर बंद हो जाता है । लेकिन लोगों को पता नहीं चलता ।

लोग तो पुरानी लकीर के फकीर । सुनते हैं कि उनके बाप-दादा फलां दिये पर गिरकर और निर्वाण को पा गये थे तो वे भी उसी दिये पर गिरते जाते हैं और यह भी नहीं देखते हैं कि दिया अब जल नहीं रहा है । पतंगा पतंगा बना रहता है। दिये पर गिरता जाता है, सिर पटक लेता है । बल्कि और भी प्रसन्न होता है कि यह अच्छो रही । मरने से भी बचे और दिये पर गिरने का साहस दिखाने का भी मजा ले लिया । असली दियों से बचता है । जहां ज्योति जल रही है अब, वहां नहीं जाता । वह कहता है, हमारा अपना ही दिया है, हम उसी पर गिरते हैं । हमारा अपना मंदिर है, अपना गुरूद्वारा है, अपनी मस्जिद है, हम वहीं जाते हैं । हम क्यों जायें दूसरी जगह ? मगर तुम यह तो देखो कि जिस मंदिर से तुम लौट आते हो वह मंदिर न होगा । जो मस्जिद तुम्हें मिटाती नहीं वह मस्जिद नहीं है अब । जिस गुरुद्वारे से तुम वैसे के वैसे लौट आते हो जैसें गये थे, वह गुरूद्वारा कहां रहा ? वह गुरू का द्वार अब कहां रहा ? जब गुरू नहीं रहा तो गुरू का द्वार कहां रह जायेगा ? गुरूद्वारे से तो जो गया सो गया; फिर लौटे कैसे ? असली दिये पर गिरोगे तो गये ।

तो इस संप्रदाय के नाम पर एक झूठ प्रक्रिया चलनी शुरू होती है । एक थोथा जाल फैलता है । अगर कभी कोई लोग इस संप्रदाय के नाम पर किसी तरह ठोक-पीट कर अपने को थोड़ा शांत भी कर लेते हैं, तो भी वह शांति मुर्दे की शांति होती है, जीवित आदमी की शांति नहीं । शांति शांति में फर्क है, ध्यान रखना । एक मरघट की भी शांति होती है । एक शांत बैठे आदमी की शांति होती है और एक मुर्दा लाश की भी शांति होती है । ऊपर से देखने में दोनों शांतियां मालूम पड़ती हैं । तुम अपने कमरे में मर गये तो भी सन्नाटा हो जाता है, और तुम अपने कमरे में समाधि में चले गये तो भी सन्नाटा हो जाता है । लेकिन क्या हे दोनो समाधियां, हे दोनों शांतियां एक जैसी हैं ? ये सन्नाटे एक जैसे हैं ? लाश का सन्नाटा और समाधिस्थ व्यक्ति के सन्नाटे में कुछ फर्क करोगे ? समाधिस्थ व्यक्ति का सन्नाटा जीवंत है, परम ऊर्जा से आंदोलित है । मुर्दों का सन्नाटा सिर्फ

सन्नाटा है; सिर्फ शोरगुल का अभाव है, नकारात्मक है । उसमें कुछ विधायकता नहीं है ।

ऐसी आग भी होती है जो औरों को नहीं जलाती है
पर अपनी परिधि में रुकी
अपनी मर्यादा में बंधी दिप्–दिप् जलती है
हमें राख की शांति नहीं चाहिये
ऐसी आग भी होती है जो चिटकती नहीं
शोर नहीं मचाती
अपनी गरिमा से पुष्ट
अपनी शक्ति से संतुष्ट
अनवरत शांत मगन दहकती है
हमें राख की शांति नहीं चाहिये

शांति चाहो ऐसी आग की, जो दिप्–दिप् जलती है । ऐसी आग की, जो अपने में संतुष्ट, परितुष्ट, अनवरत शांत और मगन दहकती है । आग की शांति चाहो, राख कीं नहीं । राख की भी शांति होती है—मुर्दा, ठंडी; जहां जीवन जा चुका । हां, कभी वहां भी आग थी ।

संप्रदाय राख है । कभी वहां आग थी, कभी अंगारे थे, अब नहीं हैं । धर्म की खोज में व्यक्ति को हमेशा अंगारे खोजने पड़ते हैं; और यही अड़चन है । क्योंकि राख में तो तुम पैदा होते हो, अंगारा तुम्हें खोजना पड़ता है । हिंदू घर में पैदा हुए इसके लिये तुम्हें कुछ करना तो नहीं पड़ा । यह तो संयोग की बात थी। कि जैन घर में पैदा हुए, संयोग की बात थी । बचपन से सक संप्रदाय तुम्हें मिल गया । बचपन से एक संप्रदाय का संस्कार पड़ गया । लेकिन अगर तुम्हें सद्गुरू खोजना है तो खोजना पड़ेगा । सद्गुरू जन्म से नहीं मिलते । सद्गुरू के लिए तो आंखें खोलकर भटकना पड़ता है, यात्रा करनी पड़ती है । सद्गुरु तीर्थयात्रा से मिलते हैं । खतरा उठाना पड़ता है, जोखम लेनी पड़ती है । क्योंकि कौन जाने, जिसको तुमने सद्गुरू माना, है भी या नहीं ! तो जुआरी बनना पड़ता है । दांव लगाना पडता है । चूक भी हो सकती है ।

संप्रदाय में भूल-चूक नहीं होती । बाप-दादों से चला आता है, उधार है । तुम्हें मिल जाता है मुफ्त––वसीयत की तरह; खुद नहीं कमाना होता । इस फर्क को समझ लेना । संप्रदाय मुफ्त मिलता है वसीयत की तरह । धर्म कमाना पड़ता, धर्म खोजना पड़ता है, धर्म पर दांव लगाना होता है, इसलिए थोड़े से ही लोग धार्मिक हो पाते हैं ।

अब जिन्होंने नानक को चुना--जिंदा नानक को, उनकी बात और थी। अब जो सिक्ख हैं उनकी बात और है। जिन्होंने नानक को चुना था--जिंदा नानक को, उन्होंने बड़ी अड़चन से चुना था; बड़ी मुश्किल से चुना था। क्योंकि कोई हिंदू घर में पैदा हुआ होगा। नानक का तो घर ही नहीं था तब तक। कोई मुसलमान घर में पैदा हुआ था, कोई जैन घर में पैदा हुआ था कोई गोरखपंथी था, कोई और था, कोई और था, हजार संप्रदाय थे, उनमें लोग पैदा हुए थे। फिर नानक की ज्योति जली, यह अंगारा प्रगटा। इस अंगारे के गीत जन्मे। तब तो जिन्होंने चुना, बड़े हिमतवर लोग रहे होंगे। बहुत नहीं हो सकते, बिरले हो सकते हैं। इसलिए तो दरिया कहते हैं, पूरी फौज में कोई एकाध सूरमा होता है। फौज की फौज वीरों की नहीं होती, कोई एकाध वीर पुरुष होता है।

तो थोड़े से लोगों ने नानक का गीत सुना। थोड़े से लोगों ने पहचान बताई। थोड़े से लोगों ने हिंमत की, अपने अतीत को दांव पर लगाया। अतीत सुरक्षित था। गीता दांव पर लगा दी इस आदमी के प्रेम में, इस आदमी के मोह में। कहा कि छोड़ते हैं गीता। क्योंकि कृष्ण ठीक थे या नहीं यह सवाल नहीं है। गीता में अब कृष्ण कहां? राख बची है। महावीर को छोड़ दिया, बुद्ध को छोड़ दिया, मोहम्मद को छोड़ दिया. इस आदमी के साथ सगाई कर ली। इस आदमी के साथ विवाह रचा लिया। यह खतरे का काम था। क्योंकि गीता की पुरानी साथ थी--हजारों साल पुरानी। यह आदमी तो अभी-अभी हुआ। पता नहीं ठीक भी हो कि न हो। इसके पीछे कोई पुरानी साख तो नहीं है। बाजार में इसकी कोई साख तो नहीं है। इसको कोई जानता तो है नहीं अभी। इस अनजान के साथ प्रेम बांध लिया। हिंमतवर लोग थे। उनको अगर नानक ने शिष्य कहा--सिक्ख उसीसे बना—तो ठीक कहा; वे शिष्य थे। जो गुरू खोजता है, वह शिष्य है।

लेकिन अब जो सिक्ख हैं वे सिक्ख नहीं हैं। अब उन्होंने गुरू थोड़े ही खोजा। अब तो वे सिक्ख घर में पैदा हुए। अब तो उनको गुरू खोजना पड़े तो फिर झंझट होगी अब तो उन्हें नानक को छोड़कर गुरू खोजना पड़ेगा, यह झंझट होगी। और तुम्हें यह हैरानी होगी बात जानकर कि जो नानक को छोड़कर गुरू खोजेंगे वही सिक्ख हैं। क्योंकि सिक्ख का अर्थ ही यह होता है कि जो गुरू को खोजे। जीवित गुरू को खोजे। अब तो जो असली सिक्ख है, वह सिक्ख संप्रदाय के बाहर हो जायेगा। जो असली जैन है वह हिंदू संप्रदाय के बाहर हो जाहेगा। क्योंकि संप्रदाय में कहां असली? वह असली को खोजेगा। असली तो सदा किसी जीवित गुरू के प्राणों में होता है। मगर नुकसान तो उसे उठाने पड़ते हैं।

किसी संप्रदाय को छोड़ना इतना आसान तो नहीं। फिर संप्रदाय के साथ

बहुत से न्यस्त स्वार्थ हैं, औपचारिकतायें हैं, व्यवस्थायें हैं, सुरक्षायें, सुविधायें हैं। फिर संप्रदाय इसे क्षमा भी नहीं करता। संप्रदाय इसका ठीक से बदला लेता है। जब तुम किसी संप्रदाय को छोड़ते हो तो तुम संप्रदाय के अहंकार को चोट पहुंचाते हो कि तुमने समझा क्या? तुम अपने को अकलमंद समझ रहे हो? हम सब गलत हैं? हम हजारों साल से मान रहे हैं और गलत हैं? और तुम एक अकेले समझदार हो गये हो? तो सारा संप्रदाय तुम्हारे खिलाफ खड़ा हो जाता है। भीड़ उनकी है, वह तुम्हें अड़चन देती है। यह अड़चन सत्य के मार्ग पर साहसी आदमी को उठानी ही पड़ती है। इसलिए दरिया ठीक ही कहते हैं कि कुछ सूरमा ही होते ह, जो धर्म के मार्ग पर जाते हैं।

धर्मगुरु सदगुरु नहीं है, धर्मगुरु सद्गुरु का धोखा है। पंडित है, पुरोहित है, मौलवी है, वे धोखे हैं। उनके भीतर की आग जलती हुई नहीं है। उन्हें खुद भी कुछ पता नहीं है। वे उतने ही अज्ञान में हैं जितने तुम। कभी-कभी तो ऐसा होता है, तुमसे भी ज्यादा अज्ञान हैं। क्योंकि तुम्हें कम से कम इतनी समझ है कि मुझे कुछ पता नहीं है, उनको यह खयाल है कि उन्हें सब पता है और पता कुछ भी नहीं। उनकी हालत तुम से बदतर है।

फिर धर्म के साथ उनका संबंध क्या है? धर्म के साथ उनका कोई संबंध नहीं है। धर्म के पाखंड के साथ उनका संबंध है क्योंकि उससे लाभ है; उससे व्यवसाय है। धर्मगुरु धर्म का व्यवसाय कर रहा है।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन के पास एक आदमी आया, बड़ा डरा हुआ था। मुल्ला मौलवी! उसने कहा कि मुल्ला, बचाओ। बड़ी भूल हो गयी। आज सात दिन से सोया भी नहीं। एक बकरा चुरा लिया किसीका, और मित्रों ने मिलकर खा-पी भी गये। अब मुझे यह पाप कचोटता है, कि मित्रों ने खाने-पीने में तो हाथ बटाया लेकिन फसूंगा तो मैं ही आखिर में। निर्णय के दिन, कयामत के दिन पुकारा तो मैं जाऊंगा। चुराया तो मैंने था बकरा। खा तो ये सब गये। मुझे थोड़ा बहुत मिला है, इसमें ठीक है; मगर ये तो खा-पीकर विदा हो गये, फंस मैं गया। चोरी मैंने की थी। मुल्ला, मुझे कुछ रास्ता बताओ कि मैं निकल आऊं।

मुल्ला तो बहुत चिल्लाया, नाराज हुआ एकदम। उसने पूरा का पूरा नरक का दृश्य खड़ा कर दिया, कि दोजख में सड़ोगे, जलाये जाओगे कडाहों में, कीड़े-मकोड़े काटेंगे, जन्मों-जन्मों तक दुख पाओगे। खूब डराया उस आदमी को। वह बहुत घबड़ा गया। उसने कहा कि मुल्ला, अब और मत घबड़ाओ। मैं वैसे ही सात दिन से सोया नहीं, तुम तो ऐसी हालत किये दे रहे हो। मैं क्या करूं, यह बताओ। मुल्ला ने कहा, कुछ करना है अगर तो केवल बातचीत से न होगा, कुछ नगद प्रमाण

चाहिये।

नगद प्रमाण ? उस आदमी ने कहा, तुम्हारा मतलब क्या है ?

मुल्ला ने कहा, नगद नहीं समझते ?

उसकी अकल में आया, उसने पांच रुपये का नोट निकालकर मुल्ला को दिया कि लो। मुल्ला ने उसे खीसे में रखा और कहा घबड़ाओ मत, हर झंझट के बाहर मार्ग है, लेकिन तुम समय पर आ गये। कयामत में बुलाये तो जाओगे। ईश्वर पूछेगा कि बकरा क्यों चुराया ? तो तुम साफ मुकर जाना। तुम कहना चुराया ही नहीं। वह आदमी बोला, साफ मुकर जाना ? मुल्ला ने कहा, कोई गवाह है ? कहा, गवाह कहां ? किसीने देखा तुम्हें चुराते ? उस आदमी ने कहा, किसी ने नहीं देखा। मुल्ला ने कहा, फिर बेफिकर रहो। जब कोई गवाह ही नहीं है तो कोई छोटी-मोटी अदालत भी कुछ नहीं कर सकती। तो उसकी तो बड़ी अदालत है। गवाह तो पूछेगा ही कि कोई गवाह है, जिसने देखा ?

वह आदमी बोला, बात तो ठीक है, लेकिन परमात्मा तो सभी विराट शक्तिमान है, उसके लिये क्या कमी है ? वह चाहे तो बकरे को ही बुला सकता है कि यह बकरा खड़ा है। बकरे ने तो देखा। मुल्ला ने कहा, यह अड़चन आ गयी। नगद प्रमाण फिर से दो। तो उस आदमी ने फिर पांच रुपये का नोट निकाला। वह खीसे में रखकर मुल्ला ने कहा, देखो ऐसा है, अगर वह बकरे को बुलाये सामने तो जल्दी से बकरे को पकड़कर उस आदमी को दे देना, जिसका चुराया है। कहना झंझट मिटी। बात ही खतम हो गयी। लेना देना पूरा। अब कैसा मामला ! वह आदमी भी खुश हुआ, मुल्ला भी प्रसन्न है। उस आदमी को भी बात जंच गयी कि यह बात ठीक है।

जिसको तुम धर्मगुरु कहते हो वह व्यवसाय कर रहा है। उसकी रोटी-रोजी है। उसे तुमसे कुछ मतलब नहीं है, न तुम्हारे भविष्य से कुछ प्रयोजन है। उसे अपने ही भविष्य का पता नहीं है, तुम्हारे भविष्य का क्या प्रयोजन होगा ? लेकिन व्यवसाय है, संप्रदाय है। जल्दी ही पंडित-पुरोहितों का व्यवसाय बन जाता है।

स्वभावतः पंडित–पुरोहित सदा ही सद्गुरु के विरोध में खड़े रहते हैं––खड़े ही रहेंगे। क्योंकि जब भी सद्गुरु पैदा होगा, जब भी किसी व्यक्ति में फिर से अंगारा जलेगा, तो वे सब घबड़ा जायेंगे, जो राख का धंधा कर रहे हैं। उसको भभूत कहो, विभूति कहो, जो भी कहना हो कहो, लेकिन जो भी राख का धंधा कर रहे हैं वे सब घबड़ा जायेंगे। वे सब एकजूट विरोध में हो जायेंगे। वे कहेंगे यह अंगारा खतरनाक है। जाना मत, जलोगे। मुश्किल में पड़ोगे। यह राख अच्छी है, ठंडी है, शीतल है फिर बाप-दादे भी यही पूजते रहे हैं, तुम भी यही पूजो। अपने

बाप-दादों को मत छोड़ो। अपनी निष्ठा मत गंवाओ। भटक मत जाना। यह मार्ग सुनिश्चित है, इस पर अनेक लोग गये हैं। यह नये मार्ग के झंझट में मत पड़ो। क्या पता कोई जाता हो, न जाता हो। नयी बातें खतरनाक हो सकती हैं। पुरानी जांची-परखी गई बातों में ही रहो।

तुम पूछते हो, "क्या संप्रदाय से धर्म–प्रवेश हो ही नहीं सकता ?"

हो सकता है, संप्रदाय के बाहर आना उपाय है। संप्रदाय को भी सीढ़ी बना लो। उस पर चढ़ जाओ, उससे पार निकल आओ। और तुम संप्रदाय के भीतर बंधकर जिसे खोज रहे थे उसे तुम संप्रदाय के बाहर रहकर किसी दिन पा लोगे। जिस दिन तुम पा लोगे उस दिन तुम जान लोगे––अगर तुम हिंदू थे तो तुम जान लोगे कि अब मैं हिंदू हुआ। अगर मुसलमान थे तो पाओगे कि अब मैं मुसलमान हुआ। अगर जैन थे तो पाओगे, अब मैं जैन हुआ। लेकिन जैन रहते कोई जैन-नहीं होता न हिंदू रहते कोई हिंदू होता है। यह विरोधाभास है। छूटकर संप्रदाय से व्यक्ति धार्मिक बनता है। क्षुद्र शब्दों और शास्त्रों की सीमाओं से उठकर सत्य का खुला आकाश उपलब्ध होता है।

तीसरा प्रश्न : आप कहते हैं कि सुख का समय अनंत है और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि दुख का समय अनंत है। कृपा करके समझायें अनंत के प्रति यह दो विपरीत दृष्टिकोण किस कारण हैं।

नहीं, जरा भी विरोध नहीं है। जब सुख घटता है, जब घट रहा होता है, तो क्षणिक मालूम होता है। जब सुख घट रहा होता है उसी समय अगर देखोगे तो सुख क्षणिक मालूम होगा। क्यों ? क्योंकि मन चाहता है, सुख सदा घटता रहे इसलिए कितना ही घटे, लगता है कम घटा।

प्रियजन से मिलना हो गया, रात ऐसे बीत जाती है बात में, गपशप में, कब सुबह हो गई, पता नहीं चलता। ऐसा लगता है कि घड़ी बड़ी तेजी से चल गई। कांटों ने बड़ा धोखा किया, जल्दी-जल्दी घूम गये। कांटे तो अपने ही तरह से घूम रहे हैं, समय तो अपने ही गति से जा रहा है। कोई फर्क तुम्हारे लिये नहीं किया है। तुम्हारे मन में फर्क हो गया है क्योंकि इस मित्र को पाकर तुम्हें जो रस आ रहा है उसे तुम चाहते हो सदा आता रहे, आता ही रहे। तुम्हारी मांग इतनी बड़ी है, उस मांग की तुलना में जो सुख मिल रहा है वह इतना छोटा मालूम पड़ता है कि यह गया . . . यह गया . . . । अभी आया मित्र, अभी जाने की घड़ी आ गई। अभी सुख आया था, उपजा था, यह चला।

तो जब सुख बीत रहा होता है, जब तुम सुख की घड़ी में होते हो तब ऐसा

लगता है बड़ी जल्दी जा रहा है, क्षणभंगुर है।

ठीक इससे विपरीत दशा दुख की होती है। जब तुम दुख की घड़ी में होते हो तो लगता है, घड़ी चल ही नहीं रही। अटका है कांटा। घूमता ही नहीं कांटा।

तुम्हारा प्रियजन मर रहा है, मृत्युशैया पर पड़ा है, तुम किनारे बैठे हो खाट के उसके, रात ऐसी लगती है कि बीतेगी ही नहीं। लगता है कि लम्बी होती जा रही है। क्या मामला क्या है? क्या कयामत की रात आ गई? आखिरी रात आ गई? आज सुबह होती नहीं दिखाई पड़ती। आज सुबह होगी या नहीं होगी? अब सूरज निकलेगा कि नहीं निकलेगा? कारण क्या है? कोई फर्क नहीं पड़ा। घड़ी अपने ढंग से चल रही है। सुबह भी होगी। चाल समय की वही है जो थी लेकिन तुम्हारा मन आज बड़ा दुख में भरा है। तुम चाहते हो जल्दी यह रात कट जाये। जल्दी कट जाये। सुख में तुम चाहते हो, कहीं जल्दी न कट जाये। दुख में तुम चाहते हो, जल्दी कट जाये। अब कट ही जाये। किसी तरह सुबह हो जाये, किसी तरह सूरज निकल आये।

जब तुम दुख में होते हो तो तुम जल्दी पार होना चाहते हो। तुम्हारी जल्दी के कारण देरी मालूम पड़ती है कि दुख की घड़ी बड़ी धीरे-धीरे जा रही है। जा ही नहीं रही, चल ही नहीं रही। समय ठहर गया है। सुख में तुम चाहते हो समय ठहर जाये, सो समय भागता मालूम पड़ता है। यह तुम्हारे ही मन की कल्पना के कारण होता है। समय तो वैसा ही चलता है, जैसा चलता है। न सुख की फिकिर है न दुख की फिकिर है।

तो यह पहली बात। फिर जब तुम पीछे लौटकर देखते हो सुख की घड़ी को या दुख की घड़ी को, तो फिर एक फर्क हो जाता है। जब तुम पीछे लौटकर देखते हो सुख की कोई घड़ी....रात जिस दिन, जब कोई प्रियजन आ गया था और तुम गीत गाते रहे थे, और साथ बैठकर चांद निहारते रहे थे, नाचे थे साथ-साथ, मगन हुए थे, एक दूसरे में डुबकी ली थी, जब तुम पीछे लौटकर देखते हो तो वह सुख बड़ा लंबा मालूम पड़ेगा। जब तुम सुख में गुजरे थे तो बड़ा छोटा मालूम पड़ता था। जब तुम लौटकर देखोगे तो सुख बहुत लंबा मालूम पड़ेगा। और जब तुम दुख को लौटकर देखोगे तो दुख छोटा मालूम पड़ेगा। जब दुख में से गुजरे थे तो बड़ा लंबा मालूम पड़ता था।

क्यों? क्योंकि हम कल्पना में भी दुख को बड़ा नहीं करना चाहते। हम कल्पना में तक दुख को छोटा करना चाहते हैं। असलियत में तो कर नहीं सकते, कल्पना में तो कर सकते हैं। असली दुख जब सामने खड़ा है तब तो वह गुजरेगा

तब गुजरेगा। जितना समय लेगा, लेगा। हम चाहते हैं जल्दी गुजर जाये, तो लगता है, धीरे गुजर रहा है। हमारी अपेक्षा अड़चन डाल देती है। लेकिन जब तुम लौटकर देखते हो तब तो तुम मालिक हो गये। अब तुम चाहो जितने जल्दी कैलेन्डर को फाड़ दो। एक क्षण में दिन बीत जाये। एक क्षण में रात बीत जाये एक क्षण में वर्ष बीत जाये। अब तुम्हारे हाथ में है। तो तुम दुख को छोटा कर लेते हो। तुम सदा से छोटा करना चाहते थे। असलियत में तो न कर सके थे, स्मृति में कम कर लेते हो।

इसलिए लोग स्मृति में दुख की बातों को भूल जाते हैं। खूब दुख घटे है जिंदगी में लेकिन उनको भूल जाते हैं। और सुख को कभी नहीं भूलते हैं। सुख को खूब याद रखते हैं, संजोकर रखते हैं। उसकी तिजोड़ी बना लेते हैं। और सुख को खूब लंबा-लंबा कर देखते हैं। वह तुम्हारी कल्पना की बात, जैसा तुम्हें देखना हो। इसलिए लोग पीछे लौट-लौटकर देखते हैं और कहते हैं, कैसे अच्छे दिन थे वे पुराने दिन। अब बीत गये। बचपन कैसा प्यारा था। इसी मनोवैज्ञानिक आधार पर सारी दुनिया में यह एक प्रवृत्ति है कि अतीत में स्वर्ण-युग था, सतयुग था, वह बीत गया। कैसे प्यारे दिन! कैसे आनंद के दिन! वे सब चले गये।

वर्तमान सदा दुख मालूम होता है और अतीत सुख मालूम पड़ता है। क्योंकि अतीत से तुमने दुख तो अलग कर दिये, छांट दिये। स्मृति तो तुम्हारी है, तुम जो चाहो करो। पन्ने फाड़ दिये तुमनें स्मृति के किताब से जो दुख के थे, या उनको संक्षिप्त कर दिया, या बिलकुल छोटा कर दिया, फूट नोट रह गये। और सुख के जो पन्ने थे उनको खूब बड़े कर दिये। उनके अध्याय के अध्याय बना दिये। फूटनोट जो थे, अध्याय बन गये। अध्याय जो थे, फूटनोट हो गये। यह फिर तुम मालिक हो पीछे। फिर तुम्हारे हाथ में है। तुम अस्तित्व को तो नहीं बदल सकते लेकिन स्मृति को बदल सकते हो। और हम सब स्मृति को बदलते रहते हैं।

तो ये दो बातें हैं। जब सुख बीतता है, क्षणभंगुर मालूम पड़ता है। और जब बीत जाये तो तुम लौटकर याद करते हो तो हालत बिलकुल उल्टी हो जाती है। सुख खूब लंबा मालूम पड़ता है, दुख छोटासा मालूम पड़ता है।

लेकिन ये दोनों ही स्थितियां अज्ञान की हैं। ज्ञानी को सुख-दुख दोनों बराबर मालूम पड़ते है; न कोई लंबा, न कोई छोटा। क्योंकि ज्ञानी की कोई अपेक्षा नहीं है। उसकी कोई मांग नहीं है। वह कहता नहीं कि यह रात बड़ी हो जाये, यह रात छोटी हो जाये। वह कहता है जैसी है, उससे वह राजी है। उसके मन में तथा ता का भाव है। सर्व स्वीकार है। कांटा गड़े तो स्वीकार है। फूल की गंध नासा पुटों में भर जाये तो स्वीकार है। सुख बरसे तो ठीक, दुख बरसे तो ठीक। वह हर

हालत में राजी है। चूंकि हर हालत में राजी है इसलिए दुख भी उतना ही मालूम होता है, जितना है। और सुख भी उतना ही मालूम होता है, जितना है।

और एक बड़ी चमत्कार की बात घटती है। तब आदमी को पहली दफा पता चलता है कि जिंदगी में पचास-पचास प्रतिशत है दोनों। उतना ही दुख है, उतना ही सुख है। आधा-आधा है। संतुलन है। अज्ञानी को यह कभी पता नहीं चलता कि दोनों बराबर हैं। अज्ञानी कहता है कि जब बीत रहा है तब दुख बहुत ज्यादा है, सुख बहुत कम। और जब बीत जाता है तो सुख बहुत ज्यादा हो जाता है, दुख बहुत कम। अज्ञान के तराजू के पलड़े कभी समतुल नहीं होते। एक पलड़ा ऊपर और एक नीचे लगा रहता है। ज्ञानी के पलड़े समतुल हो जाते हैं। ज्ञानी की कोई अपेक्षा नहीं है। वह यह नहीं कहता, ऐसा हो। वह कहता है जैसा है, वैसा है। इसमें होने की कोई बात ही नहीं है।

जब कोई ऐसा स्थिरमति हो जाता है, स्थितप्रज्ञ हो जाता है, ऐसा शांत समचित हो जाता है, सम्यक्त्व को उपलब्ध हो जाता है, जब देखता है जैसा है वैसा है, तो अचानक एक अपूर्व घटना घटती है—दुख और सुख दोनों बराबर हैं। अब यह बहुत हैरानी की बात है। इसे तुम्हें समझने में अड़चन होगी।

इसलिए जैसे सुख बढ़ता है वैसे दुख भी बढ़ जाता है। अमीर आदमी ज्यादा दुखी होता है बजाय गरीब आदमी के। संपन्न देश ज्यादा दुखी होते हैं बजाय विपन्न देशों के। आज अमरीका में जैसा दुख है वैसा भारत में नहीं है; हो नहीं सकता। कारण? कारण एक बहुत बहुमूल्य नियम है। जैसे सुख बढ़ता है वैसे दुख बढ़ जाता है, क्योंकि दोनों सदा अनुपात में होते हैं। एक तरफ सुख बढ़ा, दूसरी तरफ दुख बढ़ा। ऐसा ही समझो कि जितना ऊंचा पहाड़ होगा उतनी ही गहरी खाई होगी न उसके पास! पहाड़ बड़ा होने लगा तो खाई बड़ी होने लगी। अब हम एक उपद्रव की आकांक्षा करते रहते हैं सदा, कि खाई तो बिलकुल न हो, पहाड़ खूब ऊंचा हो। यह हो नहीं सकता। अगर खाई नहीं चाहिये तो पहाड़ को भी मिटा देना होगा; तब समतल हो जायेगा।

दुनिया में आदमी सुख बढ़ाने के उपाय करता है और साथ ही साथ दुख बढ़ता जाता है, दुख बढ़ेगा। इससे तुम्हें एक बात समझ में आ जायेगी, समस्त महाज्ञानियों ने यह कहा है कि दुख को घटाने की फिकर मत करो, सुख को बढ़ाने की फिकर मत करो। सुख और दुख को स्वीकार कर लो। तुम घटाने-बढ़ाने की बात छोड़ दो। तुमने सुख बढ़ाया तो दुख भी बढ़ जायेगा, इधर तिजोरी में रुपये बढ़ेंगे, वहां शरीर में बीमारियां बढ़ेंगी। इधर बिस्तर सुंदर हो जायेगा और नींद तिरोहित हो जायेगी। यह रोज हो रहा है। यह तुम जानते हो। यह तुम्हारी

जिंदगी में हो रहा है। मगर यह सत्य इतना कड़ुवा है कि तुम इसे स्वीकार करना नहीं चाहते। तुम इसको मद्दे-नजर किये रहते हो। तुम इसको उपेक्षा से टाले रहते हो। तुम कहते हो कि नहीं, ऐसे कैसे? सुख बढ़ जायेगा, दुख को घटा लेंगे। सुख को बड़ा कर लेंगे।

पर तुमने देखा? जितनी बड़ी सफलता होती है उतनी ही बड़ी विफलता की संभावना बढ़ जाती है। तुम जितनी ऊंचाई पर चलोगे उतने ही नीचे गिर जाने का डर भी साथ ही साथ बड़ा हो गया है। गिरोगे तो बहुत नीचे गिरोगे। और गिरना पड़ता ही है। गिरना पड़ेगा ही। मगर आदमी सोचता है कुछ, होता कुछ है। आदमी जिंदगी के नियम को देखता ही नहीं।

यहां जीवन में सब चीजें समतुल हैं, नहीं तो जिंदगी बिखर जाये। अनुपात है। दिन है तो रात है, सर्दी है तो गर्मी है, जन्म है तो मृत्यु है, सुख है तो दुख है, सफलता है तो विफलता है। इसीलिए तो सारे ज्ञानी कहते हैं—समभाव। दोनों को बराबर मानो। दोनों बराबर हैं। तुमने एक को बढ़ाया तो दूसरा भी बढ़ जायेगा। तुम्हारी आकांक्षा का कोई संबंध नहीं है। जीवन का नियम यह है। जैसे किसी वृक्ष को अगर आकाश में ऊंचा उठना हो, तो उसको अपनी जड़ें पाताल में गहरी भेजनी पड़ेंगी। अब वृक्ष चाहे कि जड़ें तो गहरी न जायें और मैं ऊंचा उठ जाऊं तो यह नहीं हो सकता। जितना ऊपर उठेगा उतना पाताल में गहरा भी उतरेगा।

नीत्शे का बहुत प्रसिद्ध वचन है: जो स्वर्ग को छूना चाहता है, उसे अपनी जड़ें नर्क तक पहुंचानी होंगी। बिना नर्क को छुए कोई स्वर्ग को नहीं छू सकता। इस-लिए एक बड़ा अपूर्व जीवन का नियम समझ में आ जाये तो काम का होगा, बहुत काम का होगा। सुख को बढ़ाने की फिकर मत करना, दुख को घटाने की फिकर मत करना। इसमें हम व्यर्थ ही समय खराब करते हैं। अगर तुम दुख को घटाने की फिकर करोगे तो सुख घट जायेगा। अगर तुम सुख को बढ़ाने की कोशिश करोगे, दुख बढ़ जायेगा। दोनों साथ चलेंगे। ये गाड़ी के दो चाक हैं। एक को छोटा और एक को बड़ा तुम न कर सकोगे। नहीं तो गाड़ी टूटकर गिर जायेगी। यह साथ ही साथ बड़े-छोटे होते हैं, तो ही गाड़ी चल पाती है।

तो फिर आदमी क्या करे? आदमी स्वीकार करे। जैसा है उसे वैसा स्वीकार कर ले। अपनी तरफ से चेष्टा ही न करे। बजाय बदलाहट करने के देखे कि जीवन का रहस्य क्या है। और जिस दिन तुम्हें यह दिख जायेगा, दोनों चीजें समान हैं, तब तुम चमत्कृत हो जाओगे। तब आखिरी हिसाब में भिखमंगा भी उतने ही दुख पाता है, उतने ही सुख, जितना सम्राट दुख पाता है और सम्राट सुख। अनुपात बराबर होता है। अनुपात में जरा भी फर्क नहीं होता। अगर भिखमंगे

के पास दो दुख हैं तो दो सुख हैं। अगर सम्राट के पास दो करोड़ सुख हैं तो दो करोड़ दुख हैं। अनुपात बराबर है; वह दो और दो का ही है। इसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। तुम दुख के ऊपर एक आंकड़ा बढ़ाओ, एक आंकड़ा सुख पर बढ़ जाता है।

यह तुम्हें समझ में आ जाये तो तुम बड़े चकित होओगे। तो यहां भिखमंगे और सम्राटों में कोई बहुत फर्क नहीं है। माना कि सम्राट के पास सोने के लिये बड़ी सेज है, मगर नींद कहां? और माना कि भिखमंगे के पास सेज है ही नहीं, सो जायेगा कहीं पटरी पर, लेकिन नींद है। सोयेगा तो घोड़े बेचकर सो जाता है; हालांकि घोड़े नहीं हैं, मगर घोड़े बेचकर सो जाता है। सम्राट के पास घोड़े बहुत हैं लेकिन घोड़े बेचकर नहीं सो पाता। सो ही नहीं पाता। सम्राट के पास भोजन तो सभी तरह के हैं सुस्वादु लेकिन भूख खो गई है। भूख लगती ही नहीं। भिखमंगे के पास भोजन तो बिलकुल नहीं है। रूखा-सूखा मिल जाये तो बहुत धन्यभाग। मगर जब मिल जाता है तो जो स्वाद उपलब्ध होता है वह किसी सम्राट को उपलब्ध नहीं होता। साथ-साथ है, अनुपात बराबर है।

जगत में सभी कुछ संतुलित है। इस संतुलन को देख लेना सम्यक्त्व है। इस संतुलन को देखने से आदमी समता में स्थिर हो जाता है। तब एक अलग घटना घटती है—न तो सुख ज्यादा है, न दुख ज्यादा है; सब बराबर है। अचुनाव पैदा होता है। आदमी निर्विकल्प होने लगता है। चुनना ही क्या है, जब सब बराबर है! मित्र बढ़ाओ, शत्रु बढ़ जाते हैं; तो फायदा क्या है? तो फिर जैसा है, ठीक है। जैसा है ठीक है, ऐसी चित्त की दशा शांत, निर्विघ्न हो जाती है। निर्धूम जलने लगती है भीतर की ज्योतिशिखा।

तो ज्ञानी को न तो सुख ज्यादा, न दुख ज्यादा। और जिसको यह दिखाई पड़ गया कि सुख-दुख बराबर है, जिसने दोनों को ठीक से देख लिया, उसे एक तीसरी बात दिखाई पड़ती है कि मैं सुख-दुख के पार हूं। मैं अलग हूं। सुख आते, दुख जाते, दुख आते, सुख जाते, लेकिन मैं तो खड़ा देखता रहता। मैं साक्षी मात्र हूं। इस साक्षी में आनंद का जन्म होता है।

आनंद सुख नहीं है। आनंद सुख से उतना ही भिन्न है जितना दुख से भिन्न है। आनंद को तुम यह मत समझाना कि महासुख। कि बहुत-बहुत सुख जोड़ दिये तो आनंद बन जायेगा। आनंद का कोई संबंध सुख से नहीं है। आनंद उस चित्त-दशा का नाम है जहां तुमने सुख और दुख दोनों की सचाई पहचान ली और तुम दोनों से अलग हो गये। आनंद स्वभाव है। सुख-दुख आते हैं, आनंद है। सुख-दुख घटते हैं, आनंद सदा से है। जिस दिन भी तुम समतुल हो जाओगे उसी

दिन आनंद का अनुभव शुरू हो जायेगा। आनंद मौजूद ही है तुम्हारे भीतर; सिर्फ तुम बाहर उलझे हो। कभी दुख में उलझे हो कि दुख न हो; कभी सुख में उलझे हो कि जरा ज्यादा देर रह जाये; तो तुम भीतर लौटकर नहीं देख पाते।

और जिसको यह दिखाई पड़ गया कि मैं आनंद हूं, उसके लिये समय मिट जाता है। सुख में लगता है, क्षण में गया। दुख लगता है खूब टिकता है। बीत जाने पर अज्ञानी को लगता है सुख खूब था, दुख बिलकुल नहीं था। ज्ञानी को पता चलता है, न तो सुख-दुख है, न समय है। कालातीत समयशून्य अवस्था उपलब्ध होती है। न कुछ अतीत है, न कुछ वर्तमान है, न कुछ भविष्य है, सब ठहरा हुआ है। सब स्थिर है, अचल है। जिस दिन अपने भीतर की अचलता का अनुभव होता है उसी दिन ठहर जाता है। तो ज्ञानी को समय ही मिट जाता है।

चौथा प्रश्न : काम की अनुभूति होती है, प्रेम की अनुभूति भी होती है लेकिन भक्तिरस की अनुभूति कैसे होती है?

काम की अनुभूति का अर्थ होता है, तुम्हारा तादात्म्य अभी शरीर से है। तुम सोचते हो मैं शरीर हूं। तो काम की अनुभूति होती है। मैं शरीर हूं तो दूसरे का शरीर मुझे मिले। शरीर शरीर की मांग करता है। तो काम की अनुभूति होती है। जो लोग सिर्फ इतना ही मानते हैं कि मैं शरीर हूं, उन्हें प्रेम की अनुभूति भी नहीं होती।

नास्तिक को, भौतिकवादी को, चार्वाकवादी को, प्रेम की अनुभूति भी नहीं होती। फ्रायड तो कहता है कि प्रेम कुछ भी नहीं है, बस काम का ही विकार है। प्रेम की भी कोई अनुभूति नहीं है। जो मानता कि मनुष्य शरीर पर ही समाप्त है, उसके पार, इसके भीतर कुछ है ही नहीं, उसे प्रेम की अनुभूति भी कैसे होगी? बस काम ही की अनुभूति हो सकती है।

चार्वाक ने कहा है, जरा भी फिकर न करे पाप की या पुण्य की; और जरा भी चिंता न करे कर्मफलों की, क्योंकि आत्मा तो है ही नहीं। न तो कोई आयेगा लौटकर, न कोई फल लेनेवाला बचेगा। ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत। अगर ऋण लेकर भी घी पीने को मिले तो छोड़े ना, पी ले। इसकी भी फिकर न करे कि चुकाना है। क्या चुकाना है? किसको चुकाना है? और इससे डरे नहीं कि मरने के बाद कोई कयामत होगी, कोई परमात्मा होगा। न कोई परमात्मा है, न कोई पूछनेवाला है। ऋण लेकर भी घी पी ले। चोरी करके भी अपनी कामवासना को तृप्त कर ले। किसी भी भांति हो, येन केन प्रकारेण। किसी भी विधि से हो, अपने भोग को सिद्ध करे। तो जिसने मान रखा है कि मैं शरीर हूं उसे तो प्रेम की

भी अनुभूति नहीं होती।

मैं तुम्हें इसलिए यह कह रहा हूं ताकि तुम्हें पता चल जाये कि तुम्हारी मान्यता से अंतर पड़ता है। तुमने पूछा है, "काम की अनुभूति होती है, और प्रेम की भी अनुभूति होती है।" क्योंकि दो बातें तुम मानते हो। एक तो तुम मानते हो कि मैं शरीर हूं और एक तुम मानते हो कि मैं मन हूं। तो प्रेम की अनुभूति होती है। अगर तुम्हारे जीवन में तीसरी बात की प्रतीति भी उठ आये कि मैं आत्मा हूं तो भक्ति की अनुभूति होनी शुरू होगी, उसके पहले नहीं होगी।

ये तीन तल है--शरीर यानी काम, मन यानी प्रेम, आत्मा यानी भक्ति। तो जब तक तुम शरीर ही मानोगे तब तक काम ही काम रहेगा। जब तुम थोड़े शरीर से ऊपर उठोगे, मन को भी स्वीकार करोगे तो फिर प्रेम की किरणें उठेंगी। जब तुम मन के भी पार उठोगे और आत्मा को स्वीकार करोगे तो -- तो ही केवल भक्तिरस का स्वाद आयेगा।

तुम्हारा प्रश्न ईमानदारी का है। ऐसा ही हो रहा है। अधिक लोगों को काम की ही अनुभूति होती है, प्रेम की भी नहीं होती। थोड़े से लोगों को प्रेम की अनुभूति होती है। और विरले लोगों को भक्ति की अनुभूति होती है। भक्ति कामवासना का आमूल रूपांतरण है। प्रेम में कामवासना थोड़ी सी बदलती है, बहुत थोड़ी सी बदलती है। बहुत ज्यादा नहीं, थोड़ी बदलाहट होती है। लेकिन फिर-फिर वापिस कामवासना में गिर जाती है ऊर्जा। लेकिन थोड़ी बदलाहट होती है। भक्ति में आमूल बदलाहट हो जाती है। जड़ों से बदलाहट हो जाती है। फिर गिरने का उपाय नहीं रह जाता। जो भक्ति में पहुंच गया है फिर उसके जीवन में कामवासना नहीं रह जाती। जो कामवासना में है उसके जीवन में भक्ति नहीं हो सकती। प्रेम दोनों के बीच का सेतु है, दोनों को जोड़ता है।

तो तुम घबड़ाना मत, अगर प्रेम की अनुभूति होती है तो तुम ठीक रास्ते पर हो। सेतु तक तो पहुंच गये हो। एक किनारे काम है। दूसरे किनारे भक्ति है। बीच में यह सेतु है, यह पुल है प्रेम का। तुम इसमें मध्य में आकर खड़े हो गये हो। थोड़ी चेष्टा करो तो भक्ति की धारा बहेगी।

क्या चेष्टा करो जिससे भक्ति की धारा बहे? तुमने देखा? चौदह साल तक बच्चा बड़ा होता है तब तक काम की धारा नहीं बहती। क्योंकि अभी उसका काम पुष्ट नहीं है। अभी काम ऊर्जा तैयार नहीं है। चौदह वर्ष की उम्र में अचानक काम ऊर्जा पकेगी और एक विस्फोट होगा। चौदह वर्ष तक लड़के लड़कियों के साथ खेलना भी पसंद नहीं करते। कोई लड़का खेलता भी हो लड़कियों के साथ तो कहते हैं कि तू लड़की है क्या?

मैंने सुना, एक घर में एक आठ साल के बच्चे ने, मां से नाराज हो गया और अपने को जाकर बाथरूम में बंद कर लिया भीतर से। लाख मां ने सिर पटका, चिल्लायी, रोयी, डांटा, समझाया, बुझाया, फुसलाहट की, रिश्वत देने की बात की, मगर वह गुपचुप खड़ा ही रह गया अंदर। वह बोले ही नहीं। तब तो मां घबड़ायी। पति परदेश गये। वह और मुश्किल में पड़ी। पड़ोसियों को बुला लिया। पड़ोसी भी .... जब देखा लड़के ने कि पड़ोसी भी आ गया तो उसको और मजा आया होगा। वह बिलकुल ही सन्नाटा बांधकर खड़ा हो गया। वह बिलकुल ध्यानी हो गया। वे दरवाजा पीटें मगर वह बोले ही नहीं। तो और घबड़ाहट बढ़ने लगी कि सांस चल रही है इसकी कि नहीं! जिंदा है कि मर गया? हुआ क्या? सब उसकी मां को डांटने लगे कि ऐसा थोड़े व्यवहार करना चाहिये! उसने कहा, कुछ खास व्यवहार नहीं किया। जैसा रोज का व्यवहार है .... किसी बात पर नाराज हो गई। इतना बिगड़ जायेगा यह तो सोचा नहीं।

कोई उपाय न देखकर किसी ने सलाह दी कि अब तो एक ही रास्ता है कि आग बुझानेवालों को खबर करो। उनको पता रहता है कैसे दरवाजा तोड़ें, या ऊपर से उतरें या क्या करें, या खिड़की से जायें। तो आग बुझानेवालों को खबर की वे आये। उनके प्रधान ने आकर पूछा, आग कहां लगी है? महिला ने कहा, आग कहीं भी नहीं लगी। आप क्षमा करें, मगर मामला यह है। यह बच्चा अंदर हमें पता ही नहीं चल रहा कि जीवित है, या बेहोश हो गया, या मूर्छित हो गया या क्या हुआ। बोलता ही नहीं है, न आवाज जवाब देता है।

उसने कहा, कोई फिकर नहीं, मैं अभी देखता हूं। वह जाकर अंदर पहुंचा। दरवाजा खटखटाया। और कहा लड़की, बाहर निकल। वह लड़का बोला, कौन कह रहा है मुझसे लड़की? अभी तक बोला ही नहीं था वह। जल्दी से दरवाजा खोलकर बाहर आ गया। उसने कहा किसने मुझसे लड़की कहा? मैं लड़का हूं।

चौदह साल की उम्र तक तो लड़के लड़कियों के साथ खेलने में भी डरते हैं, संकोच भी करते हैं। और बात ही फिजूल लगती है। लड़कों को लड़कों में रस होता है। लड़कियों को लड़कियों में रस होता है। अभी काम ऊर्जा पकी नहीं।

अगर आठ साल का बच्चा तुमसे पूछे कि काम का संबंध कैसा होता है। तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। कैसे समझाओगे? तुम मुझसे पूछ रहे हो भक्ति का रस कैसा होता है? वैसे ही मुश्किल में तुम मुझे डाल रहे हो। आठ साल के बच्चे को कैसे समझाओगे कि संभोग का रस कैसा होता है? समझाओगे भी तो समझा न पाओगे। कहोगे भी तो खुद भी समझोगे साथ-साथ कि यह बात बेकार कह रहा हूं, यह इस तक पहुंचेगी नहीं। अनुभव ही अनुभव को समझ पाता है। तुम उससे कहोगे,

रुक, थोड़ा ठहर। जरा बड़ा हो जा, खुद ही जान लेगा। वह तो संयोग -- सौभाग्य है, चौदह साल में सभी काम की दृष्टि से प्रौढ़ हो जाते हैं, लेकिन भक्ति की दृष्टि से तो बहुत कम लोग प्रौढ़ होते हैं। पूरी जिंदगी निकल जाती है। होना तो नहीं चाहिये। दुर्भाग्य है।

चौदह साल की उम्र में काम ऊर्जा परिपक्व होती है और पहली दफा कामवासना उठती है। लड़के लड़कियों में उत्सुक होने लगते हैं लड़कियां लड़कों में उत्सुक होने लगती हैं। अब उनकी पुरानी दोस्तियां ढीली पड़ने लगती हैं--लडकों से लड़कों की, लड़कियों से लड़कियों की। एक नया रस पैदा होता है विपरीत में। जिसमें कल तक कोई रस नहीं था, जिससे कल तक कोई रस नहीं था, जिससे कल तक बचे थे, आज उसमें ही रस जगता है। आज उसमें ही सारे जीवन का सुख मालूम होता है। इसीलिए चौदह साल के पहले जो दोस्ती बन गई, बन गई। उसके बाद फिर दोस्तियां नहीं बनतीं। बचपन की दोस्ती टिकती है। चौदह साल के बाद जो दोस्तियां बनती हैं, बस कामचलाऊ होती हैं। बचपन की दोस्ती बात ही और है। बचपन की दोस्ती तो ऐसी भी होती है कि अगर बचपन का दोस्त तुम्हारे घर आ जाये तो तुम्हारी पत्नी ईर्ष्या करती है क्योंकि वह उससे पहले तुम्हारे जीवन में आया था और उससे गहरी उसकी जड़ें गई हैं। बचपन के दोस्त पत्नियां पसंद नहीं करतीं। बचपन की सहेलियों को पति भी पसंद नहीं करते। क्योंकि उनसे भी पहले कोई, यह बात जरा कष्ट देती है, अहंकार को चोट पहुंचाती है।

लेकिन चौदह साल के बाद फिर दोस्ती नहीं बनती। क्योंकि अब एक नयी दुनिया शुरू हो गई। अब कामचलाऊ क्लब की दोस्ती होगी, बाजार की दोस्ती होगी, दुकान की दोस्ती होगी, मगर कामचलाऊ। इसलिए तो तुम कहते हो बचपन की दोस्ती फिर क्यों नहीं बनती? अब एक नया प्रयोग शुरू हुआ जीवन में। अब स्त्री की पुरुष से दोस्ती बनेगी, स्त्री की पुरुष से। पुरुष की स्त्री से दोस्ती बनेगी। विजातीय लिंग में रस शुरू हुआ। अगर यह गति ठीक से बढ़त रहे तो एक दिन प्रेम का भी जन्म होता है--लेकिन अगर ठीक से बढ़ती रहे। अक्सर ऐसा हो नहीं पाता।

अगर तुम किसी स्त्री के प्रेम में बहुत गहरे उतर गये, उसकी बासना में बहुत गहरे उतर गये तो आज नहीं कल उसकी देह के साथ-साथ उसके भीतर के चैतन्य की भी थोड़ी तो झलक मिलनी शुरू होगी। तो धीरे-धीरे काम प्रेम में रूपांतरित होता है। इसलिए जिन लोगों ने भी मनुष्य को समझने की कोशिश की, उन सब ने यह कहा है कि अगर एक ही व्यक्ति से काम के संबंध ज्यादा देर तक

रह जायें तो अच्छा। नहीं तो प्रेम पैदा ही नहीं हो पायेगा कभी। इसलिए पश्चिम में प्रेम खो रहा है। दो-तीन साल में स्त्री बदल ली, दो-तीन साल में पुरुष बदल लिया।

तो ऐसे ही हो गया जैसे आदमी कार बदल लेता है। नया मॉडल आया तो कार बदल ली। तो प्रेम का रोपा जम ही नहीं पायेगा। प्रेम के रोपे के जमने के लिये थोड़ा समय चाहिये, थोड़ी अवधि चाहिये। पश्चिम से प्रेम खो रहा है हालांकि प्रेम की बहुत बातचीत हो रही है। अक्सर ऐसा होता है कि जो चीज खो जाती है उसकी खूब बातचीत होती है। फिर बातचीत ही रह जाती है। बातचीत ही इसीलिए होती है कि चीज खो गयी। जब चीज होती है तो कौन बात करता है? जब चीज खो जाती है तो लोग बात करते हैं। ऐसे ही जैसे तुम्हारा एक दांत टूट जाये तो जीभ वहीं-वहीं जाती है। जब तक था तब तक कभी नहीं जाती थी। अब नहीं है, वहीं-वहीं जाती है--चौबीस घंटे। तुम हजार बार हटा लेते हो। इधर जरा भूले कि जीभ वहां गई। खाली जगह खलती है। पश्चिम में प्रेम की चर्चा हो रही है। बड़ी किताबें लिखी जाती हैं, बड़े विवाद, बड़ा विचार, बड़े वैज्ञानिक परीक्षण। दांत टूट गया है, जीभ वहीं-वहीं जाती है। प्रेम खो गया है। अब सिर्फ बातचीत रह गई है।

प्रेम के लिये जरूरी है कि काम का संबंध एक अवधि तक गहरा हो। एक स्त्री, एक पुरुष का संबंध खूब गहराई में जाये। इतनी गहराई में जाये कि धीरे-धीरे वह एक दूसरे के शरीर को छूने की बजाय एक-दूसरे के मन को छूने लगें। मन गहरे में है, उतनी गहराई के लिये थोड़ा समय चाहिये। प्रेम मौसमी फूल नहीं है। काम तो मौसमी फूल है। डाल दिया, छह सप्ताह में फूल आ जायेंगे; मगर बाकी छह सप्ताह में चले भी जायेंगे। तीन-चार महीने की जिंदगी ही है। जल्दी खिल आयेंगे, जल्दी मुरझा भी जायेंगे। लेकिन अगर तुम्हें कोई वृक्ष लगाना हो जो आकाश छूता हो, चांद-तारों से बात करता हो तो छह सप्ताह में नहीं लगते ऐसे वृक्ष। वर्षों लगते हैं, पीढ़ियां लगती हैं। समय बीतता। अवधि चाहिये।

तो अगर काम का संबंध गहरा हो जाये, इतना गहरा हो जाये कि तुम्हें अपनी पत्नी की देह स्मरण ही न रहे, पत्नी को तुम्हारी देह स्मरण न रहे तो धीरे-धीरे प्रेम की झलकें, प्रेम झलक मारना शुरू करेगा। अगर ठीक से सब चलता रहे तो मेरे हिसाब में अट्ठाईस साल की उम्र में प्रेम की पहली झलक मिलती है। जैसे चौदह साल की उम्र में काम की पहली झलक मिलती है। चौदह साल अगर कामवासना का संबंध बड़ी निष्ठा से, पूजा से, तांत्रिक भाव से--सिर्फ कामभोग से नहीं बल्कि एक गहन जीवन के प्रयोग की भांति चले तो अट्ठाईस वर्ष के करीब

कहीं झलक मिलनी शुरू होती है प्रेम की। पहली दफा प्रेम का अवतरण होता है। पहली दफा तुम्हें लगता है कि देह मूल्यवान नहीं रही, देह गौण हो गई।

और अगर यह न हो जाये अट्ठाईस साल की उम्र में तो अट्ठाईस साल की उम्र के करीब तलाक आना निश्चित है क्योंकि शरीर से तो चुक गये तुम। अगर प्रेम का संबंध जुड़ गया तो ठीक है, शरीर से तो चुक गये। अब यह शरीर तो देख लिया चौदह साल तक। अब तो इसमें कुछ रस नहीं रहा। अगर नया संबंध गहरे तल पर बन गया तो ही विवाह टिकेगा, अन्यथा तुम नयी पत्नी खोजोगे, नया पति खोजोगे, जिससे फिर शरीर का रस शुरू हो। लेकिन इसका मतलब यह हुआ कि तुम फिर जिस दिन नयी पत्नी खोजी उस दिन तुम फिर चौदह साल की उम्र में गिर गये। इसलिए अमरीकन आदमी में तुम पाओगे प्रौढ़ता की कमी। वह बचकाना लगता है, अप्रौढ़ लगता है। बूढ़ा भी हो जाये तो बचकाना लगता है, कुछ बात कम लगती है। जैसे कुछ बुद्धिमत्ता पैदा नहीं होती। क्या कारण होगा?

पैंसठ साल की एक स्त्री ने मुझे कुछ दिन पहले पूछा कि मैं यहां आई हुई हूं, तीन महीने हो गये, और कोई पुरुष यहां मुझसे प्रेम करता ही नहीं। तो मैं वापिस चली। पैंसठ साल..! वह प्रसन्न नहीं थी यहां क्योंकि कोई पुरुष उसको प्रेम नहीं करता। पश्चिम में उसे प्रेम करनेवाले मिल जायेंगे। पूरब में मुश्किल होगी। क्योंकि पश्चिम में जो पैंसठ साल के हो गये हैं, सत्तर साल के हो गये हैं, उनकी भी मानसिक उम्र चौदह साल से ऊपर नहीं गयी है। वे मिल जायेंगे। पश्चिम में बूढ़ों के लिये जो स्थान बनाये जाते हैं--वृद्धाश्रम जैसी चीजें, वहां खूब प्रेम चलता है। बूढ़े अस्सी साल के बूढ़े प्रेम में पड़ जाते हैं। ज्यादा कुछ अब कर भी न सकेंगे।

मैंने सुना है, एक बूढ़े आदमी ने नब्बे साल की उम्र में शादी कर ली। पच्चासी साल की स्त्री, नब्बे साल का बूढ़ा, शादी कर ली। पहली रात सुहागरात! बूढ़े ने बूढ़िया का हाथ पकड़ा, खूब दबाया। फिर दोनों बड़े मगन होकर सो गये। दूसरी रात उतना नहीं दबाया। बूढ़े ही...! बस थोड़ा सा दबाया, सो गये। तीसरी रात जब बूढ़ा दबाने लगा तो बुढ़िया ने कहा, मेरे सिर में दर्द है; और करवट लेकर सो गई। नब्बे साल की उम्र में काम-वासना होगी तो इसी तरह की मूढ़ता होगी। होनी स्वाभाविक है क्योंकि अप्राकृतिक है यह घटना।

अगर जीवन का विकास ठीक से चले तो अट्ठाईस साल की उम्र में प्रेम का स्वर पहली दफा सुनाई देगा। जिसके साथ चौदह साल तुम रहे हो, जिसके शरीर के साथ तुम्हारा शरीर हिल-मिल गया, एक हो गया, जिसके शरीर की वीणा तुम्हारे शरीर की वीणा से लयबद्ध हो गई, दो देहें अब दो देहें जैसी नहीं

रह गईं। अब दोनों देहों के बीच एक सेतु बन गया है। अब पहली दफा समझ में आयेगा कि दूसरा एक प्राणवान मन है। देह गौण हो जायेगी, मन महत्वपूर्ण हो जायेगा।

तो पति पत्नी अगर सच में एक दूसरे के प्रेम में हों तो एक दूसरे के मन की उन्हें समझ आनी शुरू हो जाती है। पति कहता भी नहीं और पत्नी समझ लेती है कि उसके मन में क्या है। पत्नी कहती भी नहीं और पति समझ लेता है कि उसके मन में क्या है। ऐसी बात न आ जाये तो समझना कि अभी तुम पति पत्नी हुए ही नहीं। अभी असली बात नहीं घटी। एक-दूसरे के भीतर बात उठती है और दूसरा समझ लेता है। एक तरह की विशिष्ट टेलीपैथी शुरू हो जाती है। विचारों का संप्रेषण शुरू हो जाता है। पति उदास है तो पत्नी को धोखा नहीं दे पाता। सारी दुनिया को धोखा दे. ले, उसकी मुस्कुराहट सब जगह उसके लिये सुविधा बना देती है लेकिन पत्नी को वह मुस्कुरायेगा तो भी पत्नी जानती है कि आज तुम्हारी मुस्कुराहट में उदासी है। कुछ बात है, तुम कहो। पत्नी पति को धोखा नहीं दे पाती। जिस दिन पति पत्नी एक दूसरे को धोखा भी देना चाहें, छिपाना भी चाहें और न छिपा पायें, दूसरे तक बात पहुंच ही जाये, संक्रमण हो ही जाये, उस दिन समझना कि प्रेम हुआ।

तो मैं नहीं जानता जिन्होंने प्रश्न पूछा है उन्होंने प्रेम को जाना है या नहीं। उन्होंने कहा तो मैं मान लेता हूं कि जाना होगा। लेकिन प्रेम को जानना भी दुरूह है--दुरूह हो गया है। और अगर प्रेम फिर चौदह साल तक साथ चल जाये तो करीब बयालीस साल की उम्र के पास भक्ति-रस पैदा होता है। चौदह साल कामवासना का गहरा संबंध, प्रेम की तरंग को उठाता है, चौदह साल का दो मनों के बीच गहरा संबंध आत्मा की तरंग को उठाता है, भक्तिरस शुरू होता है।

यह कुछ लकीर के फकीर मत बन जाना कि मैं कहता हूं कि बयालीस तो बयालीस। सिर्फ काम के लिये कह रहा हूं ताकि तुम्हारी समझ में आ जाये। पैंतालीस हुआ तो चलेगा, अड़तालीस हुआ तो चलेगा। मरने के एक दिन पहले भी अगर भक्ति रस हो जाये तो भी चलेगा। मगर वह भी नहीं हो पाता। अकसर लोग कामवासना में ही उलझे रह जाते हैं। कुछ लोग जो कामवासना से उठने में सौभाग्यशाली हैं वे फिर प्रेम में पड़े रह जाते हैं। बहुत कम लोगों के जीवन में हरिभक्ति पैदा होती है।

अब तुम मुझसे पूछते हो कि भक्तिरस की अनुभूति कैसे होती है? अगर तुम्हें प्रेम का अनुभव हुआ है--तुम कहते हो मैं मान लेता हूं--तो अब इस प्रेम के अनुभव में गहरे उतरो। अब इस प्रेम को जियो, इसकी सर्वांगीणता में जियो।

इस प्रेम में बाधायें खड़ी न करो। छोटी-छोटी झंझटें, छोटी-छोटी बातें, छोटे-छोटे उपद्रव खड़े मत करो। सारी बाधायें हटा दो। अब इस प्रेम को पूरा तरंगित होने दो। यही तरंग बड़ी होते-होते ... काम की तरंग बड़ी होकर प्रेम बन जाती है, प्रेम की तरंग बड़ी होकर भक्ति बन जाती है।

इसलिए तो मैं कहता हूं, किसीको संसार छोड़कर भागने की जरूरत नहीं है। इसी संसार में परमात्मा छिपा है। जैसे दूध को तुम दही बना लेते हो। दही दूध में छिपा था। फिर दही से तुम मक्खन निकाल लेते। मक्खन भी दही में छिपा था। ऐसा ही मामला है। कामवासना यानी दूध। इसे जमाया तो दही बनता है-- प्रेम। फिर दही को मथा तो नवनीत -- भक्ति।

प्रेम को मथो। प्रेम को खूब मथो। अहर्निश मथो। और भूलकर भी मत सोचना कि परमात्मा तुम्हारी पत्नी या पति के विपरीत है। परमात्मा का आगमन तुम्हारे प्रेम के द्वार से ही होगा। इसलिए मैं संसार के जरा भी विरोध में नहीं। अपने संन्यासियों को कहता हूं, कहीं भागकर मत जाना, नहीं तो चूक जाओगे। यहीं है। यहीं ठीक से समझो। दूध से घबड़ा मत जाना, नहीं तो दही नहीं जमेगा। और दही को फेंक मत देना कि खट्टा है, नहीं तो नवनीत न निकाल पाओगे। नवनीत छिपा है, उसे खोजना है।

दो शरीर का संबंध काम।
दो मनों का संबंध प्रेम।
दो आत्माओं का संबंध भक्ति।

स्वभावतः दो शरीर का संबंध क्षणभंगुर होगा! दो शरीर इतने स्थूल हैं, एक क्षण को भी करीब आ जाते हैं यह भी चमत्कार है। दो मनों का संबंध थोड़ा स्थायी होगा। शरीर से ज्यादा स्थायी होगा, ज्यादा सुखदायी होगा, ज्यादा रसपूर्ण होगा, ज्यादा तृप्ति लायेगा। लेकिन फिर भी दो मन अलग-जलग हैं।

दो आत्मायें जब मिलती हैं तो क्रांति घटती है, क्योंकि दो आत्मायें वस्तुतः दो नहीं हैं। आत्मा तो एक ही है संसार में। मेरी आत्मा अलग और तुम्हारी आत्मा अलग, ऐसा नहीं है। मेरा शरीर अलग, तुम्हारा शरीर अलग--सच, लेकिन मेरी आत्मा और तुम्हारी आत्मा अलग-अलग नहीं है। मेरा शरीर और तुम्हारा शरीर बिलकुल अलग-अलग, मेरा मन और तुम्हारा मन खूब मिला-जुला, और मेरी आत्मा और तुम्हारी आत्मा एक।

तो अगर एक आत्मा से भी तुम्हारा पूरा भक्ति का संबंध बन जाये, पत्नी में तुम्हें परमात्मा दिखायी पड़ जाये और पति में तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ जाए ... वही तो अर्थ था पुराने दिनों में, जब हम कहते थे पति में परमात्मा। चूक इतनी ही हो गई थी कि वह अधूरी बात थी। पत्नी में भी परमात्मा कहा जाना चाहिये। जिस दिन तुम्हें अपने प्रिय में परमात्मा दिखाई पड़ जाये उस दिन तुम आंख खोलकर देखोगे और तुम्हें परमात्मा सब तरफ दिखाई पड़ेगा। पौधों में, पक्षियों में, पशुओं में, पहाड़ों में, सब तरफ परमात्मा दिखाई पड़ेगा आंख जब जान लेती है एक दफा भक्ति के रस को, आंख पर जब सावन उतर आता है भक्ति का, तो सब तरफ सावन दिखाई पड़ने लगता है।

आखिरी प्रश्न : आप में असंभव संभव हुआ है, अघट घटित हुआ है। और आपको समझना भी असंभव सा ही लगता है। ऐसा क्यों?

समझना चाहोगे तो असंभव हो जायेगा। समझने की चाह में ही दूरी पैदा हो जाती है। तुम प्रेम से सुनो, समझने इत्यादि की फिकर छोड़ो। तुम सिर्फ प्रेम से सुनो और समझ जाओगे। समझने चले तो चूक जाओगे।

क्यों? क्योंकि जब तुम समझने बैठते हो तब तुम बुद्धि को बीच में ले आते हो। तुम पूरे वक्त सजग होकर देख रहे हो कि कौन सी बात ठीक, कौन सी बात ठीक नहीं। कौन सी बात तर्क के अनुकूल, कौन सी बात तर्क के प्रतिकूल। कौन सी बात मेरे शास्त्र के अनुकूल, कौन सी बात मेरे शास्त्र के प्रतिकूल। तुम इस सब उधेड़बुन में पड़ जाते हो। वह शास्त्र की धूल तुम्हारे भीतर अंधड़ होकर उठने लगती है। तुम मुझे तो भूल ही जाते हो। उस अंधड़ में तुम्हें कभी-कभी कुछ-कुछ सुनाई पड़ता है। कुछ का कुछ भी सुनायी पड़ता है। और फिर तुम व्याख्या कर लेते हो। फिर तुम अपने हाथ से उलझन खड़ी कर लेते हो।

ये बातें समझने की नहीं हैं। ये बातें प्रेम में उतरने की हैं। तुम सिर्फ सुनो। क्या फिकर समझने की? समझें तो ठीक, न समझें तो ठीक। यह समझने का हिसाब ही अलग रख दो। यह समझने की दुकानदारी ही हटा दो। तुम सिर्फ सुन लो। ऐसे सुन लो, जैसे कोई झरने का कल-कल नाद सुनता है। वहां तो तुम समझने के लिये नहीं जाते। वहां तो तुम नहीं कहते कि यह झरना कुछ समझ में नहीं आ रहा। कल-कल-कल-कल तो हो रही है, लेकिन कुछ समझ में नहीं आ रहा है। समझने को है क्या? झरना है, कल-कल है, और क्या समझना है? इसमें डूबो। जब पक्षी गुन-गुन करते तब तुम समझते तो नहीं। मगर कहते हो, बड़ा रस आता है। जब कोई वीणा बजाता है तो तुम क्या समझते हो? लेकिन डोलने लगते हो। ये बातें डोलने की हैं, समझने की नहीं।

मैंने सुना है, लखनऊ का एक पागल नवाब, उसके दरबार में एक संगीतज्ञ आया, बड़ा वीणावादक। उस संगीतज्ञ ने कहा कि बजाऊंगा तो वीणा लेकिन मेरी

एक शर्त है। मैं इस बिना शर्त के कभी बजाता ही नहीं। मुझे सुनते वक्त कोई सिर न हिले। नवाब तो पागल था। शायद वाजिद अली हो या कोई और हो, मगर पक्का लखनवी था। उसने कहा, तुम फिकर मत करो। सिर हिला कि उसी वक्त उतरवा देंगे। तलवार तैयार रखेंगे।

डुंडी पिटवा दी लखनऊ में कि जो लोग सुनने आयें, वे सोचकर आयें। अगर सिर हिला तो गरदन उतार दी जायेगी। संगीतज्ञ का बड़ा नाम था और लखनऊ के रसिक लोग बड़े दिन से प्रतीक्षा करते थे कि कब यह शुभ घड़ी आयेगी कि इसको सुनेंगे। लेकिन यह बड़ी झंझट खड़ी हो गई। लाखों लोग आये होते। दूर-दूर से लोग आये होते सुनने, लेकिन मुश्किल से हजार एक लोग आये। क्योंकि यह बड़ा खतरनाक था। हजार में भी ऐसे ही लोग आये होंगे, जो बिलकुल हर हालत में अपने पर काबू रख सकें। जिनको यम-नियम-आसन इत्यादि का पता होगा कि बिलकुल मारकर सिद्धासन बैठ जायेंगे आंख बंद करके। हिलेंगे ही नहीं तो फिर क्या होगा ?

आ गये, बैठ तो गये लोग लेकिन सब तैयार होकर बैठ गये। सबने अपने शरीर को अकड़ा लिया कि कभी भूल-चूक में भी हिल जाओ, तो यह पागल नवाब है। फिर यह भी नहीं तय करेगा कि भूल-चूक से मक्खी आ गई थी इसलिए शरीर हिल गया था। यह तो पागल तो पागल। यह सुनेगा नहीं। और उसने चारों तरफ नंगी तलवारें लिये सिपाही खड़े कर दिये। वीणावादक ने वीणा बजाई। कोई दस-पंद्रह मिनट तक तो कोई नहीं हिला, मूर्तियों की तरह लोग बैठे रहे। फिर पांच-सात लोग हिलने लगे, फिर दस-पंद्रह लोग हिले, फिर बीस-पच्चीस लोग हिले, फिर कोई सौ लोग ....

नवाब तो घबड़ाने लगा। उसने यह नहीं सोचा था कि कटवाना ही पड़ेगा। मगर अब तो मामला ऐसा है कि कटवाना ही पड़ेगा। अब तो अपने वचन दे दिया है। नवाब तो सुन ही न पाये। वह तो बार-बार यही देखता रहे कि और मरे। कितने लोग गये ! सिपाही भी डरने लगे, खड़े थे आसपास, कि यह नाहक की हत्या होगी। भले-अच्छे लोग हिल रहे हैं। यह पागलों को हुआ क्या है ? लेकिन जैसे-जैसे लोग हिलने लगे, संगीतज्ञ डूबने लगा। फिर तो कोई दो-तीन सौ लोग डुबकी लगाने लगे, डोलने लगे, जैसे सांप बीन की आवाज सुनकर डोलने लगे।

आधी रात संगीतज्ञ ने वीणा बंद की। सम्राट ने कहा कि पकड़ लिये जायें वे लोग। कोई तीन-साढ़े तीन सौ लोग पकड़ लिये गये। संगीतज्ञ ने कहा, बाकी को जाने दें, इनको रोक लें। बाकी चले गये। नवाब ने पूछा, इनका क्या करना ? इनको कटवा दें ? संगीतज्ञ ने कहा, नहीं, यही तो मेरे सुननेवाले हैं। अब इनको

असली सुनाऊंगा। नकली गये। वे जो आसन इत्यादि लगाकर बैठे थे उनको संगीत का कुछ पता नहीं। यही ...

पर सम्राट ने कहा, इसके पहले कि तुम इन्हें सुनाओ कुछ और, मैं इन्हें पूछना चाहता हूं कि पागलो, हिले क्यों ? तुम्हें जिंदगी का कोई लगाव नहीं है ? तो उन लोगों ने कहा, हम हिले नहीं। हमें तो पता नहीं। जब तक हमें अपना पता था तब तक तो हम बिलकुल संभले बैठे रहे। कौन मरना चाहता है ? जब हम लापता हो गये, जब वीणा ही रह गयी, जब हम बचे ही नहीं तो फिर कौन रोके, कौन संभाले ? संभालनेवाला ही विदा हो गया। तो हम यह नहीं कहते हैं कि हम हिले। हम तो नहीं हिले। हम तो जब तक थे तब तक नहीं हिले। फिर जब हम रहे ही नहीं तो फिर हिलना हुआ। परमात्मा ने हिलाया। संगीत ने हिलाया। हम नहीं हिले। हमारा कोई कसूर नहीं है। और संगीतज्ञ ने कहा, ये ठीक कहते हैं। इसलिए इनको चुना है। यही मेरे सुननेवाले हैं, यही मेरे समझनेवाले हैं।

यही मैं तुमसे कहता हूं। समझना हो तो बुद्धि को एक तरफ रखो और समझ जाओगे। लेकिन अगर बुद्धि को बीच में लिया और समझने की बहुत खींचातानी की तो चूक जाओगे। ये कुछ बातें ऐसी हैं कि हिलोगे तो समझोगे। ये बातें कुछ ऐसी हैं कि डोलोगे तो समझोगे। ये बातें कुछ ऐसी हैं कि नाचोगे तो समझोगे। ये बातें बुद्धि की पकड़ में आनेवाली बातें नहीं हैं। ये पागलों की, दीवानों की बातें हैं। तुम मेरी दीवानगी में अगर मेरे पागलपन में हाथ बंटाओ, तो ... तो जरूर समझ में आयेगी।

तो इस विरोधाभास को मैं फिर से दोहरा दूं––समझना चाहा, समझ में न आयेगी। हिलने की हिम्मत रखी तो कोई तुम्हें समझने से नहीं रोक सकता। यह समझ में आने ही वाली है। मगर यह समझ हृदय की है, भाव की है, प्राण की है; बुद्धि की नहीं, विचार की नहीं, भक्ति की है। रस-निष्पन्न होती है। रस की निष्पत्ति से आती है, तर्क से नहीं। डोलो। इस मन-मयूर को नाचने दो, जरूर समझोगे।

आज इतना ही।

अनहद में बिसराम

प्रवचन : ५
दिनांक : १५।७।१९७७
श्री रजनीश आश्रम, पूना.
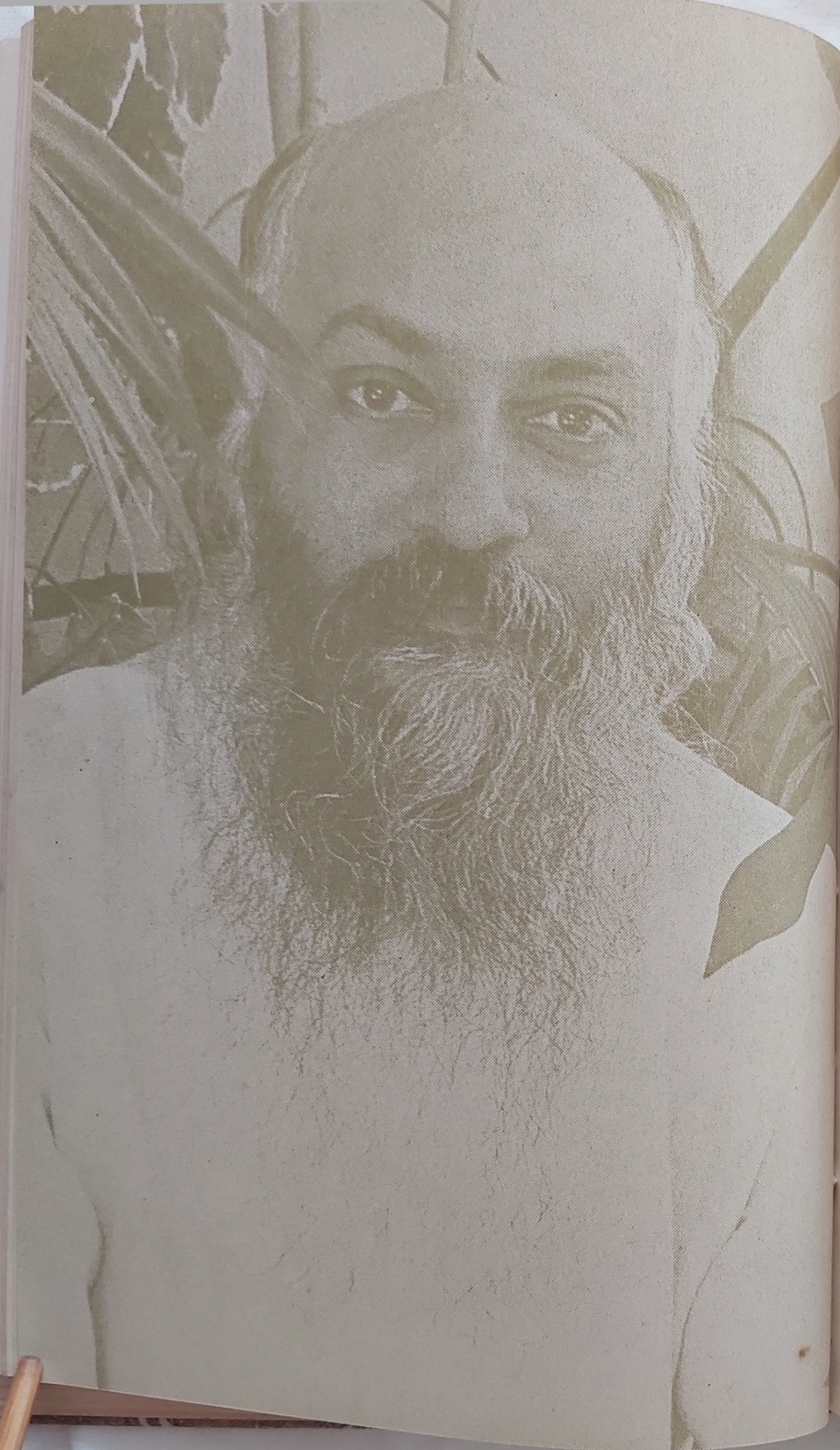
रतन अमोलक परख कर रहा जौहरी थाक।
दरिया तहां कीमत नहीं उनमन भया अवाक।।
धरती गगन पवन नहीं पानी पावक चंद न सूर ।
रात दिवस की गम नहीं जहां ब्रह्म रहा भरपूर।।
पाप पुण्य सुख दुख नहीं जहां कोई कर्म न काल।
जन दरिया जहां पड़त है हीरों की टकसाल ।।
जोव जात से बीछड़ा धर पंचतत्त को भेख।
दरिया निज घर आइया पाया ब्रह्म अलेख।।
आंखों से दीखे नहीं सब्द न पावै जान।
मन बुद्धि तहं पहुंचे नहीं कौन कहै सेलान।।
माया तहां न संचरौ जहां ब्रह्म का खेल।
जन दरिया कैसे बने रवि-रजनी का मेल।।
जात हमारी ब्रह्म है माता-पिता हैं राम ।
गिरह हमारा सुन्न में अनहद में बिसराम।।

इन मस्त अखड़ियों को कमल कह गया हूं मैं
महसूस कर रहा हूं गजल कह गया हूं

प्रेम में सिक्त शब्द अनायास ही काव्य बन जाते हैं। जहां प्रेम है वहां गीत का जन्म अनिवार्य है। एक तो ऐसा काव्य है जो शब्द, भाषा, मात्रा और छंद पर निर्भर होता है और एक ऐसा काव्य है, जो केवल हृदय के प्रेम पर निर्भर होता है।

संतों का काव्य हृदय का काव्य है। हो सकता है मात्रा में ठीक न हों। मात्राओं की चिंता की भी नहीं गई है। हो सक्ता है छंद के नियमों का पालन न हुआ हो। संत किसी भी नियम का पालन करना जानते ही नहीं। एक ही नियम है उनका, एक ही पहचान है उनकी, वह प्रेम है। दरिया के ये शब्द बड़े गहन अनुभव से निकले हैं। इनके काव्य-गुण पर मत जाना। इनकी अनुभूति में डुबकी लगाना। जानकर, डूबकर कहे गये शब्द हैं।

सौ में निन्यानबे काव्य तो कल्पना ही होते हैं। सुंदर हो तब भी कल्पना ही होते हैं। और कल्पना में कैसा सौंदर्य? सौंदर्य तो केवल सत्य का ही अंग है। जहां सत्य है वहां सौंदर्य है। कल्पना में तो केवल खिलौने हैं, धोखे हैं। बच्चों को उलझाये रखने के लिये ठीक, लेकिन प्रौढ़ों के लिये वहां कोई संदेश नहीं है। एक ही सौंदर्य है और वह सौंदर्य है--जब सत्य आंखों में झलकता है। तो फिर जो बोलो वही सुंदर हो जाता है, जो करो वही सुंदर हो जाता है।

तो दरिया के शब्द तो टूटे-फूटे हैं। इनके शब्दों पर मत जाना। शब्दों में गये तो चूक जाओगे। दरिया तो तुतलाते से बोल रहे हैं। क्योंकि वह बात इतनी बड़ी है, उस बड़ी बात को जो भी कहेगा वही तुतलायेगा। उस बड़ी बात को बिना झिझक तो केवल वे ही कह सकते हैं, जिन्होंने जाना नहीं। जाना नहीं उनको झिझक का पता नहीं। चीन में एक कहावत है कि केवल नासमझ ही बिना झिझके बोल सकता है। समझदार तो बहुत झिझकेगा क्योंकि हर शब्द उसके सत्य को छोटा करता है। जो उसने देखा है, जो उसने जाना है, शब्द उसे प्रकट कर नहीं पाते।

इसलिए बड़ी झिझक है जाननेवाले में।

ये दरिया के शब्द परम अनुभव के शब्द हैं।

रतन अमोलक परख कर रहा जौहरी थाक
दरिया तहं कीमत नहीं उनमन भया अवाक

मन हमारा जौहरी है। जौहरी इसलिए कि हर चीज का मूल्य आंकता रहता है। जो देखता है, तत्क्षण निर्णय करता है, सुंदर है कि असुंदर, शुभ है कि अशुभ, करणीय कि अकरणीय, सत्य कि झूठ! मन का सारा काम ही निर्णायक का काम है। अगर निर्णय न छूटा तो मन के पार गये नहीं। इसलिए जीसस ने कहा है 'जज ई नॉट।' निर्णय ही मत करना। निर्णय किया कि मन के कब्जे में आ गये। वह जौहरी! वह बैठा भीतर। वह कसता रहता है अपने कसने के पत्थर पर हर चीज को, कि सोना है कि नहीं है। हीरा है कि नहीं है। मन तो एक तराजू है जो तोलता रहता, तोलता रहता है। इसे तुम जांचो।

गुलाब का फूल देखा, देख भी नहीं पाये ठीक से कि फौरन मन कह देता है-- सुंदर! अभी देखना भी पूरा नहीं हुआ कि शब्द बन जाता है। कहीं गंदगी का ढेर लगा देखा, अभी गंध, दुर्गंध नासापुटों तक पहुंची ही थी कि मन तत्क्षण कह देता है कि कुरूप, गंदगी, बचो!

मन के निर्णय करने की यह जो आदत है, यह तुम्हें जीवन के सत्य को देखने ही नहीं देती। मन अपनी पुरानी बातें ही दोहराये चला जाता है, थोपे चला जाता है। किसी नये तथ्य का अविष्कार नहीं हो पाता क्योंकि मन तो है अतीत। मन तो है तुम्हारा पिछला अनुभव का जोड़-तोड़। मन तो है तुमने जो अब तक जाना, सुना, समझा। उस सोचे, सुने, समझे को ही मन नये तथ्यों पर आरोपित करता जाता है।

जब तुम किसी गुलाब के फूल को देखकर कहते हो सुंदर! तो तुम क्या कह रहे हो? तुम यह कह रहे हो मैंने जो गुलाब के फूल पहले देखे थे, वे सुंदर थे। उस पुराने अनुभव के आधार पर यह फूल भी सुंदर है। मगर तुम चूक गये। एक बड़ी बात से चूक गये। यह गुलाब का फूल तुमने कभी भी देखा नहीं था, यह बिलकुल नया है। ऐसा फूल पहले कभी हुआ नहीं, फिर कभी होगा नहीं। हर फूल अद्वितीय है, बेजोड़ है, अतुलनीय है। इसलिए तुम अपनी पुरानी जानकारी को बीच में न लाओ अन्यथा इस फूल से चूक जाओगे। और अगर इस फूल से चूकते हो तो इस बात का सबूत देते हो कि पहले तुमने जो फूल देखे होंगे उनसे भी चूके होंगे और आगे तुम जो फूल देखोगे उनसे भी चूकोगे। तुम चूकते ही चले जाओगे। तुम अतीत को बीच में ले आओगे और वर्तमान से छिन्न-भिन्न, तुम्हारा ताल टूट जायेगा। मन निर्णय करता है। मन जौहरी है।

कहते हैं दरिया, रतन अमोलक परखकर रहा जौहरी थाक।

लेकिन उस परमात्मा का अनुभव ऐसा अनुभव है कि जौहरी एकदम ठगकर खड़ा रह जाता है। कुछ कह नहीं पाता, सूझता नहीं, बूझता नहीं।

रतन अमोलक . . . इसलिए उस रतन को, उस परम सम्पदा को मूल्यातीत कहा है—अमोलक। मन उसका मूल्य नहीं आंक पाता। मन कह ही नहीं पाता कुछ। मन एकदम लड़खड़ा जाता है। न कह पाता है सुंदर, न कह पाता शुभ। इतना भी नहीं कह पाता कि परमात्मा, कि सत्य। मन की सारी कहानी एकदम बंद हो जाती है। मन गूंगा हो जाता है। गूंगे केरी सरकरा! उस स्वाद के सामने मन बोल ही नहीं पाता।

उसी स्वाद को खोजो जहां मन गूंगा हो जाता है तभी तृप्ति होगी। जहां तक मन बोलता चला जाता है, जिन-जिन चीजों पर मन लेबल लगा देता है, मूल्य की तख्ती टांग देता है इतने कीमत का है, वहां तक जानना संसार है। जिस क्षण ऐसा कोई अनुभव तुम्हारे भीतर उमगे, ऐसा कोई कमल खिले, ऐसी कोई सुगंध उठे, ऐसे लोक में तुम्हारे पंख तुम्हें ले चलें कि मन एकदम थाक के रह जाय, थका रह जाये, हार के रह जाये . . .।

मन हारता ही नहीं। शरीर हार जाता है, मन नहीं हारता। तुम जानते रोज—दिन भर के थके-मांदे बिस्तर पर पड़े हो शरीर तो थक गया, टूटा जा रहा है, अंग-अंग टूट रहा है, मगर मन है कि चलता जाता है। मन है कि सोचता जाता है। मन नये-नये विचार के पत्ते उगाये चला जाता है। मन थकता ही नहीं। जन्म से लेकर मरने तक मन अनवरत चलता है। मन थकना जानता ही नहीं। शरीर थकता है, नींद की भी जरूरत पड़ती है, मन थकता ही नहीं। मन सदा राजी है काम करने में। मन लगा ही रहता है—सक्रिय। मन कभी निष्क्रिय नहीं होता। जहां मन निष्क्रिय हो जाये, समझना कि आ गया प्रभु का द्वार। वह कसौटी है। वह पहचान है।

कैसे जानोगे कि प्रभु का द्वार आ गया है? प्रभु को पहले तो कभी देखा नहीं, प्रभु का द्वार भी पहले कभी देखा नहीं। प्रत्यभिज्ञा कैसे होगी? दार्शनिक पूछते रहे हैं सदियों से कि समझ लो कि प्रभु को देखा भी तो पहचानेंगे कि यही प्रभु हैं? कैसे? क्योंकि पहले देखा हो तो ही पहचान सकते हो। पहचान कैसे होगी! प्रत्यभिज्ञा कैसी होगी?

दरिया सूत्र दे रहे हैं कि कैसे पहचान होगी! मन थक जाये! परमात्मा को तो नहीं जानते हो लेकिन एक बात जानते हो कि मन कभी नहीं थका। हर चीज पर निर्णय लगा दिया था उसने। हर चीज को नाप लिया था। हर चीज तराजू के पलड़े में आ गई थी। वजन तोल लिया था। मूल्य तोल लिया था। हिसाब-किताब लगा लिया था। जहां मन एकदम हिसाब-किताब न लगा पाये, जहां मन का तराजू बड़ा छोटा पड़ जाये, पूरा आकाश तोलने की बात आ जाये; जहां अचानक मन ठिठक जाये, अवरुद्ध हो जाये मन की सतत प्रक्रिया। जहां विचार एकदम शून्य हो जायें। तुम सोचना भी चाहो और न सोच सको।

सोचना तुम चाहोगे। डरोगे तुम तो। प्रभु द्वार पर खड़ा होगा, सत्य तुम्हें घेरेगा तो तुम बहुत घबड़ा जाओगे। तुम्हारा रोआं-रोआं कांप जायेगा कि यह क्या हो रहा है? इस घड़ी मन धोखा दे रहा है। इस घड़ी तो मन साथ दे। यह घड़ी न चूक जाये। यह अपूर्व घट रहा है और मन कुछ बोलता नहीं। और मन एकदम कहां विलीन हो गया, पता नहीं चलता। तुम तो मन को लाना चाहोगे। लेकिन जैसे अंधेरे को प्रकाश के सामने नहीं लाया जा सकता, ऐसे मन को परमात्मा के सामने नहीं लाया जा सकता। मन और परमात्मा साथ-साथ नहीं होते।

यही पहचान है, यही परख है कि पारखी थक जाये। जहां तक पारखी की चलती है वहां तक संसार है। यह तो बड़ी अनूठी परिभाषा हुई। जहां तक मन चलता वहां तक संसार है। मन की गति संसार है। जहां मन अगति में पहुंच जाता वहीं परमात्मा है।

इससे दूसरी बात भी निकलती है कि अगर तुम किसी तरह मन को अगति में पहुंचा दो तो परमात्मा के सामने खड़े हो जाओगे। यह केवल परिभाषा ही नहीं हुई, इससे विधि भी निकल आती है। इसलिए समस्त ध्यान, समस्त भक्ति है क्या? एक ही प्रक्रिया है। कि किसी तरह मन रुक जाये, अवरुद्ध हो जाये। यह मन का सतत पागलपन, यह मन की गंगा जो बहती ही चली जाती है... बहती ही चली जाती है, रुकना जानती ही नहीं, यह एक क्षण को भी ठिठक जाये, ठहर जाये। तो या तो परमात्मा सामने हो तो मन ठिठकता है, या मन ठिठक जाये तो परमात्मा सामने आ जाता है। तो इसमें परिभाषा भी हो गई कि कैसे पहचानोगे और इसमें विधि भी आ गई कि कैसे उस तक पहुंचोगे!

रतन अमोलक परखकर रहा जौहरी थाक
दरिया तहं कीमत नहीं, उनमन भया अवाक

वहां कीमत ही नहीं। कीमत क्या परमात्मा की? कैसे उसकी कीमत आंको? एक ही है, तो एक ही की कीमत तो नहीं आंकी जा सकती। दो हों तो कीमत आंकी जा सकती है। दो हीरे हों तो तुम कह सकते हो। यह बड़ा, यह छोटा; यह साधारण हीरा, यह कोहिनूर। दो हों तो अंकन हो सकता। तुलना हो सकती है। तो अंकन हो सकता है छोटे-बड़े का। कौन सा हीरा बिलकुल शुद्ध हीरा, और कौन

से हीरे में थोड़ी खोट। तो परख हो सकती है। मगर एक ही है तो कोई परख का उपाय नहीं।

दरिया तहं कीमत नहीं ...

फिर कैसे कीमत जानो ?

फिर कैसे कीमत लगाओ ?

परमात्मा की कोई कीमत नहीं है इसलिए मन को रुक ही जाना पड़ता है। मन बाजार में खूब चलता है। बाजार में हर चीज की कीमत है। जीवन में जहां भी मन उसके पास आता है जो अमूल्य है, अमोलक है, वहीं मन लड़खड़ाता है। जहां तक कीमत है वहां तक मन ठीक से चलता है। कीमत पर मन का पूरा कबजा है। इसलिए बाजार में मन जैसा प्रसन्न होता है, वैसा मंदिर में नहीं होता। बैठते हो मंदिर में, मन सोचता बाजार की है। क्यों ? आखिर मन का ऐसा बाजार से क्या लेना-देना ? मन की गति बाजार में है। वहां उसे पूरी सुविधा है। हर चीज की कीमत है। हर चीज पर लेबल लगा है।

मैं एक बार एक बड़े चित्रकार की चित्र-प्रदर्शनी देखने गया। मेरे साथ एक मित्र थे; दुकानदार हैं, हर चीज को कीमत से तोलते हैं। मैं तो चित्र देखता था, वे चित्रों पर लगी हुई कीमत देखते थे। थोड़ी देर में मुझे लगा कि वे चित्र देख ही नहीं रहे हैं। पांच सौ रुपया, हजार रुपया, पंदरह सौ रुपया ! जहां पांच हजार, वहां जरा ठिठक कर देख लें। जहां पांच सौ लिखा हो वहां से आगे बढ़ जायें। मैंने उनसे पूछा कि तुम कर क्या रहे हो ? तुम चित्र देखने आये कि कीमत देखने आये। तुम अपनी दुकानदारी कहीं बंद करोगे कि नहीं बंद करोगे ! तुम सब जगह दुकानदारी ही चलाओगे ? उनके लिये एक ही बात का मूल्य है। मूल्य का ही बस मूल्य है।

आदमी को भी ऐसा आदमी देखेगा तो यह देखता है किसका कितना मूल्य है। यह आदमी प्रधानमंत्री है, यह आदमी चपरासी है, तो दो कौड़ी का। चपरासी को तो देखता ही नहीं। राष्ट्रपति को भर देखता है। राष्ट्रपति भी कल राष्ट्रपति नहीं रह जायेंगे तो यह आदमी नहीं देखेगा। चपरासी कल राष्ट्रपति हो जायेगा तो यह आदमी देखेगा। यह आदमी आदमी को देखता ही नहीं। इसकी आंखों में आदमी की कोई परख ही नहीं इस आदमी को तो सिर्फ कीमत। हर बात में कीमत।

तुम देखते हो ना ! किसी आदमी से मिले, ट्रेन में मिलना हो गया किसी से, तुम जो बातें पूछते हो . . . एक-आध दो बात तुम पहले पूछते हो, फिर जल्दी से असली बात पूछते हो–– कितनी तनख्वाह मिलती है ? कैसा धंधा चलता है ? असली बात ! एक-आध दो इधर-उधर की पूछीं कि कहां रहते हो, कहां से आते

हैं ? मगर यह तो गौण है। एकदम से कीमत पूछो तो जरा बेहूदगी लगती है।

पश्चिम में लोग किसी से भी नहीं पूछते कि कितनी तनख्वाह मिलती है। वह ज्यादा शिष्टाचार है। कीमत की बात ही पूछना अशिष्ट है। हो सकता है बिचारा आदमी प्रायमरी स्कूल में मास्टर हो और कहना पड़े कि सौ रुपये मिलते हैं। और इसको भी दीनता का अनुभव हो। और इसको ही हो ऐसा नहीं; जैसे यह कहेगा कि सौ रुपये मिलते हैं, स्कूल में मास्टर हूं, तुम्हारे लिये यह आदमी बेमूल्य हो गया। आगे अब इससे बात नहीं चलेगी। बात ही खतम हो गयी। यह भी कोई आदमी है ! स्कूल में मास्टर है। इससे तो कुछ भी होता ! पुलिस-इन्स्पेक्टर होता तो भी बेहतर था। कुछ तो जान होती ! जैसे ही तुम पूछते हो किसी आदमी से कि कितनी तनख्वाह मिलती है, वैसे ही तुम पूछ रहे हो कि कितनी कीमत ! कितना मूल्य ?

इस जिंदगी में भी तुम कई बार ऐसी चीज के करीब आ जाते हो, जिसका मूल्य नहीं होता। लेकिन तब तुम उससे चूक जाते हो। क्योंकि तुम ...वह तो परख ही नहीं तुम्हारे मन में। अगर तुम किसी संतपुरुष के पास आ जाओ तो तुम नहीं परख पाओगे। क्योंकि वहां तुम्हारा मूल्य-निर्धारक मन गति नहीं करता।

अगर सुबह सूरज उगता हो और एक सुंदर सुबह चारों तरफ फैलती जाती हो और प्राची पर लाली हो और आकाश बड़े गीत गाता हो, बड़े रंगों में नाचता हो, तुम नहीं देखोगे। उसका कोई मूल्य नहीं है, देखना क्या है ? मैंने उन मित्र को कहा जो मेरे साथ चित्र की प्रदर्शनी देखने गये थे, मैंने कहा कि तुम सुबह कभी सूरज को उगते देखते ? वहां तो कोई लेबल नहीं लगा होता, वहां तुम्हें बड़ी मुश्किल होगी। जब कीमत ही नहीं तो क्या देखना ? कभी रात तारों टंकी आकाश के रहस्यों को देखते हो ? वहां कोई कीमत नहीं लगी है, तुम क्या देखोगे ? उन्होंने मुझसे कहा–– ईमानदार आदमी हैं–– रास्ते में लौटते वक्त कहा आप ठीक ही याद दिलाया। मैं कभी सुबह नहीं देखा और मैंने कभी रात भी नहीं देखी। शायद यही कारण होगा, कि मैं देखता ही उतनी चीज हूं जिसकी कीमत हो।

दरिया तहं कीमत नहीं ...

तो अभ्यास करो थोड़ा अमोलक को देखने का। यहां भी कोई कीमत नहीं है। जब तुम गुलाब का फूल देखते हो, कहते हो कि चार आने में मिल जाता है बाजार म, तो तुम चूक गये। आदमी एक भी गुलाब का फूल पैदा कर पाया है, जो तुम कीमत आंक रहे हो ? चार आने देने से तुम एक गुलाब का फूल पैदा कर पाओगे ? चार करोड़ रुपये से भी तुम एक गुलाब का फूल पैदा नहीं कर पाओगे।

सारी मनुष्य जाति की क्षमता लगाकर भी तुम एक गुलाब का फूल पैदा नहीं कर पाओगे। आदमी चांद पर पहुंच गया है, यह एक बात है। अभी घास का एक तिनका भी पैदा नहीं कर पाया है, इसे मत भूल जाना। आदमी ने जो भी सफलता पाई है, सब मुर्दा चीजों पर है। अभी जीवन पर उसकी एक भी सफलता नहीं; होगी भी कभी नहीं। क्योंकि घास का एक तिनका भी पैदा नहीं होगा।

जीवन अमोलक है। गुलाब के फूल की क्या कीमत? कैसी कीमत? कैसे आंकते हो? अगर गौर से देखोगे तो पाओगे, गुलाब के फूल में अमोलक बैठा है। चांद निकला, इसकी क्या कोई कीमत हो सकती है? एक बच्चा खिलखिला कर हंसा, इस खिलखिलाहट की कोई कीमत हो सकती है? करोड़ रुपये देकर भी किसी बच्चे को तुम खिलखिलाने के लिये राजी नहीं कर सकते। वह अगर खिलखिला भी दे, तो यह खिलखिलाहट न होगी। वह सिर्फ बाजार की होगी, अभिनेता की होगी। रुपये के लोभ में खिलखिला देगा लेकिन होंठ से गहरी न होगी। होंठ पर रंगी होगी, हृदय से न आयेगी। प्राणों की उत्फुल्लता न होगी। उसमें परमात्मा का वास न होगा।

किसी की आंख से एक आंसू टपकते देखा? उस आंसू की क्या कीमत? उस एक छोटे से आंसू को आदमी पैदा नहीं कर सकता। बस एक छोटे से आंसू में सारे महाकाव्य छिपे हैं। उस एक छोटे से आंसू में मनुष्य की सारी जीवन-व्यथा छिपी हो सकती है। मनुष्य के सारे जीवन का आनन्द, अहोभाव छिपा हो सकता है। उस एक छोटे से आंसू में आदमी की सारी बेबसी छिपी हो सकती है। उस एक छोटे से आंसू में आदमी की सारी प्रार्थना छिपी हो सकती है। एक आदमी की ही नहीं, सारी मनुष्यता की प्रसन्नता और प्रार्थना और दुख एक छोटे से आंसू में छुपा हो सकता है।

नहीं, हमारी आदत खराब हो गई। हम हर चीज में मूल्य खोजते हैं। और जहां हमें मूल्य नहीं दिखता, हम देखते ही नहीं। हम सोचते हैं, यहां क्या रखा है? कुछ मूल्य तो होना चाहिये।

मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे पूछते हैं ध्यान तो करेंगे, लाभ क्या होगा? लाभ। ध्यान से भी लाभ चाहते हैं। तनख्वाह में बढ़ोतरी हो जायेगी, कि दुकान ज्यादा ठीक से चलेगी ... लाभ क्या होगा? तुम मंदिर में भी बैंक की भाषा चलाना चाहते हो? तुम पूछते हो कि ध्यान तो करेंगे लेकिन इससे बैंक बैलेंस बढ़ेगा कि नही बढ़ेगा? तुम रुपये में ध्यान को भी कूतना चाहते हो?

एक सम्राट महावीर के पास पहुंच गया था। बड़ा सम्राट था। उसने सब पा लिया जो पाने योग्य था। लेकिन एक बात उसे खटकती थी——ध्यान। कभी

कभी उसका वजीर उसको बड़ी चोट पहुंचा देता था। वह कहता कि महाराज और सब तो ठीक है, ध्यान! धन तो पा लिया, सो ठीक है। धन तो कोई भी पा लेता है। ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे पा लेते हैं; इसमें क्या रखा है? ध्यान? उसे बड़ी चोट लगती थी कि ध्यान क्या बला है? फिर उसने खबर सुनी कि महावीर का आना हुआ। परम ध्यानी का आगमन हुआ है, तो वह गया। उसने महावीर से कहा; महाराज, इतनी कृपा करो, ध्यान दे दो। जो भी कीमत हो ले लो, सब चुकाने को राजी हूं। यह वजीर मेरी छाती में तीर छेदता रहता है। मैं उससे यह भी नहीं पूछ सकता कि ध्यान क्या है? क्योंकि मैं यह भी स्वीकार नहीं कर सकता कि मुझे पता नहीं कि ध्यान क्या है! मेरा अहंकार बड़ा है। अब आपसे निवेदन करता हूं, ध्यान दे दो। किसी भी तरह ध्यान दे दो। और जो तुम कहो, मैं देने को राजी हूं। पूरा राज्य भी देने को राजी हूं। मैंने अपनी जिंदगी में हार मानी नहीं। जो चीज पानी चाही, पाकर रहा। अब यह ध्यान पाकर रहूंगा। सब लगाने को राजी हूं।

महावीर हंसे। इस पागल को कोई कैसे समझाये कि कोई ऐसी चीजें भी हैं जीवन में जो खरीदी नहीं जा सकतीं। जिनका कोई मूल्य नहीं होता। तुम सारा राज्य भी दे दो तो भी ध्यान का एक तिनका भी नहीं खरीद सकते। ध्यान की एक बूंद भी नहीं खरीद सकते। मगर इस पर दया भी आई। उन्होंने कहा ऐसा करो, मेरे पास तो राज्य था, वह मैं छोड़ चुका। अब राज्य की मुझे कोई चाहत नहीं है। तुम्हारे ही नगर में मेरा एक श्रावक, मेरा एक भक्त है। वह ध्यान को उपलब्ध हो गया। तुम उससे मांग लो। वह गरीब आदमी है, शायद बेचने को राजी हो जाये। मेरे तो बेचने का कोई कारण नहीं। तुम जो राज्य दोगे वह तो मैं छोड़ ही चुका हूं, पहले ही छोड़ चुका हूं। इसलिए मैं तो बेचनेवाला नहीं।

महावीर ने खूब मजाक किया। मैं तो बेचूंगा नहीं। इस आदमी से यह भी उन्होंने नहीं कहा कि यह बेचने की बात ही नहीं। इस आदमी को ठीक से शिक्षा देना चाहते थे। ठीक जगह से शिक्षा देना चाहते थे। तो उन्होंने कहा, कि जल्दी से नाम बता दें। अगर मेरे ही राज्य में रहता है, मेरी राजधानी में रहता है तब तो कोई बात नहीं। अभी जाकर ले लूंगा। तत्क्षण उसने उस आदमी को बुलवाया और कहा, तुझे जो लेना हो ले ले, लेकिन यह ध्यान दे दे। वह आदमी हंसने लगा और उसने कहा, उन्होंने मजाक किया, आप समझे नहीं। मैं गरीब हूं तो आप अगर चाहें तो मेरी जान ले लें, प्राण ले लें, जीवन ले लें, मैं तैयार हूं। लेकिन ध्यान? आप बात क्या कर रहे हैं? मैं दूं भी कैसे? देना भी चाहूं तो दूं कैसे? ध्यान कोई चीज तो नहीं, जो खरीदी जा सके। सम्राट ने कहा, देख! कीमत कुछ

भी हो, छिपा मत। चालबाजियां मत कर, कीमत बोल। जितनी मांगेगा उससे दोगुनी दूंगा। मगर कीमत की बात कर।

कैसे कोई इन पागलों को समझाये कि कुछ चीजें हैं जिनकी कोई कीमत नहीं होती! प्रेम की, ध्यान की, कोई कीमत होती है? इन्हें कोई खरीद सकता है?

तुम अपने जीवन में अगर अमोलक को देखना शुरू कर दो तो तुम तैयारी करोगे परमात्मा के पास जाने की। अमोलक की सीढ़ियां चढ़कर ही कोई परमात्मा के पास पहुंचता है।

दरिया तहं कीमत नहीं, उनमन भया अवाक। चूंकि कीमत कोई भी नहीं थी वहां, मन कुछ भी न सोच पाया। उनमन भया अवाक! मन एकदम से एक क्षण में अमन हो गया। मन था अभी तक; मन यानी मनन, मन यानी सोचविचार। मनन की प्रक्रिया का नाम मन। जो सोचता जाता है, मनन करता जाता है, उस प्रक्रिया का नाम मन। उनमन भया अवाक––वह जो मन अब तक सोचता ही रहता था और जिसको चेष्टा करके भी रोका न जा सकता था कि रुक जाये। जो रुकने को राजी न होता था, जो सदा मनन ही में लगा रहता था। जिसकी मनन की धारा जागते-सोते चलती ही रहती थी। अनवरत जो धारा बहती थी। वह अचानक ठहर गई। उनमन भया अवाक। और मन अमन हो गया।

यह उनमन शब्द ठीक है, जो झेन फकीर जिसको नो-माइंड कहते हैं। जिसको कबीर ने अमनी-दशा कहा है। उनमन भया अवाक। एकदम, एक क्षण में, एक आघात में, धारा अवरुद्ध हो गयी, मनन ठहर गया। मनन ठहर गया तो मन ठहर गया। जहां मनन न रहा वहां मन न रहा। उनमन भया अवाक। और हो गया अवाक! आश्चर्य-मुग्ध पहली बार।

अवाक शब्द बहुत बहुमूल्य है। उसे ठीक से उस पर चिंतन करना, मनन करना, ध्यान करना। अवाक शब्द का अर्थ है––ऐसा आश्चर्य कि हठात तुम ठगे रह गये। अवाक! बोलती बंद हो गई। वाक खो गया, वाणी खो गयी। बोलना चाहो तो बोल न सको। हिलना चाहो तो हिल न सको। ऐसा विराट आश्चर्य सामने खड़ा हो गया। उस आश्चर्य के सामने खड़े होने से जैसे सांस तक बंद हो गयी। अवाक! एक क्षण को सब स्तब्ध हो गया, मौन हो गया।

रतन अमोलक परखकर, रहा जौहरी थाक
दरिया तहं कीमत नहीं, उनमन भया अवाक

इस सूत्र में दोनों ही बातें हैं। परमात्मा सामने आ जाये तो ऐसा होता है। ऐसा हो जाये तो परमात्मा सामने आ जाता है। तो तुम थोड़ा आश्चर्य खोजना शुरू करो।

मेरे पास लोग आते हैं, वह कहते हैं परमात्मा कैसे खोजें? मैं कहता हूं तुम परमात्मा को तो छोड़ो। परमात्मा पर बड़ी कृपा होगी तुम्हारी। तुम परमात्मा को तो मत खोजो। क्योंकि तुम जिस परमात्मा को खोज रहे हो, वह है ही नहीं। तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारे मन की ही धारणा है। तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारे मन की तसवीर है। तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारे मन का ही खेल और जाल और जंजाल है। तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे मन की ही धारा को अनवरत रखेगा। तुम्हारा परमात्मा बहुत परमात्मा नहीं है। तुम्हारा परमात्मा यानी हिंदू का, तुम्हारा परमात्मा यानी मुसलमान का। तुम्हारा परमात्मा परमात्मा नहीं है। तुम्हारा परमात्मा परमात्मा हो भी कैसे सकता है? अभी तुमने जाना ही नहीं है। अभी अज्ञान में जो तुमने प्रतिमा अपने मन में संजो ली है, वह अज्ञान की ही प्रक्रिया है। जानोगे तो सारी प्रतिमायें गिर जायेंगी।

तो तुम परमात्मा को तो छोड़ दो। तुम मुझसे कोई दूसरी बात पूछो। तुम यह पूछो कि हम आश्चर्य-अवाक कैसे हों? यह बड़ी और बात है। परमात्मा को खोजने में क्या करोगे? अगर राम तुम्हारी धारणा में बैठे हैं, धनुर्धारी राम! तो तुम धनुर्धारी राम को खोजते फिरोगे। वो कहीं तुम्हें मिलेंगे नहीं। और अगर कभी मिल जायें तो सावधान रहना। क्योंकि वह तुम्हारी कल्पना का ही फैलाव होगा। अगर बैठे ही रहे, बैठे ही रहे, सिर फोड़ते रहे दीवालों से और चिल्लाते रहे राम-राम-राम––और धनुर्धारी राम की कल्पना करते रहे कि अब प्रगटो; अगर बहुत ही शोरगुल मचाया तो तुम्हारा मन तुम्हीं को सांत्वना देने के लिये धनुर्धारी राम की प्रतिमा को निर्मित कर लेगा। वह तुम्हारा ही प्रक्षेपण है। यह राम किसी काम के नहीं। इनको धक्का दो तो गिर जायेंगे। इनका धनुषबाण इत्यादि किसी काम का नहीं। रामलीला वाला धनुषबाण है। बस, सब ढोंग है। तुम्हारे मन का ही जाल है।

ऐसा हुआ एक रामलीला में कि जो आदमी रावण का पार्ट कर रहा था, मैनेजर नाराज हो गया। तो उसने कहा, देखेंगे, वक्त पर मजा चखा देंगे। वक्त पर उसने मजा चखा दिया। जब सीता के वरण की कहानी आई और धनुष रखा गया और लंका से दूतों ने आकर चिल्लाया कि रावण! हे रावण! तू यहां क्या कर रहा है! लंका में आग लगी हुई है। उसने कहा लगी रहने दो। इस बार लंका जले तो जले जाये, मगर सीता को लेकर जायेंगे। बड़ी घबड़ाहट फैल गयी। क्योंकि उसे जाना चाहिये नियम से। और वह सीता ही ले जाये तो रामलीला खतम। और वह तो किसी की सुने ही नहीं और लोग तो ठगे ही रह गये कि अब करना क्या है? जनक जी भी बहुत घबड़ाये। रामचंद्र जी भी इधर-उधर बगलें झांकने

लगे। लक्ष्मण को भी पसीना आ गया कि यह तो मुश्किल मामला हो गया। किसी को समझ में न आये कि क्या करें! इस बीच वह उठा और उसने धनुषबाण तोड़ दिया। अब धनुषबाण क्या था, वो जो रामलीला का धनुषबाण था, कोई असली का तो था नहीं! उसने तोड़ दिया और कहा जनक से कि निकाल सीता कहां है? उसने सारी रामलीला खराब कर दी। वह तो जनक बूढ़ा आदमी था, पुराना खिलाड़ी था। बहुत दिन से यही काम करता था। उसने कहा कि ठहर। भृत्यो! मालूम होता है तुम मेरे बच्चों के खेलने का धनुष उठा लाये। असली धनुष लाओ, पागलो! तब परदा गिराया, किसी तरह रावण को धक्का देकर बाहर निकाला। फिर असली धनुष लाया गया। फिर नकली रावण लाया गया। दूसरा रावण पकड़ना पड़ा क्योंकि यह रावण तो काम न आये।

तुम्हारी कल्पना में जो राम खड़े होंगे, वह तुम्हारा ही खेल है। वे तुम्हारी ही धारणायें हैं। या तुम चाहो तो कृष्ण के भक्त हो तो कृष्ण खड़े हो जायेंगे, बांसुरी बजायेंगे। और अगर तुम क्राइस्ट के भक्त हो तो क्राइस्ट सूली पर लटके खड़े हो जायेंगे और उनके हाथों से तुम्हें खून बहता हुआ मालूम पड़ेगा। कगर उस खून के धब्बे तुम्हारे कपड़ों पर भी नहीं पड़ेंगे, हृदय की तो बात और। वह तो सिर्फ कल्पना में ही रहेगा।

परमात्मा का सच्चा खोजी यह नहीं पूछता कि मैं परमात्मा को कैसे खोजूं? क्योंकि वह यह कहेगा परमात्मा तो मुझे मालूम ही नहीं है, खोजने की बात कैसे उठाऊं? यह तो बात ही बेईमानी की हो गई। परमात्मा ही मालूम होता तो खोजता क्यों? परमात्मा मालूम नहीं है इसलिए तो खोजना चाहता हूं। इसलिए मैं यह कैसे यह बात शुरू करूं कि परमात्मा को खोजना है?

वह इतना ही कहेगा, जीवन अज्ञात है। इस अज्ञात जीवन में मैं कैसे प्रवेश करूं? कैसे जानूं, जो है, कैसे जानूं? जो है, उसका कैसे साक्षात्कार हो? वह जो है को नाम भी नहीं देगा––कृष्ण, राम, क्राइस्ट। नहीं, वह कहेगा, जो है। यह जो चारों तरफ विराट फैला है, यह क्या है? इसे मैं कैसे जानूं? इसका द्वार कहां है?

आश्चर्य द्वार है। इसलिए छोटे बच्चे परमात्मा के ज्यादा निकट होते हैं। क्योंकि उनकी आंखें अब भी आश्चर्य-विमुग्ध होती हैं। स्त्रियां पुरुषों के बजाय परमात्मा के ज्यादा निकट होती हैं। उनकी आंखें आश्चर्य से इतनी रिक्त नहीं होतीं, जितनी पुरुषों की होती हैं। पंडित के बजाय अज्ञानी परमात्मा के ज्यादा निकट होते हैं। क्योंकि उनकी आंखें अभी भी रहस्यपूरित होती हैं। अभी भी सब रहस्य समाप्त नहीं हो गया। पंडित ने तो सब जान लिया। वह तो कहता है, मुझे सब मालूम है। जिसे सब मालूम है उसे कुछ भी मालूम नहीं होगा। इसलिए

पांडित्य से बड़ा पाप नहीं है। क्योंकि पांडित्य आश्चर्य को नष्ट कर देता है। और आश्चर्य द्वार है। अगर यह भ्रांति पैदा हो गई कि मुझे सब मालूम है, क्योंकि मैं वेद जानता, कुरान जानता, बाइबिल जानता, तो तुम परमात्मा से चूकते जाओगे। वेद-कुरान रखे बैठे रहना। जैसे वेद-कुरान मुर्दा हैं वैसे तुम भी उनके पास बैठे-बैठे मुर्दा हो जाओगे।

परमात्मा को खोजना हो तो यह जो जीवन तुम्हारे चारों तरफ फैला है, यह जो पक्षियों के कंठ में, यह जो वृक्षों की शाखाओं में, यह जो फूलों के रंग में, यह जो सागर की तरंगों में, यह जो पहाड़ों की ऊंचाइयों में, यह जो घाटियों की गहराइयों में, यह जो चारों तरफ विस्तीर्ण है, यह जो विराट ... चारों तरफ से तुम्हें घेरा है। बाहर और तुम्हारे भीतर भी जो बैठा है, इसको ... कैसे हम संबंध जोड़ें इससे?

आश्चर्य से संबंध जुड़ता है। इसलिए आश्चर्य-विमुग्धता धार्मिक आदमी का द्वार है। आश्चर्य-विमुग्धता! आश्चर्य की आंखों से देखो, ज्ञान की आंखों से नहीं। निर्दोष आश्चर्य से देखा. तो तुम्हें हर जगह चरण-चिन्ह मालूम पड़ेंगे। छोटी-छोटी चीजें रहस्यपूर्ण हो जायेंगी। रहस्यपूर्ण हैं। सिर्फ तुमने ही मान रखा है कि रहस्यपूर्ण नहीं।

आदमी जानता क्या है? एक भी बात तो जानते नहीं हम। सारी मनुष्य जाति के इतिहास में जो हमने जाना है, वह है क्या? कुछ भी तो जाना नहीं। एक छोटे से वृक्ष के पत्ते का राज भी पता नहीं। बीज कैसे अंकुर बनता है, यह भी पता नहीं। रोटी कैसे जाकर खून बन जाती है, मुर्दा चीज कैसे जीवंत हो जाती है, यह भी पता नहीं। एक छोटा बच्चा मां के पेट में कैसे बढ़ता है यह भी पता नहीं। एक छोटा सा विचार तुम्हारे भीतर कैसे तरंगित होता है यह भी पता नहीं। कुछ भी पता नहीं है।

ज्ञानियों ने कहा है, अज्ञान द्वार है। क्यों? उपनिषद कहते हैं, जो जानता है, जानना कि नहीं जानता। जो नहीं जानता, जानना कि जानता होगा। क्यों? नहीं जानने में ऐसी क्या गुणवत्ता है? नहीं जानने की गुणवत्ता है –– आश्चर्य। क्योंकि जब तुम नहीं जानते, तुम्हें हर चीज पुलक से भर देती है। हर चीज आश्चर्य से भर देती है।

किसी छोटे बच्चे के साथ घूमने गये हो समुद्र के तट पर, या पहाड़ों में? कितने प्रश्न उठाता है छोटा बच्चा! हर चीज–– देखा मोर, इनके पंखों पर इतने रंग क्यों हैं? यह देखा एक पक्षी को उड़ता और पूछता है मैं क्यों नहीं उड़ सकता? आदमी क्यों नहीं उड़ सकता? बेबूझ सवाल उठाता है। तुम घबड़ाते भी हो। तुम

उसे चुप भी करना चाहते हो। तुम कहते हो, चुप हो जा। बड़ा होगा तो सब जान लेगा। तुम्हें भी पता नहीं बड़े होकर। तुम सिर्फ उसे चुप कर रहे हो, ऐसे तुम्हारे पिता ने तुम्हें चुप किया था। और तुम्हें बेचैनी क्यों होती है छोटे बच्चे के प्रश्नों से? बेचैनी इसलिए होती है कि तुम्हें भी उत्तर तो मालूम नहीं। यह बच्चा तुम्हारे ज्ञान को खंडित करता है। यह बच्चा तुम्हारे ज्ञान पर शंका और संदेह उठाता है। यह बच्चा तुम्हारे ज्ञान पर प्रश्नचिन्ह लगाता है, कि अरे पिताजी! आपको भी पता नहीं कि मोर के पंख पर इतने रंग क्यों हैं? आपको और पता नहीं? यह आपके अहंकार को नीचे घसीट रहा है। यह कह रहा है अरे! तुम भी फिर मेरे ही जैसे हो! जैसा मैं अज्ञानी, वैसे तुम अज्ञानी! नाहक का ढोंग बांधते हो, नाहक जोर-जबरदस्ती दिखलाते हो कि तुम्हें पता है। इसलिए तुम बच्चे से कहते हो, बड़ा हो जायेगा तुझे भी पता होगा।

बड़े होने से किसी को पता नहीं होता। बड़े होने से एक ही बात हो जाती है कि बड़े होने पर आदमी अहंकारी हो जाता है और नहीं पता है यह कहने में असमर्थ हो जाता है, बस! वह भी कहेगा हां, कि मुझे पता है। अपने बेटों के सामने उसको भी अपनी हिम्मत तो कायम रखनी पड़ेगी। नहीं तो छोटे बच्चे खतरनाक हैं। छोटे बच्चों को परमात्मा खूब सिखा-पढ़ा कर भेजता है कि जिन-जिन का ज्ञान हो उनको डगमगाना। जो-जो अकड़ गये हों ज्ञान में, उनको जरा हिलाना। कहते हैं, बच्चा जब तक नहीं बोलता तब तक परमात्मा के बहुत करीब होता है।

कल मैं एक अनूठी किताब देख रहा था। आइन्स्टीन के जीवन पर है। लेखक ने एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही है। आइन्स्टीन तीन साल का हो गया तब तक बोला नहीं। कई बच्चे देर से बोलते हैं, यह कोई बड़ी बात नहीं। लेकिन लेखक ने यह बात उसमें उठाई है कि शायद इसीलिए जीवन में वह इतना बड़ा वैज्ञानिक हो सका क्योंकि तीन साल तक चुप रहा, बोला नहीं। वह तीन साल तक आश्चर्यविमुग्ध रहा। वह आश्चर्यविमुग्धता ही उसके भीतर व्यक्तित्व बन गई, उसकी प्रतिभा बन गई।

यह बात मुझे जंची। यह बात ठीक है। यह बात सच है। इसलिए तो महावीर बारह वर्ष तक मौन हो गये जंगल में जाकर। तुम क्या सोचते हो, किसलिए मौन हो गये? मौन होने का मतलब क्या है? मौन होने का अर्थ है, पांडित्य का त्याग। मौन होने का अर्थ है, भाषा का त्याग। भाषा में सारा ज्ञान है। जब भाषा गई तो ज्ञान गया। इस तरह किसी जैन ने सोचा नहीं कि महावीर मौन क्यों हो गये! मौन होने का मतलब है कि भाषा त्याग दो। भाषा त्याग दी मतलब जो भी जानते थे, वह त्याग दिया। जब जानना त्याग दिया जाता है तो आश्चर्य का आविर्भाव

होता है। तो फिर से बालक हो गये। नव जन्म हुआ। द्विज बने। मौन दिज बनाता है। बारह वर्ष अपूर्व आनंद लिया होगा महावीर ने। बारह वर्ष लंबा समय है। बारह वर्ष में बिल्कुल उन्होंने सारी धूल झाड़ दी। " रंजी सास्तर ग्यान की "। एकदम निष्कपट, निष्कलुष, निर्दोष बालक की तरह पैदा हुए। उसी निर्दोषता में जाना जाता है। तो जब जाना जाता है तब मन अवाक हो जाता है। तुम अवाक होना सीख जाओ तो तुमने जानने की कला सीख ली।

धरती गगन पवन नहीं पानी, पावक चंद न सूर
रात दिवस की गम नहीं जहां ब्रह्म रहा भरपूर

और कहते हैं दरिया, वहां न तो धरती है, न गगन है, न पानी है, न पवन है, न अग्नि है, न चांद है, न सूरज है। वहां सब भिन्न-भिन्न बातें एक अभिन्न में खो जाती हैं। वहां सारी सीमायें जो हमने अलग-अलग कर रखी हैं कि यह रही धरती, यह रहा आकाश ...।

तुमने कहीं देखी जगह, जहां धरती और आकाश अलग होते हैं? कहां अलग होते हैं? आकाश धरती में समाया है, धरती आकाश में है। अलग कहां है? यहां अलग कुछ है ही नहीं। सभी चीजें जुड़ी हैं। अभी वृक्ष पर एक फल लगा, कल तुम उसका भोजन कर लोगे। अभी जो वृक्ष में था वह कल तुम में हो जायेगा। फिर एक दिन तुम मरोगे। और तुम्हारी लाश जमीन में दबा दी जायेगी। और वृक्ष खड़ा है, राह देख रहा है कि तुमने उसके फल खाये, वह अब तुम्हारे फल खा ले। वह जल्दी से तुम्हारी लाश में से जो-जो पाने योग्य है, चूस लेगा। क्या अलग है? यहां हम जुड़े हैं। मैंने सांस ली, कहता था मेरी सांस, कह भी नहीं पाया कि तुम्हारी हो गई। तुमने सांस ली, अभी तुम ले भी न पाये थे कि बाहर निकल गई; दूसरे की हो गई, पड़ोसी की हो गई। हम जुड़े हैं। यह सारा अस्तित्व एक साथ तरंगित है। यह एक ही सागर है।

धरती गगन पवन नहीं पानी, पावक चंद न सूर

सारे भेद गिर गये। अब तय करना मुश्किल है कि क्या अग्नि है, और क्या वायु है और क्या धरती है और क्या आकाश!

कबीर ने कहा है, "एक अचंभा मैंने देखा नदिया लागी आगी।" यही बात कही है। कबीर अपने ढंग से कहते हैं। कबीर के ढंग बड़े अनूठे हैं, उलटबांसी हैं। "एक अचंभा मैंने देखा नदिया लागी आगी!" नदिया में आग लगी! अब नदिया में हमने आग लगी कभी नहीं देखी। किसी ने भी नहीं देखी। नदिया में कहीं आग लगती है? तो कबीर यह कह रहे हैं, जिनका अभी मिलन नहीं होता है, उनको मिलते देखा है। जिनको कभी मिलते नहीं देखा, उनको मिलते देखा है। जीवन-

मृत्यु को साथ नाचते देखा है। "एक अंचभा मैंने देखा नदिया लागी आगी।"

धरती गगन पवन नहीं पानी, पावक चंद न सूर
रात दिवंस की गम नहीं, जहां ब्रह्म रहा भरपूर

और जहां ब्रह्म भरपूर है, वहां इतनी भी जगह नहीं है कि रात और दिन का द्वैत भीतर प्रविष्ट हो जाये। दो की वहां जगह नहीं है। रात और दिन प्रतीक हैं दो के, द्वैत के, द्वंद्व के। चाहे जीवन और मृत्यु कहो, चाहे सुख-दुख कहो, चाहे रात-दिन कहो, चाहे सर्दी-गर्मी कहो। दो की वहां कोई गुंजाइश नहीं है। इतनी भी जगह नहीं है दो को, कि जरा सी जगह पा जायें और सरक जायें भीतर। जहां ब्रह्म रहा भरपूर। जहां ब्रह्म की पूरी वर्षा होती है वहां दो को कोई जगह नहीं। वहां बस एक है।

शबे फुरकत में सदा, मायले बेदाद रहे
मूरित-ए-जुल्मो सितम खस्ता औ बरबाद रहे
इश्क के गम में सदा, बादिल-ए-नाशाद रहे
हालत-ए-रंजो अलम, क्यों न हमें याद रहे
आंख से लख्ते जिगर हमने टपकते देखे
तेरे हर रंग में एक नाच है, रानाई है
नक्श हर दिल में तेरे सूरते-ए-रक्ताई है
देखता हूं जिसे मैं वह तेरा सौदाई है
एक आलम तेरे इस हुस्न का सेदाई है
जिसपे मोती से पसीने के चमकते देखे
मेरे दिल में निहां आतिश-ए-उल्फत तेरी
मेरे रग-रग में है पैंबस्ता मुहब्बत तेरी
मैं समझता हूं अदायें है कमायत तेरी
मुझ पे रोशन है हकीकत तेरी, ताकत तेरी
दिल हजारों तेरी उल्फत में कसकते देखे
साकिया, जाम-ए-मयवस्ल पिला दे मुझको
होश लेकर अभी दीवाना बना दे मुझको
साज को छेड़कर एक गीत सुना दे मुझको
मय-ए-गुलरंग के सागर वो पिला दे मुझको
अश्क ने जो तेरी महफिल में छलकते देखे
साकिया, जाम-ए-मय-ए-वस्ल पिला दे मुझको

ओ साकी, मिलन की मदिरा मुझे पिला दे। मिलाप की मदिरा मुझे पिला दे। जहां आलिंगन घटित हो जाये, जहां हम मिलें और एक हो जायें, ऐसी शराब मुझे पिला दे।

साकिया जाम-ए-मय-ए-वस्ल पिला दे मुझको

जैसे दो प्रेमी किसी प्रेम के गहन क्षण में एक हो जाते हैं—वस्ल! ऐसा घट जाये। ऐसी बेहोशी मुझे पिला दे। क्योंकि मेरे होश में तो न घटेगा। मेरे होश में तो न घटेगा। मेरे होश में तो मैं दूरी बचाये रखूंगा।

साकिया जाम-ए-मय-ए-वस्ल पिला दे मुझको
होश लेकर अभी दीवाना बना दे मुझको

यह होश तो महंगा है, यह तू ले ले। यह होश तो मेरी मुश्किल है, यह तू ले ले। इस होश के कारण ही तो मैं अलग-अलग बना हूं, यह तू ले ले। यह होश की समझदारी मुझसे छीन ले। मुझे बेहोशी की नास समझी दे दे। भक्त ने यही मांगा है सदा, मुझे बेहोशी की नास समझी दे दे। यह समझदारी तू रख। यह तू ही संभाल। यह ज्ञान तू संभाल। मुझे अज्ञान दे दे। मुझे निर्दोष अज्ञान दे दे।

साकिया जाम-ए-मय-ए-वस्त पिला दे मुझको
होश लेकर अभी दीवाना बना दे मुझको
साज को छेड़कर एक गीत सुना दे मुझको
मय-ए-गुलरंग के सागर को पिला दे मुझको

रंगीन मदिरा में मुझे डुबा दे

अश्क ने जो तेरी महफिल में छलकते देखे

अगर तुम परमात्मा की महफिल को गौर से देखो तो सब तरफ तुम्हें मदिरा छलकती हुई दिखाई पड़ेगी। सिर्फ आदमी चूका जाता है।

अश्क ने जो तेरी महफिल में छलकते देखे

फूल में उसकी मदिरा है। पक्षियों के कंठ में उसकी मदिरा है। आदमी को छोड़कर सारा जगत उसकी मदिरा में तल्लीन है। सारा जगत उसके गीत को सुन रहा है, आदमी को छोड़कर।

आदमी की क्या अड़चन है? आदमी का क्यों ऐसा दुर्भाग्य है? जो सौभाग्य हो सकता था वही दुर्भाग्य बन गया है। सौभाग्य हो सकती थी यह बुद्धि, अगर यह तुम्हें और आश्चर्य की तरफ ले जाती। यह बुद्धि दुर्भाग्य बन गई क्योंकि इसने सारे आश्चर्य को खंडित कर दिया। यह बुद्धि तुम्हें आश्चर्य के द्वार से परमात्मा तक ले जाने का परम राज बन सकती थी। मगर अधिक लोगों के लिए यह बुद्धि ही परमात्मा के और मनुष्य के बीच दीवार बन गयी। यह बुद्धि दुधारी तलवार है। यह तुम्हें बचा भी सकती थी, यह तुम्हें काट भी सकती है। जैसे छोटे बच्चे

के हाथ में कोई तलवार दे दे, खतरा ही होगा, लाभ नहीं होनेवाला। ऐसी ही कुछ हालत आदमी के साथ है। अभी तक आदमी बुद्धि का ठीक उपयोग नहीं सीख पाया। बुद्धि से सिर्फ अहंकार को निर्मित करता है। बुद्धि से सिर्फ अकड़ को निर्मित करता है। बुद्धि से और दूर होता जाता है विराट से। बुद्धि से धीरे-धीरे एक छोटा सा संकीर्ण द्वीप बन जाता है। महाद्वीप हो सकता था, मगर वह महाद्वीप होना तो सिर्फ विराट के साथ ही घटता है।

साकिया जाम-ए-मय-ए-वस्ल पिला दे मुझको
होश लेकर अभी दीवाना बना दे मुझको
साज को छेड़कर एक गीत सुना दे मुझको
मय-ए-गुलरंग के सागर को पिला दे मुझको
अश्क ने जो तेरी महफिल में छलकते देखे

"ब्रह्म रहा भरपूर"। दरिया कहते हैं, अब एक ही बचा, बस ब्रह्म ही बचा है। रात गई, दिन गया, सुख गये, दुख गये, शांति-अशांति गई, अपने-पराये गये, जीवन-मृत्यु गई। अब वहां दो का कोई प्रवेश नहीं, जहां ब्रह्म रहा भरपूर।

पाप-पुण्य सुख-दुख नहीं जहां कोई कर्म न काल
जन दरिया जहं पड़त है हीरों की टकसाल

पाप-पुण्य सुख-दुख नहीं। अब कोई द्वंद्व नहीं बचा। न कुछ पाप है, न कुछ पुण्य है।

यह वचन क्रांतिकारी है। क्योंकि साधारणतः हम सोचते हैं कि धार्मिक आदमी पुण्यात्मा! धार्मिक आदमी पुण्यात्मा नहीं, धार्मिक आदमी पुण्य के भी पार है। पुण्यात्मा तो इसी जगत का हिस्सा है। पापी की दुनिया का ही हिस्सा है क्योंकि द्वंद्व का हिस्सा है। पुण्यात्मा, अभी पूरा-पूरा धार्मिक नहीं है। पापी किसे कहते हो? जिसने बुरा किया। पुण्यात्मा किसे कहते हो? जिसने भला किया। बुरे करने की भी अकड़ होती है और भले करने की भी अकड़ होती है। दोनों से अहंकार निर्मित होता है।

सच तो यह है, दुर्भाग्य की बात, मगर सच है, कि अकसर भला करने से ज्यादा अहंकार निर्मित होता है। पापी तो थोड़ा संकोच भी करता है, डरता भी है, भयभीत भी होता है, कहीं कोई कांटा चुभता भी है। पुण्यात्मा को तो कोई कांटा नहीं चुभता। उसका अहंकार तो बिलकुल शिखर पर बैठा होता है। इतने उपवास किये, इतने व्रत किये, इतना दान किया, इतना मंदिर मस्जिद बनाये, अब क्या अड़चन है उसको अहंकार की घोषणा करने में? उसका अहंकार तो सिंहासन पर विराजमान होता है। उसके हाथ में जंजीरें हैं, मगर सोने की। पापी के हाथ में जंजीरें हैं लोहे की। लोहे की जंजीरे तो अखरती हैं क्योंकि जंजीरे मालूम होती

हैं। सोने की जंजीरें तो आभूषण मालूम होने लगती हैं। इसलिए लोग सोने की जंजीरों में जिस बुरी तरह जकड़ते हैं, उतनी बुरी तरह लोहे की जंजीरों में नहीं जकड़ते।

तुमने सुना होगा, तुमने पढ़ा होगा। सारे मनुष्य जाति के इतिहास में ऐसी घटनायें और कहानियों के उल्लेख हैं। जब कभी-कभी पापी क्षणभर में मुक्त हो गया। लेकिन मैंने बहुत खोजा, मुझे एक ऐसी घटना नहीं मिली जिसमें पुण्यात्मा क्षणभर में मुक्त हो गया हो, मैं बड़ा चकित हुआ। मैं खोजता रहा हूं। सारे पुरान छान डाले कि कभी तो ऐसा हुआ हो जैसे कि वालिमकी हुआ। हत्यारा, पापी, खूनी, लुटेरा और वाल्या से एकदम ऋषि वालिमकी हो गया। एक क्षण में हो गया?

और अंगुलिमाल हुआ बुद्ध की कथाओं में। महा हत्यारा! नौ सौ निन्यानबे आदमी मार डाले थे। और मार ही नहीं डाले थे, उनकी उंगलियां अपने गले में पहनता था इसलिए नाम अंगुलिमाल पड़ गया था। और एक हजार का व्रत लिये बैठा था कि एक को और मारना है। कोई उसके पास नहीं जाता था। उसकी मां तक डरती थी उसके पास जाने में क्योंकि वह ऐसा आदमी था कि अगर उसको एक की कमी पड़ रही हो और दूसरा कोई नहीं मिले तो वह मां को मार डाले। यह अंगुलिमाल बुद्ध के मिलन से एक क्षण में रूपांतरित हो गया। एक क्षण में!

लेकिन ऐसी कोई कथा मुझे पुण्यात्मा की न मिली। मैं बड़ा हरान होता रहा की बात क्या है? कथा लिखनेवालों ने पुण्यात्माओं के साथ बड़ी ज्यादती की। मगर कारण है; पुण्यात्मा एक क्षण में मुक्त हो नहीं सकता। उसकी जंजीरें सोने की हैं। वह छोड़ना भी चाहेगा तो एक मन पकड़ना चाहेगा। वह छोड़ते-छोड़ते भी पकड़ता रहेगा। वह आखिरी दम तक उनको बचाने की कोशिश करेगा। कोई उपाय हो बचाने का तो बचाले उसका कारागृह महल का कारागृह है, बहु-मूल्य है। पापी तो छोड़ने को तैयार ही हो जाता है क्योंकि उसमें कुछ पा ही नहीं रहा, सिवाय दुख के।

लेकिन गौर से देखना, पापी भी अकड़ रखता है अपनी। अगर तुम कभी जेलखाने जाओ, तो तुम्हें पता चले कि वहां लोग अपने-अपने जुर्मों को बड़ी बढ़ चढ़कर बात करते हैं। जितना नहीं किया उतनी बढ़-चढ़कर बात करते हैं। जिसने एकाध चोरी की वह कहता है अरे, हजारों कर चुके! जिसने किसी एक-आध को मार डाला, वह कहता यह तो अपने बायें हाथ का काम है। जिसको कहो उसको क्षण-भर में उड़ा दें। अगर कभी तुम अपराधियों के पास बैठो तो चकित होओगे। वे भी अपने अपराध की बढ़-चढ़कर बात करते हैं वैसे, जैसे तुम्हारे महात्मा करते हैं अपने

पुण्य की बढ़-चढ़कर बात। हिसाब-किताब वे भी रखते हैं और वह भी खूब बढ़ा-चढ़ाकर रखते हैं।

क्या कारण होगा ? अपराधियों के बीच बड़ा अपराधी होने का मजा है। जैसे महात्माओं के बीच बड़ा महात्मा होने का मजा है। बात तो वही है, तर्क तो वही है, गणित तो वही है, तराजू भी वही है, मन वही है। अगर यही होड़ लगी हो कि कौन सबसे बुरा आदमी है तो तुम सबसे ज्यादा बुरा आदमी होना चाहोगे। अगर यह होड़ लग जाये कि कौन सबसे भला आदमी है तो तुम सबसे भले आदमी होना चाहोगे। जो होड़ लग जाये उसी में आदमी पड़ जाता है मगर एक बात हम जीवन भर चेष्टा करते हैं कि मैं कुछ विशिष्ट हूं। मैं कुछ खास हूं, मेरे जैसा कोई और दूसरा नहीं। मैं अद्वितीय हूं। यह जो अहंकार की धारणा है कि मैं अद्वितीय हूं, यही परमात्मा से नहीं मिलने देती। उससे तो वही मिलते हैं, जो झुकते हैं। जो अपने इस मैं को उतार कर रख देते हैं।

पाप-पुण्य सुख-दुख नहीं जहां कोई कर्म न काल
जन दरिया जहं पड़त है हीरों की टकसाल

दरिया कहते हैं न तो वहां कोई पाप है न कोई पुण्य है। परमात्मा को देखा, न वहां कोई पाप देखा, न कोई पुण्य देखा। न कोई सुख देखा न दुख देखा। उसी अवस्था में आनंद झरता है, वहां सुख-दुख नहीं होते। तुम्हारे शब्दकोशों में आनंद का अर्थ लिखा है : सुख, महासुख, खूब सुख, बहुत सुख ! मगर सुख और आनंद में कोई ऐसा भेद नहीं है कि सुख छोटा सुख और आनंद बड़ा सुख। भेद परिमाण का नहीं है, भेद गुण का है। आनंद बात ही और है। वहां सुख नहीं है, जैसे दुख नहीं है। सुख-दुख दोनों गये तब जो परम शांति विराजमान हो जाती है। जहां न दुख की तरंगें उठती हैं, न सुख की तरंगें उठती है। क्यों ? क्योंकि दुख की तरंगें भी दुख देती हैं और सुख की तरंगें भी दुख देती हैं। तुम ज्यादा देर सुखी भी नहीं रह सकते क्योंकि सुख भी उत्तेजना है। तुम गौर से देखो ! आज तुम्हें लाटरी मिल जाये ठीक है, लेकिन हर महीने दो महीने में लाटरी मिलने लगे, तुम्हारा हार्ट फेल होगा। पहले तो डर यही कि पहली दफा में हो जायेगा। अगर बच गये किसी तरह, तो दूसरी दफे में हो जायेगा।

मैंने सुना है, एक रूसी कहानी है। एक दर्जी है, गरीब आदमी। बस उसका एक ही शौक है कि हर महीने एक रुपया वह लाटरी में लगा देता। ऐसा वर्षों से लगा रहा, कोई बीस साल बीत गये। न कभी उसे मिली, न उसे अब कोई ख्याल है कि मिलेगी, मगर आदतन हर महीने जब उसको उसकी तनख्वाह मिलती, एक रुपया वह लाटरी में लगा देता। यह एक धार्मिक कृत्य हो गया उसके लिये कि

लगा देना एक। होगा तो होगा, नहीं होगा तो नहीं होगा। जाता भी कुछ नहीं। एक दिन हैरान हुआ, साँझ को द्वार पर लोग आये, रथ रुका। हंडे भरे हुए रुपये आये। वह तो घबड़ा गया। उसने कहा कि महाराज, यह क्या मामला है ? उन्होंने कहा, तुम्हें लाटरी मिल गयी। उसे दस लाख रुपये मिल गये। उस रात तो सो नहीं सका। हर रात आराम से सोता था। उस रात तो करवट ले, बहुत सोने की कोशिश की, न सो सका। दस लाख ! पगलाने लगा। सुबह तो आकर उसने अपना दुकान-दरवाजा बंद कर दिया, ताला लगाकर उसने चाबी कुएं में फेंक दी कि अब करना ही क्या है ? बात खतम हो गई, अब मजा करेंगे। उसने खूब मजा किया। मजा करने की जो धारणा है आदमी की वह ही किया। वेश्याओं के घर गया, स्वास्थ्य तक खराब हुआ, शराब पी। कभी बीमारियों से ग्रसित न हुआ था, सब तरह की बीमारियां आने लगीं। जुआ खेला। जो-जो उसको ख्याल में था सुख ...।

तुम भी सोचो, अगर तुमको दस लाख मिल जायें तो तुम क्या करोगे ? तत्क्षण तुम्हारे सामने पंक्तिबद्ध विचार खड़े हो जायेंगे। कि फिर ऐसा है, तो फिर ये कर गुजरें। और तुम भी वही करोगे जो दर्जी ने किया। वही ... थोड़े हेर-फेर से। जुआ खेलोगे, शराब पिओगे, वेश्याओं के पास जाओगे। और करोगे क्या ? और सुख है भी क्या ? यही कुछ दो-चार बातें सुख मालूम होती हैं। बढ़िया-से-बढ़िया कार खरीद ली, बढ़िया-से-बढ़िया मकान खरीद लिया, बढ़िया-से-बढ़िया वस्त्र बना लिये।

साल भर मैं दस लाख फूंक डाले। और साल भर में अपना स्वास्थ्य भी फूंक डाला और अपनी शांति भी फूंक डाला। साल भर के बाद कुंए में उतरा अपनी चाबी खोजने क्योंकि अब फिर दुकान चलानी पड़ेगी। कभी इतना दुखी नहीं था, जैसा दुखी हो गया। किसी तरह चाबी खोज कर लाया। अपनी दुकान खोली, फिर दरजीगिरी शुरू हुई। अब मन भी न लगे। पहले तो कभी अड़चन न आई थी। सीधा-साधा आदमी था, ज्यादा कोई कमाई भी न थी, उपद्रव भी कोई ज्यादा नहीं हो सकता। सामान्य जिंदगी थी, तब ठीक से चलता था, यह साल भर में जो देखा—यह दुख-स्वप्न ! कहोगे तो तुम इसको सुख-स्वप्न लेकिन है यह दुख-स्वप्न। जो साल भर में देखा यह उसकी जिंदगी क्षार-क्षार कर गया। अब मन भी न लगे। मगर पुरानी आदत और पुराना रस ! यही तो आदमी की झंझट है। तुम कसम भी खा लो तो वही किये जाते हो जो तुम करते रहे हो। वह एक रुपया लगाता रहा हर महीने। और साल बीतते-बीतते जब किसी तरह फिर से व्यवस्थित

अब तो उसने कसम खा ली कि अब दुबारा लाटरी मिलेगी तो लूंगा ही नहीं।

हुआ जा रहा था। काम-धंदा फिर ठीक चलने लगा था। स्वास्थ्य भी जरा ठीक हुआ था सब। शांति बननी शुरू हो रही थी। फिर एक दिन वह आकर रथ रुक गया द्वार पर। उसने अपनी छाती पीट ली कि मारे गये ! आदमी की अड़चन समझो--मारे गये", कहता है। कि फिर ... हे भगवान ! फिर ! अब जानता भी है कि जो हुआ था उस साल में वह फिर से होगा। मगर इंकार भी नहीं कर सकता है। लाटरी फिर ले ली। फिर द्वार पर ताली लगा दी, फिर कुएं में फेंक दी और अब जानता है कि ज्यादा साल भर से चलने का नहीं है। और फिर उतरना पड़ेगा कुएं में।

यही तो हम सब कर रहे हैं। जो रोज-रोज किया है, रोज-रोज दुख पाया है फिर भी करते हैं। कल भी क्रोध किया था, आज भी करोगे। कल भी लोभ किया था, आज भी करोगे। कल भी कष्ट पाया था, आज भी पाओगे। और छाती पीट रहा है और घबड़ा भी रहा है और लाटरी देनेवाले उससे पूछ रहे हैं अगर तू इतना परेशान हो तो न ले। दान कर दे। उसने कहा, अब यह भी नहीं होता। मगर मारे गये! हे प्रभु, ये तूने दिन क्यों दिखाया? ऐसी आदमी की दशा है। और साल भर में वह मारा गया। साल भर में वह मारा गया। साल भर में बहुत बुरी हालत हो गयी उसकी। और जब दुबारा कुएं में उतरा तो फिर निकला नहीं। शरीर ज्यादा खराब हालत में हो गया था। कुएं में गये सो गये !

सोचना इस पर, विचारना इस पर। दुख की तो हम जानते हैं बात दुखद है, लेकिन सुख की कोई बहुत सुखद है? सुख भी बड़ा दुखदायी है। सुख ही अपनी पीड़ा है, कितनी ही मीठी लगे पीड़ा लेकिन सुख भी जहर रखता है अपने में। जहर कितना ही मीठा हो, मिठास तो ऊपर-ऊपर होती है, भीतर तो प्राणों को काट जाता है। परमात्मा का अनुभव न तो सुख का अनुभव है, न दुख का अनुभव। परमात्मा का अनुभव शांति का अनुभव है। उस परम शांति का नाम है आनंद। वह गुणात्मक रूप से सुख-दुख दोनों से भिन्न है। वहां द्वंद्व नहीं है। वहां एक का वास है।

... जहां कोई कर्म न काल।

और वहां कोई कर्म भी नहीं है, कोई कर्ता भी नहीं है। वहां कोई कर्म नहीं है कोई समय भी नहीं है। कोई मृत्यु भी नहीं है। वहां कोई जीवन और जन्म भी नहीं है। जो-जो हमने यहां जाना है, वहां कुछ भी नहीं है। जो-जो हमने जाना है, वहां कुछ भी नहीं है। जो-जो हमने जाना है, सब शांत हो जाता है। और बिलकुल अनजान का अनुभव होता है इसलिए तो मन अवाक हो जाता है।

दरिया तहं कीमत नहीं उनमन भया अवाक

रतन अमोलक परखकर रहा जौहरी थाक
जन दरिया जहां पड़त है हीरों की टकसाल

तो फिर यह परमात्मा क्या है? यह टकसाल है, जहां से सब आता है। जैसे टकसाल से हीरे आते हैं या टकसाल से सिक्के आते हैं। जहां से सब सिक्के आते हैं। जहां से सब सिक्के ढाले जाते हैं। और फिर जहां सारे सिक्के वापिस पिघल जाते हैं।

तुमने देखा टकसाल में? रुपये ढाले जाते हैं, फिर जब रुपये खराब हो जाते हैं, घिस-पिस जाते हैं, फिर वापिस लौट जाते हैं, फिर टकसाल में जाकर उनको पिघला लिया जाता है। फिर नये सिक्के ढाल दिये जाते हैं। टकसाल का अर्थ है, जहां सारे सिक्के ढलते हैं और जहां सारे सिक्के फिर बिखर जाते हैं। फिर-फिर ढाले जाते हैं। परमात्मा परम स्रोत है। वहां से सब आता है और वहीं सब वापिस लौट जाता है।

जीव जात से बीछड़ा धर पंचतत्त का भेख
दरिया जन घर आइया पाया ब्रह्म अलेख

मनुष्य बिछड़ा है परमात्मा से क्योंकि उसने इस पंचतत्व के रूप का बहुत ज्यादा अपसे साथ तादात्म्य कर लिया है। वह सोचता है, मैं देह हूं। यह जो पांच तत्त्वों से बनी हुई देह है, यहीं मैं हूं। इस अति आग्रह के कारण कि मैं देह हूं, वह उस परमतत्व से अलग हो गया। अलग हुआ नहीं है एक क्षण को भी। हो नहीं सकता है। अलग होकर जायेगा कहां? अलग होने का कोई उपाय नहीं है सिर्फ भ्रांति पैदा होती है कि मैं अलग हूं। सिर्फ एक ख्याल है कि मैं अलग हूं।

जीव-जात से बीछड़ा ...

दरिया कहते हैं, हम सब की जात ब्रह्म है। हम सब ब्रह्म हैं। हम सब परमात्मा हैं। वह हमारी मूल जात है। न ब्राह्मण, न हिंदू, न शूद्र, न क्षत्रिय, न वैश्य, न मुसलमान, न ईसाई। हमारी जात है, ब्रह्म।

जीव-जात से बीछड़ा धर पंचतत्त का भेख

यह जो पांच तत्त्वों का भेष रख लिया है और इस भेष को ही अपना सब कुछ समझ लिया है इसी के कारण हम अलग हो गये।

ऐसा हुआ, ऐसा अक्सर हो जाता है, तुम जब नाटक में किसी पात्र का अभिनय करते हो तुम थोड़ी देर को उसी पात्र के साथ एक हो जाते हो। तुम यही सोचने लगते हो कि मैं यही हूं। अच्छा अभिनेता वही होता है जो बिल्कुल डूब जाये और सोचने लगे कि यही मैं हूं। तो ऐसी स्त्री के प्रति प्रेम दिखलाता है जिसके प्रति कोई प्रेम नहीं है। घृणा भी हो सकती है, मगर प्रेम दिखलाता है।

आँख से हर्ष के आंसू बहे जाते हैं--हर्ष के ! आनंदमगन होकर उस स्त्री की तरफ आंखें उठाता है। प्रेम के वचन बोलता है। रोआं-रोआं उसका प्रेम से पुलकित मालूम होता है। यह सब अभिनय है। यह सब ऊपर-ऊपर है। लेकिन इसमें भरोसा न करे तो अच्छा अभिनेता सिद्ध नहीं होता। इसको पूरी तरह भरोसा कर लेता है।

ऐसे ही हमने भरोसा कर लिया है। और कितनी दफा हमारा अभिनय बदला है। फिर भी हम चूकते नहीं। तुम छोटे थे, बच्चे थे। आज अगर तुम्हारा बचपन तुम्हारे सामने खड़ा हो जाये, तुम पहचान भी न सकोगे कि यह मैं हूं। मगर उस वक्त तुम वही थे। मां के पेट में थे। मांस का बस एक पिंड मात्र थे। आज तुम्हारे सामने वैसा मांस का पिंड रख दिया जाये, तुमसे कहा जाये यह तुम हो, तुम कहोगे, पागल हो गये ? मगर एक दिन मां के पेट में तुमने यही अपने को माना था कि यही मैं हूं। फिर एक दिन जवान थे तब तुमने समझा कि मैं जवान हूं। फिर एक दिन बूढ़े हो गये और तुमने समझा कि मैं बूढ़ा हूं। और कभी तुम सफल हुए और तुमने समझा कि मैं सफल हूं। कभी विफल हुए और तुमने समझा कि मैं विफल हूं। और कभी लोगों ने सम्मान दिया, सिरपर उठाया तो तुम सम्मानित हो गये थे। और कभी अपमान दिया और तुम्हारे ऊपर सड़े टमाटर और छिलके फेंके और तब तुम समझे कि मैं अपमानित हूं।

और ऐसे तुम कितने अभिनय कर चुके ! फिर भी एक बात तुम्हें समझ में नहीं आती कि ये अभिनय तो बदलते जाते हैं। तुम जरूर इनसे भिन्न होओगे, तुम इनके साथ एक नहीं हो सकते। अगर तुम बच्चे ही होते तो जवान नहीं हो सकते थे फिर। अगर जवान ही होते तो बूढ़े कैसे हुए ? और अगर जिंदगी ही तुम होते तो मरोगे कैसे ? और यह सब बहा जाता है। यह पंचतत्त का भेख; यह तो कपड़ों जैसा है। कभी सुंदर कपड़े पहन लिये, समझे कि सुंदर हो गये । और कभी बेढंग कपड़े पहन लिये तो समझे कि बेढंगे हो गये।

कपड़ों के साथ इतना लगाव बन जाता है कि तुम भूल ही जाते हो मैं कौन हूं ? मगर तुम जो हो वही हो ! तुम्हारी जात तो ब्रह्म है।

दरिया निजघर आइया पाया ब्रह्म अलेख

जिस दिन कपड़ों से नजर हटेगी और अपने को देखोगे, जिस दिन तत्वों को देखोगे, भेष को छोड़ोगे उस दिन तुम पाओगे--

दरिया निजघर आइया पाया ब्रह्म अलेख

जिसकी कोई सीमा नहीं है उस असीम को पाया। अपने घर में बैठे पाया, अपने भीतर बैठे पाया। अपना स्वरूप पाया।

आंखों से दीखै नहीं शब्द न पावे जान

मन बुधि तहं पहुंचे नहीं कौन कहे सैलान

अलेख इसलिए कहते हैं कि उसका निशान कौन बताये ? उसकी पहचान कौन बताये ?

आंखों से दीखै नहीं

आंखें जो बाहर है उसे देखती हैं, भीतर को तो कैसे देखेंगी ? आंखों का तो सारा उपाय बाहर है। तुम जो भी आंखों से देखोगे वह तुम्हारा स्वरूप नहीं हो सकता। तुम तो आंख के भीतर छिपे हो। वैसे ही समझो जैसे अपने घर की खिड़की पर खड़े हो और खिड़की के बाहर झांककर देख रहे हो तो खिड़की से तुम बाहर देख रहे हो। तुम तो खिड़की के पीछे खड़े हो। ऐसे ही आंख के पीछे तुम खड़े हो। आंख तुमको न देख सकेगी।

तुम अपनी आंख पर चश्मा लगाते, तो चश्मे से तुम सारी दुनिया को देख लेते। अब तुम चश्मे को निकाल कर और चश्मे से अपने को देखने की कोशिश करो तो तुम नहीं देख पाओगे। चश्मा मुर्दा है ऐसे ही आंख भी मुर्दा है। आंख पीछे लौटकर नहीं देख सकती। आंख बाहर ही देख सकती है। कान बाहर की आवाज सुन सकते हैं, भीतर की आवाज नहीं सुन सकते। हाथ से तुम जो बाहर है उसे छू सकते हो, जो भीतर है उसे कैसे छुओगे ? गंध तुम्हें दूसरे की आ सकती है; स्वयं की, अंतरतम की, कैसे तुम्हें गंध आयेगी ? नाक वहां व्यर्थ है।

इंद्रियां सब बाहर के लिये हैं। बाहर के द्वार हैं। भीतर की तरफ कोई इंद्रिय नहीं जाती। वहां तो वही जाता है जो सारी इंद्रियों को छोड़कर शांत हो जाता है। आंख बंद कर लेता, कान बंद कर लेता, नाक बंद कर लेता--इसको ही तो ज्ञानियों ने गुप्ति कहा है। इस अवस्था को ही संयम कहा है। आंख देखती नहीं, कान सुनता नहीं, नाक सूंघती नहीं, हाथ छूते नहीं। सब तरह अपने भीतर सिकुड़ जाता है--जैसे कछुआ अपने अंगों को भीतर सिकोड़ लेता है। यह जो कछुए की स्थिति है ऐसी ही स्थिति समाधिस्थ की हो जाती है।

आंखों से दीखै नहीं शब्द न पावे जान
मन बुधि तहं पहुंचे नहीं कौन कहे सैलान

इंद्रियां नहीं पहुंचती वहां। मन भी नहीं पहुंचता वहां। क्योंकि मन एकदम अवाक होकर रुक जाता है। और बुद्धिमत्ता भी वहां नहीं चलती। होशियारी भी वहां काम नहीं आती। समझदारी भी काम नहीं आती। वहां समझदारी भी नासमझी हो जाती है। वहां तो आदमी को बिल्कुल निर्दोष होकर पहुंचना पड़ता है, सब तरह के जंजाल को छोड़कर-- बुद्धि के, मन के, सोचविचार के, तर्क के। तुम्हारी जो-जो बातें समझदारी की हैं, बाहर काम आती हैं वहां कोई काम नहीं

आतीं। वहां तो जाते समय यह सारा उपद्रव छोड़ देना पड़ता है। यह सारा बोझ उतारकर रख देना पड़ता है। वहां तो निर्भार होता है जो, वही पहुंचता है।

मन बुधि तहं पहुंचे नहीं कौन कहे सैलान

मन और बुद्धि का भेद समझ लेना। मन का अर्थ होता है--मनन की प्रक्रिया, सोच-विचार। बुद्धि का अर्थ होता-- इस सोचविचार की प्रक्रिया को जो जागकर देखता है। अवेयरनेस। बुद्धि का अर्थ होता है साक्षी। अब यह बड़ा अनूठा सूत्र है। साधारणतः यही कहा जाता है, साक्षी बनो! बनने से एक घटना घटती है कि तुम मन के पार हो जाते हो। फिर साक्षी के भी पार होना पड़ता है क्योंकि तुम स्वयं के साक्षी नहीं हो सकते। वहां कैसे दो होंगे? साक्षी का तो मतलब होता है तुम और किसी के साक्षी बन रहे हो। तो यह सूत्र जिसको कृष्णमूर्ति अवेयरनेस कहते हैं, जिसको ज्ञानियों ने साक्षीभाव कहा है, विटनेस उसके भी पार जाता है।

दरिया कहते हैं, मन तो वहां चलता ही नहीं, यह बात सच है। मन तो जा नहीं सकता। सोच-विचार का धुवां वहां रहेगा, तो तुम देख ही न पाओगे। बादल घिरे रहेंगे, सूरज का दर्शन न होगा। यह तो बात ठीक है। यह तो सभीने कही है लेकिन एक कदम और ऊपर उठाते हैं। वे कहते हैं, वहां साक्षी भी नहीं जाता। साक्षी ही रह जाता है तो फिर साक्षी कैसे बनोगे? मात्र साक्षी बचता है तो किसके साक्षी? अब तो दो नहीं बचे। ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रहा। द्रष्टा और दृश्य का भेद नहीं रहा। अब तो एक ही बचा तो किसके साक्षी? कौन साक्षी? और किसका? तो साक्षी भी गया।

मन बुधि तहं पहुंचे नहीं कौन कहे सैलान

तो अब खबर कैसे लें उसकी, कि उसका रूप क्या? उसका रंग क्या? उसका स्वाद क्या? उसका लक्षण कैसे बतायें? उसकी खबर कैसे लायें? इसीलिए तो आदमी गूंगा हो जाता है। गूंगे का गुड़ हो जाता है। जान लेता है, पहचान लेता है, अनुभव कर लेता है और एकदम गूंगा हो जाता है। और तुम उससे पूछो तो एकदम गुमसुम बैठ जाता है, बोलता ही नहीं और अगर बोलता है तो बोलता है केवल विधि के संबंध में, परमात्मा के लक्षण के संबंध में नहीं। कैसे पहुंचा यह बता देता है। किस-किस मील के पत्थर को राह पर मिलना हुआ था, यह बता देता है। कैसा-कैसा मार्ग बीता, यह बता देता है। कहां-कहां से गुजरना पड़ा यह बता देता है। लेकिन लक्ष्य! लक्ष्य की बात छूट जाती है। नहीं कही जा सकती। कौन कहे सैलान! उसकी लक्षणा कौन करे? उसका निशान और रूप कौन बताये?

माया तहां न संचरै जहां ब्रह्म का खेल

यह सब तो माया का ही हिस्सा है--इंद्रियां, आंखें, कान, मन, बुद्धि, यह सब माया का ही खेल है।

माया तहां न संचरै जहां ब्रह्म का खेल

और जहां ब्रह्म का खेल शुरू हुआ, वहां माया नहीं प्रवेश कर पाती।

जन दरिया कैसे बनें रवि-रजनी का मेल

बड़ी प्यारी बात कही है।

जन दरिया कैसे बने रवि-रजनी का मेल

सूरज निकले और रात से मेल कैसे बने?

मैंने सुना है, एक बार अंधेरे में जाकर परमात्मा को कहा कि तुम अपने सूरज को कहो, मेरे पीछे क्यों पड़ता है? मुझे क्यों परेशान करता है? मैंने इसका कुछ कभी बिगाड़ा नहीं। जहां तक मुझे याद पड़ता है, मैंने कभी इसका कोई नुकसान नहीं किया और मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ा है। दिनभर मुझे भगाता है। रात में किसी तरह लेट भी नहीं पाता कि फिर सुबह हाजिर हो जाता है। फिर भगाता है। यह मामला क्या है? यह अन्याय हो रहा है। और मैंने बहुत प्रतीक्षा कर ली। और मैंने सुनी थी कहावत कि चाहे देर हो वहां, अंधेर नहीं। लेकिन देर भी हो गई और अंधेर भी हो रहा है। कितनी सदियां बीत गईं और यह सूरज मेरे पीछे पड़ा ही है, हाथ-धोकर पड़ा है। आप इसे रोको।

बात तो परमात्मा को भी जंची कि इस बेचारे अंधेरे ने सूरज का बिगाड़ा क्या है? यह अन्याय हो रहा है। सूरज को बुलाया। सूरज से पूछा कि तू अंधेरे के पीछे क्यों पड़ा है? उसने कहा कैसा अंधेरा! मेरी कोई पहचान ही नहीं। पीछे कैसे पड़ूंगा? दोस्ती ही नहीं बनी तो दुश्मनी कैसी बनेगी? अभी तक मेरी मुलाकात भी नहीं हुई। तो नाराजगी कैसे होगी? आप एक कृपा करें, अंधेरे को मेरे सामने बुला दें। तो मैं देख तो लूं कौन अंधेरा है? पहचान तो लूं कि कौन अंधेरा है? किसका मैं पीछा कर रहा हूं यह तो मैं पहचान लूं। अभी तो पीछा कैसे करूंगा? मेरी मुलाकात ही नहीं हुई। और कहते हैं कि तब से ईश्वर भी परेशान है। फाइल-वहीं-की-वहीं पड़ी है। वह अंधेरे को ला नहीं सकता सामने। और जब तक अंधेरे को सामने नहीं लायें, जब तक दोनों वादी-प्रतिवादी अदालत में खड़े न हों तब तक निर्णय भी कैसे हो? कहते हैं ईश्वर परम शक्तिवान है, सर्व शक्तिवान है, लेकिन वह भी यह नहीं कर पा रहा कि अंधेरे को सूरज के सामने ले जाये।

जन दरिया कैसे बने रवि-रजनी का मेल

कैसे हो मुलाकात? यह नहीं होनेवाली। तो जब तुम्हारे भीतर का सूरज प्रकट होगा, तब तुम्हारे बाहर जिसको तुमने अब तक जीवन जाना था, वह मात्र

अंधेरा था। वह उसके सामने टिकेगा नहीं। तुम्हारी सब धारणायें पिघलकर बह जायेंगी। तुम्हारे सारे विचार बह जायेंगे। तुम बह जाओगे। तुमने जो कल तक जाना था, वह कोई भी काम न आयेगा। आमूल-चूल तुम बह जाओगे। और जो शेष रह जाता है, वह अवाक कर देता है।

रतन अमोलक परखकर रहा जौहरी थाक
दरिया तहं कीमत नहीं उनमन भया अवाक
जात हमारी ब्रह्म है माता-पिता है राम
गिरह हमारा सुन्न में अनहद में बिसराम

अपूर्व वचन है। गांठ बांधकर रख लेना। इससे बहुमूल्य हीरा न पाओगे।

जात हमारी ब्रह्म है माता-पिता है राम

हमारा होना ब्रह्म से आया। हम उससे उपजे हैं इसलिए वही हमारी जात है। हम उससे उपजे इसलिए वही हमारी मां है, वही हमारा पिता है। बाकी सब माता-पिता औपचारिक हैं। बाकी सब जातियां व्यावहारिक हैं। असली जात ब्रह्म। असली माता-पिता परमात्मा।

गिरह हमारा सुन्न में—— और हमारा घर शून्य में है। बाकी तुम जितने घर बना रहे हो, सब व्यर्थ जायेंगे। जब तक शून्य कोन खोज लो तब तक असली घर न मिलेगा। गिरह हमारा सुन्न में। हमारा शून्य में असली घर। शून्य यानी —— जहां विचार थक कर गिर गये, जहां मन उनमन हो गया, जहां बुद्धि भी गई, जहां कुछ भी न बचा, शून्य सन्नाटा रह गया सिर्फ। सब, जो तुम जानते थे, अनुपस्थित हो गया। सब हट गया। एक कोरा आकाश रह गया। असीम आकाश।

गिरह हमारा सुन्न में अनहद में बिसराम

और वहां कोई सीमा नहीं, असीम है। अनहद। उसकी कोई हद नहीं है। वहीं विश्राम है। उसके पहले तकलीफ है। उसके पहले बेचैनी है। उसके पहले तनाव है।

शून्य में पहुंचकर ही परम विश्राम उपलब्ध होता है। उसके पहले तुम लाख उपाय करो—— धन कमाओ, पद-प्रतिष्ठा, लाख संबंध बनाओ, प्रेमी-प्रियजन; परिवार बसाओ, सब उजड़ जायेगा। आज बनाओगे, कल मिट जायेगा। बनाने में तकलीफ झेलोगे और बन भी न पायेगा, फिर मिटने की तकलीफ झेलनी पड़ेगी। दोहरी तरह की तकलीफ है। पहले बनाने का कष्ट, बनाने की झंझटें और फिर जब उखड़ने लगती हैं, जब चीजें बिखरने लगती हैं फिर उसका कष्ट। ऐसे तुम रोते ही रोते गुजारते हो। एक रोने से दूसरे रोने में चले जाते हो बस, और कुछ फरक नहीं पड़ता।

थोड़ी देर राहत मिलती है, जरूर मिलती है। एक रोने से तुम दूसरे रोने में जाते हो, थोड़ी देर के लिये आंसू थम जाते हैं, बीच में राहत मिलती है। कहते हैं कि जब लोग आदमी को मरघट ले जाते हैं, अर्थी उठाते हैं तो रास्ते में कंधा बदल लेते हैं। इस कंधे पर रखे थे, इस कंधे पर अभी थकान नहीं; मगर थोड़ी देर में दूसरा कंधा थक जाता है फिर इस कंधे पर रख लिया। ऐसे ही जिंदगी है तुम्हारी, जैसे मरघट ले जाते वक्त अर्थी को कंधा बदलते हैं। बस, तुम कंधा बदल रहे हो। एक दुख से घबड़ा गये, दूसरा दुख मोल ले लिया। जब मोल लेते हो तब वह सुख का आश्वासन देता है। थोड़ी देर में ही पहचान होती है। फिर दुख प्रगट हो जाता है।

कितने जन्मों से ऐसे हो, ऐसे दुख तुम बदलते रहे। कब तुम जागोगे ? कब तुम शून्य के घर को खोजोगे ? शून्य के घर को खोजना ही ध्यान है, समाधि है। कब तुम अनहद में विश्राम करोगे ? या कि तुम्हें श्रम ही करते रहना है ? या कि तुम्हें घर बनाने और मिटाने हैं ? या कि तुम्हें रेत के घर ही बनाने में रस है ? या कि तुम्हें ताश के घर बनाने में रस है ? तुम कब तक ये कागज की नावें तैराते रहोगे और डुबाते रहोगे ? जागो। शून्य में ही पहुंचकर आदमी अपने घर आता है। और उस घर को बनाने की जरूरत नहीं है, वह घर बना ही हुआ है। वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। एक क्षण को तुमने उसको खोया नहीं। जरा दृष्टि बदले तो तुम अपने शून्य घर को पा लो, उस परम घर को पा लो जिसको कोई निर्वाण कहता है, कोई मोक्ष कहता है, कोई ब्रह्म कहता है; वह सब नाम के भेद हैं मगर वह घर शून्य का है। समझकर जाओगे तो अच्छा होगा।

कल रात एक युवक आया जर्मनी से। वह बहुत डरा हुआ है। सत्रह साल की उमर में अनायास उसे शून्य का अनुभव हो गया है। अनायास तो कुछ होता नहीं। पिछले जन्मों की कमाई होगी। जन्मों-जन्मों में इस शून्य को खोजा होगा। बात पूरी नहीं हो पाई होगी, अटकी रह गई होगी। बीज पड़ गया होगा। इस जीवन में फसल आई। तो इस जीवन में तो बिलकुल अनायास हुई। सत्रह साल के युवक को घट जाये शून्य आकस्मिक तो घबड़ाहट तो हो ही जायेगी। न खोजते थे, न आकांक्षा थी, अचानक घट गया। तो इतना घबड़ा गया है, उसकी बात करते हुए भी हाथ-पैर उसके कंप रहे थे। उसकी बात करते हुए सिर घूमने लगा। होश जाने लगा। उसकी बात करते-करते उसकी आंख बंद होने लगी। घबड़ा गया है। वह चाहता नहीं कि फिर कभी वैसा हो जाये। अब एक अपूर्व घटना थी लेकिन एक घबड़ाहट आ गई। अब घबड़ाहट आ गई तो वह ध्यान करने में डरता है। अब वह संन्यास लेने में डर रहा था। क्योंकि उसे लग रहा है, एक दफा शून्य की छोटी सी झलक उसको मिली

है, वह इतनी घबड़ा गई और यहां तो सारी शून्य की ही बात हो रही है तो वह डर रहा है । जा भी नहीं सकता क्योंकि यद्यपि वह शून्य से घबड़ा गया लेकिन उस शून्य में उसे सत्य का भी दर्शन हुआ । यह भी वह कहता है -- जो मैंने जाना है वही परम सत्य है । मगर वह परम सत्य मैं फिर नहीं जानना चाहता । कोई अर्थ नहीं है जीवन में फिर । फिर महत्त्वाकांक्षा में कोई सार नहीं है । फिर यह करने और वह करने में कोई प्रयोजन नहीं है । शून्य ही सब कुछ है । तो वह घबड़ा भी गया है । रस भी आया, घबड़ा भी गया । व्याख्या भी उसने बड़े डर के कर ली ।

कल उसकी तरफ देखते हुए मुझे दिखाई पड़ना शुरू हुआ कि जरूर वह किसी अतीत में किसी बौद्ध परम्परा का हिस्सा रहा होगा । बौद्धों ने शून्य को बड़ा बल दिया है । अब व्याख्या की बात है । पश्चिम में शून्य की कोई चर्चा ही नहीं करता। ईसाइयत शून्य से बहुत डरती है । इस्लाम भी डरता है । पश्चिम में पैदा हुआ, ईसाइयत के ख्याल उसके मन में रहे होंगे और जब उसने यह शून्य देखा तो वह बहुत घबड़ा गया । अगर पूर्व में पैदा हुआ होता, अगर बुद्ध की हवा उसके आस-पास रही होती तो उसके पास दूसरी व्याख्या होती । शून्य देखता तो नाच उठता, मगन हो जाता । शून्य देखता तो कहता,

रतन अमोलक परख कर रहा जौहरी थाक
दरिया तहं कीमत नहीं उनमन भया अवाक

फिर तो नाच बंद ही न होता । फिर तो जो गीत का झरना बहता, बहता ही चला जाता । लेकिन चूक गया । व्याख्या ने अड़चन डाल दी । व्याख्या ने डरवा दिया । पश्चिम में तो लोग समझते हैं शून्य होने का मतलब शैतान । शून्य यानी शैतान से पर्यायवाची है । शून्य का अर्थ ही नहीं समझे है । शून्य का अर्थ ही समझतें हैं नकारात्मक : कुछ भी नहीं । शून्य है सब कुछ । शून्य है ब्रह्मभाव । शून्य ना-कुछ नहीं है ।

लेकिन उस युवक का डर मैं समझता हूं । उसको किसी तरह फुसलाकर संन्यासी बना लिया है । उसे फुसला कर ध्यान में ले जायेंगे । अबकी बार आशा की जाती है कि जब फिर दुबारा शून्य घटेगा तो उसके पहले वह तैयार हो जायेगा। अब की बार शून्य उसे पगलायेगा नहीं । अबकी बार शून्य उसे परम स्वास्थ्य दे जायेगा । अब की बार शून्य से उसकी ऐसी ही पहचान हो जायेगी --

जात हमारी ब्रह्म है माता-पिता है राम
गिरह हमारा सुन्न में अनहद में बिसराम

और एकबार अनहद में विश्राम आ गया फिर तुम कहीं भी रहो, फिर हजार संसार तुम्हारे चारों तरफ शोर-गुल मचाता रहे, तुम्हारे भीतर कोई तरंग नहीं

पहुंचती । तुम निस्तरंग बने रहते हो । तुम अपने घर आ गये । तुमने शाश्वत से सगाई कर ली ।

इन सूत्रों पर ध्यान करना । ये सूत्र विचार करने के नहीं हैं, ध्यान करने के हैं । एक-एक शब्द पर ठिठकना । एक-एक शब्द का स्वाद लेना । आंख बंद करके डुबकी लगाना । एक-एक शब्द के साथ मगन होना । एक-एक शब्द के साथ थोड़ा-थोड़ा मन छोड़ना । थोड़े-थोड़े उनमन होना । एकेक शब्द के साथ आश्चर्य की पुलक भरना, रोमांचित होना । एकेक शब्द के साथ ज्ञान छोड़ना, निर्दोष अज्ञान में उतरना । एकेक शब्द के साथ तादाम्य शरीर से, इंद्रियों से छोड़ना ताकि धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर के ब्रह्म से पहचान फिर से बन जाये; पुनः पहचान हो जाये । पुनर्खोज है ब्रह्म । क्योंकि खोया तो कभी नहीं । मौजूद तो है ही । तुम्हारी प्रतीक्षा करता है । तुम जब चाहो, घर लौट आओ । तुम उसे वहां घर में बैठा हुआ पाओगे ।

गिरह हमारा सुन्न में अनहद में बिसराम

आज इतना ही ।

शून्य-शिखर में गैब का चांदना

प्रवचन : ६

दिनांक : १६।७।१९७७

श्री रजनीश आश्रम, पूना
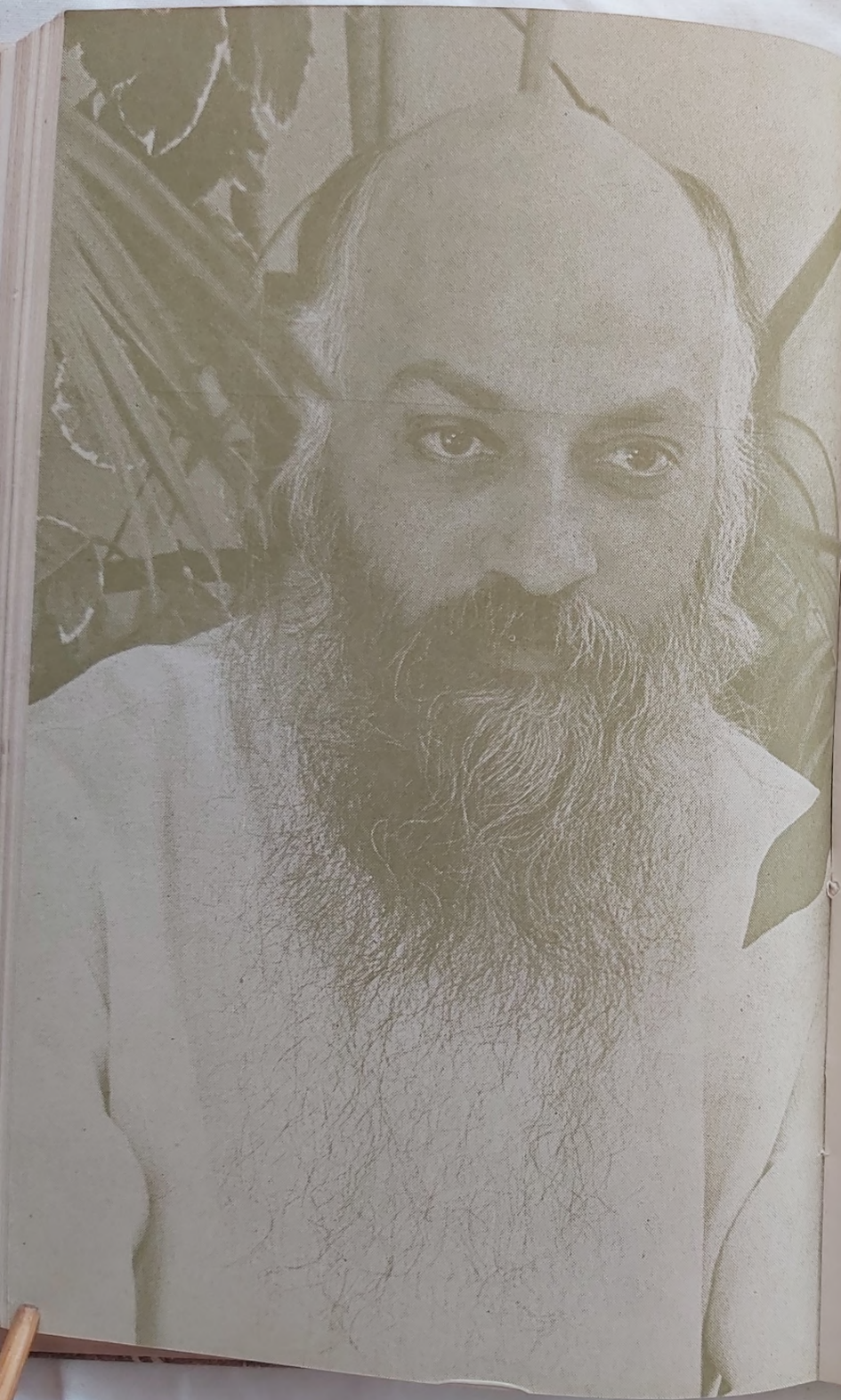
प्रश्न सार

- हरि से लगे रहो रे भाई
- अष्टावक्र, कृष्णमूर्ति और बोधिधर्म के दर्शन का नामकरण क्या करेंगे ?
- शून्य के शिखर में गैब का चांदना
- ध्यान से उद्भूत नशे को कैसे सम्हालें ?

पहला प्रश्न : एक प्रचलित पद है--

हरि से लगे रहो रे भाई,
बनत-बनत बनि जाई

क्या ऐसा ही है ?

प्रार्थना के दो अंग हैं : एक प्रार्थना और दूसरा प्रतीक्षा। और दूसरा अंग पहले अंग से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। प्रार्थना तो बहुत लोग कर लेते हैं, प्रतीक्षा थोड़े लोग कर पाते हैं। और जो प्रतीक्षा कर पाते हैं उनकी ही प्रार्थना पूरी होती है। प्रतीक्षा का अर्थ है, मैंने प्रार्थना कर ली। लेकिन मेरी प्रार्थना इसी क्षण पूरी हो ऐसी आकांक्षा नहीं है। पूरी हो ऐसी आशा तो है लेकिन अपेक्षा नहीं। तैयारी हो, धैर्य हो कि अनन्त भी प्रतीक्षा करनी होगी तो करेंगे। आज न हो, कल न हो, परसों न हो, इस जन्म में न हो, अगले जन्म में न हो, कितना ही समय बीते, धैर्य न चुका देंगे।

ऐसे अनन्त धैर्य से जो प्रार्थना करता है उसकी इसी क्षण भी पूरी हो सकती है। और जिसने अधैर्य किया हो उसकी कभी पूरी न होगी। क्योंकि धैर्य प्रार्थना का प्राण है। जब तुमने प्रार्थना की और धीरज न रखा तो प्रार्थना न रही, मांग हो गई। चूक गये। मांग में वासना है, अधैर्य है, जल्दबाजी है, अभी होना चाहिये। मांग में बचकानापन है। जैसे छोटे बच्चे कहते हैं, अभी, इसी वक्त। आधी रात में खिलौना चाहिये। मांग में प्रौढ़ता नहीं है। मांग में जिद है, हठ है, दुराग्रह है। प्रार्थना में कोई हठ नहीं है, न कोई मांग है, न कोई दुराग्रह है। दुराग्रह तो दूर, प्रार्थना में सत्याग्रह भी नहीं है। क्योंकि सत्याग्रह भी दुराग्रह का ही अच्छा नाम है।

प्रार्थना में आग्रह ही नहीं है, प्रार्थना में केवल निवेदन है, केवल निमंत्रण है। तुमने पाती भेज दी अपनी तरफ से, प्रभु को जब आना हो आये। तुम्हारी पाती इतनी ही खबर देती है कि जब भी प्रभु आये, तुम्हारा दरवाजा खुला होगा। जब भी प्रभु आये, तुम्हारे हृदय के द्वार बंद न होंगे। तुम्हारा हृदय-मंदिर खुला

होगा। तुम प्रतीक्षा करोगे। और प्रतीक्षा में बड़ा सुख है। क्योंकि प्रतीक्षा में बड़ी शांति है, अधैर्य में दुख है, अधैर्य में तनाव है, चिंता है। अधैर्य में बेचैनी है, होगा कि नहीं होगा द्वंद्व है। धैर्य का अर्थ ही यही होता है कि होगा। निश्चित होगा। देर कितनी ही हो। और जो देर हो वह भी अन्याय नहीं। वह भी मेरी पात्रता के बनने के लिये समय है। बीज बो दिया, फूटेगा। ठीक ऋतु आने दो, समय पकने दो, बीज फूटेगा, वृक्ष बनेगा। बीज बो देने के बाद पानी सींचते रहो और राह देखो। जल्दीबाजी में सब बिगड़ जाये।

इस पद का यही अर्थ है : हरि से लगे रहो रे भाई, बनत-बनत बनि जाई। तुम अपनी तरफ से लगे रहो। तुम अपनी तरफ से हरि का पीछा करते रहो। तुम अपनी तरफ से निमंत्रण भेजते ही रहो अथक। तुम अपनी तरफ से पुकारते ही रहो। तुम्हारी आंखें प्रेम के आंसू गिराती रहें। और तुम्हारे पैर घुंघरू बांधकर प्रेम के नाचते रहें। तुम अपनी तरफ से सब पूरा कर दो। तुम अपनी तरफ से कुछ कमी न करो। तुम अपनी तरफ से रत्ती भर भूल-चूक न करो।

जिस घड़ी भी मौसम पक जायेगा और तुम तैयार हो जाओगे उसी घड़ी घटना घट जाती है। अगर नहीं घट रही है अभी तो उसका केवल एक ही अर्थ है। शिकायत मत करना, मत कहना कि परमात्मा नाराज है। मत कहना कि मेरे साथ नाराज है। मत कहना कि औरों के साथ घट रहा है, मेरे साथ क्यों नहीं घट रहा ? मत कहना कि अन्याय हो रहा है। अगर परमात्मा तुम्हारे साथ नहीं घट रहा तो सिर्फ एक ही अर्थ है, बस केवल एक ही अर्थ है कि तुम अभी तैयार नहीं हो।

तो तैयारी में लग जाओ। अगर आज तुम्हारे द्वार परमात्मा नहीं आया तो तैयारी में लग जाओ। कल घर-द्वार को और झाड़ो, और बुहारो, और साफ करो, दिया जलाओ, धूप जलाओ, फूल लगाओ। कल फिर प्रतीक्षा करो। अगर न आये तो इतना ही समझो कि अभी कहीं थोड़ी भूल-चूक और है। जिस क्षण भी भूल-चूक पूरी हो जाती है, घटना ऐसे घटती है, जैसे सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है। अगर निन्यानवे डिग्री तक भाप नहीं बना है तो इसका यह मतलब नहीं है कि परमात्मा नाराज है। इसका इतना ही मतलब है कि सौ डिग्री पानी जब तक गर्म न हो तब तक भाप नहीं बनता। थोड़ी और लकड़ियां लगाओ चूल्हे में और थोड़ा ईंधन जलाओ। थोड़े और जोर से पुकारो, थोड़े और पागल होकर उन्मत्त होकर चीखो। थोड़े और दीवाने बनो। गीत और थोड़ा गुनगुनाओ ! आता ही होगा।

हरि से लगे रहो रे भाई, बनत-बनत बनि जाई।

बनत-बनत, होते-होते होता है। होता निश्चित है। जो भी उसकी तरफ गये, पहुंच जाते हैं। देर-अबेर। तुम्हारे कदमों की ताकत पर निर्भर है। कैसे तुम चलते हो ! दिशा ठीक हो बस इतना ही याद रहे, फिर धीमे चलनेवाले भी पहुंच जाते हैं, जल्दी चलनेवाले भी पहुंच जाते हैं, तेज धावक भी पहुंच जाते हैं। दिशा भर ठीक हो।

और प्रार्थना ठीक दिशा है। गलत हो तो खतरा है। तुम धीमे चलो तो भटकोगे, तेज चले तो और भी ज्यादा भटकोगे। अगर बहुत ही भागनेवाले हुए तब तो बहुत निकल जाओगे। दिशा भर ठीक हो। तो प्रार्थना दिशा को ठीक कर देती है। प्रार्थना का अर्थ होता है, समर्पण। प्रार्थना का अर्थ होता है, मेरे किये कुछ न होगा, तू कर। तुमसे गलती हो सकती है, उससे गलती नहीं होती। यह ठीक दिशा हो गई। जब तक तुम करोगे तब तक भूल-चूक हो सकती है। तुमसे भूल-चूक ही होगी। तुमसे और होने की आशा भी कहां है? इस अंधेरे मन को लेकर ठीक कैसे करोगे ? इस बुझे दिये को लेकर राह कैसे खोजोगे ? संभावना भटक जाने की है, संभावना पहुंचने की नहीं है। प्रार्थना का अर्थ होता है, मेरे किये तो जो हो जाता है गलत हो जाता है। जहां 'मैं' आया वहां गलती हो जाती है। मेरी मौजूदगी गलती की सबूत है। मेरा भाव कि 'मैं' मेरी सबसे बड़ी गलती है।

प्रार्थना का अर्थ है, मैं को उतार कर रखता हूं। कहता हूं, 'तुम, तू'।

जलालुद्दीन की प्रसिद्ध कविता है :

प्रेमी ने प्रेयसी के द्वार पर दस्तक दी
और भीतर से आवाज आई,
"कौन है तू ?"
और उसने कहा,
"मैं। अरे ! पहचानी नहीं ?
मेरी आवाज नहीं पहचानी ?
मेरे पैरों की आवाज नहीं पहचानी ?

लेकिन फिर भीतर सन्नाटा हो गया, कोई उत्तर न आया। बहुत द्वार पर उसने सिर पीटा लेकिन फिर पीछे से कोई प्रश्न भी नहीं पूछा गया। घर में जैसे कोई हो ही न। जब बहुत चीखा-चिल्लाया तो भीतर से इतनी ही आवाज आई, इस घर में दो न समा सकेंगे। यह प्रेम का घर है, यहां दो न समा सकेंगे।

प्रेमी समझा। तीर लग गया है हृदय पर। चला गया वनों में। कई चांद आये और गये। कई सूरज उगे और मिटे। वर्ष पर वर्ष बीते। उसने अपना मैं गलाया मिटाया, पिघलाया। जिस दिन उसका मैं बिलकुल पिघल गया, जिस दिन नाम मात्र भी न रहा, जिस दिन उसने भीतर झांककर देख लिया और परम शून्य को विराजमान पाया, जिसमें कि कोई धुन न उठती थी। आया, द्वार पर दस्तक दी।

फिर वही प्रश्न :

"कौन है ?"

अब प्रेमी ने कहा, "अब कौन ? तू ही है।"

और द्वार खुल गये।

यह रूमी की छोटी सी कविता, भक्त की सारी भावदशा है।

अगर तुम्हारी प्रार्थना में मैं का स्वर है तो द्वार-दरवाजे बंद रहेंगे परमात्मा के। लाख सिर पटको, मैं के लिये द्वार न कभी खुला है, न कभी खुलेगा। मैं ही तो ताला है उस द्वार पर। तुम्हारा मैं उसके द्वार पर ताला है। और परमात्मा तुम्हारे मैं को नहीं खोल सकता। ताला तुम लगाते हो, तुम ही खोल सकोगे और तुम्हारा मैं हट जाये, तुम्हारे मैं का ताला गिर जाये तो द्वार खुला है। कभी बंद नहीं था। तुम्हारी आंख पर ही पर्दा है, परमात्मा पर कोई पर्दा नहीं।

लोग सोचते हैं परमात्मा कहीं छिपा है। तुम आंख बंद किये खड़े हो। यह तुम्हारा मैं तुम्हारे चारों तरफ एक काली दीवार बन गया है प्रार्थना का अर्थ है, मैं गिर जाये, यह भाव मिट जाये कि मेरे किये कुछ हो सकेगा। मेरे किये तो जो हुआ है, सब गलत हुआ है। मेरे किये तो संसार हुआ। मेरे किये तो देह बनी। मेरे किये तो जाल फैले। मेरे किये तो वासना उठी। मेरे किये तो कर्म का बहुत जंजाल फैला। मेरे किये जो भी हुआ, गलत हुआ। मेरे किये सारी चिंता और संताप, पीड़ा और पागल पन पैदा हुए।

प्रार्थना का अर्थ है, अब ऊब गया हूं इस मैं से और मेरे करने से। अब कहता हूं, तू कर--प्रार्थना का सारभूत। प्रार्थना का मतलब नहीं कि तुम अल्लाह-अल्लाह पुकारो कि राम-राम पुकारो। वे तो गौण बातें हैं। न भी पुकारें, चुप्पी में भी हो जायेगी प्रार्थना। मगर एक मूल बात है कि मैं को उतारकर रखो। फिर न भी पुकारे तो पुकार पहुंच जाती है। और मैं के रहते लाख पुकारते रहो तो भी पुकार पुकार नहीं पहुंचती।

और जब तुम रहे ही नहीं तो जल्दबाजी कैसी ? जल्दबाजी किसकी ? फिर कौन अधैर्य करेगा ? और कौन कहेगा कि जल्दी हो जाये ? यह भी मैं की अपेक्षा है कि जल्दी हो जाये। मैं डरा हुआ है कि समय न निकल जाये। क्योंकि मैं का समय बंधा हुआ है। मैं शाश्वत नहीं है, क्षणभंगुर है। इसलिए मैं बहुत समय के बोध से भरा हुआ है। मैं हटा कि फिर तो जो बचा, वह शाश्वत है। फिर कोई जल्दी नहीं है। आज हो, कल हो, सब बराबर है। अनंत काल में कभी भी हो,

सब बराबर है। फिर जो समय की आपा-धापी है, वह जो घबड़ाहट है कि समय बीता जा रहा है, कहीं ऐसा न हो कि मैं मर ही जाऊं और यह घटना न घटे...।

कल मैं एक कविता पढ़ रहा था,

तूही है बहकते हुओं का इशारा
तू ही है सिसकते हुओं का सहारा
तू ही भटके-भूलों का है ध्रुव का तारा
जरा सींकचों में समा दिखा जा
मैं सुध खो चुकूं उससे कुछ पहले आजा
आओ तुम अभिनव उल्लास भरे
नेह भरे, ज्वार भरे, प्यास भरे
अंजली के फूल गिरे जाते हैं
आये आवेश फिरे जाते हैं
जरा सींकचों में समा दिखा जा
मैं सुध खो चुकूं उससे कुछ पहले आ जा

मैं को बड़ी जल्दी है। मैं को डर यही है कि मौत आयी जाती है। और मैं की मौत निश्चित है। मैं का होना चमत्कार है, मैं की मौत तो बिल्कुल स्वाभाविक है। मैं को कैसे संभाले हो यही चमत्कार है। मैं गिरा-गिरा, अभी गिरा। किसी भी क्षण गिर जायेगा। यह तो कभी भी टूटने को तत्पर है। इसे संभालने के लिये सारा जीवन लगाना पड़ता है फिर भी यह संभल तो पाता नहीं, एक दिन गिर ही जाता है। मौत इसी की होती है।

मैं की चूंकि मौत होनेवाली है इसलिए मैं समय से बहुत घबड़ाया हुआ है। मैं को समय का बड़ा बोध है। जल्दी हो जाये, अभी हो जाये, इसी क्षण हो जाये। तुम्हें क्या डर है? मैं को जरा हटाकर जरा अपनी शकल तो पहचानो। मैं को जरा हटाकर अपना रूप तो देखो। तुम शाश्वत हो। तो कभी मिले, अनंत काल में मिले तो भी अभी मिला। देर होती ही नहीं फिर। इसलिए प्रार्थना का अनिवार्य अंग है प्रतीक्षा। अनंत धैर्य से भरी प्रतीक्षा।

हरि से लगे रहो रे भाई, बनत-बनत बनि जाई।

दूसरा प्रश्न: आपने कहा कि दो ही मार्ग हैं, ध्यान और भक्ति। ध्यान में प्रयत्न निहित है और भक्ति में प्रसाद। इस संदर्भ में अष्टावक्र, बोधिधर्म और कृष्णमूर्ति के दर्शन को क्या कहेंगे, जो कोई भी अनुष्ठान नहीं बताते?

सत्य को जानने, सत्य में जागने के दो ही मार्ग हैं: भक्ति और प्रेम। फिर स्वभावतः प्रश्न उठता है कि अष्टावक्र तो कहते हैं कोई मार्ग नहीं। बोधिधर्म भी कहता है, कोई मार्ग नहीं। कृष्णमूर्ति भी कहते हैं, कि कोई मार्ग नहीं।

जो वे प्रस्तावित करते हैं, अमार्ग है। उसकी गिनती मार्ग में नहीं हो सकती। अमार्ग से भी पहुंचा जाता है। मगर वह अमार्ग है। मार्ग तो दो हैं: भक्ति और ध्यान। अमार्ग एक है। अमार्ग को भी समझ लेना चाहिये। वह भी बात तो बड़ी गहरी है, बड़े काम की है।

बोधिधर्म, अष्टावक्र और कृष्णमूर्ति का जोर यह है कि तुम परमात्मा से कभी बिछड़े नहीं। तुम कभी दूर गये नहीं। इसलिए उसे तुम किसी मार्ग से खोजने चलोगे तो कैसे पाओगे? तुम तो वहां हो ही। इसलिए तुम अगर सब खोज छोड़ दो तो पहुंच गये। खोज के कारण भटक रहे हो। क्योंकि खोज का मतलब ही हुआ कि कहीं दूर है। खोजते हम उसीको हैं, जो दूर है। खोजते हम पर को। खोज का मतलब ही होता है, दूसरे की खोज। अपने को तो हम खोज नहीं सकते। कहां खोजेंगे? कहां जायेंगे खोजने? स्वयं तो हम हैं ही। इसमें यह भी एक संभावना है; मगर यह दुरूहतम संभावना है। प्रेम और भक्ति से सुगमता से बात हल होती है। ध्यान थोड़ा उससे कठिन है; अमार्ग और भी कठिन। सरल दिखाई पड़ता है, इससे चूक में न पड़ना। सरल दिखाई ही इसीलिए पड़ता है कि बहुत कठिन है। जितना सरल हो उतना ही कठिन है। कठिन को हल किया जा सकता है, सरल को हल करना बहुत मुश्किल हो जाता है। बात सच है कि तुम जहां हो वहीं परमात्मा है। तुम जैसे हो वैसा ही परमात्मा है। इसलिए अब कहीं जाना नहीं है।

हम सुनते हैं, वचन प्रसिद्ध है, 'जिन खोजा तिन पाइयां।' जिसने खोजा उसने पाया। अगर पूछोगे बोधिधर्म से बोधिधर्म कहेगा, 'जिन खोजा तिन खोया'। क्योंकि खोजने का मतलब है, कहीं गये। कहीं गये तो दूर गये। दोनों सच हैं। लेकिन बोधिधर्म की बात समझना तभी संभव है जब खूब-खूब खोजा हो और न पाया हो। जब खोज-खोज कर थक गये हो और न पाया हो। जब खोज आखिरी कर ली हो जितनी कर सकते थे, अहंकार जितनी दौड़ ले सकता था ले ली हो और फिर थका-हारा गिर पड़ा, उसी क्षण मिल जाता है। मिलता तो उसी क्षण है, जब तुम नहीं होते।

अब तुम कैसे नहीं होओगे, इसकी ये दो विधियां हैं। या तो तुम प्रेम में गल जाओ, नहीं हो जाओगे; या तुम ध्यान में बिखर जाओ, नहीं हो जाओगे। या फिर इतनी समझदारी हो जिसको कृष्णमूर्ति अंडरस्टेंडिंग कहते हैं, इतनी प्रज्ञा हो कि न प्रेम की जरूरत हो, न ध्यान की जरूरत हो। सिर्फ बोध में यह बात सिर्फ समझ

ली जाये और घटना घट जाये। कठिन हो गई बात। बोध इतना होता तो घट ही गई होती।

इसीलिए तो कृष्णमूर्ति को बैठे लोग सुनते रहते हैं, कहीं पहुंचते इत्यादि नहीं। और बात कृष्णमूर्ति ठीक ही कहते हैं, सौ टका ठीक कहते हैं। शायद सौ टका ठीक है इसलिए चूक हो जाती है। लोग अभी वहां है जहां एक टका बात समझ में मुश्किल से आये। तुम सौ टका बात कहे चले जाते हो। लोगों पर ध्यान दो। वहां से बात करो जहां लोग खड़े हैं। तुम वहां से बात कर रहे हो जहां तुम हो। बोधिधर्म वहां से बोलता है जहां स्वयं है। अष्टावक्र वहां से बोलते हैं जहां स्वयं हैं। सुननेवाले की चिंता नहीं करते।

अगर मैं वहां से बोलूं जहां मैं हूं, फिर मैं तुम्हारे किसी काम का नहीं। फिर मेरे तुम्हारे बीच इतना फासला हो जायेगा कि तुम सीढ़ी न लगा सकोगे। अनंत दूरी हो जायेगी। मुझे वहां से बोलना है जहां तुम हो। धीरे-धीरे तुम्हें सरकाना है, फुसलाना है। किसी दिन वहां ले आना है जहां मैं हूं। लेकिन अगर मैं वही कहूं जहां मैं हूं तो तुम्हारे लिये बेबूझ हो जायेगा। कितने लोग अष्टावक्र को समझ पाये, कितने लोग? कृष्ण की गीता ज्यादा लोगों तक पहुंची। करोड़ो जनों तक पहुंची। अष्टावक्र की गीता क्यों नहीं पहुंची? कृष्ण की गीता में सुनने वाले की स्थिति का ख्याल है। आदमी कहां खड़ा है, वहां से शुरू करो। वहीं से उसकी यात्रा होगी। अष्टावक्र को इसकी फिक्र नहीं है।

तो कोई जनक समझ लिया बात, ठीक है। लेकिन जनक कितने हैं? एक आदमी मिल गया यह भी चमत्कार है। कृष्णमूर्ति को अभी तक एक भी जनक नहीं मिला। मिल सकता नहीं। उसके कारण हैं। अष्टावक्र को भी कैसे मिला, यह भी जरा संदिग्ध है। मिला कि सिर्फ कहानी है। क्योंकि जो जनक होने की क्षमता रखता हो, वह बिना अष्टावक्र के पहुंच जायेगा। जनक होने की क्षमता का अर्थ ही यह है कि निन्न्यानवे डिग्री पर उबल रहा है आदमी। वह तो ही तो समझ सकेगा सौ डिग्री के पार की बात। उसके लिये करीब एक कदम बात हो जानेवाली। शायद एक कदम भी नहीं, जरा सी चहलकदमी, जरा सी गति, जरा सा धक्का! वह किनारे पर खड़ा है; खाई-खड्ड के बिल्कुल किनारे पर खड़ा है, जरा सा हवा का झोंका काफी है। न भी आता हवा का झोंका तो वह खुद भी कूद जाता। सामने ही खड़ा था परमात्मा। परमात्मा सामने ही फैला था। अष्टावक्र न भी मिलते तो जनक पहुंच जाते।

अष्टावक्र उसके काम के हैं जिसको न भी मिलता तो पहुंच जाता। तो बड़े काम के नहीं हैं। वक्तव्य बहुत महान है। लेकिन काम का नहीं, उपयोगी नहीं।

कृष्ण अर्जुन की बात बोल रहे हैं, अर्जुन जहां खड़ा है। इसलिए अष्टावक्र की गीता में पुनरुक्ति है। पुनरुक्ति ही पुनरुक्ति है क्योंकि वह एक ही बात है। बोलने को। एक ही डिग्री का मामला है। वह एक ही बात बोले चले जाते हैं। फिर-फिर दोहराते हैं, फिर-फिर दोहराते हैं। खुद भी वही दोहराते हैं शिष्य भी वही दोहराता है। अष्टावक्र की पूरी गीता एक पृष्ठ में लिखी जा सकती है, एक पोस्टकार्ड पर लिखी जा सकती है। क्योंकि जो अष्टावक्र कह रहे हैं, वही जनक दोहराते हैं। फिर जनक दोहराते हैं, फिर अष्टावक्र दोहराते हैं। वह सिर्फ दोहराना है; बार-बार दोहराना है। क्योंकि कुछ और तो कहने को है नहीं। एक ही सत्य है वहां। उसी एक सत्य को बार-बार कहना है।

कृष्ण बहुत सी बातें कहते हैं—ज्ञान की, भक्ति की, कर्म की। कृष्ण सारे मार्गों की बात कहते हैं। क्योंकि अर्जुन ऐसे बिबूचन में पड़ा है। इसको पक्का पता नहीं कि यह कहां खड़ा है? यह बीच बाजार में खड़ा है, जहां से बहुत रास्ते निकलते हैं। सभी रास्ते इसको समझाते हैं। यह नहीं जंचा, दूसरा समझाते हैं। किसी भी रास्ते से आ जाये। कृष्ण को इसकी कोई चिंता नहीं कि किस रास्ते से आता है। कृष्ण का किसी मार्ग से कोई मोह नहीं है। और कृष्ण को यह फिक्र नहीं है कि मैं जहां खड़ा हूं वह बात इसे आज समझ में आ जाये। यह अपेक्षा जरा ज्यादा है।

इसलिए कृष्णमूर्ति को तुम पाओगे, बड़े बेचैनी में हैं। समझाते-समझाते थक गये हैं। पचास साल से समझा रहे हैं। बोलते-बोलते सिर पीट लेते हैं। क्योंकि दिखाई ही नहीं पड़ता कि किसीको समझ में आ रहा है कि नहीं आ रहा। यही लोग बैठे सुन रहे हैं। उनमें कई पचास साल से सुनने वाले भी हैं, जो कृष्णमूर्ति जैसे बूढ़े हो गये हैं। उनको सुनते-सुनते बूढ़े हो गये हैं। और फिर भी कुछ क्रांति नहीं घटी। पचास साल में बड़ी यात्रा हो सकती थी। लेकिन बात वहां से शुरू होनी चाहिये, जहां आदमी खड़ा हो।

तो अमार्ग का मार्ग तो करोड़ में एक-आधा के लिये है। इसलिए उसको मार्ग भी क्या कहना?

चीनी कथा है कि लाओत्से ने एक बार अतीत साहित्य और समृद्धि की बहुत चर्चा करने के लिये कनफ्यूशियस का मजाक उड़ाया था। कनफ्यूशियस उससे मिलने आया था। लाओत्से ने उससे कहा था, तुम्हारे सारे प्रवचन वस्तुओं से संबद्ध हैं जो धूल में छोड़े गये चरण-चिन्हों से ज्यादा नहीं। और जानते हैं कि चरण-चिन्ह जूतों से बनते हैं लेकिन वे जूते ही नहीं होते? कहते हैं, लाओत्से की हंसी की आवाज गूंजती ही रही सदियों में। कनफ्यूशियस कुछ जवाब भी नहीं दे सका था।

लाओत्से के लिये तो जो भी वास्तविक मार्ग है—अमार्ग कहें—वह ऐसा

है, जैसा आकाश में पक्षी उड़ते हैं, कोई चरण-चिन्ह नहीं छोड़ते । पक्षी उड़ जाता है, कोई रेखा नहीं छूट जाती । कोई मार्ग नहीं बनता है । जमीन पर चलने जैसा नहीं है सत्य, आकाश में उड़ने जैसा है ।

जमीन पर तो मार्ग बनता है । तुम चलोगे तो मार्ग बनता है, पगडंडी बनती है । कई लोग गुजरेंगे तो मार्ग और सघन हो जाता है । मार्ग बनता है । इतने भक्त गुजरे हैं अनंत काल में तो भक्ति का एक मार्ग बन गया है । इतने ध्यानी हुए हैं अनंत काल में कि ध्यान का एक मार्ग बन गया है । लेकिन ये अष्टावक्र, बोधिधर्म, लाओत्से, कृष्णमूर्ति, इनका कोई मार्ग नहीं । वे कहते हैं आकाश में उड़ने जैसा है सत्य । ठीक है, मगर आकाश में उड़नेवालों के लिये ठीक है ।

जो अभी जमीन पर चल रहे हैं, इनके संबंध में क्या ? चल भी नहीं रहे हैं, जो जमीन पर घसिट रहे हैं, इनके सबंध में क्या ? जिन्होंने जमीन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं जाना, इनके संबंध में क्या ? जिनको अपने पंखों का पता ही नहीं है, इनके संबंध में क्या ? इनको बहुत दूर आकाश दिखाई दे भी जाये तो भी सिर्फ ये तड़फेंगे, उड़ न सकेंगे । इन्हें पता ही नहीं इनके पास पंख हैं। इनके पंखों को धीरे-धीरे जगाना होगा । सोये पंखों को धीरे-धीरे जगाना होगा । इनके सोये पंखों को धीरे-धीरे उकसाना होगा । इन्हें धीरे-धीरे राजी करना होगा । क्रमशः धीरे-धीरे, इनकी हिम्मत बढ़ जाये । पंख इनके पास हैं, परमात्मा इनके पास है, अगर ये आंख खोल सके तो अभी पास हैं । मगर आंख ही नहीं खोलते, वही तो झंझट है । आंख तो भींचे हुए बैठे हैं। इन्हें धीरे-धीरे राजी करना होगा । आहिस्ता-आहिस्ता ये आंख खोलें ।

कहते हैं कबीर जब युवा थे तब की घटना है । कुछ लोग उनसे ईश्वर तक पहुंचने का मार्ग पूछने आये थे । वे बौद्धिक रूप से उसके रहस्यमय पथ के संबंध में मार्ग-निर्देश चाहते थे । रवीन्द्रनाथ ने इस पर टिप्पणी की है । रवीन्द्रनाथ ने लिखा है, कबीर ने इतना ही कहा, मार्ग दूरी को प्रस्तावित करता है । समझना । मार्ग दूरी को प्रस्तावित करता है, पर वह यदि निकट हो तो कोई भी मार्ग आवश्यक नहीं । सच, मुझे बहुत हंसना आता है कि मछली सागर में ही प्यासी है ।

पाथ प्रिसपोजेज डिस्टेंस,
इफ ही बी नियर, नो पाथ बीडेथ दाउ एट आल
वेरिली इट मेकेथ मी स्माइल, टू हियर ऑफ ए
फिश इन ए वाटर एथर्स्ट ।

मार्ग का मतलब ही है कि दूर । मार्ग दूरी को प्रस्तावित करता है । अगर पास ही है तो कैसा मार्ग ? और अगर तुम ही हो तो इंच भर फासला नहीं, तो मार्ग कहां बनाओगे ? तो जितना तुम चलोगे उतने भटक जाओगे ।

बात बिल्कुल तर्कयुक्त है कि जितना चलोगे उतना भटक जाओगे । चलो मत, जागो । होश जगा लो । जहां हो वहीं दिया जला लो । और सब हो जायेगा । लेकिन यह बात तुम्हारे कानों पर ऐसे पड़ेगी, जैसे बहरे कानों पर पड़ी । यह बात कुछ अर्थ न रखेगी । सुन भी लोगे, तो भाषा समझते हो तो समझ भी लोगे, मगर फिर इससे कुछ द्वार न खुलेगा ।

भक्त कहता है अभी तो दूरी है ।

जब जागोगे तो पाओगे, कोई दूरी न थी ।

अभी तो दूरी है । अभी तो बड़ी दूरी है । अभी तो अनंत दूरी है । माना कि अनंत दूरी झूठ है, लेकिन अभी है । झूठ ही सही, अभी है ।

तुम अगर डरे हुए हो तो तुम भला झूठे भूत से डरे हुए हो, इससे क्या फर्क पड़ता है ? भय तो सच्चा है । एक अंधेरी रात में तुम एक मरघट से गुजरते हो। तुम डरे हुए हो कि भूत-प्रेत सतायेंगे । भूत-प्रेत कोई भी नहीं है । हो सकता है मरघट मरघट ही न हो, सिर्फ तुम्हें ख्याल है; या किसीने मजाक कर दिया है कि जरा संभल कर निकलना, रास्ते में मरघट है, लेकिन तुम्हें ख्याल आ गया, इधर भूत हैं, अब तुम डरे हुए हो । अब जरा पत्ता खड़कता है तो तुम्हें लगा कि आया भूत। जरा कुत्ता निकल जाता है, पक्षी फड़फड़ाता है, तुम्हें लगा आ गया । तुम भागने लगे । तुम्हारी छाती धड़क रही है, तुम्हारे हाथ-पैर कांप रहे हैं, तुम पसीने से तरबतर हो। तुमने होश खो दिया है एक पत्थर से चोट खा गये, समझा कि गये ! गिर पड़े कि बेहोश ही हो गये ।

भूत झूठ है, सच; लेकिन यह जो तुम्हें घट रहा है, यह पसीना बहना और छाती की धड़कन और यह होश खो देना, यह तो सब सच है । भूत झूठ हो कि सच इससे क्या फर्क पड़ता है ? जो घट रहा है वह तो सच है । इसलिए असली सवाल यह नहीं कि भूत है या नहीं। अब कोई आदमी वहां तुम्हें समझाये कि तुम व्यर्थ ही परेशान हो रहे हो, भूत है ही नहीं। तो तुम इस बात को सुन भी लो तो समझ न पाओगे । तुम्हारे लिये कोई उपाय चाहिये । तुम्हारे लिये कोई उपाय चाहिये जो झूठे भूतों से तुम्हें मुक्त करा दे । माना कि उपाय भी झूठा होगा । क्योंकि झूठ केवल झूठ से कटता है । झूठ को काटने के लिये सच की जरूरत नहीं होती । झूठ केवल झूठ से कट जाता है । लेकिन अभी काटने के लिये कोई उपाय चाहिये होगा । और एक बार कट जाये झूठ तो तुम भी समझ लोगे कि मरघट भी नहीं है, भूत भी नहीं हैं । मैं व्यर्थ ही घबड़ा रहा था । घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है । तब तुम भी हंसोगे । तुम भी राजी हो जाओगे कि बात तो ठीक थी, सब झूठ का ही जाल था ।

भक्ति और ध्यान मनुष्य के प्रति ज्यादा करुणापूर्ण हैं। अमार्ग की बात करुणापूर्ण नहीं है। सत्य तो है लेकिन करुणा नहीं है, दया नहीं है। बड़ी कठोर है। इसलिए कृष्णमूर्ति कठोर मालूम होंगे। इसलिए कृष्णमूर्ति गुरु नहीं हो सके। इतनी कठोरता से गुरु नहीं हुआ जा सकता।

गुरु के लिये अपार करुणा चाहिये। इतनी करुणा चाहिये कि वह उन घाटियों में चला जाये जहां उसके शिष्य भटक रहे है। इतनी करुणा चाहिये कि उन्हीं अंधेरे रास्तों पर पहुंच जाये जहां उसके शिष्य भटक रहे हैं। उनका हाथ पकड़े, उन्हें वापिस पहाड़ के शिखर की तरफ ले चलने लगे। रास्ता कठिन होगा। और शिष्य इन्कार करेंगे ऊपर चढ़ने से। हर तरह की बाधायें डालेंगे। बार-बार वापिस खाई-खड्ड में भाग जाना चाहेंगे। बार-बार उसे लौटकर आना होगा। बार-बार उनका हाथ पकड़ना होगा। शिष्य उसे कभी क्षमा नहीं करेंगे। क्योंकि उनके वह नाहक पीछे पड़ा है। वे मजे से सो जाना चाहते हैं, वह जगा रहा है। वे संसार में थोड़ा और रस ले लेना चाहते हैं और वह उन्हें विरस किये दे रहा है। वे चाहते थे कि घर-गृहस्थी बना लें और वह सब उजाड़े दे रहा है। अभी तो उनको यह ऐसा लगेगा कि यह दुश्मन है। शिष्यों को गुरू दुश्मन जैसा मालूम होगा। और गुरु है कि लौट-लौट कर आयेगा और उन्हें वापिस ले चलने लगेगा।

एक आदमी वह भी है, जो पहाड़ के शिखर पर पहुंच गया, वहां से खड़े होकर चिल्ला देता है कि घाटी के लोगों, सुन लो बात ऐसी है, सत्य ऐसा है। मगर घाटी के लोग बहुत दूर हैं, वहां तक न तो आवाज पहुंचती है, और आवाज भी पहुंच जाये तो अर्थ नहीं पहुंचता। और अर्थ तो पहुंच ही कैसे सकता? क्योंकि वे तो तुम्हारे शब्दों का जो अर्थ करेंगे वह उनका ही होगा; वह अर्थ घाटी का होगा, वह शिखर का नहीं हो सकता। उन्होंने शिखर कभी देखा नहीं। शिखर की भाषा से वे परिचित नहीं हैं।

इसलिए मार्ग तो दो ही हैं: भक्ति और ध्यान। अमार्ग एक और है। अगर तुम अमार्ग को भी मार्ग में गिनना चाहो तो तीन मार्ग गिन लो। मगर वह चूंकि अमार्ग है इसलिए मैं उसकी गिनती नहीं करता। और चूंकि कभी कोई उससे पहुंचता है, उसको छोड़ा जा सकता है। उसका हिसाब रखने की कोई जरूरत नहीं। और जो उससे पहुंचता है वह ऐसा बिरला व्यक्ति है कि उसको हम अपवाद मान ले सकते हैं। नियम बनाने की जरूरत नहीं।

अमार्ग के मार्ग पर गुरु नहीं होता। अमार्ग के मार्ग पर कोई विधि नहीं होती। अमार्ग के मार्ग पर यह पूछना कि कैसे करें, गलत प्रश्न पूछना है। अमार्ग के मार्ग पर प्रश्न ही पूछना गलत है। क्योंकि अमार्ग का मार्ग तो यह मानकर चलता है कि तुम

वहां हो ही। बस आंख खोलो और देख लो। और बात सच है। बात जरा भी गलत नहीं है। मगर करुणाशून्य है। जरा भी भाव-भीनी नहीं है। रूखी-सूखी है——मरु-स्थल जैसी।

भक्ति भी वहीं पहुंचती है लेकिन तुम पर दया करती है। धीरे-धीरे।

मैंने सुना है कि जंगल में लोमड़ियां एक तरह का प्रयोग करती हैं। वही भक्ति और वही ध्यान का प्रयोग है। लोमड़ी के ऊपर कभी-कभी मधुमक्खी बैठ जाती है, या मक्खियां बैठ जाती हैं। उनसे कैसे छुटकारा पाये? मुंह हिलाती है तो वे पीछे बैंठ जाती हैं, पूंछ पकड़ लेती हैं। पूंछ हिलाती है तो सिर पर बैठ जाती हैं। सिर और पूंछ दोनों हिलाये तो बीच में बैठ जाती हैं। भागे तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। वे मक्खियां बैठी रहती हैं। उसके ऊपर उड़ती हैं। वे उसे बड़े कष्ट में डाल देती हैं।

तो लोमड़ी क्या करती है? जिन लोगों ने लोमड़ियों का अध्ययन किया है वे कहते हैं, वह बड़ी कुशलता का काम करती है। वह क्या करती, नदीमें या तालाब में उतर जाती। उलटी उतरती——पूंछ की तरफ से पहले। पहले पूंछ डूब जाती पानी में तो मक्खियां उसकी पूंछ छोड़ देतीं। फिर उसकी पीठ डूब जाती तो मक्खियां उसकी गर्दन भी छोड़ देती। और भी लोमड़ी बड़ा होशियारी का काम करती है, एक पत्ता मुंह में पकड़ लेती है। फिर वह और बिलकुल डूबने लगी तो उसका सिर भी डूबने लगा। तो वे सारी मक्खियां उसकी नाक पर आ जातीं। फिर आखिरी झपके में वह अपनी नाक को भी डुबकी मार देती है। तो सारी मक्खियां पत्ते पर आ जाती हैं। वह पत्ते को छोड़ देती है। पत्ता नदी में बह जाता है।

क्रमशः, धीरे-धीरे, एक-एक कदम। घटना तो एक ही क्षण में घटती है यह सच है। क्योंकि जब तक मक्खियां उसकी नाक पर बैठी हैं तब तक सब मक्खियां बैठी हैं। पूंछ पर नहीं हैं, पीठ पर नहीं हैं मगर लोमड़ी पर तो हैं ही। अभी नाक पर बैठी हैं। अभी मक्खी एक भी गयी नहीं है। आखिरी क्षण तक भी सब मक्खियां उस पर बैठी हैं। जाती तो एक ही क्षण में हैं। जब वह आखिरी डुबकी मारती है, एक क्षण में पत्ते पर सारी मक्खियां हो जाती हैं और पत्ता बह जाता है, मक्खियों को ले जाता है। क्रमशः नहीं घटती बात। यह याद रखना।

यह मत सोचना कि भक्त क्रमशः भगवान के करीब आता है। और यह मत सोचना कि ध्यानी क्रमशः समाधि के करीब आता है। नहीं, घटना तो आकस्मिक ही है। घटना तो अनायास ही है। घटना तो एक क्षण में ही घटती है। मगर घटना की तैयारी क्रमिक होगी। इस भेद को ठीक से समझ लेना। अमार्ग के मार्गी कहते हैं कि एक क्षण में घटती है। ठीक कहते हैं, एक ही क्षण में घटती है। मगर

तैयारी... तैयार में कभी वर्षों लगते हैं, कभी जन्म भी लग जाते हैं।

और यह ध्यान रखना कि जब तक घटी नहीं है तब तक जिसने तैयारी की है और जिसने तैयारी नहीं की है, दोनों एक से ही अंधकार में खड़े हैं। मगर जिसने तैयारी की है वह निन्यानबे डिग्री पर उबल रहा हो, और जिसने तैयारी नहीं की है, वह हो सकता है चालीस डिग्री डबल रहा हो, कि तीस डिग्री पर, कि कुनकुना मात्र हो, कि अभी ठंडा ही हो, अभी बर्फ ही हो। कोई भी नहीं अभी भाप बना है। लेकिन जो निन्यानवे डिग्री के पास आ गया है वह भाप बनने के करीब है। भाप तो एक क्षण में बनेगी। सौ डिग्री--और छलांग।

भक्त भी जानते हैं कि छलांग ही लगती है। मगर छलांग की वे बात नहीं करते। वे कहते हैं वह तो जब लगनी है, लग जायेगी। उसकी क्या बात करनी! तुम तैयारी तो करो। तुम मक्खियों को धीरे-धीरे धीरे-धीरे नाक तक तो ले आओ कि फिर पत्ता ही बचे उनको बचने के लिये। फिर पत्ते को छोड़ देना, जैसे ही वे पत्ते पर छलांग लगा जायें, एक क्षण में मुक्त। मक्खियों से छुटकारा हो जाये।

तीसरा प्रश्न : शून्य के शिखर में गैब का चांदना
वेद कितेब के गम नाहीं
खुले जब चश्म, हुस्न सब पश्म हैं
दिन और दूनी से कम नाहीं
शब्द को कोट में चोट लागत नाहीं
तत्त्व झंकार ब्रह्मांड मांही
कहत कमाल कबीर जी को बालका
योग सब भोग त्रिलोक नाहीं

पूछा है नानक देव ने।

प्यारे वचन हैं। अर्थपूर्ण वचन हैं। समझो।

शून्य के शिखर में गैब का चांदना।

वह जो रहस्य का चांद है--गैब का चांदना। वह जो परम रहस्य की ज्योति है, वह शून्य में जल रही है। अगर उस परम रहस्य में उतरना है तो शून्य में उतरना पड़े। शून्य के शिखर में। शून्य के शिखर पर चढ़ना पड़े। अहंकार की घाटी छोड़नी पड़े। यह अहंकार के अंधेरे, खाई खड्ड छोड़ने पड़ें। शून्य के शिखर पर उठना पड़े। धीरे-धीरे मिटना है। जो मिटता है वही परमात्मा को पाने का अधिकारी होता है।

शून्य के शिखर में गैब का चांदना

वेद कितेब के गम नाहीं

वहां न वेद जाते हैं, न किताब जाती है। वहां इनकी गति नहीं है। वह तो अगम है। वहां किसी की गति नहीं है। वहां तुम भी नहीं जा सकते। वहां कोई नहीं जा सकता। वहां तो जब शून्य हो जाते हो तब जाते हो। शून्य ही जाता है शून्य की ही गति है शून्य में।

परमातमा के पास वही पहुंचता है जो सब भांति मिट गया। जिसने अपने को बचाया ही नहीं। जिसने बचाने के सारे आयोजन छोड़ दिये। सुरक्षा के सारे उपाय छोड़ दिये। परमात्मा में पहुंचना एक तरह आत्मघात है। असली आत्मघात! जिसको तुम आत्मघात कहते हो वह तो शरीर-घात है। उसमें तो आदमी का शरीर मर जाता है। दूसरा शरीर हो जायेगा। आत्मघात नहीं है वह। उसको आत्मघात नहीं कहना चाहिये। आत्मघात तो समाधि में घटता है। जब तुम बिलकुल ही मिट गये। बचे ही नहीं। रूपरेखा भी नहीं रही।

शून्य के शिखर में गैब का चांदना
वेद कितेब के गम नाहीं

वहां शब्द नहीं जाते। वहां सिद्धांत नहीं जाते। वहां शास्त्र नहीं जाते। वहां हिंदू-मुसलमान-ईसाई की तरह तुम न जा सकोगे। वहां हिंदुस्तानी-चीनी-जापानी की तरह तुम न जा सकोगे। वहां गोरे और काले की तरह तुम न जा सकोगे। वहां स्त्री-पुरुष की भांति तुम न जा सकोगे। वहां जवान बूढ़े की तरह तुम न जा सकोगे। वहां ज्ञानी-अज्ञानी की भांति तुम न जा सकोगे। जब तक तुमने कोई भी अपनी परिभाषा पकड़ रखी है, कोई भी तुमने सीमा बांध रखी है, तुम न जा सकोगे। जब तुम सारी परिभाषाएं छोड़ दोगे, सीमाएं छोड़ दोगे, तुम जानोगे ही नहीं कि मैं हूं, ऐसा शून्य तुम्हारे भीतर जगमगायेगा, थरथरायेगा, जब तुम जा सकोगे।

खुले जब चष्म हुस्न सब पश्म हैं

और असली बात आंख के खुलने की है। जब आंख खुल जाये तो सब दिखाई पड़ जाता है।

खुले जब चष्म हुस्न सब पश्म हैं

फिर उसका सौंदर्य सब तरह दिखाई पड़ता है। दूर नहीं है, निकट से भी निकट है; पास से भी पास है। हर घड़ी मौजूद है। पर बात इतनी है कि आंख बंद है। अंधे हैं हम और सूरज द्वार पर खड़ा है। और हम पूछ रहे हैं कि सूरज कहां? हम पूछते हैं कि रोशनी कहां? अंधे हैं हम, असली बात तो नहीं पूछते कि आंख कैसे खुले? पूछते हैं कि सूरज है या नहीं? सूरज होता है या

नहीं? प्रमाण क्या है सूरज के होने का? और जो हमें प्रमाण देते हैं, वे अंधों से भी गये-बीते हैं।

किसी ज्ञानी ने परमात्मा के लिये प्रमाण दिया है? जिन्होंने दिया वे सब अज्ञानी ही हैं। परमात्मा के लिये प्रमाण दिया ही नहीं जा सकता। वह तो ऐसा ही होगा जैसे अंधे आदमी को तुम प्रकाश का प्रमाण दो कि प्रकाश है। क्या प्रमाण दोगे?

बुद्ध के पास एक अंधे को लाया गया था। बड़ा तार्किक था अंधा। गांव भर को परास्त कर चुका था। गांव के पंडितों को हरा दिया था। सभी उसको बुद्ध के पास ले आये थे कि हम तो हार गये। आप आयें हैं, कृपया करके इसे थोड़ा समझा दें। यह कहता है कि प्रकाश होता ही नहीं। और हम इसे तर्क के द्वारा नहीं समझा पाते। यह बड़ा तार्किक है। ऐसा तार्किक हमने देखा नहीं। यह कहता है, अगर प्रकाश हो तो लाओ, मेरे हाथ में रख दो, मैं छू कर देख लूं। अगर प्रकाश हो, तुम कहते हो कि छुआ नहीं जा सकता तो जरा उसे बजाओ, मैं उसकी आवाज सुन लूं। अगर आवाज भी न होती हो, जरा मुझे चखाओ, मैं उसका स्वाद ले लूं। अगर स्वाद भी न होता हो तो मेरे नासापुटों के करीब ले आओ, मैं जरा उसकी गंध ले लूं।

अब न तो प्रकाश में कोई गंध होती, न कोई स्वाद होता, न उसे छुआ जा सकता और न उसको चोट मारकर कोई संगीत पैदा किया जा सकता, कोई आवाज, झनकार पैदा की जा सकती। तो यह अंधा हंसता है। यह कहता है, खूब रही। तो तुम मुझे बुद्धू बनाने चले हो? तुम भी अंधे हो पागलों। और प्रकाश इत्यादि कहीं होता नहीं। अफवाहें हैं, झूठे लोगों ने उड़ा रखी हैं। और इन सबका एक ही प्रयोजन है कि तुम यह सिद्ध करना चाहते हो कि मैं अंधा हूं; हालांकि तुम सब अंधे हो। आंख किसीके भी पास नहीं है। कहां है प्रकाश? मुझे प्रमाण दो।

बुद्ध ने सुनी सारी बात। वह तो बड़ा अकड़कर बैठा था। उसने कहा कि आपके पास कोई प्रमाण हो तो बताइये, मैं एकेक प्रमाण को खंडन करूंगा। बुद्ध ने कहा, मैं इन पागलो जैसा पागल नहीं हूं। तुझे प्रमाण की जरूरत ही नहीं। मैं एक वैद्य को जानता हूं--बुद्ध का खुद का वैद्य था--जीवक के पास जाओ। जीवक उस वैद्य का नाम था। वह अपूर्व कुशल वैद्य है। वह कुछ करेगा। तुम्हें प्रमाण की जरूरत नहीं, औषधि की जरूरत है। तुम्हारी आंख खुलनी चाहिये। प्रकाश का प्रमाण और कुछ होता नहीं है। हो लाख, इससे क्या फर्क पड़ता है? आंख बंद, तो नहीं है। तो तुम जाओ।

वह आदमी भेजा गया। बुद्ध के वैद्य ने बड़ी मेहनत की। छह महीनों में उस

आदमी की आंखों का जाला कट गया। वह अंधा तो था नहीं। अंधा कोई भी नहीं है। जाला है आंख पर; जन्मों-जन्मों का जाला है, कट गया। आंख खोली उसने तो देखा, सारा जगत प्रकाश से भरा है। एकेक पत्ते पर प्रकाश नाच रहा है। एकेक कंकड़ प्रकाश से नहा रहा है। सारा जगत आलोकमंडित है।

वह नाचता बुद्ध के चरणों में आया। उसकी आंखों में आनंद के आंसू बह रहे हैं। वह रोमांचित हो उठा। वह बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा। बुद्ध ने कहा, कहो क्या ख्याल है प्रमाण के संबंध में? उस आदमी ने कहा, मुझे क्षमा करें। और मेरे गांववालों से भी मैं क्षमा मांगता हूं कि मुझे क्षमा करें। मैं अंधा था लेकिन मैं यह मानने को राजी नहीं था कि मैं अंधा हूं। वह मेरे अहंकार के विपरीत जाता था कि मैं अंधा, और सब आंखवाले? इस अहंकार को बचाने का एक ही उपाय था कि मैं सिद्ध करूं कि प्रकाश नहीं है। इसलिए 'मैं प्रकाश नहीं है, प्रकाश नहीं है' इसकी धुन लगाये रहता था।

जितने लोग जगत में कहते हैं ईश्वर नहीं है, वे अपने अहंकार को बचाने की कोशिश में लगे हैं। ईश्वर है तो अहंकार मिटेगा। तो यही उचित है कि कह दो कि ईश्वर नहीं है। कहां का ईश्वर! कैसा ईश्वर! प्रमाण क्या है? और ईश्वर के लिये कोई प्रमाण नहीं होता। अनुभव ही प्रमाण है।

खुले जब चष्म हुस्न सब पश्म है

आंख खुल जाये तो उसका सौंदर्य सब तरफ जाहिर है। हर तरफ से उसीके इशारे हैं। हर तरफ से वही झांकता हुआ पाओगे तुम। हर तरफ से वही बुलाता है। कोयल के कंठ में भी वही है। मोर के नाच में भी वही है। बादल जब घिर आते हैं आकाश में तो वही घिरता है। रात चांद-तारों में भी वही है, पशु-पक्षियों में भी वही है, मनुष्यों में भी वही है। चारों तरफ वही है। एक का ही विस्तार है। एक के ही अनंत रूप हैं। एक का ही खेल है।

खुले जब चश्म हुस्न सब पश्म है
दिन और दूनी से कम नाहीं

और फिर कोई फर्क नहीं पड़ता। आंख खुली हो तो दिन में भी है, रात में भी है। प्रकाश में भी है और अंधेरे में भी। आंख खुली हो तो सब हालत में है, हर हालत में है। फिर कोई शर्त की जरूरत नहीं होती। फिर संन्यासी को भी है और गृहस्थ को भी है। फिर ऐसा नहीं होता कि संन्यासी को ही है और गृहस्थ को नहीं है। फिर बुद्धिमान को भी है और बुद्धू को भी है। फिर बच्चों को भी है और बूढ़ों को भी। सुंदर-असुंदर सभी को। स्त्री-पुरुष को सभी को। फिर कोई शर्त नहीं है, फिर बेशर्त है।

शब्द को कोट में चोट लागत नाहीं

लेकिन तुम बड़ा छिपाये हुए हो उसको अपने भीतर और चोट नहीं लगने देते। चोट से तुम तिलमिलाते हो। जहां चोट लगती हो वहां तुम जाते नहीं। तुम तो वहां जाते हो जहां तुम्हारी दीवाल को और फुसलाया जाता हो और समझाया जाता हो कि और जरा दीवाल उठा लो। जहां तुम्हें सांत्वना दी जाती है, जहां तुम्हें संतोष दिया जाता है वहां तुम जाते हो। सत्य जहां हो वहां तुम जाते नहीं। वहां से तुम दूर भागते हो क्योंकि सत्य की तो चोट होती है।

सद्गुरु से तो तुम बचते हो। सब तरह आंख चुराते हो क्योंकि वह तुम्हारी दीवाल को, तुम्हारे कोट को, तुमने जो किला बना रखा है उसको तोड़ेगा। वह टूटे तो ही तुम्हारे भीतर छिपे हुए परमात्मा का आविर्भाव हो।

शब्द को कोट में चोट लागत नाहीं

वह शब्द तुम्हारे भीतर पड़ा है। वह प्यारा तुम्हारे भीतर बैठा है। वह अनाहत नाद तुम्हारे भीतर अभी भी गूंज रहा है मगर तुम किले में छिपे हो। और किले के कारण वह प्रगट नहीं हो पा रहा है। और तुमने कितने किले बना रखे हैं--धन के, पद के, प्रतिष्ठा के। इन झूठे किलों में तुम छिपे हो

शब्द को कोट में चोट लागत नाहीं
तत्त्व झंकार ब्रह्मांड माही

और मजा यह है कि उसीकी झंकार हो रही है सारे ब्रह्मांड में, मगर तुम ऐसी दीवालें बनाकर बैठे हो कि न तुम्हें भीतर सुनाई पड़ती है उसकी आवाज, न बाहर सुनाई पड़ती उसकी आवाज। तुम्हें सिर्फ ईश्वर की आवाज नहीं सुनाई पड़ती, और तुम्हें सब सुनाई पड़ता है। कामवासना की आवाज सुनाई पड़ती है, लोभ की आवाज सुनाई पड़ती है, मोह की आवाज सुनाई पड़ती है। सब तरह की आवाजें सुनने में तुम कुशल हो, बस एक आवाज नहीं सुनाई पड़ती उस परम तत्त्व की; और उसकी झनकार सब तरफ है।

कहत कमाल कबीर जी को बालका
योग सब भोग त्रिलोक नाही

और जिसको तुम योग समझ बैठे हो वह भी भोग मात्र है। वह भी त्रिलोक नहीं है। जिसको तुम योग समझ बैठे हो... लोग किस बात को योग समझ बैठे हैं? कोई शरीर के आसन लगा रहा है और सोचता है, आसन-सिद्धि हो गयी। तो कहीं पहुंच गये।

शरीर की सिद्धि आत्मसिद्धि तो नहीं बन सकती। शरीर को खूब आड़ा-तिरछा करो, सर्कस के कर्तब सीखो, इससे कुछ होनेवाला नहीं। हां, इससे अच्छा

स्वास्थ्य हो जायेगा। वह तो भोग ही है। अच्छा स्वास्थ्य, उसका योग से क्या लेना-देना? थोड़े लंबे जिओगे। दूसरे अस्सी साल में मर जायेंगे, तुम सौ साल जिओगे कि ड़ेढ़ सौ साल भी जिओगे। इससे क्या होगा?

बड़ी इस बात की महिमा होती है, कोई महात्मा आ जायें गांव में कि डेढ़ सौ साल उमर है। बड़े तुम प्रभावित होते हो। मगर यह सब भोग की ही भाषा है। तुम भी डेढ़ सौ साल जीना चाहते हो इसलिए प्रभावित होते हो।

मैंने सुना है, हिमालय में एक योगी था, वह समझा रहा था लोगों को कि उसकी उम्र सात सौ साल है। एक अंग्रेज भी पहुंच गया, यात्री था। वह भी सुन रहा था भीड़ में खड़े होकर। सात सौ साल उसे जंची नहीं। सत्तर साल से ज्यादा यह आदमी मालूम होता नहीं था। सात सौ साल! वह जरा घूमा-फिरा, पता लगाया। लोगों ने कहा, भई हमें तो कुछ पता नहीं। वे कहते हैं सात सौ साल तो ठीक ही कहते होंगे। महात्मा पुरुष हैं। यह तो सदा ही से योगी ऐसा चमत्कार करते रहे। तो फिर उसने उस महात्मा के शिष्य से पूछा। एक शिष्य से पूछा। एक शिष्य था, होगा मुश्किल से कोई तीस साल की उमर का--लड़का ही था। महात्मा के हाथ पैर दबाना और भोजन वगैरह बना देना यह उसका काम था। उसको उसने मिलाया-जुलाया, रात एकांत में उससे मिला। बोला, भई तू पास रहता है। तू तो बता इनकी उम्र क्या? उसने कहा, मैं कुछ भी नहीं कह सकता। मैं केवल तीन साल से इनके पास हूं। सात सौ साल की मैं कैसे कहूं?

ये बातें हमें खूब प्रभावित करती हैं। क्यों? तुम भी जीना चाहते हो। अगर सात सौ साल जीने की कोई तरकीब मिल जाये तो अहाहा! तुम गद्गद् हो जाओ। तो अगर कोई सात सौ साल जी रहा है तो तुम्हारे भीतर आशा बलवती होती है कि अगर यह आदमी जी रहा है तो हम भी इससे जड़ी-बूटी ले लेंगे कि कोई सिद्धि ले लेंगे। मगर यह तो भोग की भाषा है।

योग शाश्वत की बात करता है, समय की बात नहीं। वह असली योग तो न हुआ जो सात सौ साल जीने की बात करता हो।

योग सब भोग त्रिलोक नाही

फिर कोई बैठे हैं और भीतर देख रहे हैं, कुंडलिनी जग रही है और रीढ़ पर कुंडलिनी चढ़ रही है, मगर ये सब भी मन के ही खेल हैं। यह भी कुछ असली बात नहीं। फिर कोई देख रहा है कि भीतर सिर में रोशनी हो गई है, कमल खिल रहे हैं, मगर ये सब कल्पनायें हैं। अच्छी कल्पनायें हैं। किसीकी हत्या करने की कल्पना, उससे यह कल्पना बेहतर है कि कुंडलिनी चढ़ रही है। खूब धन लेने की कल्पना और रुपये ही रुपये इकट्ठे होते जा रहे हैं, उससे यह बेहतर है कि भीतर

रोशनी प्रगट हो रही है, तीसरा नेत्र खुल रहा है कि कमल खिल रहा है। कल्पनायें बेहतर हैं। सुंदर कल्पनायें हैं, धार्मिक कल्पनायें है मगर हैं तो कल्पनायें; है तो सब मन का जाल।

योग क्या है? योग शून्यभाव है।

शून्य के शिखर में गेब का चांदना

न कोई ऊर्जा उठ रही है, न कोई कुंडलिनी जग रही है, न कोई कमल खिल रहे हैं, न सहस्त्रदल पैदा हो रहा है, न कोई रोशनी है, न कोई अंधकार है, परम शून्य है। सब भांति स्थिति सम हो गयी। कोई दृश्य नहीं बचा, मात्र द्रष्टा बचा है।

फिर से दोहरा दूं। कोई दृश्य नहीं बचा, मात्र द्रष्टा बचा है। कोई अनुभव नहीं बचा, मात्र अनुभव करने की शुद्ध क्षमता बची। अनुभव मात्र समाप्त हो गये। अनुभव संसार है। इसलिए परमात्मा का कोई अनुभव नहीं होता, जब सब अनुभव से छुटकारा होता है तो जो शेष रह जाता है उसको ही हम परमात्मा का अनुभव कहते हैं।

कहत कमाल कबीर जी को बालका

कबीर का बेटा हुआ कमाल। कबीर ने उसे नाम दिया कमाल। वह कमाल का बेटा था। आदमी कमाल का था। कभी-कभी कबीर से बाजी मार ले जाता था। कबीर का ही बेटा था इसीलिए कमाल नाम दिया था।

तुमने एक प्रसिद्ध वचन सुना होगा, उसके बड़े गलत अर्थ लगाये जाते हैं। लोग समझते हैं कि कबीर कमाल पर नाराज थे। नाराज नहीं थे। नाराज हो ही नहीं सकते। कहानी है। क्योंकि कमाल ऐसे काम कर देता था जो साधारण व्यवस्था के अनुकूल नहीं होते। वह कमाल ही था। वह कुछ साधारण मर्यादा का आदमी नहीं था।

तो कबीर को थोड़ी अड़चन होती होगी। कबीर उसे समझते थे कि कमाल कहां है, ठीक जगह है। लेकिन फिर भी कबीर मानते थे कि मर्यादा में ही जीना चाहिये क्योंकि लोग दिक्कत में पड़ जायेंगे। अगर सभी संत मर्यादा के बाहर जीने लगे ... एकाध कृष्ण ठीक, राम भी चाहिये। मर्यादा पुरुषोत्तम भी चाहिये नहीं तो लोग बड़ी मुश्किल में पड़ जायेंगे। इसलिए लोग पूजते तो कृष्ण को हैं, मानते राम को हैं। पूजा इत्यादि करनी हो तो कृष्ण की कर लेते हैं। मगर कृष्ण को मानते इत्यादि नहीं। कृष्ण की मानकर कौन झंझट में पड़ेगा? ज्यादा देर न लगेगी, पुलिस पकड़ ले जायेगी। मानते राम को हैं, आचरण राम के जैसा करते हैं। लेकिन हिंदुओं ने हिंमत की बात तो की कि कृष्ण को पूर्णावतार कहा है, राम को अंशावतार। वहा मर्यादा ही बाधा है।

मगर मर्यादा लोगों को तो चाहिये। लोग तो ऐसी अंधेरी गली में जी रहे हैं, कि वहां तो टिमटिमाती रोशनी भी बहुत रोशनी है। जो सूरज के शिखर पर जीते हैं उनकी वे जानें, लेकिन इन लोगों के लिये तो कुछ नियम चाहिये, व्यवस्था चाहिये, मर्यादा चाहिये।

कमाल कृष्ण जैसा आदमी था। वह कोई मर्यादा इत्यादि मानता नहीं था। मर्यादा की उसे कोई चिंता भी न थी। वह भी एक अभिव्यक्ति है संतत्व की। वह आखिरी अभिव्यक्ति है। मगर कबीर व्यवस्था में थोड़ा अर्थ देखते थे। अंधों के लिये हाथ में लकड़ी चाहिये। तुम आंखवाले हो गये तो भी अंधों की लकड़ी मत छीन लो, इतना ही कबीर का कहना था। माना कि लकड़ी की कोई जरूरत नहीं है मगर आंख पहले होनी चाहिये, तब लकड़ी की कोई जरूरत नहीं है। नीति चली जाती है; धर्म पहले आ जाना चाहिये। मगर नीति छीन लो लोगों से और धर्म आये न, तो तुमने उन्हें और अड़चन में डाल दिया। अंधे तो थे, हाथ की लकड़ी भी गयी। बीमार तो थे, औषधि भी गयी, स्वास्थ्य का तो कुछ पता नहीं।

इसलिए कबीर कभी-कभी कमाल को डांटते-डपटते रहे होंगे। फिर आखिर-में तो ऐसी हालत आ गयी कि कबीर ने कह दिया कि तू अलग ही रहने का इंतजाम कर ले क्योंकि वह उन्हीं के पास रहता। कबीर कुछ कहते, वह कुछ कह देता। कबीर के शिष्यों को बातें बता देता ऐसीं कि वे गड़बड़ा जाते।

मगर कबीर नाराज नहीं थे। वचन तुमने सुना होगा, कबीर का वचन प्रसिद्ध हो गया है। लोग यही सोचते हैं, कबीरपंथी भी यही सोचते हैं कि कबीर ने नाराजगी में कहा। कबीर नाराज तो हो ही नहीं सकते। उनको लोगों पर भी दया है। वे लोगों को समझते हैं इसलिए मर्यादा की भी बात करते हैं। वे कमाल को भी समझते हैं क्योंकि वे खुद भी उसी शून्य के शिखर पर खड़े हैं। वे कमाल को नाराज तो हो ही नहीं सकते। उन्होंने कहा, "बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल।"

लोग समझते हैं कि यह नाराजगी में कहा है कि मेरा वंश नष्ट कर दिया है इस कमाल ने पैदा होकर। नाराजगी में नहीं कहा है। इस वचन को समझो। "बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल"। लोग समझते हैं, शायद पूत व्यंग में कहा है। जैसा हम कहते हैं न, किसी कपूत को कहते हैं सपूत। कि ये सुपूत चले आ रहे हैं। कि ये सुपूत क्या पैदा हो गये, डुबा दी; सब मर्यादा डुबा दी। नाव डुबा दी। इन सुपूत के कारण सब वंश नष्ट हो गया।

ऐसा मतलब नहीं है। मतलब ऐसा है जैसा कि पुरानी बाइबल में। पुरानी बाइबल शुरू होती है, ईश्वर ने अदम को बनाया, अदम के बेटे हुए, बेटों के बेटे हुए, उनके नाम हैं, वंशावलि है —— जेनेसिस। ऐसी लंबी फेहरिश्त है। फिर जोसेफ

पैदा हुआ और जोसेफ ने मरियम से विवाह किया और मरियम का बेटा जीसस हुआ। और वहां जाकर वंशावलि समाप्त हो गयी क्योंकि जीसस का फिर कोई बेटा नहीं हुआ। लंबी वंशावलि जीसस पर आकर समाप्त हो जाती है। जीसस आखरी शिखर आ गया। "बूड़ा वंश कबीर का ऊपजा पूत कमाल।" आखरी बात हो गयी। अब इसका कहां बेटा? यह तो आखरी फूल खिल गया। अब इसमें से और शाखायें प्रशाखायें नहीं निकलतीं। जीसस पर आकर पुरानी बाइबल की वंशावलि समाप्त हो गयी। शिखर आ गया, अब और कहां गति?

यही मतलब है कबीर का—बूड़ा वंश कबीर का। यह बेटा ऐसा कमाल का पैदा हुआ कि अब यह वंश तो बसायेगा नहीं। अब यह संसार तो चलायेगा नहीं। अब तो यह विवाह भी नहीं करनेवाला, इसके बेटे भी नहीं होनेवाले, इसलिए कबीर ने कहा है। लेकिन यह पूत व्यंग में नहीं कहा है, यह बड़े आदर में कहा है; मगर इसे समझा नहीं जा सका।

ऐसा हुआ कि काशी नरेश को पता चला कि लोग जाते हैं, कबीर को भेंट करते हैं तो कबीर तो कह देते थे रुपये-पैसे का हम क्या करेंगे—जैसा साधु-संत को कहना चाहिये—कि हम क्या करेंगे? चले जाओ। उधर बाहर बैठा रहता कमाल। वह कहता, अब ले ही आये हो तो कहां ले जाते हो? चलो, रख दो। नाहक इधर तक ढोया, अब नाहक फिर घर तक ढोओगे। छोड़ो भी। कहां बोझ लिये फिरते हो! तो लोगों को शक होता। लोग कहते, कबीर तो महात्मा हैं, मगर यह... यह तो लोभी दिखता है। यह तरकीब की बातें करता हैं कि कहां ले जाते हो। रखवा लेता है।

तो कबीर ने कहा कि तू भाई अलग ही एक कोठरी बना ले। तू अलग ही एक झोपड़ी बना ले। तू जान, तेरा काम जान। क्योंकि मेरे पास रोज शिकायतें आती हैं कि हम लिये जा रहे थे, आपने तो कह दिया... अब तुम थोड़ा समझना, लोग भी जब पैसे देते हैं किसी महात्मा को तो सोचते यही है कि महात्मा इन्कार करेगा। अब यह बड़े मजे की बात है। तो देने ही काहे को गये थे? सोचते तो यही हैं कि अगर असली महात्मा होगा तो इन्कार करेगा। इन्कार ही नहीं करेगा, और कुछ इसके पास होगा तो मिलाकर देगा कि भई पैसे-लत्ते का हम क्या करेंगे? तो तुम देने किसलिए गये थे? और जब महात्मा इन्कार कर देता है, तुम बड़े प्रसन्न होते हो। महात्मा और थोड़ा बड़ा हो जाता है। तुम पैसे से ही महात्मा को भी तौलते हो।

तो कमाल लोगों को समझ में आता होगा। वह आदमी ही कमाल का था। वह असली बात तो वही कह रहा है। कबीर से ज्यादा असली बात कह रहा है।

कबीर कहते हैं, पैसे में क्या रखा है? यह बात तुम्हें जंच गयी कि पैसे में क्या रखा है। और कमाल तो यही कह रहा है कि पैसे में क्या रखा है? कहां लिये जा रहे हो? अब नहीं जंचती। अब तुम्हें लगता है, यह बात नहीं है। कबीर की बात जंच गयी क्योंकि पैसे तुम्हें वापिस मिल गये। कबीर को कहने दो, क्या रखा है, चलो महात्मा बड़े हैं। अपने पैसे बचे।

पैसे में तुम्हें कुछ रखा तो है ही। अगर तुम कबीर की बात ही समझ गये थे तो वहीं छोड़ देते पैसे। तुम कहते, जब कुछ रखा ही नहीं तो मैं भी क्यों ले जाऊं? अगर तुम कबीर की बात समझ गये थे तो तुम कहते, अगर कुछ रखा ही नहीं है तो आप इन्कार ही क्यों करते हैं? जब कुछ रखा ही नहीं है... क्योंकि पहले कभी मैं फूल लाया था, आपके चरणो में रखे, आपने इन्कार न किया। आज नोट लाया हूं तो आप इन्कार करते हैं। अगर कुछ रहा ही नहीं तो कागज ही है। चलो, मेरा खेल, मेरा भाव, रख लो। छोड़ जाने दो। तुम्हारा क्या बिगड़ेगा? कुछ है तो नहीं। हवा उड़ा ले जायेगी या कोई उठा ले जायेगा, या कुछ होगा। तुम क्यों चिंतित? फूल चढ़ाये, तुम कुछ न बोले। कागज चढ़ाता हूं, तुम क्यों बोलते हो? बोलने की जरूरत क्या है, जब कुछ रखा ही नहीं?

अगर तुम्हें समझ में आ जाये तो तुम कहोगे, फिर मैं क्यों ले जाऊं? फिर मैं न ले जाऊंगा। लेकिन समझ में तो तुम्हें कुछ आता नहीं। तुम हुशियार हो। तुम चालाक हो। तुम कहते, बढ़िया! आदमी बहुत बड़ा है, बहुत ऊंचा है। पैसे-लत्ते से ऊपर उठ गया। जल्दी से अपना नोट सम्हाल कर खीसे में रख लेते हो कि चलो पैसा भी बचा, और इस पैसे के बचने की वजह से महात्मा बड़ा हो गया। अब तुम्हें डर भी न रहा। अब दुबारा तुम दुगुने नोट भी ला सकते हो और तुम पक्का भरोसा रख सकते हो कि महात्मा तो लेंगे नहीं। देने का मजा भी ले लेंगे और पैसा भी बच जायेगा। घर भी लौट आयेंगे। पुण्य का भी लाभ मिला, पैसा भी बचा। दोनों हाथ लूटिये। यह तो लूट ही लूट है। इसमें तो कुछ नुकसान ही नहीं। परमात्मा को वक्त जब आयेगा तो कह देंगे कि हम तो गये थे साहब। और हमने तो दिये थे। अब कबीर साहब ने न लिये तो हम क्या करें? हमने तो दान किया था तो दान भी हुआ और पैसे भी बचे।

लेकिन कमाल की बात लोगों को नहीं जंचती थी। कमाल कहता, चलो भाई अब ले ही आये, इतनी दूर ढोया, बेकार का सामान ढोते फिरते हो। अब छोड़ दो यहीं। रखा क्या है? तब तुम्हें अड़चन होती है। बात तो यह भी वही कह रहा है लेकिन यह उस जगह से कह रहा है, जहां तुम्हारे लोभ के विपरीत पड़ती है। बात तो ठीक वही है जो कबीर की है। और अगर तुम मुझसे समझो

तो कबीर से ज्यादा गहरी है । क्योंकि कबीर के कारण तुम्हारा लोभ नहीं मिटा। यह तुम्हारे लोभ को ही मिटा डालेगा । यह तुम्हें ठीक चोट कर रहा ।

शिकायतें पहुंचने लगी होंगी तो कबीर ने कहा, तू भाई अलग झोपड़ा कर ले । वहां कोई तुझे दे जाये, तू ले ले । यहां तो ऐसा लगता है, लोग सोचते हैं कि यह कबीर की ही जालसाजी है । बेटे को बिठा रखा है बाहर, खुद कहते हैं, क्या रखा ? और बेटा ले लेता है । यह तो बड़ी तरकीब हो गयी। बेटा छोड़ता नहीं और बाप कहता है कि क्या रखा ! और बेटा बाहर बैठा रहता है, वह सब रखवा लेता है । तो यह तो कुछ जालसाजी है । लोग सोचते हैं, जालसाजी है । तू अलग ही कर ले । गलती है तेरी, ऐसा कबीर ने कहा नहीं । कबीर कैसे कह सकते हैं ? अगर कबीर कहें कि गलती है तो फिर कौन कहेगा कि ठीक है ? कबीर को तो दिखाई पड़ता है ।

काशी नरेश एक दिन मिलने आये, उनको भी खबर लग गयी थी कि कबीर ने कमाल को अलग कर दिया। तो एक बड़ा हीरा लेकर आये थे । कबीर से पूछा कि कमाल दिखाई नहीं पड़ता तो कबीर ने कहा, अब वह बड़ा भी हो गया, अब कोई साथ रहने की जरूरत भी नहीं है। पास ही एक झोपड़ा बना दिया है, वहां रहता है।

तो सम्राट उससे मिलने गये। खबरें सुनी थी बहुत, तो उन्होंने हीरा निकाला और कमाल को दिया । कमाल ने कहा, लाये भी तो पत्थर ! खाने का, न पीने का । क्या करूंगा इसका ? कुछ फल लाते, मिठाई लाते तो भी ठीक था । पत्थर ले आये । उम्र हो गयी, होश नहीं आया ?

तो सम्राट ने सोचा, अरे, लोग तो कहते हैं कि पैसे रखवा लेता है और यह इतनी गजब की बात कह रहा है। तो वह अपना हीरा खीसे में रखने लगा । कमाल ने कहा, अब काहे के लिये खीसे में रख रहे हो ? जिंदगी भर पत्थर ही ढोते रहोगे ? तब सम्राट ने समझा कि लोग ठीक ही कहते हैं । यह आदमी होशियार है ! यह आदमी चालबाज है। महातमा भी बने रहे और हीरा भी नहीं छोड़ता । तो सम्राट ने पूछा-- वह तो परीक्षा ही लेने आया था-- कि कहां रख दूं ? कमाल ने कहा, अब कहां रखनें की पूछते हो तो फिर ले ही जाओ । क्योंकि कहां रखने का मतलब है, तो तुम्हें अभी हीरा दिखाई पड़ रहा है । पत्थर को कोई पूछता हे, कहां रख दूं ? अरे, कहीं भी डाल दो । यह झोपड़ी बड़ी है । इसमें कहीं भी पड़ा रहेगा । कभी-कभी मोहल्ले पड़ोस के बच्चे आ जाते हैं । खेलेंगे या कोई उठा ले जायेगा । कभी-कभी चोर इत्यादि भी आ जाते हैं, उनके काम पड़ जायेगा। अब इसमें पूछना क्या है कि कहां रख दूं ? रख दो कहीं भी । पत्थर ही है ।

तो सम्राट पूरी परीक्षा ही लेना चाहता था तो उसने कमाल को दिखाकर उसके झोपड़े का जो छप्पर था सनोलियों का बना हुआ, उसमें वह हीरा सनोलियों में खोंप दिया-- उसको दिखाकर, ताकि उसे ख्याल रहे । आठ दिन बाद सम्राट वापस आया, उसे तो पक्का पता था कि मैं इधर बाहर निकला कि हीरा इसने निकाल लिया होगा । अब तक बिक भी गया होगा बाजार में ।

आठ दिन बाद आया, इधर-उधर की बात की, आया तो मतलब और से था। फिर असली बात पूछी, उस हीरे का क्या हुआ ? कमाल ने कहा, कमाल की बात है । तुम हीरा ही हीरा लगाये हुए हो ? तुम अंधे हो, तुम्हें कब दिखाई पड़ेगा ? पत्थर लाये थे, हीरे की बात कर रहे हो ? सम्राट ने पूछा, छोड़ो ज्ञान की बातें। मैं यह पूछता हूं, उसका हुआ क्या ? कमाल ने कहा, जहां रख गये थे, अगर कोई न निकाल ले गया हो तो वहीं होगा । सम्राट ने सोचा, है तो बहुत कुशल ।"अगर कोई न निकाल ले गया हो-- " तो निकाल तो इसने लिया होगा । उठा, सनोलियों में खोंचा हीरा वहां के वहां था । तब उसकी आंखें खुलीं । यह आदमी जो कहता है, ठीक ही कहता है -- " कि अगर कोई न निकाल ले गया हो " । तब चरणों पर गिरा ।

फिर जाकर कबीर को कहा, आपने ठीक नहीं किया, इस बेटे को अलग किया । तब कबीर ने यह वचन कहा, " बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल । " यह निंदा में नहीं कहा है, मगर कबीरपंथी समझते हैं कि अस्वीकार कर दिया बेटे को इस वचन को बोलकर । नहीं; इस वचन को बोलकर परम धन्यता प्रगट कर दी।

ये थोड़ी सी पंक्तियां उसी कमाल की हैं :

कहत कमाल कबीरजी को बालका
योग सब भोग त्रिलोक नाही
शून्य के शिखर में गैब का चांदना
वेद कितेब के गम नाही
खुले जब चष्म हुस्न सब पश्म है
दिन और दूनी से कम नाही
शब्द को कोट में चोट लागत नाहीं
तत्व झंकार ब्रह्मांड मांही

सब तरफ मौजूद है, तुम जरा सूनी आंख से देखो । तुम भरी आंखों से देख रहे हो इसलिए चूक रहे हो । शून्य की आंख को जगाकर देखो । शून्य यानी समाधि ।

चौथा प्रश्न : प्रति दिन के प्रवचन के बाद घंटे डेढ़ घंटे तक कुछ नशा सा छा जाता है। उस बीच बात करना तो दूर, किसीको देखने की ख्वाहिश भी नहीं होती। और अजीब मुस्कुराहट प्रगट होती है। और कभी-कभी रोना भी आता है और फिर अकेला रहना चाहता हूं। उस समय किसीके छेड़ने पर चिड़चिड़ाहट महसूस होती है। आप कुछ कहें।

ठीक हो रहा है। ऐसा ही होना चाहिये। यह कोई मंदिर नहीं है, यह मधुशाला है। यहां अगर नशा न आया तो कुछ भी न आया। यहां अगर मस्त न हुए तो चूक ही गये। यहां कोई शास्त्रों पर प्रवचन थोड़े ही चल रहा है। यहां तो शराब ढाली जा रही है। यहां तो पियकड़ों का काम है। यहां तो कमजोरों की गति नहीं है।

यहां तुम मुझे पियो। और यहां तुम इस तरह डूबो कि तुम्हारे सब होश खो जायें। बेहोश हो गये तो भक्त हो गये। और अंगूरों की शराब तो पियो तो एक दिन उतर जाती है। आज पियो, सुबह उतर जायेगी, कल उतर जायेगी, सांझ उतर जायेगी। यह असली शराब है, चढ़ी तो फिर उतरती नहीं। धीरे-धीरे इसमें डुबकी लो।

ठीक हो रहा है। घंटे-डेढ़ घंटे नशा रहता है अभी, धीरे-धीरे और बढ़ेगा। घबड़ाओ मत। डरो मत। डरोगे तो चूकोगे। नशा जब छाये, आंखें जब भारी होने लगें, मन जब मगन लगे, गीत जब भीतर अंकुरित होने लगे तो स्वभावत: अकेलापन चाहा जायेगा। क्योंकि दूसरे की मौजूदगी तुम्हारी इस तरंगायित दशा में बाधा बनेगी। दूसरे की मौजूदगी तुम्हें खींचेगी, तुम भीतर जा रहे हो; इसलिए चिड़चिड़ाहट पैदा होगी। यह शुरू-शुरू में होता है। एक ऐसी घड़ी आ जाती है बाद में नशे की, कि फिर सारा संसार मौजूद रहा है तो कोई फर्क नहीं पड़ता। पर नशा उस सीमा तक पहुंच जाने दो। तब तक बीच के समय कभी-कभी जब नशा चढ़ा हो तो एकांत खोज लेना। पड़े रहना। बैठ जाना किसी मस्जिद में, किसी मंदिर में जाकर बैठो जहां कोई नहीं जाता। कौन जाता मंदिर-मस्जिदों में अब? गुरुद्वारे में कहीं बैठ जाना एक कोने में या निकल जाना गांव से दूर नदी के किनारे। या अपने ही घर में कोठरी बंद करके रह जाना।

जब नशा चढ़े तो उस नशे का सम्मान करो। उस समय बात करनी, बात चीत में समय गंवाना एक चिड़चिड़ाहट पैदा करेगा। चिड़चिड़ाहट ही नहीं, एक भीतर द्वंद्व भी पैदा करेगा। भीतर ऊर्जा जा रही है आत्मा की तरफ और बाहर की बातचीत बाहर खींच रही है। तो तुम दो दिशाओं में गतिमान हो जाओगे, खैंचतान होगी, तनाव पैदा होगा, कष्ट पैदा होगा। और जो लाभ होना था वह चूक

जायेगा।

जब भीतर गति हो रही हो, प्रवाह आया तो फिर बह जाओ। फिर सब भूल-भालकर डुबकी लगा लो। एक क्षण को भी अगर भीतर तक पहुंच गये तो परम सौभाग्य है। यह संक्रमण काल की ही बात है। धीरे-धीरे जब नशा थिर हो जायेगा। ... यह सिक्खड़ों के लिये कह रहा हूं, जिन्होंनें अभी शराब पीनी शुरू-शुरू ही की है; जब अभ्यस्त हो जायेगी फिर कोई अड़चन न आयेगी। फिर भीतर भी बहते रहोगे और किसीसे बात भी कर लोगे।

ऐसा ही समझो न कि तुम कार ड्राइव करना सीखते हो तो शुरू-शुरू में बड़ी अड़चन होती है। बड़ी झंझट आती है। स्टेयरिंग पर नजर रखो तो एक्सिलेटर से पांव खिसक जाता है। एक्सिलेटर पर नजर रखो तो ब्रेक लगाना भूल जाते। ब्रेक पर पैर रखो तो क्लच स्मरण में नहीं रहता। और इन सबका ख्याल रखो तो सड़क भूल जाती। तो गाड़ी इधर-उधर जाने लगती है। और इन सबकी कैसे इकट्ठी याद रखो? बड़ी बेचैनी होती, बड़े पसीने-पसीने हो जाते हो।

फिर एक दफा ड्राइविंग आ गयी तो इनकी कुछ याद ही रखनी पड़ती? यह सब अपने आप यंत्रवत होने लगता है। पैर फिकर कर लेते हैं क्लच और एक्सिलेटर और ब्रेक की। और हाथ--एक ही हाथ, दो हाथ की भी जरूरत नहीं रह जाती-- एक ही हाथ स्टेयरिंग व्हील को सम्हाल लेता है। और तुम गीत गा सकते हो या रेडिओ सुन सकते हो, या तुम हजार तरह के विचार सोच सकते हो, कल्पना कर सकते हो, सपने देख सकते हो। बहुत कुशल ड्राइवरों के संबंध में तो कहा जाता है, वे झपकी भी ले लेते हैं। एकाध मिनट को अगर आंख भी झपक गयी तो कुछ खास फर्क नहीं पड़ता--अगर शरीर बिलकुल कुशल हो गया है तो।

ठीक ऐसा ही इस नशे के बाबत भी सच है। सीख रहे हो अभी, तो अभी चिड़चिड़ाहट पैदा होगी। यह अच्छा लक्षण है। इससे इतना ही पता चलता है कि एक नई बात पैदा हो रही है और कोई उखाड़ने आ गये। अब तुम भीतर जा रहे हो कोई बाहर की बात करने लगे, वह कहने लगे, फलानी फिल्म बड़ी अच्छी चल रही है। अब तुम्हें चिड़चिड़ाहट न पैदा हो तो क्या बड़ा आनंद आये? या वह कहने लगा कि सुना, कि मुरारजी देसाई ने क्या कहा? अब तुम कहां परमात्मा की तरफ जा रहे हो और वह कहां मुरारजी देसाई की तरफ खींच रहा है!

तो अड़चन होगी, चिड़चिड़ाहट होगी। बचना। इस चिड़चिड़ाहट को लाने की जरूरत नहीं है। जब ऐसी मस्ती छाये तो थोड़ी देर डुबकी लगा लो। पूरी तरह हो जाने दो। और कभी-कभी तो एक क्षण में घटना हो जायेगी। एक क्षण में तुम डुबकी खा जाओगे, बाहर आ जाओगे, ताजे हो जाओगे, तरोताजा हो

जाओगे। और फिर दिन भर तुम पाओगे एक ताजगी, एक मस्ती, एक गुनगुनाहट।

दृग गगन में तैरते हैं रूप के बादल सुमहले
दृग गगन में तैरते हैं रूप के बादल रुपहले
मधुबनों ने सुरा पी ली सुरभि वेणी हुई ढीली
प्रस्तरों को बेधती हैं रेशमी किरणें नुकीली
अब न कोई बच सकेगा, यम-नियम क्रम रच सकेगा
बेखुदी में डूब तू भी ज्योत्स्ना की बांह गह ले
दृग गगन में तैरते हैं रूप के बादल रुपहले
चांदनी ने चिटक तोड़े लाज के बंधन निगोड़े
निर्वसन अंबर दिगंबर दिग्वधू से गांठ जोड़े
इस धुले वातावरण में झिलमिलाते मधु क्षरण में
एक पल को ही सही पर अमी-सरी में मुक्त बह ले
दृग् गगन में तैरते हैं रूप के बादल रुपहले

एक क्षण को ही सही, एक पल को ही सही, पर अमी-सरी में मुक्त बह ले। यह जो अमृत की थोड़ी सी धारा, यह झरना पैदा होता है इसमें एक क्षण को ही सही, एक पल को ही सही, पर अमी-सरी में मुक्त बह ले।

दृग गगन में तैरते हैं रूप के बादल रुपहले

तब उस समय व्यर्थ बातों में न पड़ो। तब उस समय अपने में डूब जाओ, डुबकी लगा लो। उस क्षण द्वार-दरवाजे बंद कर दो बाहर के। उस क्षण अंतर्यात्रा में पूरे-पूरे संलग्न हो जाओ। इसीकी तो हम यहां कोशिश करते हैं कि किसी तरह तुम भीतर चलने लगो। और रोज-रोज तुम अगर भीतर गये और रोज-रोज तुमने अपने बाहर से चिड़चिड़ाहट पाई तो नुकसान हो जायेगा। चिड़चिड़ाहट का अभ्यास न हो जाये कहीं, यह डर है। और यह केवल संक्रमण की बात है। यह सदा नहीं रहेगी। एक दफा अभ्यस्त हो गये, फिर नहीं रहेगी।

एक शराबी मेरे पास रहते थे। बड़े अभ्यस्त शराबी हैं। पता लगाना ही मुश्किल है कि वे शराब पिये हैं,ऐसा अभ्यास है। जो जानता है वही जानता है कि काफी पिये हैं अन्यथा बातचीत में बिलकुल कुशल, तर्कयुक्त। जरा भी तुम हिसाब न लगा सकोगे कि ये नशे में हैं। कई दिनों तक मेरे पास रहे, मुझे पता ही नहीं था कि ये नशे में हैं। उनकी पत्नी ने मुझसे कहा, आपको पता है कि ये चौबीस घंटे पिये रहते है? मैंने कहा, कुछ पता नहीं चला।

उनको पत्नी ने कहा, मुझे भी पता नहीं चला तीन साल तक, जब मेरा इनके साथ विवाह हुआ। वह तो एक दिन ये बिना पिये घर आ गये, तब चला। ऐसा अभ्यास हो जाता है कि एक दिन बिना पिये गये तब पता चला कि कुछ गड़बड़ है। तब पता चला कि बाकी दिन ये पिये थे। तब उसने पूछताछ की, मामला क्या है? आज तुम कुछ उखड़े-उखड़े लगते हो। आज जमे-जमे नहीं मालूम होते। आज बात कुछ बेतुकी सी करते हो। आज चित्त कुछ तुम्हारा उदास लगता है। बात क्या है? और तुम्हारे पास जो एक खास तरह की गंध आती थी, आज नहीं आ रही। मामला क्या है? तब उसे पता चला। तब उन्होंने जाहिर किया, मैं जरा पीने का आदी हूं। और खूब पीने का आदी हूं।

ऐसा ही होगा। जब तुम पीने के खूब आदी हो जाओगे तब किसीको पता भी नहीं चलेगा, तुम भीतर विराजमान हो। तुम बाहर दुकान भी चला लोगे, बाजार भी चला लोगे, सामान खरीद लोगे-बेच दोगे, दफ्तर भी हो आओगे, पत्नी-बच्चे भी सम्हाल लोगे। किसीको पता भी नहीं चलेगा। लेकिन अभी शुरू-शुरू में तो अभ्यास की बात है। अभी डूबो। शुभ घड़ी आई है, उसे खो मत देना।

रंगों पर रंग केवल रंग
उड़ती हुई हवा में रंगों के रंग
आंखों में आज तुम्हें फिरी संग-संग
रंगों के लिये हुए रंग
इन्हीं दिनों बढ़ आई नदिया को कूल दिया तुमने
इन्हीं दिनों ओठों और नैनों का फूल दिया तुमने
इन्हीं दिनों भींजी में बार-बार
यहां-वहां, जहां-तहां, कहां-कहां
कितने युगों में बार-बार
जिये हम संग-संग

घड़ी प्यारी आ रही है, जहां तुम्हारा मुझसे संग बैठ जायेगा। सत्संग की घड़ी आ रही है।

कितने युगों में बार-बार
यहां-वहां, जहां-तहां, कहां-कहां
जिये हम संग-संग

एक बार इस मधुरस में पूरे उतर जाओ तो संग-साथ पूरा हो गया। फिर तुम हजारों मील मुझसे दूर रहो तो भी फर्क न पड़ेगा। मैं इस देह में न रहूं, तुम इस देह में न रहो तो भी फर्क न पड़ेगा। जिस घड़ी यह शराब तुम्हें पकड़ लेगी, मैं तुम्हें पकड़ लूंगा। जिस घड़ी तुम इस शराब में मदमस्त हो जाओगे, तुम मेरे करीब आ जाओगे।

डरना मत। डरना बिलकुल स्वाभाविक है। ऐसी घड़ियों में डरना उठता है। लगता है, क्या हुआ जा रहा है? कुछ अस्वाभाविक तो नहीं हो रहा है? कुछ ऐसा तो नही हो रहा, जो किसी खतरे में ले जाये? कोई झंझट तो सिर पर नहीं आ जायेगी?

ऐसे भाव उठने बिलकुल स्वाभाविक है। क्योंकि तुम एक ढंग का जीवन जिये हो, अब यह उसमें एक नयी मस्ती आने लगी। कुछ नया होना शुरू हुआ तो मन डरता है। मन पुराने से राजी रहता है, नये से घबड़ाता है। मगर परमात्मा नया है, बिलकुल नया है। तुम नये से धीरे-धीरे राजो होओगे तो ही एक दिन परमात्मा के लिये मार्ग बनेगा। और यह मस्ती उसी की मस्ती है।

जिसने पूछा है, भक्ति उसका मार्ग है; वह ख्याल में रख ले। जिसको भी नशे में डुबकी लग रही हो, भक्ति उसका मार्ग है। ध्यानी होश से जाता परमात्मा की तरफ, भक्त बेहोशी से जाता है। ध्यानी सम्हाल-सम्हालकर जाता, भक्त डगमगता हुआ, मस्त, डोलता हुआ जाता। ध्यानी चुप जाता, भक्त गुनगुनाता जाता। ध्यानी का एकेक कदम सावधान होता। भक्त को चिंता ही नहीं होती। भक्त को सावधानी इत्यादि नहीं लगती। भक्त शराबी की तरह झूमता, नाचता हुआ जाता।

पूछा है स्वामी वेदांत भारती ने। तुम्हारे भीतर उठते हुए नशे से बड़ी साफ खबर मिलती है कि भक्त छिपा बैठा है। तुम्हारे भीतर मीरा का जन्म हो सकता है या चैतन्य का जन्म हो सकता है। तुम्हारे भीतर बड़े नाच की संभावना छिपी है। हिंमत करना। जरा साहस रखना।। घबड़ाना मत। एक अपूर्व अवसर बहुत करीब है। हिंमत की तो घट जायेगी।

मटकी हवायें जो गाती हैं
रात की सिहरती पत्तियों से
अनमनी झरती वारि-बूंदें जिसे टेरती हैं
फूलों की पीली प्यालियां
जिसकी मुसकान छलकाती हैं
ओट मिट्टी की असंख्य रसातुरा शिरायें
जिस मात्र को हेरती हैं
वसंत जो लाता है, निदाघ तपाता है
वर्षा जिसे धोती है, शरद संजोता है
अगहन पकाता और फागुन लहराता
और चैत काट, बांध, रौंद, भरकर ले जाता है

नैसर्गिक संक्रमण सारा, पर दूर क्यों?
मैं ही जो सांस लेता हूं, जो हवा पीता हूं
उसमें हर बार
हर बार, अविराम, अक्लान, अनप्यायत
तुम्हें ही जीता हूं

हर घड़ी परमात्मा को ही हम जी रहे हैं। या तो होश आ जाये तो बात समझ में आ जाये, या बेहोशी आ जाये तो समझ में आ जाये। होश की बात तो बुद्धि के पकड़ में भी आ जाती है। बेहोशी की बात बड़ी कठिन हो जाती है।

कल संध्या एक संन्यासी ने आकर कहा .... वह घबड़ाया हुआ था। यहां तीन महीने से ध्यान करता था, फिर एक महीने आज्ञा लेकर हिमालय चला गया था। ध्यान में रस आने लगे तो फिर हिमालय में भी रस आता है। और जैसी हवा हिमालय पर है वैसी कहीं भी नहीं है। और जैसी पवित्रता हिमालय पर है वैसी कहीं भी नहीं। और अभी भी सन्नाटा हिमालय पर वैसा है जैसा सदियों पहले सारी पृथ्वी पर था। हिमालय अकेला ही बचा है जहां शाश्वत और सनातन का अब भी राज है।

तो उसके मन में बड़ी हूक उठी, हिमालय की अचानक हूक उठी। मैंने उसे कहा, तू जा, वहां ध्यान कर। वहां से लौटा। द्वार पर दो-चार दिन पहले सुबह के प्रवचन में आता होगा, खड़े-खड़े बेहोश हो गया, गिर गया। दो घंटे बाद वह होश में आया। दो घंटे उसे पता नहीं कि कहां चला गया। स्वभावतः घबड़ा गया। जो लोग आसपास थे, उन्होंने कहा, मालूम होता है तुम्हें मिर्गी की बीमारी है। एपिलेक्टिक फिट आ गया। उसे भी बात जंची कि और क्या हो सकता है? दो घंटे बेहोशी! मगर थोड़ी शंका भी मन में रही क्योंकि उसे कभी जिंदगी हो गयी, एपिलेप्टिक फिट नहीं आया, कभी मिर्गी हुई नहीं। अचानक हो गयी?

कल वह रात पूछने आया था कि क्या यह मिर्गी थी? नहीं, मिर्गी नहीं थी। उसे पहली दफा भाव-समाधि हुई। उसे पहली दफा भक्त की घड़ी आई उसके जीवन में।

रामकृष्ण को ऐसा रोज होता था। डॉक्टर तब भी कहते थे मिर्गी की बीमारी है। डॉक्टर अब भी कहते हैं कि रामकृष्ण को एपिलेप्टिक फिट आते थे। रामकृष्ण को हिस्टेरिया था। डॉक्टर की अपनी पकड़ है; बहुत गहरी नहीं जाती। और एक लिहाज से डॉक्टर भी ठीक ही कहता है क्योंकि बाहर से भाव-समाधि और एपि-लेप्टिक के लक्षण बिलकुल एक जैसे होते हैं। यही अड़चन है। डॉक्टर भी क्या करे? भाव समाधि तो कभी करोड़ में एकाध को लगती है, एपिलेप्टिक फिट

बहुतों को आते हैं। और लक्षण दोनों के बिलकुल एक हैं। मुंह से फसूकर गिरने लगता है, हाथ-पैर अकड़ जाते हैं। तो जिसनी देर बेहोशी रही उसका कुछ पता नहीं रहता है कि क्या हुआ, जैसे सब बिलकुल अंधकार हो गया। चैतन्य बिलकुल खो गया।

तो रामकृष्ण तक को वे कहते रहे कि इनको मिर्गी की बीमारी है। रामकृष्ण हंसते थे। वे कहते थे, धन्य भाग्य मेरे कि मुझे मिर्गी की बीमारी है। और सबको भी हो जाये। जब बेहोश हो जाते थे तो घंटों..कभी छह घंटे भी बेहोश हो जाते थे। एक बार तो छह दिन बेहोश रहे। छह दिन लंबा वक्त है। भक्त तो घबड़ा गये। रोना-पीटना शुरू हो गया, भक्त तो सोचे कि अब लौटना नहीं होगा। डॉक्टरों से पूछा, उन्होंने कहा, यह तो कोमा है। यह तो अब शायद ही लौटें। महीनों भी रह सकते हैं कोमा में। लौटेंगे कि नहीं कहा नहीं जा सकता। छह दिन के बाद रामकृष्ण लौटे। और लौटते ही क्या कहा पता? लौटते ही छाती पीटने लगे और रोने लगे और कहने लगे कि वहीं बुला ले वापिस; यहां कहां भेजता है? इधर भक्त रो रहे हैं कि अच्छे लौट आये। बड़े प्रसन्न हो रहे हैं कि बड़ी कृपा की कि लौट आये, हमारी याद रखी। और रामकृष्ण कह रहे हैं, नासमझो! तुम्हें कुछ पता ही नहीं कि मैं क्या चूका जा रहा हूं। मुझे फिर वहीं बुला लो, जल्दी करो, यहां मन नहीं लगता।

ऐसी ही घटना इस संन्यासी को घटी। मगर पहली दफा घटी तो अभी उसे कुछ समझ नहीं है। यहां समाधि के बहुत रूप घटनेवाले हैं, बहुतों को घटने वाले हैं। किसी की ध्यान-समाधि लगेगी, किसीको भाव-समाधि लगेगी। इसलिए सावधान रहो। वेदान्त को भाव समाधि लग सकती है। अगर यह नशे को बढ़ने दिया तो एक न एक दिन डॉक्टर कहेंगे कि एपिलेप्टिक फिट। एक न एक दिन वह अपूर्व मिर्गी घटेगी जिसके घट जाने के बाद ही पता चलता है कि जीवन का सार क्या, अर्थ क्या, प्रयोजन क्या?

आज इतना ही।

दरिया लच्छन साध का

प्रवचन : ७
दिनांक : १७।७।१९७७
श्री रजनीश आश्रम, पूना.
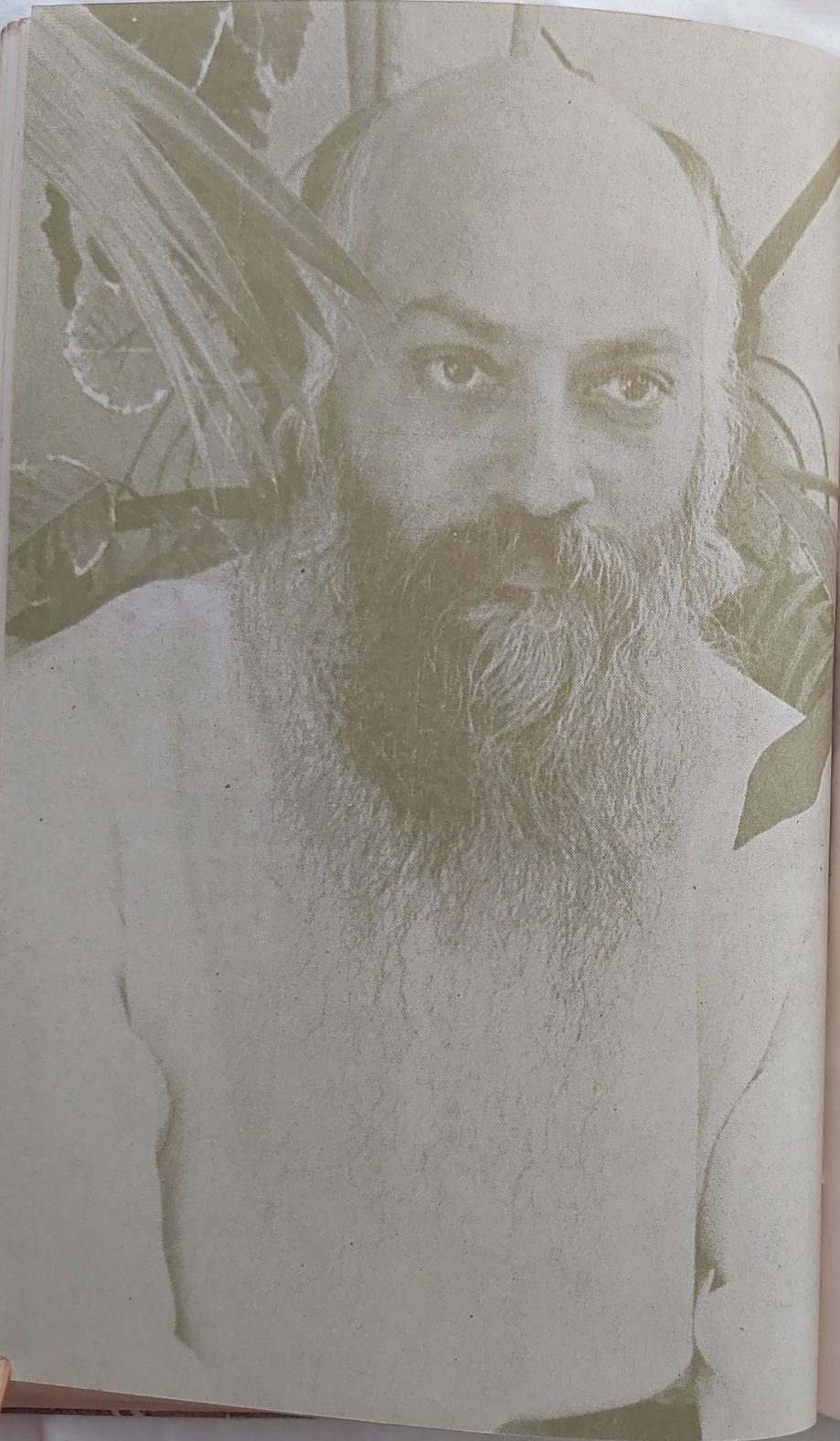
दरिया लच्छन साध का क्या गिरही क्या भेख।
निहकपटी निरसंक रहि बाहर भीतर एक ।।
सत सब्द सत गुरूमुखी मत गजंद-मुखदंत ।
यह तो तोड़ै पौलगढ़ वह तोड़ै करम अनंत ।
दांत रहै हस्ति बिना पौल न टूटे कोय ।
कै कर थारै कामिनी कै खेलारां होय ।।
मतवादी जाने नहीं ततवादी की बात ।
सूरज ऊगा उल्लुआ गिन अंधारी रात ।।
सीखत ग्यानी ग्यान गम करै ब्रह्म की बात ।
दरिया बाहर चांदनी भीतर काली रात ।।
दरिया बहु बकवाद तज कर अनहद से नेह ।
औंधा कलसा ऊपरे कहा बरसावै मेह ।।
जन दरिया उपदेस दे भीतर प्रेम सधीर ।
गाहक हो कोई हींग का कहां दिखावै हीर ।।
दरिया गैला जगत को क्या कीजै सुलझाय ।
सुलझाया सुलझै नहीं सुलझ-सुलझ उलझाय ।।
दरिया गैला जगत को क्या कीजै समझाय ।
रोग नीसरै देह में पत्थर पूजन जाय ।
कंचन कंचन ही सदा कांच कांच सो कांच ।
दरिया झूठ सो झूठ है सांच सांच सो सांच ।।
कानों सुनी सो झूठ सब आंखों देखी सांच ।
दरिया देखे जानिये यह कांचन यह कांच ।।

दरिया लक्षण साध का क्या गिरही क्या भेख
निहकपटी निरसंग रहि बाहर भीतर एक

—साधुता की परिभाषा । संन्यास की व्याख्या ।

ऐसे तो संन्यास की व्याख्या हो नहीं सकती । ऐसे तो संन्यास बस अनुभव की बात है । फिर भी जो उस अदृश्य में नहीं गये, जिन्होंने उस अगम में गति नहीं की उनके लिये कुछ शब्द का सहारा चाहिये; उन्हें कुछ इशारे चाहिये ।

चांद को बताती हुई उंगलियां चांद तो नहीं है लेकिन फिर भी चांद की तरफ इशारा तो है । और जिन्होंने कभी आंखें चांद की तरफ उठाई न हो, उनके लिये वे उंगलियां भी सही है यद्यपि कोई भूल से भी यह न समझे कि चांद की तरफ उठायी गई उंगलि चांद है । उंगलि में कहां चांद ? उंगलि में कैसे चांद ? लेकिन फिर भी दूर आकाश के चांद की तरफ इशारा हो सकता है ।

आज के सूत्र बड़े इशारे के सूत्र हैं । मील के पत्थरों की भांति हैं । अगर ठीक से समझें तो ये पड़ाव बन जायेंगे तुम्हारी अनंत यात्रा के ।

पहला सूत्र ।

दरिया लक्षण साध का क्या गिरही क्या भेख

साधु का लक्षण क्या है? घर में हो कि घर के बाहर, इससे भेद नहीं पड़ता—क्या गिरही क्या भेख । संन्यासी हो कि गैरिक वस्त्रों में संन्यासी हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता । घर में हो कि मंदिर में हो, इससे भेद नहीं पड़ता । बाजार में हो कि हिमालय पर हो, इससे भेद नहीं पड़ता । कहां है इससे भेद नहीं पड़ता, क्या है इससे भेद पड़ता है । कैसे कपड़े पहने है, इससे कैसे भेद पड़ सकता है ? कैसी अंतरात्मा है, कैसी चेतना का प्रवाह है, कैसा बोध है ?

तो न तो कपड़ों से भेद पड़ता, न तो घर-द्वार छोड़ने से भेद पड़ता, न बाजार-दुकान छोड़ने से भेद पड़ता, न बच्चे-परिवार छोड़ने से भेद पड़ता । ये तो धोखे हैं । इनसे जिसने भेद डाल लेना चाहा, वह बड़ी मूढ़ता में पड़ गया । घर

द्वार छोड़कर भाग जाओगे, मन कहां छोड़गे, जो घर-द्वार को पकड़ता था ? मन तुम्हारे साथ चला जायेगा । और साथ रहा तो तुम कहीं फिर घर द्वार बसा लोगे । मन साथ रहा तो तुम फिर कहीं कुछ पकड़ने लगोगे । पकड़ने की मूल भित्ति तो तुम्हारे भीतर है ।

पत्नी के कारण तुम संसार में नहीं हो, न पति के कारण संसार में हो । तुम्हारा मन अकेला नहीं रह सकता इसलिए तुम संसार में हो । अकेले में भयभीत होते हो । अकेले में डरते हो । अकेले में अंधेरा घेर लेता है । किसीका संग-साथ चाहिये । इसलिए संसार में हो । तो पत्नी को छोड़कर जाओगे इससे क्या फर्क पड़ेगा ? कोई और संग-साथ खोज लोगे । संग-साथ तुम्हें खोजना ही पड़ेगा । वह जो मन तुम्हारे भीतर बैठा, जो अकेले में डरता है, जो अकेला नहीं होना चाहता, जो कहता है कोई तो संगी हो, कोई साथी हो; जीवन की राह पर अकेला कैसे चलूं ?

अकेले चलने की हिंमत नहीं है । संसार के कारण संसार नहीं है, अकेले होने का साहस नहीं है इसलिए संसार है । इसलिए पत्नी भी हो, बच्चे भी हों और अगर तुम अकेले होने को राजी हो गये तो संसार मिट गया । पत्नी पास बैठी रहे, पत्नी न रही । पति पास बैठा रहे, पति न रहा । पति का रहना पति के होने में नहीं है, पति का रहना तुम्हारी आकांक्षा में है कि कोई संगी चाहिये, कोई साथी चाहिये । इस दुर्बलता में है कि मैं अकेला काफी नहीं हूं । मैं अकेला दुख में पड़ जाऊंगा । मेरा सुख दूसरे पर निर्भर है, इसमें संसार है । दूसरे से मुझे सुख मिल सकता है । मैं अकेला कैसे सुखी होऊंगा ? फिर यह दूसरा कौन है इससे फर्क नहीं पड़ता । अ को बदलोगे तो ब होगा, मगर कोई दूसरा मौजूद रहेगा । और जहां तक दूसरे की मौजूदगी जरूरी है, वहां तक संसार है ।

दरिया लक्षण साध का ———

साधु की क्या लक्षणा ?

दरिया कहते हैं : क्या गिरही क्या भेख । घर में हो कि घर के बाहर हो, संसारी हो कि संन्यासी हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता ।

हकपटी निरसंक रही बाहर भीतर एक

फिर किस बात से फर्क पड़ता है ? निष्कपटी । कपट का अर्थ होता है, कुछ है, भीतर, कुछ दिखाते हैं बाहर । भीतर कुछ और छिपा है । मुख में राम—मुंह पर तो राम है । मुंह में तो राम का स्मरण चल रहा है । बगल में छुरी । कुछ है भीतर, कुछ दिखाते है बाहर । भीतर और बाहर में भेद ही नहीं है, विरोध है । भीतर दुख हैं, बाहर मुस्कराते है । तो कपट हो गया । भीतर मुस्कुराहट है, बाहर आंसू गिराते हैं तो कपट हो गया ।

कपट का अर्थ है, भीतर और बाहर में द्वंद्व है, द्वैत है। भीतर और बाहर दो अलग खंडों में बंटे हैं, अखंड नहीं है, तो कपट हो गया। और कपटी बड़ा दुख झेलता है। और आश्चर्य यह है, इस आशा में दुख झेलता कि कपट से शायद सुख मिले। लेकिन झूठ से कभी सुख मिलता नहीं। झूठ से ही सुख मिल जाये तो फिर तो रेत से भी निचोड़ो तो तेल निकल आये। झूठ से सुख नहीं मिलता। सुख तो सत्य की छाया है। सुख तो सहजता में फलता है। और जो आदमी कपटी है, कैसे सहज होगा? वह सारी दुनिया को प्रवंचना में रखना चाहता है। अंततः स्वयं प्रवंचना में पड़ जाता है। जो गड्ढे तुमने दूसरों के लिये खोदे है उनमें तुम गिरोगे। दुख पाओगे बहुत।

दुख है ही इसीलिए जगत में, क्योंकि हमने सुख का सार-सूत्र नहीं समझा। सुख का सार-सूत्र है सहजता, और दुख का सार-सूत्र है कपट। सहज का अर्थ होता है, बाहर भीतर एक। जैसा भीतर है, वैसा ही बाहर है। तुमने उसे बाहर से पढ़ लिया तो उसकी अंतरात्मा को पढ़ लिया। रत्तीभर भेद न पाओगे उसके बाहर भीतर में।

छोटे बच्चों में ऐसी सहजता होती है। इसलिए तो संतों का एक लक्षण सदा कहा गया है कि वे फिर से छोटे बालकों की भांति हो जाते हैं। बच्चा नाराज हो गया है तो फिर वह नाराजगी प्रगट करेगा। पैर पटकेगा, खिलौना तोड़ देगा, दीवार से सिर मार लेगा। उस छोटे से क्षण में, उस छोटे बालक में ऐसा क्रोध लपटों की तरह उठेगा, जैसे सारे संसार को नष्ट कर देगा। और क्षण भर बाद क्रोध आया भी और गया भी। बादल आये और बरस गये। और वह तुम्हारी गोद में बैठा है और प्रसन्न है। और बड़े प्यार की बातें कर रहा है। तुम जानते हो, जब वह क्रोध में था तो पूरे क्रोध में था। और जब अब प्रेम में है तो पूरे प्रेम में है। छोटा बच्चा जहां भी होता है पूरा होता है; यह उसकी सहजता है।

इसलिए छोटे बच्चों के चेहरे पर एक सौंदर्य है, जो बड़ों के चेहरों पर खो जाता है। बड़ों के चेहरे पर सौंदर्य खो जाता है। क्योंकि बड़ों का एक चेहरा नहीं है। बड़ों के बड़े चेहरे हैं; बहुत चेहरे हैं; चेहरों पर चेहरे हैं; मुखौटों पर मुखौटे लगाये हुए हैं। एकाध चेहरा तुमने ओढ़ा है ऐसा भी नहीं है, तुम न मालूम कितने चेहरे साथ लिये चलते हो। स्पेयर चेहरे तुम अपने पास रखते हो। कब कहां, कैसी जरूरत पड़ जाये। दिन में हजार बार तुम्हें चेहरे बदलने पड़ते हैं।

जब तुम अपने मालिक से मिलते हो दफ्तर में तो एक चेहरा रखते हो। जब तुम अपने नौकर की तरफ देखते हो तब दूसरा चेहरा। और यह भी हो सकता है कि नौकर एक तरफ खड़ा हो, और मालिक एक तरफ खड़ा हो। तो तुम एक

तरफ एक चेहरा दिखाते हो, दूसरी तरफ दूसरा चेहरा दिखाते हो। मालिक की तरफ एक मुस्कुराहट होती है, नौकर की तरफ एक उदासीनता होती है, उपेक्षा होती है। नौकर में तुमने आत्मा थोड़े ही कभी मानी है। इसलिए नौकर जब तुम्हारे कमरे में प्रवेश करता है, तुम अखबार पढ़ते हो तो पढ़ते ही रहते हो, जैसे, कोई नहीं आया। जैसे कोई भी नहीं गया। नौकर है, नौकर की कोई गिनती आदमी में थोड़े ही, आत्मा में थोड़े ही! तुम ऐसे उदासीन बैठे रहते हो जैसे कमरे में कोई न आया, न कोई गया। पत्नी की तरफ एक चेहरा है तुम्हारा। प्रेयसी की तरफ दूसरा चेहरा है तुम्हारा। बच्चों की तरफ एक चेहरा है, बड़ों के प्रति दूसरा चेहरा है। अपनों के प्रति एक चेहरा है, परायों के प्रति दूसरा चेहरा है।

रास्ते पर चलते हुए किसी दिन तुम अपने चेहरों की संख्या तो करना। कितनी बार तुम बदल लेते हो। जिस आदमी से तुम्हें काम है, जिस आदमी से तुम्हें मतलब है, उससे तुम कैसे मिलते हो। कैसे प्रेम भाव से मिलते हो! और यह वही आदमी है जिसकी तरफ कल तुमने आंख भी न उठाई थी। कल कोई काम ही न था। और यह वही आदमी है, कल फिर तुम आंख न उठाओगे, जब काम न रह जायेगा।

देखते ना, राजनेता तुमसे मत लेने आता है, वोट लेने आता है, तो कैसा चरणों का सेवक हो जाता है! तुम्हें लगता है ऐसा, जैसे बस तुम्हारी सेवा करने के लिये ही इस आदमी का जीवन बना है। एक बार यह सत्ता में पहुंच गया फिर तुम्हें पहचानेगा भी नहीं; फिर तुम्हारी तरफ आंख भी न उठायेगा। तुमसे कोई मतलब न रहा। तुमसे कोई प्रयोजन न रहा। और ऐसा मत समझना यह राज-नेता की ही बात है, तुम्हारी भी यही बात है। सबकी यही बात है।

कपट का अर्थ है, पाखंड। कपट का अर्थ है, बहुत चेहरे। और इन बहुत चेहरों में तुम्हारा मौलिक चेहरा तो खो ही गया। परमात्मा ने जो चेहरा बनाया था तुम्हारा, उसका तो कुछ पता ही नहीं चलता इस भीड़-भाड़ में चेहरों की—कहां खो गया, कहां भटक गया। उसे तुम, पहचान भी न पाओगे। उसे तुम खुद भी नहीं जानते कि तुम्हारा असली चेहरा कौन सा है। दर्पण के सामने भी जब तुम खड़े होते हो तब तुम दूसरो को धोखा देते हो ऐसा नहीं है, अपने को भी धोखा दे लेते हो। दर्पण के सामने खड़े होकर तुम अपने को भी धोखा दे लेते हो। धोखा ऐसा गहरा हो गया है, ऐसा खून में मिल गया है, ऐसा हड्डी-मांस-मज्जा में प्रविष्ट हो गया है, कि दर्पण के सामने भी तुम वही नहीं होते जो तुम हो।

निष्कपटी! कोई चेहरा न हो। या बस एक ही चेहरा हो, जो परमात्मा ने तुम्हें दिया।

झेन फकीर कहते हैं अपने साधकों को : मौलिक चेहरा खोजो। उस चेहरे को खोजो, जो जन्म के पहले तुम्हारे पास था, मां के गर्भ में तुम्हारे पास था। तब तो कोई पाखंड नहीं हो सकता क्योंकि मां के गर्भ में न कोई लेना न देना, न मिलना न जुलना, न कोई मालिक न कोई नौकर। जीवन का विस्तार वहां नहीं, जंजाल वहां नहीं। तो मां के पेट में नौ महीने जो तुम्हारा चेहरा था उसमें कोई भी रेखा न रही होगी धोखे की। कोई था ही नहीं जिसको धोखा देना हो। उस चेहरे को खोजो।

मुखौटे उतारना ध्यान की अनिवार्य शर्त है।

ध्यान की घड़ी में जिस तारतम्य बैठ जाता है उस दिन अचानक एक झलक मिलती है तुम्हारे चेहरे की। वह अपूर्व है। उसके सौंदर्य की कोई तुलना नहीं। वह चेहरा तुम्हारा नहीं है, परमात्मा का ही चेहरा है। तुम्हारे चेहरे तो वे हैं जो तुमने बनाये हैं। एक ऐसा भी चेहरा तुम्हारे पास है, जो तुम्हारा बनाया हुआ नहीं है; वही असली है। कहो, वही असली में तुम्हारा है। तुम्हारे बनाये तो तुम्हारे नहीं हैं।

तो दरिया कहते हैं —

दरिया लक्षण साध का, क्या गिरही क्या भेख,

निहकपटी निरसंक रही ———

जिसकी शंका तिरोहित हो गयी, जो श्रद्धा को उपलब्ध हुआ है वही साधु।

श्रद्धा को समझो। हम तो जो भी करते हैं जीवन में, शंका बनी ही रहती है। करते भी जाते हैं और शंका भीतर बनी भी रहती है। इसलिए कोई भी बात कभी तन-मन से नहीं कर पाते। कोई भी बात कभी समग्रता से नहीं कर पाते। शंका के कारण समग्र कैसे होओगे ? करते भी हो तो एक मन तो कहे ही चला जाता है कि गलत कर रहे हो। और ऐसा नहीं कि गलत में ही यह मन कहता हो, यह ठीक में भी मन यही कहता है। मन की यह आदत है। मन का यह स्वभाव है कि यह कभी भी अविभाजित नहीं होता, विभाजित रहता है।

तुम चोरी करने जाओ तो मन कहता है, अरे ! चोरी कर रहे, शर्म नही आती, संकोच नहीं खाते ? क्या कर रहे हो ? मत करो। तुम यह मत सोचना कि यह मन चोरी करते वक्त ऐसा कहता है तो हमारा साथी है। इस मन की तो यह आदत है। तुम जो करोगे ...।

तुम दान देने लगोगे तो यह मन कहता है, यह क्या कर रहे हो ? कैसी मूढ़ता कर रहे हो। अरे वे जमाने गये देनेवालों के। और यह धोखेबाज खड़ा है जिसको तुम दे रहे हो। धोखा मत खाओ। ऐसे चालबाजों की बातों में मत आओ।

इससे दुनिया में भिखमंगी बढ़ती है। इससे आदमी बिना मेहनत किये खाने की तरकीबें खोजने लगता है। तुम जैसा बुद्धिमान आदमी और दान दे रहा है ?

तुम यह मत सोचना कि मन जब बुरा करते हो तभी रोकता है, तभी शंका खड़ी करता है। नहीं, मन की शंका करने की वृत्ति है। तुम जो भी करोगे, मन शंका करेगा। जैसा वृक्षों मे पत्ते लगते हैं, ऐसे मन में शंकायें लगती हैं। मन शंकालु है।

श्रद्धा मन का हिस्सा ही नहीं। श्रद्धा का अर्थ होता है, मन को तुमने हटा-कर अलग कर दिया। तुमने कहा, तू द्वंद्व मत खड़ा कर। मुझे निर्द्वन्द्व रहने दे। कुछ तो मुझे जीवन में ऐसा करने दे जिसमें मैं पूरा-पूरा हूं। जिसमें कोई हां और ना नहीं। जिसमें कुछ विवाद नहीं निर्विवाद कुछ तो मुझे करने दे। प्रेम करने दे निर्विवाद। कम से कम प्रार्थना करने दे निर्विवाद। कम से कम किसीके चरणों में तो मुझे निर्विवाद बैठने दे। किसी मंदिर में, किसी मस्जिद में, किसी गुरुद्वारे में कहीं तो मुझे थोड़ी देर को अविभाजित छोड़ दे, विभाजित मत कर। कहीं तो मुझे अनकटा छोड़ दे, काट मत। टुकड़े-टुकड़े मत कर वे जो थोड़े से क्षण तुम्हारे जीवन में अनकटे होते हैं, अखंड होते हैं, वहीं श्रद्धा का आविर्भाव होता है।

श्रद्धा अखंड चेतना की सुवास है।

कभी-कभी हो जाता है। और जब भी हो जाता है तब तुम परमात्मा के अति निकट होते हो। तब तुम साधु होते हो। अगर तुम मुझसे पूछो तो कभी-कभी सामान्य जीवन में भी ऐसी बात घट जाती है। तुम उस पर ध्यान नहीं देते। अगर ध्यान दो तो बड़े रहस्य खुल जायें। तुम्हारे हाथ कुंजी आ जाये।

कभी किसी सुबह प्रभात की बेला में, प्राची की लाली को देखकर उगते सूरज को उठता देखकर, पक्षियों की चहचहा सुनकर ... सुबह की ताजी हवा ! रातभर का विश्राम ! तुम्हारी आंखें नई-नई खुली हैं। फिर से तुमने जीवन को देखा। यह किरणों का जाल, ये सागर की लहरें, यह सुबह का संगीत, यह तरोताजगी। और एक क्षण को तुम्हारें भीतर कोई हां ना नहीं होती। कोई शंका नहीं होती। यह सौंदर्य अप्रतिम रूप से तुम्हें घेर लेता है। एक क्षण को तुम श्रद्धा से भर जाते हो, हालांकि तुमने इसे कभी श्रद्धा नहीं कहा है—समझना—इसीलिए तुम चुकते जा रहे हो। एक क्षण को श्रद्धा जनमती है। उसी श्रद्धा में परमात्मा के तुम करीब होते हो।

तो जिन्होंने सूर्य नमस्कार खोजा था, इसी श्रद्धा के कारण खोजा था, इसी श्रद्धा के कारण खोजा था। सुबह के सूरज को देखकर जो श्रद्धा उठी थी, तो नम-स्कार न करते तो क्या करते ? ब्रह्म-मुहूर्त की प्रशंसा में गीत गायें हैं, इसी कारण

गाये हैं। रात भर के विश्राम के बाद रात भर की गहरी निद्रा में डुबकी लग जाने के बाद .... क्योंकि जब गहरी नींद होती है और स्वप्न भी खो गये होते हैं तब तुम वहीं पहुंच जाते हो जहां साधु समाधि में पहुंचता है। क्योंकि फिर अखंड हो। गहरी नींद में जहां स्वप्न बंद गयें, मन भी समाप्त हो गया।

इसलिए पतंजलि ने कहा है, समाधि और सुषुप्ति मे एक बात समान है, कि दोनों में मन नहीं रह जाता। फर्क क्या है ! फर्क इतना है कि सुषुप्ति में तुम बेहोश होते हो, समाधि में तुम जागरूक हो। मगर एक बात समान है कि दोनों में ही मन नहीं रह जाता। गहरी सुषुप्ति में जब स्वप्न की तरंगें भी नहीं है. तुम कहां होते हो ? तुम श्रद्धा में होते हो, क्योंकि अखंड होते हो कोई बाटनेवाला नहीं बचा वह राजनीतिज्ञ मन जो सदा बांटता था और बांट-बांटकर तुम पर हुकूमत करता था, तुम्हें दो टुकड़ों में तोड़ देता था और उसीके कारण तुम्हारा मालिक हो जाता था; दोनों टुकड़ों को लड़ाता था और तुम्हें कमजोर कर देता था, वह राजनीतिज्ञ गया। गहरी निद्रा में तुम अखंड हो जाते हो।

इसलिए अभागे हैं वे लोग जो सुषुप्ति में नहीं उतर पाते हैं। रात भर जो करवटें लेतें हैं और सपनों में ही डूबे रहते हैं। सुबह उठकर पाते हैं कि वे और भी थके-मांदे हैं—– उससे भी ज्यादा, जितनी रात सोते समय गये बिस्तर पर तब थे; उससे भी ज्यादा थके-मांदे हैं। उन्हें सुषुप्ति नहीं मिली। उन्हें जो अचेतना में थोड़ी देर के लिये परमात्मा का सांन्निध्य मिल जाता था वह भी न मिला। चेतना में तो परमात्मा से कोई संबंध जुड़ ही नहीं रहा है, अचेतना में भी संबंध टूट गया है। इसलिए अनिद्रा से पीड़ित आदमी बड़ा दयनीय आदमी है। उतनी तो प्रकृति ने ही सुविधा दी कि चौबीस घंटे अगर तुम परमात्मा के पास न जा सको कोई हर्ज नहीं, लेकिन गहरी रात, गहरी नीद में तो थोड़ी देर को पहुंच जाना। होश तो नहीं रहेगा, लेकिन उसके पास पहुंचने से, उस परम स्त्रोत में डुबकी लगाने से जो लाभ होना है वह तो हो ही जायेंगा। इसलिए सुषुप्ति के बाद सुबह तुममें एक अलग बात होती है। जब पहली दफा तुम आंख खोलते हो गहरी नींद के बाद, तुममें थोड़ी सी श्रद्धा होती है। इसलिए सारे धर्मों ने कहा है, प्रार्थना सुबह, भोर में कर लेना।

सांझ तक तो तुम संसार में रह-रहकर इतने विभाजित हो जाते हो। संसार के धोखे खा-खाकर और धोखे दे-देकर, तुम इतने विषाद से भर जाते हो, सांझ होते-होते तो तुम इतने थक जाते हो कि कैसे प्रार्थना करना। दिन भर की बेईमानियां, धोखे-धडियां, कारगुजारियां, तुम्हें इतना तोड़ जायेंगी कि सांझ तुम बिलकुल बिखर गये। कहां श्रद्धा, कहां निशंका भाव, कहां अखंडता! कोई तुम्हें धोखा दे गया

उसकी भी चुभन, किसीको तुमने धोखा दिया उसकी भी चुभन, किसीको धोखा नहीं दे पाये उसकी भी चुभन। हजार तरह के कांटे छिद गये।

इसलिए तुम देखते हो, भिखमंगे सुबह आते हैं, सांझ नहीं आते। क्योंकि जानते हैं सांझ कौन देगा ? सांझ तो भिखमंगा डरता है कि किसीसे मांगा तो झपट्टा मारकर जो मेरे पास है, वही न छीन ले। सांझ तक तो हालत लोगों की पागलपन की हो जाती है। सुबह भिखमंगे आते हैं। सुबह थोड़ा भरोसा किया जा सकता है कि आदमी झपट्टा नहीं मारेगा। और सुबह थोड़ी शायद दया उमगे। सुबह शायद थोड़ी करुणा हो। सुबह शायद थोड़ा श्रद्धा भाव हो तो दे भी सके कुछ, बांट भी सके कुछ। सांझ तो कठिन है। सांझ तो हर आदमी डाकू हो जाता है।

यह आश्चर्य की बात नहीं है कि सांझ जब तुम घर लौटते हो तो अनिवार्य रूप से पत्नी से झगड़ पड़ते हो। दिन भर थके-मांदे, दिन भर की परेशानियों से भरे हुए, दिन भर के बाजार से परेशान जब तुम सांझ लौटते हो तो तुम होश में नहीं होते। तुम्हारे भीतर कोई श्रद्धा नहीं होती। और प्रेम हो कि प्रार्थना हो, सभी श्रद्धा के अंग हैं। इधर पत्नी भी दिन भर बैठी-बैठी परेशान हो गयी है। इधर पत्नी भी दिन भर में थक गयी है। बच्चे हैं, और नौकर है, बिजली काम नहीं करती और फोन बिगड़ा है। दिन भर में पत्नी भी थक गयी है, दिन भर में पत्नी भी परेशान हो गयी है, दिन भर में पत्नी का परमात्मा भी खंडित हो गया है। जैसे तुम्हारा परमात्मा खंडित हो गया। ये दो खंडित व्यक्ति जब सांझ को मिलते हैं तो एक दूसरे पर क्रोध से भर जाते हैं।

पश्चिम में एक नई हवा पैदा हो रही है, उसमें बड़ा सार है। उसे अभी लोगों ने इस तरह से देखा नहीं है। शायद जो कुछ लोग इस हवा में उतरे हैं उनको भी इस बात का पता नहीं है। सारी दुनिया में मनुष्य जाति के इतिहास में स्त्री और पुरुष रात को प्रेम करते रहे हैं। लेकिन अमरीका में एक नयी हवा पैदा हो रही है सुबह प्रेम करने की। अभी तो अमरीका के मनोवैज्ञानिकों को भी साफ नहीं है कि बात क्या है। लेकिन सांझ प्रेम की संभावना ही कम होती गयी हे। अब तो सुबह ही प्रेम किया जा सकता है। वहीं थोड़ी सी श्रद्धा रहती है। वहीं थोड़ा एक-दूसरे के संग-साथ होने की संभावना रहती है क्योंकि अपने संग-साथ जब कोई होता है, जब अपने भीतर रस-विमुग्ध होता है, जब अपने भीतर तरंग उठती होती है शांति की, मौन की, सुख की तो ही तो किसी दूसरे को प्रेम दे सकता है या दूसरे से प्रेम ले सकता है। तभी तो थोड़ी सी देर के लिये हम एक दूसरे में डूब सकते हैं। एक दूसरे में डूबना भी परमात्मा में ही डूबना है। वह भी उलटी तरफ से कान पकड़ना है, मगर है तो कान का ही पकड़ना। दूसरे में डूबकर भी डूबते तो हम अपने में ही

हैं। सुबह का मूल्य है क्योंकि सुबह थोड़ी शंका कम होती है। सुबह हां कहने का मन ज्यादा होता है, ना कहने का मन कम होता है।

तुम जरा जांचना, अपना ही जीवन जांचना, सुबह तुम बहुत सी बातों में हां कह दोगे, उन्हीं बातों में सांझ शायद तुम हां न कह पाओ। और सांझ जिन बातों में तुम ना कह दोगे, सोचना कि अगर किसीने सुबह पूछा होता तो ... तो शायद तुम हां कह देते। सांझ होते-होते सभी लोग नास्तिक हो जाते हैं। ना पैदा होने लगती है। ना यानी नास्तिक। नहीं कहने की जिद्द आ जाती है सांझ होते-होते ! सुबह सभी आस्तिक होते हैं। आस्तिक यानी हां कहना सहज मालूम होता है। कोई अड़चन नहीं मालूम होती।

दरिया लच्छन साध का क्या गिरही क्या भेख,
निहकपटी निरसंक रही बाहर भीतर एक

तो लक्षण बताते हैं। कि उसके जीवन में कोई कपट न हो, और उसके जीवन में कोई शंका न हो। श्रद्धा अखंड हो। उसका भीतर व्यक्तित्व अविभाजित हो-- बाहर भीतर एक। ऐसा ही व्यक्ति बाहर भीतर एक होता है।

तो खंड दो तरह के होते हैं, इसलिए दो लक्षण बताये। एक तो खंड होता है कि बाहर अलग, भीतर अलग। यह एक प्रकार का खंड हुआ। इसको हम कहते हैं पाखंड। एक तरह का खंड है। बाहर कुछ, भीतर कुछ। यह एक दिशा में दो टुकड़े हो गये। यह एक तरह का खंड है।

दूसरी तरह का खंड यह है कि बाहर कुछ, भीतर कुछ, यह तो ठीक ही है, भीतर भी एक नहीं है। भीतर भी अनेक। तब तो और भी खंड हो गये। तब तो तुम्हारे भीतर एक भीड़ हो गयी। तुम व्यक्ति न रहे अविभाजित, तुम तो एक भीड हो गये। तुम्हारे भीतर एक कोलाहल हो गया। इसी कोलाहल में हम जीते हैं। इस कोलाहल से मुक्त हो जाने का नाम साधु। यह अपूर्व व्याख्या हुई। साधु की तरफ यह गहरी लक्षणा हुई।

सत शब्द सत गुरुमुखी, मत गजंद मुखदंत
यह तो तोड़े पौलगढ़, वह तोड़े करम अनंत
सत शब्द सत गुरुमुखी . . .

अगर ऐसी श्रद्धा में बैठकर किसीने साधुभाव से गुरु का वचन सुना हो, गुरु का शब्द सुना हो, ऐसी श्रद्धा में--तो ही सुना जा सकता है, स्मरण रहे। शंका में तो गुरु का शब्द सुना नहीं जा सकता। शंका से तो गुरु का कोई संबंध ही नहीं बनता। शंकालु के पास तो सेतु ही होता कि गुरु से जुड़ जाये। शंकालु ने तो अपनी शंका के कारण सब सेतु सिकोड़ लिया। गुरु से तो जुड़ता वही है

जो निःशंक है। जो बाहर भीतर अलग-अलग है वह तो गुरु से कैसे जुड़ेगा ?

तुम जाकर गुरु के चरणों में सिर भी झुका देते हो मगर तुम्हारा अहंकार पीछे अकड़ा खड़ा रहता है-- यह बाहर भीतर अलग-अलग हो तुम। खोपड़ी तो झुक रही है, शरीर तो झुक रहा है मगर अहंकार मन तो खड़ा है; अकड़ा हुआ खड़ा है। सिर के साथ असली सिर भी झुक जाये, अहंकार भी झुक जाये तो संबंध जुड़ता है। उसी क्षण में संबंध जुड़ जाता है। गुरु के साथ होना किसी विवाद की घड़ी में नहीं हो सकता। संवाद की घड़ी चाहिये, जहां गुरु और तुम्हारा हृदय एक साथ धड़के। जहां तुम अलग-अलग धड़क रहे, अलग-अलग नाच रहे, अलग-अलग सोच रहे, वहां गुरु से संबंध न हो सकेगा। जहां गुरु की तरंग और तुम्हारी तरंग एक साथ हो गयी, जहां तुमने गुरु के साथ जरा भी अमैत्री भाव न रखा, जरा भी शत्रुता का भाव न रखा। विवाद में शत्रुता है। विवाद का मतलब है, मुझे मेरी रक्षा करनी है। पता नहीं यह आदमी कहां ले जाये, क्या करे। मुझे मेरा अपना खुद हिसाब रखना है। जो जंचेगी बात, मान लूंगा। जो नहीं जंचेगी, नहीं मानूंगा।

यह साधारणतः हमारी मनोदशा होती है कि जो मुझे जंचेगी वह मैं मानूंगा। तुम्हें सत्य का पता है ? पता ही हो तो किसी की तुम्हें मानने की जरूरत ही क्या है ? यह तो ऐसा हुआ कि तुम बीमार हो और चिकित्सक के पास गये हो और तुम कहो कि जो औषध मुझे जंचेगी वह मैं लूंगा। तुम्हें चुनाव की स्वतंत्रता है, चिकित्सकों में चुन लो तुम्हें जो चिकित्सक चुनना हो। चुनने के पहले तुम्हें स्वतंत्रता है कि तुम अ के पास जाओ कि ब के पास, किस के पास। तुम बुद्ध को पकड़ो कि मोहंमद को कि नानक को कि कबीर को कि दरिया को, तुम्हें स्वतंत्रता है। चिकित्सक बहुत हैं दुनिया में। कोई चिकित्सकों की कमी नहीं है। चिकित्सक तुम चुन लो लेकिन एक बार तुमने चुन लिया, फिर उसके साथ अपनी तरंग जोड़नी पड़ती है। फिर तो वह जो कहे, उसमें हिसाब नहीं रखना पड़ता कि यह दवा मैं लूंगा और यह मैं नहीं लूंगा। और यह मैं इतनी मात्रा में लूंगा और यह मैं इतनी मात्रा में नहीं लूंगा। एक बार गुरु को चुना तो फिर तुमने समर्पण किया। अगर ऐसा समर्पण न हो तो गुरु के वचनों का कोई परिणाम नहीं होगा।

सत शब्द सत गुरुमुखी-- गुरु के मुख से जो निकल रहा है वह तो सत्य है। वह तो परम सत्य है। वह बड़ा शक्तिशाली है।

मत गजंद मुखदंत-- ज्यादा शक्तिशाली है उस हाथी से भी, जो धक्के मारकर बड़े से बड़े किल्ले के द्वार को तोड़ देता है। जो अपने दांतों से बड़े से बड़े किल्ले के द्वार को हिला देता है, गिरा देता है।

गुरु के सत्य वचन उस मतवाले हाथी से भी ज्यादा शक्तिशाली हैं। तुम्हारे अंधकार को गिरा देने की क्षमता है लेकिन —— यह तो तोड़े पोलगढ़ वह तोड़े कर्म अनंत। तुम पर निर्भर है। तुम उसे अंगीकार करो तो ही यह क्रांति घट सकती है। तुम स्वीकार करो तो ही क्रांति घट सकती है।

हाथी केवल किले का द्वार तोड़ सकता है, लेकिन गुरु के वचन तुम्हारे जन्मों जन्मों में बनायी गयी तुम्हारी जो अपनी ही निर्मित व्यवस्था है, जिसको तुम जीवन कहते हो— जो जीवन तो नहीं है, मृत्यु से भी बदतर है। और जिसे तुम अपना घर कहते हो—जो तुम्हारा घर तो नहीं है, महाकारागृह है। जो किला तुमने अपने चारों तरफ खड़ा कर लिया है, जिसमें तुम खुद ही फंस गये हो और दुखी हो रहे हो और पीड़ित हो रहे हो, तड़फ रहे हो। जो जाल तुमने अपने चारों तरफ रच लिया है और खुद ही जिसमें तुम उलझ गये हो —— हाथी, मस्त हाथी तो केवल किले का द्वार तोड़ सकेगा लेकिन गुरु की मस्ती और भी गहरी है। वह परमात्मा के रस को पीकर मस्त हुआ है।

हाथी को तो शराब पिला देते हैं। जब हाथी से कोई दरवाजा तुड़वाना हो किले का तो उसको शराब पिलानी पड़ती है। बिना शराब पिये तो वह भी जाकर किले के दरवाजे पर चोट नहीं करेगा। यह तो पागल मस्ती में ही कर पायेगा वह। नहीं तो सोचेगा हजार बार, शंका उठेगी, विचार करेगा। और फिर ऐसा ही थोड़े ही होता है किले का दरवाजा। किले के दरवाजे पर भाले लगे होते हैं। उसमें सिर मारना—भालों से चुभने की तैयारी चाहिये। हाथी डरेगा। उसे पहले शराब पिला देते हैं। शराब पीकर मस्त हो जाता है तो फिर वह फिकर नहीं करता—न भालों की, न खतरों की; वह जूझ जाता है।

सद्गुरु परमात्मा की शराब पिये है, इसलिये तुमसे जूझता है; नहीं तो तुमसे जूझेगा भी नहीं क्योंकि तुम्हारा किला खूब प्राचीन है और बड़े भाले लगे हैं। और तुमसे टकराना सिर्फ मस्तों के लिये संभव है, जिनका गणित ही छूट गया है, जिन्होंने हिसाब-किताब छोड़ दिया है, तर्क छोड़ दिया है। ऐसी मस्ती में जो डूबे हैं, वही तुमसे टकरायेंगे; वही तुम्हें तोड़ पायेंगे। किसी मस्त का सान्निध्य मिल जाये तो सौभाग्य। क्योंकि मस्त की ही सहायता से तुम बाहर निकल पाओगे, अन्यथा तुम निकलनेवाले नहीं हो। होशियार आदमी तो तुमसे बचकर चलेंगे। चालबाज आदमी तो कहेगा, कहां की झंझट में पड़ना! तुम्हारा किला पड़ा है क्योंकि जन्मों जन्मों के कर्मों से तुमने उसे निर्मित किया है।

यह तो तोड़े पोलगढ़ वह तोड़े करम अनंत

गुरु जूझ जाता है। मगर जूझता तभी है जब उसके पास सत्य हो।

दांत रहै हस्ति बिना पौल न टूटे कोय

देखते हो ना ? हाथी दांत से टूट जाता है किले का दरवाजा, लेकिन इससे यह मत सोचना कि अकेले हाथी दांत को लेकर गये तो किले का दरवाजा खोल लोगे। हाथी चाहिये पीछे, नहीं तो हाथी दांत लेकर पहुंच गये किले के दरवाजे को ठकठोरने से, उससे कुछ खुलेगा नहीं।

दांत रहै हस्ति बिना पौल न टूटे कोय

फिर कोई दरवाजा न खुलेगा, न कोई किले की दीवाल टूटेगी। अकेले दांत की तो जो स्थिति होगी, वह क्या होगी ——

कै कर धारे कामिनी ...

अकेले दांत से या तो स्त्रियां आभूषण बना लेंगी और हाथों में पहन लेंगी।

कै खैलारा होय——

या बच्चे खिलौना बना लेंगे और खेलेंगे। उससे फिर किले नहीं टूटते।

दरिया यह कह रहे हैं कि सद्गुरु के वचन से किला तभी टूटता है जब उसके पीछे आत्मानुभव हो। हाथी हो पीछे, परमात्मा हो पीछे तभी। पंडित से नहीं टूटेगा। पंडित वे ही वचन बोलता है जो सद्गुरु बोलता है। वचनों में कोई भेद नहीं। पंडित के पास सिर्फ दांत है, हाथी नहीं है। सद्गुरु के पीछे हाथी है। वह मतवाला परमात्मा उसके साथ जुड़ा है। उसने अपने को परमात्मा से जोड लिया है। अब वह अकेला नहीं है।

मैंने सुना है, एक ईसाई फकीर औरत थेरेसा चर्च बनाना चाहती थी। उसने सारे गांव को इकट्ठा किया। उसने कहा, एक चर्च बनाना है। जीसस का बड़े से बड़ा चर्च इस गांव में बनाना है। लोग हंसने लगे; उन्होंने कहा, हम गरीब आदमी हैं, यह चर्च कैसे बनेगा ? तुझे कोई खजाना मिल गया है थेरेसा, जो चर्च बनायेगी ? उसने कहा, हां, खजाना मुझे मिल गया है। यह देखो। उसने खीसे से पैसे निकाले —दो पैसे।

लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा, हमें सदा से ही शक था कि तेरा दिमाग खराब है। अब तू बिलकुल पागल हो गयी। दो पैसे से दुनिया का सब से बड़ा चर्च बनाना है ? उसने कहा, तुम्हें दो पैसे ही दिखाई पड़ते हैं, और पीछे परमात्मा जो मेरे साथ है वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। दो पैसे शुरू करने के लिये काफी हैं। फिर बाकी परमात्मा तो है ही; वह फिकर लेगा।

लोग तो हंसे लेकिन चर्च बना। और दुनिया का बड़े से बड़ा चर्च आज वहां खड़ा है। दो पैसे के बल बना। लेकिन थेरेसा ने जो बात कही, बड़ी प्यारी कही। वह कि तुम्हें सिर्फ दो पैसे दिखाई पड़ते हैं, तुम्हें मेरे भीतर जो परमात्मा खड़ा है वह

दिखाई नहीं पड़ता। मैं उस खजाने की बात कर रही हूं। यह तो थेरेसा का संबंध हुआ-- दो पैसे। यह तो थेरेसा की संपत्ति-- दो पैसे। और फिर परमात्मा, उसकी कितनी संपत्ति ? उसे जोड़ लो। चर्च बनेगा।

कहते हैं, अबू बकर ने मोहंमद के संस्मरणों में लिखा है कि दोनों भागते हुए दुश्मन से बचने के लिये एक गुफा में चले गये। दुश्मन पीछे आ रहे हैं, अबू बकर बहुत घबड़ाया हुआ है। घोड़ों की टाप सुनाई पड़ने लगी। टाप करीब आती जाती है। अबू बकर पसीना-पसीना हो रहा है, मोहंमद बड़े शांति से बैठे हैं। आखिर उसने कहा, आप शांत क्यों बैठे हैं ? आखरी घड़ी आयी जा रही। कुछ परमात्मा से प्रार्थना वगैरह करनी हो तो कर लो। अब ज्यादा देर नहीं है। यह श्वास थोड़ी देर की और है। घोड़ों की टाप बढ़ती जा रही है। दुश्मन करीब आ रहा है। और हम केवल दो हैं और दुश्मन हजारों हैं।

मोहंमद ने कहा, वहां तू गलती करता है। हम दो नहीं हैं, हम तीन हैं, गिनती ठीक से कर। अबू बकर ने गौर से देखा कि कहीं मैं घबड़ाहट में गिननी तो नहीं भूल गया। देखा तो दो ही हैं। छोटी सी गुफा में दो बैठे हैं। अबू बकर ने कहा, आप होश में हैं हजरत ? डर के मारे कहीं आप घबड़ा तो नहीं गये हैं ? तीन गिन रहे हैं दो को ? मोहंमद ने कहा, तुम परमात्मा को गिनते नहीं, जो हमारे सदा साथ है। हम तीन हैं-- दो हम और एक परमात्मा। दुश्मन हजारों हों, कोई फिकर न कर। उस एक की मौजूदगी काफी है। और जब मोहंमद यह बात कर रहे थे तभी आवाज घोड़ों के टाप की कम होने लगी। ठीक उसी क्षण वे किसी और रास्ते पर मुड़ गये। थोड़ी ही देर में टापों की आवाज बंद हो गयी। दुश्मन कहीं दूर निकल गये।

दांत रहै हस्ति बिना पील न टूटे कोय

अकेले दांत से नहीं टूटता है किले का दरवाजा, पीछे हाथी चाहिये। हाथी भी साधारण नहीं चाहिये, मस्त चाहिये; मतवाला चाहिये, शराब म डूबा चाहिये। नहाया हुआ चाहिये शराब में। रोआं-रोआं शराबी का हो तो टूटता है।

कै कर धारे कामिनी--

अकेले हाथी दांत लिये घूमना। यही तो लोग करते हैं जो शास्त्र लिये घूम रहे हैं--अकेले हाथी दांत। यही तो लोग करते हैं जो सिद्धांतों की चर्चा करते रहते हैं-- बिना किसी स्वानुभव के, बिना किसी आत्म-साक्षात्कार के, बिना परमात्मा से आंख मिलाये जो परमातमा की बात करते रहते हैं। जिन्होंने समाधि का जरा भी रस नहीं चखा, और समाधि की शास्त्रीय व्याख्या करते रहते हैं। जो कभी प्रार्थना में नहीं उतरे और प्रार्थना पर शास्त्र लिखते रहते हैं, उनसे सावधान

रहना।

कै कर धारे कामिनी ...

वह जो हाथी दांत लिये हैं, आज नहीं कल किसी स्त्री के हाथ में या तो आभूषण बन जायेगा।

कै खेलारा होय ——

या खिलौना बन जायेगा। कोई बच्चा उससे खेलेगा। इससे ज्यादा मूल्य नहीं है। कोरे शब्दों का कोई भी मूल्य नहीं है।

और खयाल रखना कि कोरे शब्द भी ठीक वैसे ही दिखाई पड़ते हैं जैसे भरे शब्द। शब्दों में कोई फर्क नहीं है। हाथी दांत तो वे ही हैं, पीछे हाथी हो कि न हो। अगर तुम हाथी दांत को ही देखते हो तो क्या फर्क करोगे ? दोनों हालत में हाथी दांत हाथी दांत है। अगर तुम हाथी दांत को ही काटकर रासायनिक परीक्षण करवाओगे तो दोनों में एक सा ही रासायनिक परीक्षण मिलेगा; कोई फर्क न होगा।

दरिया बोलते हैं, कोई पंडित बोलता हो, दोनों की भाषा का अगर जाकर भाषाशास्त्री से विश्लेषण करवाओगे तो वह कहेगा कि दोनों की भाषा एक ही जैसी है। दोनों एक ही बात कह रहे हैं। एक ही बात नहीं कह रहे हैं; हालांकि एक जैसे ही शब्दों का उपयोग हो रहा है। बात बड़ी फर्क है। बात बड़ी भिन्न है।

तुम तोते को रटवा दो तो तोता भी बोल देता है। मगर तोता जब कुछ बोलता है तो सिर्फ दांत। भीतर कोई हाथी नहीं है। तोते को पता ही नहीं है कि अर्थ भी क्या है। तोता सिर्फ पुनरुक्त कर देता है। तोता सिर्फ नकल कर रहा है। तोते को हिंदू के घर में होता है तो लोग सिखा देते : " राम-राम हरे राम "। तो तोता " राम-राम हरे राम " कहने लगता। इससे यह मत समझना कि तोता हिंदू हो गया। मुसलमान घर में होता तो " अल्लाह-अल्लाह " कहता। ईसाई घर में होता तो कुछ और कहता। जैन घर में होता तो नमोकार मंत्र पढ़ता। यह तोता यही होता। यह तोते को कुछ लेना-देना नहीं है।

और दुख की बात तो यह है कि आदमियों में बहुत लोग तोतों की भांति हैं पंडित तो बिलकुल पोपट, तोता। दांत ही भर उसके पास हैं। उसके दांतों से धोखे में मत आ जाना। दरिया कहते हैं, सद्गुरु खोजो जहां मस्ती हो; जहां शब्दों में रस-धार बह रही हो; जहां शब्दों के पीछे निःशब्द खड़ा हो। और ऐसा गुरु मिल जाये तो निःशंक भाव से उससे जुड़ जाना। तो फिर निष्कपट भाव से उसके साथ एक हो जाना। फिर हिंमत कर लेना। फिर दुस्साहस कर लेना। फिर जोखम उठा लेना। जोखमियों का धंधा है धर्म। जुआरियों का धंधा है धर्म। यह कमजोरों का, हिसाब-

किताब लगानेवालों का, दुकानदारों का नहीं है। जो दो-दो कौड़ी का हिसाब लगाते रहते हैं, वे कभी धार्मिक नहीं हो पाते। जो छलांग लगाने को राजी हैं। जो कहते हैं ठीक है, या तो इस पार या उस पार; केवल उनका है।

मेरे पैरों के निशां अब भी परेशां है यहां
खाक छानी है इन्हीं राहों की बरसों मैंने
वक्त आया तो गदागर से भी बदतर निकले
तमकनत देखी थी जिन साहों की बरसों मैंने
बन के जंजीर गला घोंट रही है मेरा
राह देखी थी इन्हीं बाहों की बरसों मैंने
इनकी गरमी से पसीजे न पसीजे वह मगर
आग तापी है इन्हीं आहों की बरसों मैंने
बन के जंजीर गला घोंट रही है मेरा
राह देखी थी इन्हीं बाहों की बरसों मैंने

तुम जिंदगी में बहुत जगह उलझ गये हो। जिन बाहों की तुमने बरसों राह देखी थी वही तुम्हारी जंजीरें बन गयी हैं; वही तुम्हारी गले की फांसी बन गयी हैं। जिस धन को तुमने सोचा था धनी बना देगा, उसीने तुम्हें निर्धन बना दिया है। और जिस पद को तुमने सोचा था, आकाश में उठा देगा उसने ही तुम्हें भिखमंगा बना दिया है। जिस ज्ञान से तुम सोचते थे सत्य मिल जायेगा, उस ज्ञान से तुम तोते हो गये हो। और जिन संप्रदायों, मंदिरों, मस्जिदों से तुमने नाता जोड़ा था और सोचा था कि इनसे मार्ग मिल जायेगा उनके ही कारण मार्ग मिल भी सकता था तो मिलना मुश्किल हो गया है।

बन के जंजीर गला घोंट रही है मेरा
राह देखी थी इन्हीं बाहों की बरसों मैंने
राह देखी थी इन्हीं बाहों की बरसों मैंने

जागो थोड़े। थोड़े समझना शुरू करो। मुर्दा मंदिरों से राह नहीं जाती, कोई जिंदा गुरु चाहिये। किताबों से मार्ग नहीं मिलता, कोई धड़कता हुआ हृदय चाहिये।

लेकिन कुछ कारण है कि हम मुर्दा किताबों से ज्यादा आसानी से संबंध जोड़ लेते हैं। उसका कारण साफ है। मुर्दा किताब तुम्हें बदलती नहीं; बदल नहीं सकती। वही सुरक्षा है। रखे बैठे हैं कुरान कि गुरुग्रंथ कि वेद कि बाईबल। क्या करेगी बाईबल तुम्हारा? दो फूल चढ़ा दिये, वह भी तुम्हारी मस्ती। कभी चढ़ा दिये, तो चढ़ा दिये, नहीं चढ़ाये तो नहीं चढ़ाये। क्या करेगी बाईबल तुम्हारा? फिर कभी पढ़ ली, इधर-उधर उलट ली, फिर जो मतलब निकालना चाहा वह मतलब निकाल

लिया।

तो किताब तो तुम्हारी गुलाम हो जाती है। किताब तुम्हें क्या बदलेगी! तुम्हीं किताब तो बदल देते हो। इसलिए किताब की तो पूजा लोग करते हैं। मर गये गुरु की हजारों साल तक पूजा होती है। बुद्ध को गये ढाई हजार साल हो गये, अब पूजा चलती है। बुद्ध जब जिंदा थे तो यही लोक उनसे बचकर भागते थे। क्योंकि जिंदा बुद्ध आग हैं। जिंदा बुद्ध के पास जाओगे तो जलोगे। और जलोगे तो ही निखरोगे भी। जलोगे तो ही तुम्हारा कचरा जलेगा और तुम्हारा सोना कुंदन बनेगा, शुद्ध होगा। इसलिए लोग राख पूजा की करते हैं। आग से बचते हैं, राख की पूजा करते हैं। राख में खतरा नहीं है, राख में बड़ी सुरक्षा है।

कल ही एक युवक ने मुझे आकर कहा कि मैं जब दूर जर्मनी में होता हूं तो आपकी बड़ी याद आती है और आप बड़े प्यारे लगते हैं। और चौबीस घंटे आपके ही रस में रहता हूं। और जब यहां आता हूं तो डर लगने लगता है, भय लगने लगता है। आपके पास आने से घबड़ाने लगता हूं। हजार-हजार विचार बाधायें डालने लगते हैं। तो उसने कहा, मैं बड़े पशोपेश में हूं। यह बात क्या है? और ऐसा दो चार बार हो गया है। जर्मनी लौट जाता हूं, पहुंचते ही जर्मनी सब ठीक हो जाता है। यहां आया नहीं कि फिर गड़बड़ शुरू हो जाती है।

उसके पशोपेश को समझो। उसका पशोपेश अधिक लोगों का पशोपेश है। उसकी उलझन अधिक लोगों की उलझन है। जब वह जर्मनी में है तब कोई अड़चन नहीं है। तब आग से तुम इतने दूर हो कि अब आग की तस्वीर ही रह गयी है तुम्हारे मन में। तस्वीर तुम्हारी है। तुम जैसी चाहो, बना लो। जैसा रंग डालना चाहो उस तस्वीर में डाल दो। आग की तस्वीर तुम्हें जलायेगी नहीं। आग की तस्वीर के पास जाने से कौन डरता है? आग की तस्वीर को तो लोग अपने हृदय में लगा सकते हैं। लेकिन आग के पास जाने से तो डर लगेगा, घबड़ाहट होगी।

तो मैंने उससे कहा कि यह तो बड़ा सूचक है, यह तो बात साफ है। जब तू दूर होता है तो मेरे वचनों का जो तुझे अर्थ करना है कर लेता होगा; तब मैं तेरे हाथ में हूं। जब तू मेरे पास आता है तो तू मेरे पास में है और अड़चन है।

इसलिए मुर्दा गुरुओं की प्रतिष्ठा चलती है, पूजा चलती है। जिंदा गुरु का तिरस्कार, निंदा, विरोध। मुर्दा गुरु का सम्मान। और ये सब मुर्दा गुरु किसी दिन जिंदा थे, तब तुमने इनके साथ भी यहीं व्यवहार किया।

मतवादी जाने नहीं ततवादी की बात
सूरज ऊगा उल्लुआ गिने अंधेरी रात

प्यारा वचन है।

मतवादी जाने नहीं ततवादी की बात

मतवाद का अर्थ होता है, सिद्धांत की पकड़। मतवाद का अर्थ होता है, बिना अनुभव के शब्दों का आग्रह-- मेरी कुरान ठीक कि मेरी गीता ठीक। और तुम्हें ठीक का कुछ पता नहीं है। ठीक का तुम्हें कभी दर्शन नहीं हुआ। ठीक का दर्शन हो सके इसके लिये तुमने कभी आंख ही नहीं खोली। ठीक से संबंध जुड़ सके इतनी तुमने कभी हिंमत ही नहीं की। और मेरी कुरान ठीक, और मेरी गीता ठीक, और तुम लड़ रहे हो और विवाद कर रहे हो -- मतवादी! मतवाद से सावधान रहना। जंजीर बन जायेगी तुम्हारी।

हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जैन, बौद्ध सब जंजीरों में ग्रसित हैं। अलग अलग नाम हैं जंजीरों के, मगर जंजीरें जंजीरें ही हैं। अगर तुम हिंदू हो तो मुसलमान की मस्जिद में जाने में तुम्हें पता चलेगा कि जंजीर है पैर में। अगर जंजीर की परख करनी हो, हिंदू हो, जरा मुसलमान की मस्जिद में जाने की कोशिश करना, तुम अचानक पाओगे, पैर रुकते हैं, कोई चीज पीछे रोकती है। यह कौन चीज रोकती होगी? दिखाई तो नहीं पड़ती है। पैर में एक सूक्ष्म जंजीर पड़ी है, वह मस्जिद में नहीं जाने देती है। मंदिर में खींच लेती है, मस्जिद में रोकती है। अगर किसी तरह हिंमत करके चले भी गये तो मस्जिद में हाथ झुकने, सिर झुकने की इच्छा पैदा नहीं होगी। अकड़े रह जाओगे। पीठ झुकेगी नहीं, सिर झुकेगा नहीं। कौन रोक रहा है? एक जंजीर पड़ी है, जो बड़ी अदृश्य है।

मुसलमान फकीर के सामने तुम जाकर उसके चरणों में सिर न रख सकोगे। मुसलमान--और उसके चरणों से रखें? और तुम ब्राह्मण या तुम जैन। और तुम शुद्ध शाकाहरी और यह मांसाहारी! इसके चरणों में सिर रखें! यह म्लेच्छ, तुम शुद्ध-- इसके चरणों में सिर रखें? कोई चीज रोक लेगी। और यह सामने जो आदमी खड़ा है, हो सकता है एक जाग्रत पुरुष हो; मगर वह जाग्रत पुरुष तुम्हें दिखाई नहीं पड़ सकता क्योंकि तुम्हें और चीजों का निर्णय करना है पहले। अगर तुम जैन हो तो एक पाखंडी जैन मुनि के चरणों में भी तुम सिर झुका दोगे और एक असली मुसलमान फकीर के चरणों में भी सिर झुका न पाओगे। इससे पता चलता है जंजीर का। और यही हालत मुसलमान की है। वह पाखंडी फकीर के पैरों में सिर झुका देगा, मदारी के चरणों में सिर झुका देगा, और किसी जैन मुनि के, जहां जीवन की सचमुच तपश्चर्या प्रगट हुई हो, जहां जलती आग हो, वहां अटका रह जायेगा। वहां अचानक पायेगा कि सब उत्साह खो गया। वहां झुकने की इच्छा नहीं होती। यह तुम्हारी इच्छा है या

तुम्हारी जंजीरों की इच्छा है? यह तुम स्वतंत्र हो, तुम सोचते हो तुम मुक्त हो? तो अगर तुम मुक्त होते तो जो था, उसे देखते।

महावीर को हिंदुओं ने नहीं देखा। महावीर चले इसी जमीन पर, हिंदुओं ने नहीं देखा। हिंदुओं की किताबों में महावीर का उल्लेख भी नहीं है। इतना अपूर्व पुरुष हुआ उसका उल्लेख भी नहीं हिंदुओं की किताबों में; बात क्या है? ऐसी उपेक्षा की? ऐसी पीठ कर ली इसकी तरफ, इस आदमी तरफ!

जैनों ने कृष्ण को नरक में डाल रखा है अपनी किताबों में। क्योंकि जैनों के हिसाब से इसी आदमी ने युद्ध करवा दिया महाभारत का। अर्जुन तो संन्यासी हुआ जा रहा था। अर्जुन तो जैन मुनि होने की तैयारी कर रहा था। वह तो कहता था चला मैं छोड़कर। यह हिंसा करने की, यह मारना अपने लोगों को, यह मुझसे न हो सकेगा। तो कृष्ण ने उसको समझा-बुझाकर, घोंट-घांट कर गीता पिला दी। और वह बेचारा बहुत भागा, बहुत भागा, मगर ये भागने नहीं दिये और किसी तरह उसको हिंसा में उतार दिया। लाखों लोग मारे गये, हिंसा हुई। उसका जिम्मा किस पर है? तो जैनों ने कृष्ण को सातवें नर्क में डाला है। उससे नीचे कोई नरक नहीं है तो सातवें में डाल दिया। और थोड़े-बहुत दिन के लिये नहीं डाला, काफी लंबे काल के लिये डाला है। जब यह सृष्टि नष्ट होगी तब छूटेंगे। तब तक तो उनको नर्क में रहना पड़ेगा।

मतवादी तो कृष्ण जैसी चेतना को भी न देख पायेगा, महावीर जैसी चेतना को भी न देख पायेगा। क्राईस्ट को यहूदियों ने सूली पर चढ़ा दिया। यहूदी बेटा था, यहूदी घर में पैदा हुआ था, लेकिन कुछ ऐसी अनूठी बातें कहने लगा जो कि पंडितों को न जमीं। जो रबाई थे उनको न जमीं। उनके आसन डावांडोल होने लगे। इसको फांसी देनी पड़ी। इसको सूली लगानी पड़ी। यहूदी बेटे को यहूदी बापों ने मारा। यह बेटे की हत्या की। इसकी कोई ज्यादा उम्र भी न थी, तैंतीस साल की उम्र में जीसस को सूली पर लटका दिया। आग बड़ी प्रचंड रही होगी। घबड़ा गयी होगी सारी की सारी व्यवस्था, स्थापित निहित स्वार्थ।

मतवादी जाने नहीं ततवादी की बात

दरिया कहते हैं, मतवादी मत बन जाना; नहीं तो तुम तत्त्व जिसने जाना है, उसकी बात न समझ पाओगे। तत्व को जाननेवाला सिद्धांतों की बात नहीं करता। तत्व को जाननेवाला अनुभव की बात करता है, साक्षात्कार की बात करता है। तत्त्व को जाननेवाले को छोटी-छोटी भाषाओं के झगड़ों में रस नहीं होता। मान्यताओं, सिद्धांताओं, शास्त्रों में रस नहीं होता। तत्ववादी को तो सिर्फ एक बात में रस होता है: जो है, उनको तुम जान लो। जो है, जैसा है, वैसा ही उसको

जान लो। आदमी के द्वारा बनाये गये दर्शनशास्त्र किसी मूल्य के नहीं हैं। तुम्हारी आंख सभी दर्शनशास्त्रों से मुक्त होनी चाहिये।

रंजी सास्तर ग्यान की अंग रही लिपटाय

दरिया कहते हैं, अंग पर बड़ी धूल जम गयी है शास्त्र की, ज्ञान की--सास्तर ग्यान की। कोई गुरु खोजो कि उसे धो दे। कोई गुरु खोजो कि उसकी अमृतवर्षा में तुम्हारी धूल बह जाये। सद्गुरु गहो, जो तुम्हें शास्त्रों की धूल से मुक्त करा दे; शब्दों के आग्रह से मुक्त करा दे; तुम्हारी आंखों को निर्मल कर दे, दर्पण की तरह निर्मल--कि जो है, उसीका प्रतिबिंब बनने लगे।

मतवादी जाने नहीं ततवादी की बात

तो अगर तुम मतवाद लेकर गुरु के पास गये तो तुम समझ ही न पाओगे, क्योंकि वहीं से झंझट शुरू हो गयी। वह है तत्व को जाननेवाला और तुम हो केवल सिद्धांत की बकवास में लगे हुए।

मैं एक गांव में गया, दो बूढ़े मेरे पास आये। दोनों पड़ोसी हैं। एक जैन है, एक ब्राह्मण है। दोनों ने मुझसे कहा कि आप आ गये, तो अच्छा हुआ। एक बात हमें पूछनी है। हम दोनों बचपन के साथी हैं। उनकी उम्र होगी कोई सत्तर पचहत्तर साल अब तो। और बचपन से ही हममें विवाद है और हम पड़ोसी भी हैं। हम सिर लड़ा-लड़ाकर हार गये। मैं जैन हूं और यह ब्राह्मण। ये कहते हैं दुनिया को परमात्मा ने बनाया, और मैं कहता हूं किसी ने नहीं बनाया। कोई स्रष्टा नहीं है। यह तो अनादि काल से चली आ रही है। इसका बनानेवाला कोई है ही नहीं। हम थक गये हैं इसमें विवाद कर-करके, और पास ही रहते हैं। फिर सुबह मिल जाते हैं, फिर सांझ मिल जाते हैं। अब तो दोनों रिटायर भी हो गये हैं तो कोई काम ही नहीं है। तो हम बहुत परेशान हो गये हैं। और इसमें कुछ हल भी नहीं होता। यह भी तर्क करने में बहुत कुशल है, मैं भी बहुत कुशल हूं। मैं भी शास्त्रों का उल्लेख देता हूं, यह भी उल्लेख देता है। हमारे घरवाले भी परेशान हो गये हैं। जैसे ही हम दोनों बैठते हैं कि सब लोग हट जाते हैं वहां से, कि अब इनकी फिर बकवास शुरू हुई। और हम बैठे नहीं पास कि वह झंझट खड़ी हो जाती है। आपके पास हम आये हैं तय करने कि इन दोनों में कौन ठीक है?

मैंने उनसे कहा, अगर तुम मेरी सुनो तो तुम दोनों गलत हो। कहने लगे, यह कैसे हो सकता है? दो में से कोई एक तो ठीक होगा ही। सीधी बात है--या तो किसीने बनाया, या नहीं बनाया। अब इसमें दोनों कैसे गलत हो सकते हैं? मैंने कहा, तुम मेरी बात समझो। तुम दोनों गलत हो, क्योंकि तुम दोनों मतवादी हो। मैं यह नहीं कह रहा कि तुम्हारा सिद्धांत ठीक, उनका सिद्धांत ठीक। तुम्हारा

सिद्धांत गलत, या उनका सिद्धांत गलत। यह मैं कह ही नहीं रहा। सिद्धांत से मुझे कुछ लेना-देना ही नहीं है, मतवाद गलत। तुम दोनों गलत हो। क्योंकि न तुमने तत्त्व का दर्शन किया है, न उन्होंने तत्त्व का दर्शन किया। तुम विवाद किस बात का कर रहे हो? तुमने देखा? पहले ने कहा, नहीं, देखा तो नहीं। दूसरे से पूछा, तुमने देखा? उन्होंने कहा, यह तो नहीं कह सकता कि देखा, अब आपके सामने झूठ कैसे बोलना? देखा तो नहीं। मैंने कहा, दो अंधे विवाद कर रहे हैं कि प्रकाश कैसा होता है।

रामकृष्ण कहते थे एक कहानी, वह मैंने उनसे कही। कि एक अंधे आदमी को मित्रों ने घर बुलाया, निमंत्रण दिया और खीर बनायी। उसे खीर खूब पसंद आई। पहली दफा खीर उसने खाई। गरीब अंधा था, कभी खीर खाई न थी। वह पूछने लगा, यह खीर कैसी! बड़ी प्यारी लगती है, इसके संबंध में मुझे कुछ समझाओ। तो पास में बैठे एक पंडित ने-- गांव का ही पंडित था-- उसने कहा, खीर कैसी? खीर बिलकुल सफेद है, शुभ्र, श्वेत वस्त्र जैसी। उसने कहा, अब उलझन मत बनाओ। मैं अंधा हूं। सफेद यानी क्या? पंडित तो पंडित। पंडित कोई ऐसे हारते तो नहीं। पंडित ने कहा, सफेद यानी क्या? अरे, बगुला देखा कभी? बिलकुल बगुले की जैसी सफेद। अब यह पंडित इस अंधे से भी ज्यादा अंधा है। तुम अंधे आदमी को समझाने चले कि खीर सफेद, सफेद कपड़ों जैसी। अब सफेद की झंझट उठी तो बगुले जैसा सफेद। उस अंधे ने कहा कि आप तो मुझे और उलझाये जा रहे हैं। एक प्रश्न तो वहीं के वहीं खड़ा है, और दो खड़े कर दिये। यह सफेद क्या? यह बगुला क्या? यह बगुला कैसा होता है?

मगर पंडित भी पंडित था। मतवादी हारते नहीं, एक मत से दूसरा मत निकालते जाते हैं। उसने कहा, बगुला कैसा, यह भी एक झंझट है। उसने कहा, अच्छा, देख। यह मेरा हाथ, इस पर हाथ रख। उसने बगुले की तरह का हाथ अपना मोड़ लिया, जैसे बगुले की गरदन मुड़ी हो। कहा, इसमें हाथ फेर। ऐसी बगुले की गरदन होती है। अंधा बड़ा प्रसन्न हो गया। उसने कहा कि मैं समझ गया, खीर मुड़े हुए हाथ जैसी होती है। अब समझ आई बात।

मतवाद ऐसा ही है; जिसका हमें कोई अनुभव नहीं है, जिसका हमें अनुभव हो नहीं सकता क्योंकि हमारे अनुभव के द्वार अवरुद्ध हैं।

उन दोनों को समझाने में मुझे बड़ी कठिनाई पड़ी कि तुम दोनों गलत हो। वे बार-बार यही कहने लगे लौटकर कि एक होगा गलत, मगर दोनों? वे कहने लगे, आपने और झंझट कर दी। अभी तक तो हम लोगों को एक ही झंझट थी, कि एक गलत होगा, एक तो सही होगा। कभी न कभी निर्णय हो जायेगा। आप

कहते हैं, दोनों गलत।

मतवाद गलत है। अगर तुम ईसाई हो मतवादी की तरह तो तुम गलत। अगर हिंदू हो मतवादी की तरह, तुम गलत। अगर मुसलमान हो मतवादी की तरह, तुम गलत। तत्त्ववादी बनो। दरिया बड़ी ऊंची बात कह रहे हैं। दरिया कह रहे हैं, जो है उसको देखो; उसको अनुभव करो, उसकी प्रतीति करो।

आरजू ए जां निसारी वो हमारे दिलमें है
क्या करें लेकिन कि खंजर, कबजा-ए-कातिल में है
अब न बहलेगा चमन में तेरे दीवाने का दिल
फिर हवस आवारगी की आज इसके दिलमें है
इससे क्या मतलब कि मैं गुलशन में हूं या सहरा में हूं
आप जिस महफिल में हैं दिल मेरा उस महफिल में है
तह में है दबहरे मुहब्बत कि वह गोहर और तू
यह समझाता है कि शायद दामने साहिल में है
सादगी कहिये इसे या होशियारी जानिये
उनसे कह देते हैं जो कुछ हमारे दिलमें है
जुस्तजू में जिसकी हरेक राह रो हैरान हैं
अश्क की मंजिल है वह और अश्क उस मंजिल में है
फेंक दे चाहे हवादिश राह से हर बार दूर
जायेगी मंजिल कहां जब जिंदगी मंजिल में है

समझो। सत्य दूर नहीं है। सत्य बिलकुल आंख के सामने है। सामने ही क्यों, सत्य आंख में है। आंख में ही क्यों, सत्य आंख के पीछे भी है। सत्य ही है। जो है उसीका नाम सत्य है।

फेंक दे चाहे हवादिश राह से हर बार दूर

दुर्घटनायें घट जायें और हम राह से भटक जायें, फिर भी कोई फर्क नहीं पड़ता। हम कितने ही सत्य को भूल जायें, कुछ अंतर नहीं पड़ता।

फेंक दे चाहे हवादिश राह से हर बार दूर
जायेगी मंजिल कहां जब जिंदगी मंजिल में है

परमात्मा दूर नहीं है। दूर जा भी नहीं सकते हम उससे। जरा आंख खोलकर देख लेने की बात है।

जायेगी मंजिल कहां जब जिंदगी मंजिल में है

भटक रहे हैं हम तो भी परमात्मा में ही भटक रहे हैं। आंख बंद किये खड़े हैं तो भी सत्य के सामने ही आंख बंद किये खड़े हैं। लेकिन सत्य से हम दूर नहीं हो सकते।

मतवाद आंख को बंद रखने में सहायता पहुंचाता है। मतवाद से एक भ्रांति पैदा होती है कि मुझे तो पता है। बस यही सबसे बड़ी भ्रांति है, जो मतवाद पैदा करता है। पढ़ ली किताब, पढ़ा शास्त्र, सिद्धांत समझे, तर्क सीखा और तुम्हें एक भ्रांति पैदा होती है कि मुझे पता है। और पता जरा भी नहीं। और ऐसा भी नहीं है कि जिसका तुम पता बताने की बात कर रहे हो, वह दूर है। ऐसा भी नहीं है, वह तुम्हारे सामने खड़ा है। लेकिन अगर तुम्हारी आंखें सिद्धांत और शब्दों से दबी हैं, तो तुम न देख पाओगे।

तह में है दबहरे मुहब्बत कि वह गोहर और तू
यह समझता है कि शायद दामने साहिल में है

मन यही समझाये चला जाता है कि किनारे पर ही मिलन हो जायेगा, तट पर ही मिलना हो जायेगा। शब्दों और सिद्धांतों के तट पर ही मिलना हो जायेगा। ऊपर-ऊपर की खोज, सतह-सतह पर तैरना इससे ही मिलना हो जायेगा।

तह में है दबहरे मुहब्बत की वह गोहर और तू

लेकिन जिनको हीरे खोजने हैं, जिन्हें मोती खोजने हैं उन्हें सागर की गहराई में उतरना पड़ता है। और मतवादी किनारे से अटका रहा जाता है।

मतवादी की हालत ऐसी है, जैसे एक रात कुछ शराबियों की हो गयी थी। रात खूब शराब पी मधुशाला में। चांदनी रात थी, पूरा चांद आकाश में था, फिर उनको धुन आई, मस्ती आई कि चलो नदी पर चलें, नौका-विहार करें। गये नदी पर। मछुए जा चुके थे अपनी नौकाएं बांध कर। एक नौका में उतर गये, और चले। पतवारी मारी, खूब पतवार मारी, खूब मारी। रातभर पतवार चलाते रहे। सुबह-सुबह जब ठंडी हवायें आने लगीं और जब थोड़ा होश लौटा, थोड़ा नशा उतरा तो उनमें से एक शराबी ने कहा, भाई, जरा नीचे उतरकर देख लो। हम कहां चले आये, पता नहीं। उत्तर कि दक्षिण, ऊपर के नीचे, कहां यात्रा हो गयी? जरा किनारे पर उतरकर तो देख लो, कितनी दूर निकल आये हो। अब घर लौटें। सुबह होने लगी। पत्नियां बच्चे राह देखते होंगे।

तो उनमें से एक किनारे पर उतरा और खूब हंसने लगा। पागल की तरह हंसने लगा। तो बाकी ने कहा, क्यों हंसते हो, बात क्या है? उसने कहा, हम वहीं के वहीं खड़े हैं। क्योंकि हम जंजीर तो खोलना भूल ही गये, जो किनारे से बंधी है। पतवार चलाने से ही थोड़े ही कहीं कोई जाता है! जंजीर भी तो खुलनी चाहिये। उसने कहा, मत घबड़ाओ, उतर आओ, घर चलें। रात भर नाहक ही

मेहनत हुई। बड़ी पतवार मारी।

ऐसा ही मतवादी बड़ा विचार करता है, बड़ी पतवार मारता है, लेकिन जब आंख खुलेगी तो तुम पाओगे कि जंजीर तो खोलना भूल ही गये। जंजीर ही तो विचार की है। जब तक विचार है तुम्हारे भीतर तब तक तत्त्व का दर्शन न होगा। निर्विचार चित में तत्त्व का दर्शन होता है।

इससे क्या मतलब कि मैं गुलशन में हूं या सहरा में हूं
आप जिस महफिल में हैं दिल मेरा उस महफिल में है

तो हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिक्ख होने की चेष्टा छोड़ो। यह पूरी महफिल उसकी है। यह सारा अस्तित्व उसका है। तुम उसके ही हो रहो।

आप जिस महफिल में हैं दिल मेरा उस महफिल में है

परमात्मा जहां जीता और जागता है--वृक्षों में हरा है, फलों में लाल है, बादलों में बादल है, पक्षियों में पक्षी है, पत्थरों में पत्थर है, नदियों में नदी, यह उसकी महफिल है। आदमियों में आदमी, स्त्रियों में स्त्री, बच्चों में बच्चा, यह उसकी महफिल है। ये सारी लहरें उसकी हैं। तुम इसमें अपनी सीमायें न बांधो। सीमायें बांधीं तो अनहद तक कैसे जाओगे? हद बना ली तो अनहद तक कैसे जाओगे? हद बना ली तो नौका बंधी रह गयी किनारे से।

मतवादी जाने नहीं ततवादी की बात
सूरज ऊगा उल्लुआ गिने अंधेरी रात

सूरज उग आता है तब उल्लू को लगता है, अंधेरी रात आ गयी। ऐसी हालत मतवादी की है।

ऐसा हुआ एक दिन। यह पास के गुलमोहर पर मैंने एक उल्लू को सुबह-सुबह आकर बैठे देखा। सुबह होने के करीब है, उल्लू आकर बैठ ही रहा है और एक गिलहरी भी वहां बैठी है। गिलहरी बड़ी प्रसन्न है, ताजगी से भरी है सुबह की। उल्लू ने उससे पूछा कि बेटी, रात हुई जाती है, विश्राम करने के लिए यह स्थान ठीक रहेगा? गिलहरी ने कहा, चाचा, आप भी क्या बातें कर रहे हैं। रात? अरे सूरज निकल रहा है। उल्लू नाराज हो गया। उल्लू ने कहा, छोटे मुंह और बड़ी बात! रात है। कौन कहता है सूरज निकल रहा है? सूरज तो ढल गया। उल्लू को तो रात में दिखाई पड़ता है। जब उसे दिखाई पड़ता है तो स्वभावतः उसका तर्क है कि तभी दिन। जब दिखाई पड़े तब दिन। जब दिखाई न पड़े तो रात।

मतवादी को शब्द और विचार और सिद्धांत में ही दिखाई पड़ता है; उसे इसी में रस है। वेद क्या कहते हैं, कुरान क्या कहती है, बाइबल क्या कहती है,

वह इन्हीं की उधेड़बुन में लगा रहता है। यह उसका दिन है। मतवादी का जो दिन है वह तत्ववादी की रात है। और तत्ववादी का जो दिन है वह मतवादी की रात है।

सूरज ऊगा उल्लुआ गिने अंधेरी रात

इसीलिए संतों से अगर पंडित नाराज रहे तो कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि पंडित को संत कहते हैं उल्लुआ।

सूरज ऊगा उल्लुआ गिने अंधेरी रात

अगर उल्लू मिलकर फिर फांसी लगा दें तो राजी रहना चाहिये। उल्लू मिलकर नहीं लगायेंगे तो करेंगे क्या? सब उल्लू एथेन्स के इकट्ठे हो गये और उन्होंने सुकरात को जहर पिला दिया। ऐसा तत्ववादी कभी-कभी पैदा होता है सुकरात जैसा, लेकिन उल्लुओं की जमात! गिलहरी अकेली पड़ गयी। और उल्लुओं की जमात...!

सीखत ग्यानी ग्यान गम करे ब्रह्म की बात
दरिया बाहर चांदनी भीतर काली रात

सीखत ग्यानी ग्यान गम--तुम्हारे सिद्धांतों की सीमा है; गम; अगम नहीं हैं वे, उनकी परिभाषा है। सीखत ग्यानी ग्यान गम--तुम जिस ज्ञानी की चर्चा कर रहे हो, जिन मतवादों की बात कर रहे हो वह सब सीमित है। अगम में उनकी कोई गति नहीं है। उस विराट में उन सिद्धांतों के सहारे तुम न जा सकोगे। उस विराट में तो जाना ही जिसको हो उसे सब सिद्धांत छोड़ देने पड़ते हैं; पीछे छोड़ देने पड़ते हैं।

सीखत ग्यानी ग्यान गम करे ब्रह्म की बात

सिद्धांत तो सीमित हैं और असीम की बातें करते हैं?

दरिया बाहर चांदनी भीतर काली रात

तो फिर बात ही बात रह जाती है। ऊपर-ऊपर चांदनी और भीतर अंधेरी रात। पंडित के भीतर तुम अमावस पाओगे। गहन अमावस। गहन अंधेरा। कभी-कभी तो अज्ञानी से भी ज्यादा अंधेरा पंडित के भीतर होता है। क्योंकि अज्ञानी को कम से कम एक बात तो रहती है कि उसे पता होता है कि मुझे पता नहीं। इतना तो सत्य होता है उसके संबंध में। इतनी बात तो सच है उसके संबंध में कि उसे पता है, मुझे पता नहीं। और पंडित को पता है कि मुझे पता है, और पता जरा भी नहीं। पंडित की हालत अज्ञानी से भी बदतर है। अज्ञानी तो कभी-कभी पहुंच भी जाये, पंडित कभी नहीं पहुंच पाता है। पंडित को अज्ञानी होना पड़ेगा। उतार देना होगा सारा बोझ।

दरिया बहु बकवाद तज कर अनहद से नेह

ये हदों की बातें छोड़ो। हिंदु मुसलमानों की बातें छोड़ो।

दरिया बहु बकवाद तज . . .

यह व्यर्थ की बातें छोड़ो।

. . . . कर अनहद से नेह

जो असीम है, जो अनंत है, जो शाश्वत सनातन है, उससे जुड़ो। किताबें पैदा होती हैं, खो जाती हैं। सिद्धांत बनते, बिखर जाते हैं। तुम उसे खोजो जो न कभी बनता, न कभी बिखरता; जो सदा है।

औंधा कलसा ऊपरे, कहा बरसावे मेह

और गुरु भी क्या करे! गुरु भर गया, जैसे कि मेह से भरा हुआ बादल होता है। जैसे आषाढ़ में बादल उठते हैं, राजी होते हैं बरसने को। तो गुरु तो मेह से भर गया तत्व के, बरसने को तैयार है लेकिन गुरु भी क्या करे? अगर तुम अपना कलसा उलटा रखे बैठे हो, अपना घड़ा उलटा रखे बैठे हो, गुरु बरसे भी तो व्यर्थ चला जायेगा।

औंधा कलसा ऊपरे, कहा बरसावे मेह

इसलिए सद्गुरु पंडितों को जरा भी ध्यान नहीं देते।

गुरजिएफ के पास ऑस्पेन्स्की गया, ऑस्पेन्स्की बड़ा पंडित था। गुरजिएफ ने कहा तू आया, ठीक; मगर एक बात पहले ही साफ कर ले। यह कागज ले, इस पर लिख एक तरफ जो तू जानता है, और एक तरफ जो तू नहीं जानता है। जो तु जानता उसकी हम फिर कभी चर्चा न करेंगे। बात ही खतम हो गयी। तू जानता ही है। जो तू नहीं जानता उसकी चर्चा करेंगे क्योंकि जो तू नहीं जानता वह तुझे सिखाने जैसा है। जा पास के कमरे में, लिख ला। ऑस्पेन्स्की बड़ी प्रसिद्ध किताबों का लेखक था। उसकी एक किताब तो मनुष्य जाति के इतिहास में अपूर्व किताबों में गिनी जाती है: "र्तातियम ऑरगानम"।

कहते हैं, दुनिया में तीन बड़ी किताबें हैं। एक किताब है अरस्तु की, उसका नाम है ऑरगानम: सिद्धांत। दूसरी किताब है बेकन की, उसका नाम है नोवन ऑरगानम: नया सिद्धांत। और तीसरी किताब है ऑस्पेन्सकी की, र्तातियम ऑरगानम: तीसरा सिद्धांत। ऑस्पेन्सकी यह किताब लिख चुका था, जगत-जाहिर था। गुरजिएफ को कोई जानता ही नहीं था। गुरजिएफ को लोगों ने जाना ऑस्पेन्सकी के आने के बाद। गुरजिएफ तो अनजान फकीर था। लेकिन गुरजिएफ ने ऑस्पेन्स्की को दिक्कत में डाल दिया। मतवादी को तत्ववादी ने बड़ी दिक्कत में डाल दिया। वह कागज दे दिया, कहा, बगल के कमरे में चले जाओ।

मगर ऑस्पेन्स्की भी निष्ठावान आदमी था, ईमानदार आदमी था। सोचने लगा, क्या मैं जानता हूं। ठंडी रात थी, बाहर बर्फ गिर रही थी, उसे पसीना आने लगा। पहली दफा उसकी जिंदगी में यह सवाल उठा, कि मैं सच में जानता क्या हूं? कलम हाथ में कंपने लगी। लिखने बैठता है लेकिन कुछ लिखा नहीं जाता। क्या कहूं कि क्या जानता हूं? और तब धीरे-धीरे बात उसे साफ हुई कि जानता तो मैं कुछ भी नहीं। लिखा तो मैंने बहुत, बिना जाने लिखा है। न मुझे ईश्वर का पता है और ईश्वर की मैंने खूब चर्चा की। न मुझे आत्मा का पता है और आत्मा की मैंने खूब चर्चा की।

सच तो यह है कि चर्चा करना आसान है, जब तुम्हें पता न हो। पता हो तब चर्चा करना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि जब पता होता है तब यह भी पता होता है कि शब्द में उसकी चर्चा बड़ी मुश्किल है, असंभव है। बांधे नहीं बंधती, छूट-छूट जाती है; बिखर-बिखर जाती है। सत्य तो ऐसा है जैसे कि पारा—पकड़ो कि बिखर-बिखर जाता है; पारे जैसा है।

घड़ी बीती, दो घड़ी बीती, गुरजिएफ ने आवाज दी कि भई, इतनी देर कर रहा है तू। इतना बड़ा ज्ञानी! जल्दी कर, लिखकर ला। ऑस्पेन्स्की आया, चरणों पर गिर पड़ा। कोरा कागज रख दिया और कहा कि दोनों तरफ कोरा है। कुछ भी नहीं जानता हूं। आप अ, ब, स से शुरू करें।

ऐसा जब गुरु मिलता है, और ऐसे गुरु को जब ऐसा शिष्य मिलता है, जो अपना कलसा सीधा करके रख देता है। कहता है, अ-ब-स से शुरू करें। कुछ जानता हूं अगर यह दंभ होता तो यह कलसा अभी भी उलटा रहता। दंभ का कलसा उलटा रहता है।

औंधा कलसा ऊपरे कहा बरसावे मेह

तो गुरु भी मिल जाये तो बेकार चली जायेगी बात। एक तो मिलना कठिन, मिल भी जाये तो बेकार चली जायेगी, अगर तुम मतवादी हो तो।

जन दरिया उपदेश दे भीतर प्रेम सधीर

सद्गुरु तो उसीको उपदेश देता है जो भीतर प्रेम से लेने को तैयार हो।

जन दरिया उपदेश दे भीतर प्रेम सधीर

जहां अनंत प्रेम भीतर लेने को, ग्रहण करने को राजी हो; जहां ग्राहकता हो, जहां पी जाने की तत्परता हो। शिष्य तो ऐसा चाहिये जैसे स्पंज। इधर गुरु से बहे कि वह पी जाये, सोख ले। जैसे स्याहीसोख। इधर बूंद टपके नहीं कि वहां पी जाये।

शिष्य तो स्त्रैण होता, स्त्रैण ही हो सकता है । जैसे स्त्री गर्भ को ग्रहण कर लेती है, फिर उसके जीवन, एक नये जीवन का जन्म उसके भीतर होता है ।

जन दरिया उपदेश दे भीतर प्रेम सधीर
ग्राहक हो कोई हींग का कहा दिखावे हीर

और हींग खरीदने जो आये हो, उनको हीरे बताओ इससे तो कुछ सार नहीं; इसमें तो कुछ अर्थ नहीं। जो हींग खरीदने आया हो उसे हीरा बताओ तो नाराज हो जायेगा । उसे हींग चाहिये, उसे हीरा नहीं चाहिये ।

तो सद्‌गुरु तो तभी तुम्हें दे सकता है, जब तुम लेने आये हो । जब तुम हीरा खरीदने ही आओ तभी हीरा दिया जा सकता है ।

मुझसे लोग पूछते हैं कि यहां सभी क्यों नही आने दिया जाता ? यहां रुकावट क्यों है ? यहां हींग नहीं बेची जाती। जो हीरा लेने आया हो और जो कसौटी देता हो कि हीरा ले सकता है, उसके लिये जगह है । यहां कुछ भीड़-भडक्का नहीं करना है । कोई बाजार नहीं भरना है ।

बहुत दिन तक मैं हजारों लोगों में बोलता था, लाखों लोगों में बोलता था। फिर मैंने देखा कि वे सब हीरे लेनेवाले लोग नहीं हैं, हींग खरीदनेवाले लोग हैं। उनसे मैं हीरे की बातें किये जा रहा हूं। सिर मारा-मारी होती, कुछ अर्थ नहीं है । सुन भी लेते हैं तो ज्यादा से ज्यादा मनोरंजन है । जीवन को दांव पर लगाने की साहस और हिमत है ही नहीं । कुतूहल से आ गये हैं। न जिज्ञासा है, मुमुक्षा तो बहुत दूर, कुतूहलवश आ गये हैं कि देखें क्या कहते हैं। कि शायद कुछ मतलब की बात मिल जाये। ऐसे ही चले आये हैं । नहीं गये सिनेमा, यहां आ गये। कि बैठकर गपशप करते, कि शतरंज खेलते, चलो सोचा कि आज वहीं बैठेंगे । चलो आज वहीं सुनेंगे। लाखों लोगों के बीच रहकर मुझे यह पता चला कि शायद थोड़े से ही लोग हीरे की तलाश में हैं। इसलिए उनके लिये ही निमंत्रण है, जो हीरे की खोज को तयार हों ।

जन जरिया उपदेश दे भीतर प्रेम सधीर
ग्राहक हो कोई हींग का कहां दिखावे हीर
दरिया गैला जगत को क्या कीजै सुलझाय

और यह पागल दुनिया को, पूरी पागल दुनिया को समझा-सुलझाने से भी क्या होनेवाला है ? यह कोई सुलझनेवाली भी नहीं, समझनेवाली भी नहीं ।

दरिया गैला जगत को--पागल जगत को--क्या कीजै सुलझाय
सुलझाया सुलझे नहीं सुलझ सुलझ उलझाय

इसको जितना सुलझाने की कोशिश करो, यह और उलझ जाता है।

इसको सुलझाने के लिये जो बातें बताओ उनमें ही उलझ जाता है । इससे कहो, यह बात तुम्हें बाहर ले आयेगी; वह बाहर तो नहीं लाती, यह उसी बात को विचार करने लगता है, मतवाद बना लेता है ।

इसी तरह तो उलझा । महंमद ने तो बात मतलब की कही थी; मुसलमान बनाने को न कही थी । महावीर ने तो बात सुलझने को कही थी; जैन बनाने को न कही थी । बुद्ध ने तो बात बाहर निकल आने को कही थी, संप्रदाय खड़ा कर लेने को न कही थी । लेकिन हुआ यह । बुद्ध ने कहा है, मेरी मूर्ति मत बनाना और बुद्ध की सब से ज्यादा मूर्तियां बनीं हैं दुनिया में। अब यह बड़े मजे बात है। इतनी मूर्तिया बनीं बुद्ध की कि उर्दू पर्शियन और अरबी में तो बुत शब्द जो है, वह बुद्ध का ही रूप है । इतनी मूर्तियां बनीं कि अरबी मुल्कों में पहली दफा उन्होंने जब मूर्ति देखी तो बुद्ध की ही देखी । तो बुद्ध को उन्होंने बुत ... वही मूर्ति का पर्यायवाची हो गया । बुतपरस्ती का मतलब होता है बुद्धपरस्ती । और बुद्ध जिंदगी भर कहते रहे, मेरी मूर्ति मत बनाना; मगर मूर्ति बनी ।

तो दरिया ठीक कहते हैं । दरिया काफी अनुभव की बात कहते हैं ।

दरिया गैला जगत को क्या कीजै सुलझाय
सुलझाया सुलझे नहीं, सुलझ-सुलझ उलझाय

यहां जितने सुलझानवाले आये, उन्होंने जितनी बातें सुलझाने को कहीं वे सब उलझाने का कारण बन गयीं । बच्चों के हाथ में तलवार पड़ गयी । खुद को भ काट लिया, दूसरों को भी अंग-भंग कर लिया ।

दरिया गैला जगत को क्या कीजै समझाय
रोग नीसरे देह में पत्थर पूजन जाय

ये ऐसे पागल हैं, इनको कार्य-कारण तक का होश नहीं है । चेचक का रोग निकल आता है शरीर में और जाते हैं किसी पत्थर को पूजने । काली माता को पूजने चले । इनको इतना भी होश नहीं है कि कारण कार्य तो देखो। शरीर में बीमारी है ते शरीर की चिकित्सा करो; तो शरीर के चिकित्सक के पास जाओ। पत्थर को पूजने चले ।

दरिया गैला जगत को क्या कीजै समझाय

इन पागलों को क्या समझाने से होगा !

रोग नीसरे देह में पत्थर पूजन जाय

इनको कार्य-कारण का संबंध तक होश में नहीं है । तो इनको परमतत्व की बात कहने से कुछ अर्थ नहीं है । ये सुन भी लें तो सुनेंगे नहीं । सुन लें, समझेंगे नहीं । समझ लें, कुछ का कुछ समझ लेंगे ।

कंचन कंचन ही सदा कांच कांच सो कांच

बड़े अपूर्व वचन हैं। हृदय में संभालकर रख लेना।

कंचन कंचन ही सदा कांच कांच सो कांच
दरिया झूठ सो झूठ है, सांच सांच सो सांच

झूठ को लाख सिद्ध करो, सिद्ध नहीं होता।

मतवादों को कितना ही सिद्ध करो, कुछ सिद्ध नहीं होता। इसलिए तो कोई मतवादी जीत नहीं पाता। सदियां बीत गयीं। हिंदू मुसलमान से विवाद कर रहे हैं, कौन जीता, कौन हारा ? जैन बौद्धों से विवाद कर रहे हैं, कौन जीता, कौन हारा ? नास्तिक आस्तिकों से विवाद कर रहे हैं, कौन जीता, कौन हारा ? कब तक विवाद करोगे ? निर्णय होता ही नहीं।

कंचन कचन ही सदा कांच कांच सो कांच

अनुभव ले जायेगा स्वर्ण पर। यह कांचों को बैठे और विवाद करते रहने से कुछ भी न होगा। सोना सोना है, कांच कांच है।

दरिया झूठ सो झूठ है, सांच सांच सो सांच

और जो सत्य है वह सत्य है। सत्य को सिद्ध नहीं करना होता, सत्य को जानना होता है, देखना होता है, दर्शन करना होता है। सत्य का दर्शनशास्त्र नहीं बनाना होता। सत्य का दर्शन करना होता है, आंख खोलनी होती है।

कानों सुनी सो झूठ सब आंखों देखी सांच

सिद्धांत तो कान से सुने जाते हैं; हिंदू तुम कैसे बने ? अब सुनो। दरिया कहते हैं, "कानों सुनी सो झूठ सब"। कान मत फुंकवाना किसी से। कान फुंकवा लिया, हिंदू बन गये। कान फुंकवा लिया, मुसलमान बन गये। सिद्धांत तो कान से सुने जाते हैं। तुम कैसे हिंदू बने ? मां बाप ने कान फूंके। मंदिर में भेजा, गीता पढ़वाई, रामायण सुनवाई, सत्यनारायण की कथा करवाई। तुम कैसे बने हिंदू ? कान से बने। और कान से भी कहीं कोई सत्य का अनुभव होता है ?

कानों सुनी सो झूठ सब आंखों देखी सांच

अपनी ही आंख पर भरोसा करना, किसी और पर भरोसा मत कर लेना। किसी और ने देखा होगा, देखा होगा। तुम जब तक न देख लो, तब तक रुक मत जाना। अपना देखा ही काम पड़ेगा। प्यास लगी हो तो ही बुझेगी। दूसरे ने कितना पानी पिया है इससे क्या होगा ?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि महावीर स्वामी ने ऐसा अनुभव किया। किया होगा, जरूर किया होगा। उनकी प्यास बुझ गयी इससे तुम्हारी प्यास बुझती ? अब तुम काहे के लिये शोरगुल मचा रहे हो ? तुम किस बात की डुंडी

पीट रहे हो ? तुम ही पियो। कृष्ण ने पिया होगा तो नाचे। तुम्हारे जीवन में कहीं नाच नहीं दिखाई पड़ता। कृष्ण की मूर्ति की पूजा कर रहे हो। नाचो! तुम्हारे जीवन में कुछ घटे। आंख तुम्हारी देखे।

कानों सुनी सो झूठ सब आंखों देखी सांच
दरिया देखे जानिये यह कंचन यह कांच

और जब देखोगे तभी जानोगे कि क्या कंचन है और क्या कांच है। क्या असली स्वर्ण और क्या केवल पीतल। पीतल भी सोने जैसा चमकता है। लेकिन सभी चमकनेवाली चीजें सोना नहीं होतीं। और कभी-कभी तो पीतल भी इस तरह चमकाया जा सकता है कि सोने को भी मात करता मालूम पड़े। ऐसा पॉलिश किया जा सकता है कि दूर से धोखा दे जाये। लेकिन करीब आकर अनुभव से ही पता चलता है क्या असली, क्या नकली। आंख ही निर्णायक है। कान निर्णायक नहीं हो सकता। आंख से अर्थ है: अपना ही साक्षात्कार, अपनी ही अनुभूति।

समस्त सतपुरुषों ने एक बात पर ही जोर दिया है कि तुम स्वयं परमात्मा को जान सकते हो। इसलिए क्यों उधार बातों में पड़े हो ? किसीने जाना इससे क्या होगा ?

मने सुना है एक अंधा आदमी था, बूढ़ा हो गया था। बुढ़ापे में ही अंधा हुआ। कोई अस्सी साल उसकी उम्र थी। चिकित्सकों ने कहा, आंख ठीक हो सकती है। जाला है, इलाज से ठीक हो जायेगा। ऑपरेशन कर दें, कट जायेगा।

लेकिन बूढ़ा जो पंडित था, उसने कहा, क्या सार ! अब इस बुढ़ापे में क्या सार ! साल दो साल जीऊं या न जीऊं, क्या पता ? अब इसमें कौन झंझट में पड़े ? फिर मेरे घर आंखों की कोई कमी नहीं है। पंडित था, तर्कवादी था, मतवादी था। डॉक्टर ने पूछा, क्या मतलब ? उसने कहा, मतलब साफ है। मेरी पत्नी, उसकी दो आंख, मेरे आठ लड़के हैं, उसकी सोलह आंखें, आठ लड़कों की आठ बहुएं हैं उनकी सोलह आंखें। चौतीस आंखें मेरी सेवा में रत हैं। मुझे और दो आंख हुईं न हुईं, क्या फर्क पड़ता है ?

डॉक्टर भी रह गया, क्योंकि क्या कहे ? बात तो ठीक ही कह रहा है। चौतीस आंख हैं कि छत्तीस, कितना फर्क पड़ता है ! दो आंख कम हुईं, चौतीस आंखें सेवा में लगी हैं। मगर संयोग की बात, कोई पंद्रह दिन बाद घर में आग लग गयी। चौतीस आंखें बाहर निकल गयी, बूढ़ा भीतर रह गया। तब छाती पीटकर चिल्लाने लगा, लगी लपटों में भागने लगा--इस दरवाजे, उस दरवाजे। उसे कुछ सूझे नहीं। भयंकर आग लगी। तब उसे याद आया कि आंख अपनी ही हो तो ही काम आती हैं। जो चौतीस आंखें बाहर निकल गयीं, बाहर आकर उनको याद

आया कि बूढ़ा पीछे छूट गया। अब क्या करें ?

मगर जब घर में आग लगी हो तो तुम्हारी आंखें तुम्हारी पैरों को दौड़ाती है, दूसरे को पैरों को नहीं दौड़ा सकतीं। तुम्हारे पैर तुम्हारी आंखों को लेकर बाहर हो जाते हैं। जब आग लगी हो तो अपनी चिंता स्वभावतः पहले होती है। जब बाहर निकल गये— खतरे के बाहर तब उन्हें जरूर याद आई; नहीं याद आई ऐसा भी नहीं, याद आई कि बूढ़ा तो घर में रह गया लेकिन अब क्या करें ? अब रोने-चिल्लाने लगे। बूढ़ा मरते वक्त जब आग में भुना जा रहा था तब उसे समझ में आई। मगर यह बहुत देर हो चुकी थी।

इतनी देर तुम्हें न हो, इतनी ही मेरी प्रार्थना है।

कंचन कंचन ही सदा कांच कांच सो कांच
दरिया झूठ सो झूठ है सांच सांच सो सांच
कानों सुनी सो झूठ सब आंखों देखी सांच
दरिया देखे जानिये यह कंचन यह कांच

निहकपटी निरसंक रहि

प्रवचन : ८
दिनांक : १८।७।१९७७
श्री रजनीश आश्रम, पूना
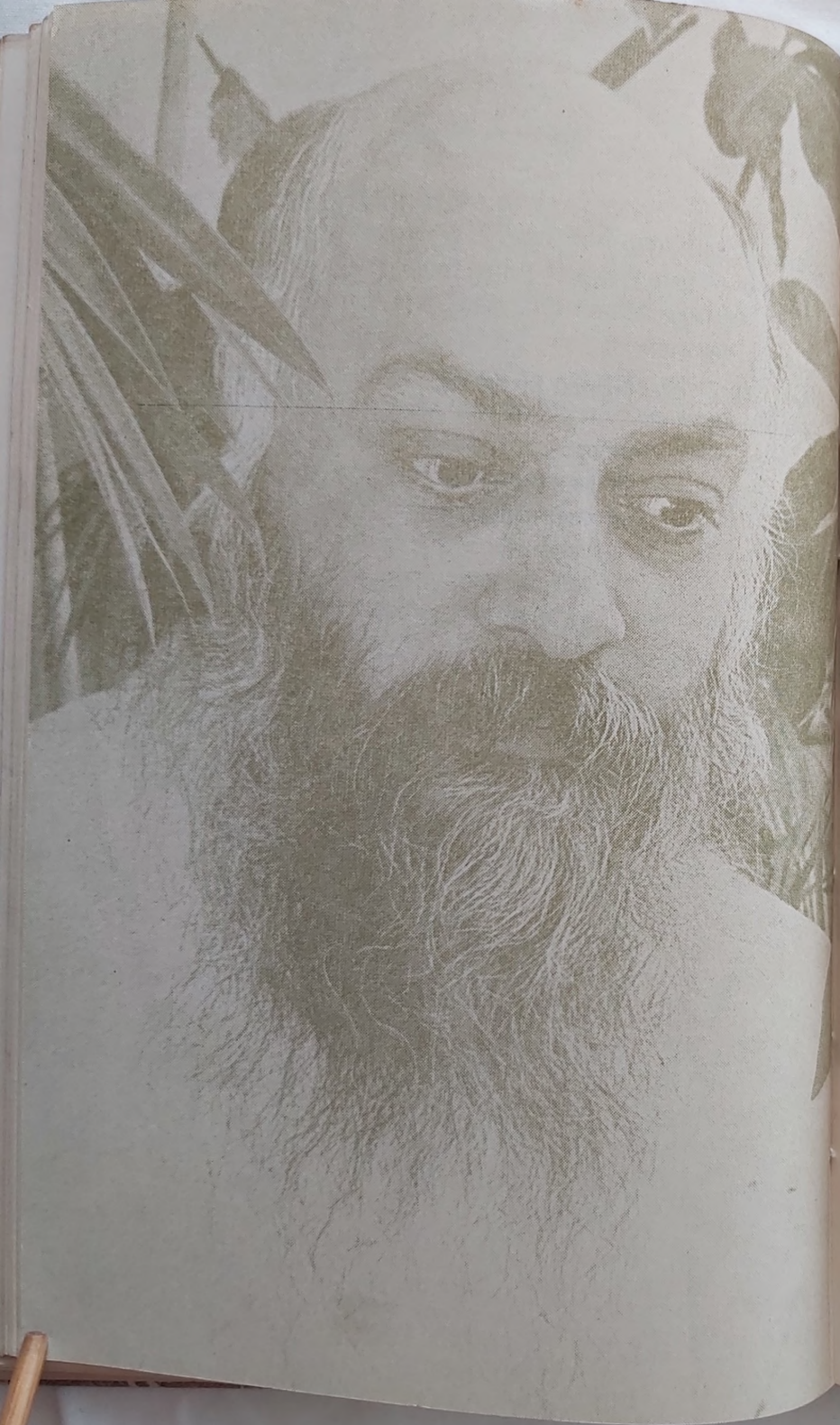
प्रश्नसार

- अगर कान से सुना सब झठ है तो फिर सद्‌गुरु के उपदेश का प्रयोजन क्या ?
- समझ जीवन में प्रमाणिकता कैसे लाये ?
- आपसे मुलाकात होने का अनुभव--सपना है या सच ?

पहला प्रश्न : अगर कान से सुना सब झूठ है तो फिर सद्‌गुरु के उपदेश का महत्व क्या रह जाता है ?

तुम पर निर्भर है। अगर कान से ही सुना, बस कान से ही सुना तो कोई भी अर्थ नहीं है लेकिन आंख से भी सुनने का ढंग है। सद्‌गुरु को सुनो ही मत, देखो।

सत्संग का अर्थ होता है, सद्‌गुरु की सन्निधि अनुभव करो। सद्‌गुरु का स्वाद लो। जो कहा जाता है वह तो कुछ भी नहीं। सागर की सतह पर उठी लहरों की भांति है। जो नहीं कहा जाता, जो नहीं कहा जा सकता है वही असली मोती है सागर की गहराई में। शब्द ही सुने तो चूक गये। शब्द के पीछे मौजूद है उसे देखो तो पा लिया। शब्द जहां से आते हैं वहां सीढ़ी लगाओ। सद्‌गुरु के शून्य में उतरो। उसकी वाणी से खेलो। प्रारंभ ठीक है, खिलौनों की तरह है। फिर धीरे-धीरे खिलौने छोड़ो। असली बात . . . असली बात तो सद्‌गुरु की उपस्थिति है। असली बात तो उसका अस्तित्व है, उसकी सत्ता है। उसकी सत्ता के रंग में रंगो। असली बात तो संगीत है उसका। जो बोला जाता वह तो बड़े दूर की खबर है, प्रतिबिंबों का प्रतिबिंब है। जो नहीं बोला जाता, सत्य वहां विराजमान है।

सत्संग का अर्थ सुनना नहीं होता, सत्संग का अर्थ होता है साथ होना; संग होना। सद्‌गुरु के साथ चलो। सद्‌गुरु के साथ डोलो। सद्‌गुरु के लिये हृदय खोलो कि उसकी किरणें तुम्हारे अंधकार में प्रवेश कर जायें।

यही मेरा अर्थ है, जब मैं कहता हूं आंखों से सुनो। बेबूझ लगेगी बात। आंखों से कहीं सुना जाता है ? आंखों से सुना जाता है, सुना जा सकता है। सद्‌गुरु को पियो। उसके अरूप को उतरने दो तुम्हारे भीतर। उसके निराकार को झनकार लेने दो तुम्हारे भीतर। अवसर दो कि उसका हाथ तुम्हारी वीणा पर पड़े। संकोच न करो, संदेह न करो, झिझको मत, सुरक्षा मत करो। हम सब सुरक्षा में लगे रहते हैं। और मजा है कि बचाने को कुछ भी नहीं और

बड़ी सुरक्षा में लगे रहते हैं।

कल दरिया ने कहा कि हाथी तोड़ देता किले के द्वार को। जैसा किले का द्वार है, ऐसा ही आदमी भी है। जैसे किले के द्वार पर भाले लगे होते हैं, बरछे लगे होते हैं कि कोई तोड़ न सके। तोड़ना दूर, द्वार के पास भी न आ सके। ऐसे ही आदमी ने भी बड़े अदृश्य बरछे अपने चारों तरफ लगा रखे हैं। कोई तुम्हारे पास न आ सके। कोई तुम्हारा द्वार-दरवाजा न खोल ले। तुम बड़े भयभीत हो। तुम चौबीस घंटे अपनी सुरक्षा में लगे हो। यही सुरक्षा छोड़ दो सद्‌गुरु के पास, तो क्रांति घट जाये।

सद्‌गुरु का अर्थ है, किसी व्यक्ति में तुमने ऐसा कुछ देखा कि वहां तुम अपने को बचाना न चाहोगे। किसी व्यक्ति के पास तुमने ऐसा कुछ देखा कि वहां तुम अपने को लुटाना चाहोगे। किसी व्यक्ति के पास ऐसा कुछ देखा कि अगर वह लूट ले तो तुम्हारा धन्यभाग; अगर तुम बचा लो तो तुम अभागे।

प्रश्न सार्थक है, कई के मन में उठा होगा। दरिया कहते हैं, कानों सुनी सो झूठ सब, आंखों देखी सांच। तो फिर सद्‌गुरु के उपदेश का क्या अर्थ ? फिर तो दरिया के इस वचन का भी क्या अर्थ है ? यह भी तो सुना ही होगा किसी दिन। नहीं, अर्थ है। यह तुम्हें चेताने की बात है। सच और झूठ में बहुत फासला नहीं है। फासला बहुत हो भी नहीं सकता।

किसी ने इमरसन को पूछा कि सच और झूठ में कितना फासला है ? तो उसने कहा, चार अंगुल का——आंख और कान के बीच जितना फासला है। बस चार अंगुल का फासला है। कान जो लेता है, जो ग्रहण करता है, वह प्रतिबिंब होता है। आंख जो देखती है और लेती और ग्रहण करती है, वह साक्षात्कार होता है।

सत्य और झूठ में बहुत फर्क नहीं है, इसलिए तो झूठ धोखा दे पाता है। अगर बहुत फर्क होता तो सभी लोग चौंक जाते। फर्क चार अंगुल का है। झूठ सच के बहुत करीब है। ऐसे ही, जैसे जब तुम धूप में चलते हो तो तुम्हारी छाया तुम्हारे बहुत करीब होती है। ऐसा थोड़ी है कि तुम्हारी छाया मीलों दूर चल रही है, तुम कहीं चल रहे हो, तुम्हारी छाया कहीं चल रही है। तुम्हारी छाया बिलकुल झूठ है। छाया ही है, होना क्या है वहां ? कोई अस्तित्व नहीं है छाया का। लेकिन तुम्हारे पैरों से सटी-सटी चलती है। एक इंच का भी फासला नहीं छोड़ती। ऐसा ही सच के साथ झूठ चलता है।

झूठ सच की छाया है। अगर तुम ठीक समझ पाओ तो झूठ सच की छाया है। इसलिए तो धोखा दे पाता है नहीं तो धोखा भी कैसे देगा ? अगर झूठ बिलकुल

ही सच जैसा न हो, जरा भी सच जैसा भी न हो तो कौन धोखे में पड़ेगा ? झूठे सिक्के से तुम धोखे में आ जाते हो क्योंकि वह सच्चे सिक्के जैसा लगता है कम से कम; हो या न हो, लगता तो है। बिलकुल सच्चे सिक्के जैसा लगता है। झूठ सच जैसा लगता है, बस लगता है। रूपरेखा बिलकुल सच की ही होती है झूठ में भी। एक ही बात की कमी होती है, सच में प्राण होते हैं, झूठ में प्राण नहीं होते। तुम्हारी छाया का ढंग तुम्हारे जैसा ही होता है। रूपरेखा तुम्हारे जैसे ही होती है। तुम्हारी तस्वीर इसीलिए तो तुम्हारी कहलाती है। सब ढंग तुम जैसा होता है। लेकिन तस्वीर तस्वीर है, तुम तुम हो। फर्क क्या है ? फर्क इतना ही है कि तुम्हारे भीतर प्राण हैं और तस्वीर के भीतर प्राण नहीं हैं। तस्वीर तुम्हारे जैसी लगती है लेकिन कैसे तुम्हारे जैसी हो सकती है ?

झूठ सच की तस्वीर है। तुमने अक्सर ऐसा ही सोचा होगा कि झूठ सच से बिलकुल विपरीत है। बिलकुल विपरीत होता तो झूठ धोखा ही न दे पाता। झूठ सच से विपरीत नहीं है, तस्वीर है। आकृति बिलकुल सच जैसी है। सच से बिलकुल ताल-मेल खाती है। ऐसा ही समझो कि रात चांद को देखा झील में; वह जो झील का चांद है, झूठ है। असली चांद जैसा है। और कभी-कभी तो असली चांद से भी ज्यादा सुंदर मालूम होता है। झूठ खूब अपने को सजाता है। झूठ खूब आभूषण पहनता है। झूठ हीरे-जवाहरातों में अपने को छिपाता है। झूठ अपने आसपास प्रमाण जुटाता है। झूठ सब उपाय करता है कि पता न चल जाये कि मैं झूठ हूं। आकाश में चांद है वह तो सच है। झील में जो प्रतिबिंब बन रहा है वह झूठ है। लेकिन है वह सच का ही प्रतिबिंब।

जो तुमने कान से सुना है वह भी सच का ही प्रतिबिंब है। किसी ने देखा, कोई जागा, किसीने अनुभव किया, अपने अनुभव को वाणी में गुनगुनाया। तुमने वाणी कान से सुनी। यह चांद का प्रतिबिंब बना। तुमने किसी संत में सीधा देखा। उसके शब्दों के माध्यम से नहीं, तुमने शब्द हटाकर देखा। तुमने अपने और संत के बीच में शब्दों की दीवार न रखी, आड़ न रखी; तुमने शब्दों को सेतु न बनाया; तुमने शब्द हटा ही दिये; तुमने सीधा देखा, निःशब्द में देखा; तब तुम चांद को देख पाओगे।

इसलिए मैं कहता हूं, सच कहते हैं दरिया ——

कानों सुनी सो झठ सब आंखों देखी सांच।

आंख से सुनने का ढंग है; उसीको हम सत्संग कहते हैं।

तुम इधर मेरे पास बैठे, कुछ हैं जो मेरे शब्द को ले जायेंगे, संभालकर ले जायेंगे। कोई-कोई कभी आ जाता है वह अपनी किताब भी ले आता है, उसमें

लिखता जाता है। उसका जोर शब्द पर है। वह विद्यार्थी है, शिष्य नहीं। वह अभी स्कूली दुनिया में है। जैसे कहीं कोई परीक्षा होनेवाली हो। जिंदगी की कहीं कोई परीक्षा होती है ? जिंदगी तो पूरी परीक्षा है। यहां शिक्षण और परीक्षा अलग-अलग नहीं होते। यहां तो हर घड़ी परीक्षा है। हर घड़ी शिक्षण है। हर शिक्षण में परीक्षा है, हर परीक्षा में शिक्षण है। यहां तो सब मिला-जुला है। ऐसा थोड़े ही है कि एक दिन जब तुम अस्सी साल के हो जाओगे तो कोई परीक्षा में बैठोगे कि अब जीवन की परीक्षा हो रही है; कि वहां उत्तर देने पड़ेंगे, रटे-रटाये उत्तर काम आ जायेंगे; कि बाजार में छपी हुई कुंजियां खरीद लोगे। ये कुरान और वेद और गुरुग्रंथ और बाईबल कुंजियां हैं, इनसे काम न चलेगा। तुमने अगर नानक के शब्द दोहराये तो तुम झूठ हो गये। तुम अगर नानक हो गये तो सच हो गये। तुमने अगर कबीर के शब्द दोहराये, बिलकुल अक्षरशः दोहराये तो झूठ हो गये। तुम कबीर हो गये तो सच हो गये। फिर तुमसे भी वैसे ही शब्द निकलने लगेंगे जैसे कबीर से निकले। मगर फर्क बड़ा होगा। अब यह तुम्हारे अपने अनुभव से निकलते होंगे। अब तुम्हारा अपना झरना खुल गया है। अब ये तुम्हारे होंगे। प्रमाणिक रूप से तुम्हारा प्राण इनके भीतर धड़कता होगा। ये मुर्दा नहीं होंगे।

तो कोई यहां आता है विद्यार्थी की तरह, वह शब्द संभालकर ले जाता है। उसकी स्मृति में थोड़ी बढ़ती हो जाती है। उसकी जानकारी थोड़ी बढ़ जाती है। वह थोड़ी और इन्फर्मेशन इकट्ठी कर लेता है। वह थोड़ा और पंडित हो जाता है। वह दूसरों को समझाने में थोड़ा और कुशल हो जायेगा। दूसरों को समझाने में——याद रखना। खुद तो चूक ही गया।

और अक्सर ऐसा होता है कि जब तुम दूसरे को समझाने में कुशल हो जाते हो तो तुम समझते हो कि मैं समझ गया। बात ठीक उलटी है। दूसरों को समझाने में कुशल हो जाने से तुम्हारे समझने का कोई संबंध नहीं है। तुम्हारी समझ और ही बात है। तुम्हें अगर समझना है तो शिष्य की तरह, विद्यार्थी तरह नहीं। मेरे शब्द कोई नोट्स नहीं लेने हैं। मेरे शब्द को कोई कंठस्थ नहीं कर लेना है। मेरे शब्द तो याद रहें न रहें, उसका कोई प्रयोजन ही नहीं है। शब्दों के भीतर जो रस डाल रहा हूं उस रस की बूंद तुम्हारे कंठ में उतर जाये, शब्द तो भूल जायें। शब्द तो ऐसा समझो, खोल है। असली बात भीतर है। खोल को तो फेंक देना। असली को आत्मसात कर लेना।

भोजन करते हैं ना ! तो जो सार-सार है, वह तुम पचा लेते हो और जो असार है वह मलमूत्र में बाहर निकल जाता है। शब्द तो असार हैं; उनका कोई

मूल्य नहीं है। जब तुम दूसरे को समझाने में उसे निकाल देते हो तब बस मलमूत्र की तरह बाहर निकल गया, उससे तुम हल्के ही जाओगे।

इसे समझो। मुझे सुनकर तुमने शब्द इकट्ठे किये, मन भारी हो गया क्योंकि वे शब्द इकट्ठे हो गये। अब तुम जल्दी तलाश में रहोगे कि कोई मिल जाये अज्ञानी तो उसमें उंड़ेल दूं। अब तुम जल्दी खोज करोगे। कोई भी बहाना मिल जाये। कोई किसी बात को कहीं उठा दे, कि तुम जल्दी तत्पर होकर जो तुम बोझ ले आये हो, उसमें उंड़ेल दोगे। उंड़ेलकर तुम्हें अच्छा भी लगेगा लेकिन अच्छा इसलिए नहीं लग रहा है कि तुम दूसरे को समझाने में सफल हो गये। समझे तो तुम खुद ही नहीं हो, तो दूसरे को क्या समझाओगे! जो स्वयं समझ गये हैं वे भी बड़ी मुश्किल पाते हैं दूसरे को समझाने में, तो तुम तो समझाओगे कैसे? तुम तो अभी खुद भी नहीं समझे हो। मगर अच्छा लगेगा।

अच्छा दो कारण से लगेगा-- एक तो बोझ हल्का हुआ। इसीलिए तो लोग किसी बात को गुप्त नहीं रख पाते। गुप्त रखने में बड़ा बोझ हो जाता है। किसीने तुमसे कह दिया, यह कह तो रहे हैं आपसे, कृपा करके किसी और को मत कहना। तब बड़ी मुश्किल हो जाती है। वह निकल निकल आती है, जबान पर आ-आ जाती है बात। अब उसे संभालो, फिर संभालकर भीतर रखो, उसका बोझ बढ़ता जाता है। इसलिए लोग बात को गुप्त नहीं रख पाते। बड़ा मुश्किल है बात को गुप्त रखना। मन उसे फेंक देना चाहता है। ये फेंकने की तरकीबें हैं। अब तुम दूसरे से बात करते हो, इससे हल्कापन आता है; इससे मन का कचरा थोड़ा कम हुआ। दूसरे का बढ़ा, वह जाने। वह किसी और पर फेंकेगा। तुम्हारा तो कम हुआ। तुम तो निर्भार हुए।

तो एक तो अच्छा लगता है निर्भार होना; और दूसरा अच्छा लगता है ज्ञानी होने का अहंकार कि देखो, मैं जानता, तुम नहीं जानते। मैं ज्ञानी, तुम अज्ञानी। जब भी तुम किसी आदमी को अज्ञानी सिद्ध कर पाते हो किसी भी कुशलता से, तब तुम्हारे अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। तो कोई भी बात के द्वारा तुम सदा सिद्ध करने की कोशिश में लगे रहते हो-- मैं ज्ञानी, दूसरा अज्ञानी। इन दो बातों के कारण मजा आ जाता है। उस मजे को तुम समझ मत समझ लेना। और उस मजे से तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति घटित न होगी, आनंद के द्वार न खुलेंगे।

विद्यार्थी होकर जो आया है वह कचरा बीनकर ले जायेगा। सार-सार छोड़ देगा, असार-असार पकड़ लेगा। शब्द असार है, निःशब्द सार है। शून्य सार है, मौन सार है। नहीं बोला गया, नहीं बोला जा सकता जो, उसमें सार है।

विराट को बांधोगे भी कैसे शब्दों में? शब्द बड़े छोटे हैं। यह तो चमचों में सागर को समाने की कोशिश है। सागर चम्मचों में नहीं समाता। और जो चम्मच में समा जाता है उसका स्वाद अगर सागर का भी हो, नमकीन भी हो, तो भी वह सागर नहीं है। उसमें तूफान नहीं उठता। उसमें बड़ी तरंगें नहीं आयेंगी। उसमें जहाज नहीं चलेंगे। उसमें मछलियां नहीं उठेंगी। उसमें तुम डूब न सकोगे। तो माना कि चम्मच में जो भर आया है-- दो-चार-दस बूंद सागर की, उनका स्वाद तो नमक का है, स्वाद मे धोखा मत खा जाना। सागर के और भी गुण हैं स्वाद के अतिरिक्त, वे कोई भी वहां नहीं हैं। और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि जिसमें तुम डूब जाओ वही सत्य है, वही सागर है।

शब्द में कैसे डूबोगे? वह तो चुल्लूभर पानी में डूब मरने जैसा है। शब्द में कभी कोई डूबा है? शब्द इतना छोटा है, उसमें तुम लाख उपाय करो तो न डूब सकोगे। निःशब्द में डूबता है कोई।

तो एक तो है जो अपनी स्मृति को थोड़ा सा बढ़ाकर, अपने ज्ञान को थोड़ा बढ़ाकर, पांडित्य के तराजू पर थोड़ी और गरिमा रखकर चला जायेगा; वह चूक गया। जो यहां से पंडित होकर गया वह चूक गया। लाभ की जगह हानि हो गयी। उसने और थोड़ा उपद्रव अपने जीवन में बढ़ा लिया, कम न किया।

जो यहां शिष्य की तरह आया है, जिसे शब्दों में अब कोई रस नहीं है, जो देखने आया है, जो अनुभव करने आया है, जो मेरे साथ अज्ञान की यात्रा पर जाने को तैयार है, जो कानों से मुझसे नहीं जुड़ रहा है, आंखों से जुड़ रहा है, वही कुछ पा सकेगा--केवल वही।

इसके लिये कहता हूं कान से सुनना बस सुनना मात्र है। आंख से सुनना असली बात है। गुरु को पीओ। गुरु पर आंखें टिकाओ। गुरु की रोशनी तुम्हारी आंख की रोशनी बने। गुरु का प्रेम तुम्हारी आंख से उतरे और तुम्हारे हृदय को भरे। तो दरिया ठीक ही कहते हैं; कानों सुनी सो झूठ सब आंखों देखी सांच।

जिस दिन तुम गुरु को ठीक से देखने लगोगे उस दिन तुम दो बातें जानोगे:

> जीना भी आ गया मुझे और मरना भी आ गया
> पहचानने लगा हूं अब तुम्हारी नजर को मैं

गुरु के साथ होने का अर्थ है, जीना भी आ गया और मरना भी। अहंकार के तल पर मिटने की कला आ गयी और आत्मा के तल पर जीने की कला आ गयी। असली में जीने का सूत्र पकड़ में आ गया और नकलो में मरने का सूत्र पकड़ में आ गया। नकली की तो चिता बना ली। नकली को तो जला दिया, राख कर डाला। नकली को तो शूली पर चढ़ा दिया। असली को

सिंहासन पर बिठा दिया।

जीना भी आ गया मुझे और मरना भी आ गया
पहचानने लगा हूं अब तुम्हारी नजर को मैं

नजर को पहचानो। आंख को पहचानो। गुरु के अस्तित्व से जुड़ो। गुरु की सन्निधि में डूबो।

दूसरा प्रश्न : आपको प्रेमपूर्वक समझ पाता हूं, औरों को समझा भी पाता हूं, फिर वही समझ जीवन में प्रामाणिकता ऑथेन्टीसिटी लाने में सहायक क्यों नहीं हो पाती है? कि जिसके न होने की वजह से सतत अंदर और बाहर विघटन बना रहता है। कहां भूल हुई जा रही है? कृपा कर दृष्टि दें।

पहली तो बात दूसरों को समझा पाते हो, इसे समझने का सूत्र मत समझ लेना। यह काफी नहीं है। इससे तृप्त मन हो जाना। यह दूसरों को समझाना तो ऐसे ही है जैसे कि पोस्टमेन लाकर चिट्ठियां दे जाता है। मुझे सुना, तुम पोस्टमेन बन गये। चिट्ठियां संभालीं और दे आये दूसरों को। पोस्टमेन के हाथ तो कुछ भी नहीं पड़ता। पोस्टमेन तो यहां से वहां चिट्ठियां ले जाता रहता है। इन चिट्ठियों में कई बहुमूल्य होती हैं। इसमें मनीऑर्डर भी होते हैं, इनमें धन भी छिपा होता है, इसमें प्रेम भी छिपा होता है। मगर पोस्टमेन तो लादता अपने बस्ते में, अपने झोले में। एक जगह से लाद लेता है, दूसरी जगह जाकर उतार देता है, बांट आता है। पोस्टमेन के हाथ कुछ भी नहीं पड़ता। न तो प्रेमपत्रों का प्रेम पड़ता है, न धन का एक कण पड़ता है; कुछ भी नहीं पड़ता।

तो पोस्टमेन बनो कि प्रोफेसर, फर्क नहीं है बहुत। मुझे सुनकर तुम दूसरे को समझा पाओगे इससे कुछ हल न होगा। तुम नाहक ही पोस्टमेन बन गये। इसे तो भूल ही जाओ। असली बात तो स्वयं समझना है। और स्वयं समझने का प्रमाण क्या है। प्रमाणिकता का पैदा हो जाना ही प्रमाण है। अगर तुमने मुझे ठीक से सुना तो सुनते-सुनते ही तुम्हारे भीतर क्रांति हो जायेगी। इसे अलग से करने की जरूरत पड़े तो समझना कि सुना नहीं, चूक गये। सत्य की यही तो गरिमा है कि अगर तुम समझ लो तो समझते ही मुक्त हो जाते हो। जीसस ने कहा है, सत्य मुक्त करता है। सत्य को सुन लेने से ही मुक्ति हो जाती है।

तुम दो और दो पांच जोड़ रहे थे अब तक, फिर मैंने तुम्हें कहा, दो और दो पांच नहीं होते, दो और दो चार होते हैं। तुमने सुना। क्या तुम अब यह पूछोगे कि अभी मैं क्या करूं कि दो और दो चार हो जायें? क्योंकि मैं तो दो और दो पांच जोड़ता रहा हूं। तुम यह पूछोगे ही नहीं। तुमने सुना, समझा कि दो और दो चार होते हैं, बस दो और दो चार हो गये। दो और दो चार होते ही थे। तुम जब दो और दो पांच कर रहे थे तब भी दो और दो चार ही होते थे। तुम्हारे किये से पांच नहीं हो रहे थे। इसलिए अब कुछ करना थोड़े ही है! वह तो चार थे ही, सिर्फ तुम्हारी भूल थी।

संसार मात्र गणित की भूल है, समझ की भूल है। ऐसा समझो, तुम जिसको पत्नी कह रहे हो, सद्गुरु को सुनकर तुमने समझा कि कौन पत्नी, कौन पति? यहां कौन किसका? फिर तुम थोड़ी पूछने आते हो कि अब मैं कैसे पत्नी को छोड़ूं? अगर पूछने आओगे कि कैसे पत्नी को छोड़ूं और कैसे इसे जीवन में लाऊं तो तुम समझे ही नहीं। सद्गुरु ने तो सिर्फ इतना कहा था, दो और दो चार होते हैं, दो और दो पांच नहीं होते। तुम लाख मानो कि यह तुम्हारी पत्नी है, तुम्हारा पति है, इससे कुछ फर्क पड़ता नहीं। तुम्हारे मानने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। न कोई पति है, न कोई पत्नी है। सुनते ही समझ में नहीं आती बात कि कौन पत्नी कौन पति? धारणा है। सात फेरे लगा लिये तो पति पत्नी हो गये? एक दिन तो पति पत्नी नहीं थे, आज हो गये? कल तलाक ले सकते हैं, फिर नहीं हो सकते हैं। तो यह होना तो केवल एक तरह का एग्रीमेंट, एक तरह का कॉन्ट्रेक्ट, एक तरह का समझौता है, एक तरह की कानूनी बात है। अस्तित्व में इसका कोई अर्थ नहीं है। अस्तित्व में न कोई पति है, न कोई पत्नी है।

अब अगर इसको समझकर तुम आये और बोले कि समझ में तो आ गया, अब कैसे पत्नी से छुटकारा हो? तो समझ में आया ही नहीं। क्योंकि अब किससे छुटकारा मांग रहे हो? जो तुम्हारी कभी थी ही नहीं उससे छुटकारा कैसे मांगोगे? जानने में छुटकारा हो गया। अब भागना थोड़े ही पड़ेगा कि यह मेरी पत्नी नहीं है तो भागूं!

सुना है मैंने, स्वामी रामतीर्थ अमरीका से लौटे। उनके शिष्य थे सरदार पूर्णसिंह। तो दोनों हिमालय में कुछ दिन के लिये रहने के लिये गये। टिहरी गढवाल का नरेश उनका भक्त था और उसने उनके लिये दूर पहाड़ पर इंतजाम कर दिया। सरदार पूर्णसिंह उनके सचिव का काम भी कर देते थे। कोई आता तो मिला-जुला देते, चिट्ठी-पत्री लिख देते। अनेक लोग आते। पुरुष भी आते, स्त्रियां भी आतीं। एक दिन रामतीर्थ की पत्नी मिलने आ गयी दूर पंजाब से। वर्षों उसे छोड़े हो गये। रामतीर्थ छोड़कर चले गये तो पत्नी को बड़ी तकलीफ थी। बच्चे, बेपढ़ी-लिखी स्त्री! किसी तरह चक्की चलाकर, आटा पीसकर लोगों के बर्तन मांजकर बच्चों का पालन-पोषण कर रही थी। सुना कि रामतीर्थ वापिस लौट आये हैं तो दर्शन करने आई। लोग बड़ी प्रशंसा करते हैं, लोग बड़ी खबर लाते हैं।

अमरीका में बड़ा प्रभाव पड़ा है, ऐसी खबरें उसके गांव तक आती होगी तो वह
उनका दर्शन करने आई। दर्शन करने आने के लिये पैसा भी नहीं था, वह भी
उसने आसपास के लोगों से उधार मांगा कि चुका दूंगी धीरे-धीरे करके। जब वह
मिलने आई और रामतीर्थ ने देखा कि पत्नी आ रही है अपनी कोठी पर से, तो
उन्होंनें सरदार पूर्णसिंह को कहा कि मेरी पत्नी आ रही है, दरवाजा बंद कर दो।
और इसको किसी तरह समझा-बुझाकर भेज देना। मैं मिलना नहीं चाहता।

सरदार पूर्णसिंह को तो बड़ी चोट लगी। उन्होंनें तो कहा तो फिर निर्णय
हो जाये। अगर आप अपनी पत्नी से नहीं मिलना चाहते तो मुझे भी छुट्टी दें।
मैं भी चला। बात ही खतम हो गयी। इतनी स्त्रियां आती हैं, इतने पुरुष आते
हैं, किसीसे आपने कभी 'नहीं मिलना चाहता हूं' ऐसा नहीं कहा। आपकी पत्नी
का क्या कसूर है ? क्या आप उसे अब भी अपनी पत्नी मानते हैं ?

तब रामतीर्थ को समझ आई। तो गणित के प्रोफेसर थे रामतीर्थ, उनको
बात समझ में आ गयी कि दो और दो जब चार हो गये तो अब मैं पांच किस
हिसाब से मान रहा हूं ? जब एक दफा समझ लिया कि कोई पत्नी नहीं, कोई
पति नहीं, कोई बेटा नहीं, कोई मां नहीं। यहां सब संबंध नदी-नाव संयोग हैं।
रास्ते पर मिल गये हैं, फिर बिछड़ जायेंगे। अलग-अलग रास्ते आ जायेंगे, अपनी
अपनी यात्रा पर फिर निकल जायेंगे। दो घड़ी के लिये साथ हो लिये हैं। दो
घड़ी के लिये संगी हो गये हैं। दो घड़ी सुख-दुख में मैत्री बना ली है। लेकिन भूल
जाने की कोई जरूरत नहीं है कि जल्दी ही रास्ते अलग हो जायेंगे। पत्नी मरेगी
तो पति नहीं मरेगा। पति मरेगा तो पत्नी नहीं मरेगी। जल्दी से रास्ते अलग
हो जायेंगे। तो हमारी यात्रा तो व्यक्तिगत है, निजी है। दूसरे से संग-साथ तो
रास्ते पर मिल गये। तुम घर से निकले, पड़ोसी भी निकला, दोनों रास्ते पर मिल
गये। पड़ोसी को बाजार जाना है, तुम्हें स्टेशन जाना है। थोड़ी दूर तक साथ
रहा। चौराहा आया, नमस्कार हो गयी। कोई स्टेशन चला गया, कोई बाजार
चला गया। बात खतम हो गयी। बस ऐसा ही है जीवन की इस अनंत यात्रा पर।

जब सरदार पूर्णसिंह ने यह कह कहा तो रामतीर्थ को बड़ी चोट लगी और
होश भी आया कि बात तो सच है। जब मैंने यह समझ ही लिया कि मेरी कोई
पत्नी नहीं तो आज मैं उसे रोककर जो . . . रोकने की चेष्टा कर रहा हूं वह तो
बड़ी भ्रांति की है। इसका अर्थ है मैं अभी तक समझा नहीं। उन्हें इतनी पीड़ा हुई,
इतनी पीड़ा हुई, कि सरदार पूर्णसिंह ने लिखा है कि वे बहुत रोये। पत्नी को
बुलाया, मिले। बड़े भाव से मिले। और उसी दिन से उन्होंने गैरिक वस्त्र छोड़
दिये। सरदार पूर्णसिंह ने पूछा, यह आपने क्या किया ? आप सफेद कपड़े क्यों

पहनने लगे ? तो उन्होंने कहा, शायद अभी मैं असली संन्यासी नहीं। शायद मैं
अभी योग्य पात्र नहीं गैरिक वस्त्रों का। तुमने मुझे चेताया। तुमने मुझे ठीक
चेताया। अच्छा किया तुमने चोट की। तुमने मेरे दंभ को खूब गिराया, मैं तो
यही समझ बैठा था कि सब पा लिया। इस छोटी सी घटना ने सब उघाड़ दिया।

वे आदमी बड़े सरल थे। दंभी होते तो सरदार पूर्णसिंह को निकालकर
बाहर करते कि तू शिष्य होकर गुरु को चेताने चला ? पहले खुद तो चेत! दंभी
होते तो जो कर रहे थे उसको सिद्ध करने के लिये सब तरह का तर्कजाल खड़ा
करते। नहीं, स्वीकार कर लिया। न केवल स्वीकार कर लिया, उस दिन से गैरिक
वस्त्र न पहने। उस दिन से सफेद वस्त्र ही पहनने लगे। क्यों? कि मैं इनके शायद
अभी योग्य नहीं। ये वस्त्र तो अग्नि के रंग के वस्त्र हैं। ये वस्त्र तो जब सारी
नासमझी चली जाये, तभी सार्थक हैं। ऐसी विनम्रता साधु का लक्षण है।

तो सवाल यह नहीं है कि तुम दूसरे को समझा सको। सवाल यह है कि
तुम स्वयं समझ सको। और स्वयं अगर समझ लो तो फिर यह प्रश्न नहीं उठता
कि अब मैं प्रमाणिक कैसे होऊं ? समझ अगर ठीक-ठीक बैठ गयी तो प्रमाणिक
तुम हो गये। प्रमाणिक होना परिणाम में हो जायेगा।

पूछा तुमने, "आपको-प्रेमपूर्वक समझा पाता हूं।" अब दो बातें हैं। कुछ
लोग हैं जो यहां आते हैं, उनका मुझसे कोई प्रेम नहीं है। समझदार लोग हैं।
समझने की चेष्टा करते हैं लेकिन प्रेम न होने की वजह से चूक जाते हैं। ये बातें
ऐसी हैं कि प्रेम में पगे होकर सुनोगे तो ही समझ में आयेंगी, नहीं तो नहीं समझ
आयेंगी। इन बातों को समझने के लिये बड़ी सहानुभति, बड़ी श्रद्धा चाहिये। अपूर्व
श्रद्धा हो तो ही यह संपदा तुम्हारी हो सकेगी।

तो कुछ लोग हैं जो बुद्धि से सुनते हैं, जिनके हृदय में कोई प्रेम की तरंग नहीं।
वे चूक जाते हैं। फिर कुछ लोग हैं जो प्रेम से सुनते हैं लेकिन समझ का अभाव है।
बोध नहीं है। मगन होकर सुनते हैं, डूब जाते हैं मगर जिसमें डूब रहे है वह क्या है,
इसका साक्षीभाव नहीं है। तो उनके जीवन में क्रांति तो हो जायेगी डूबने से लेकिन
वे किसी दूसरे को समझाने में कभी सफल नहीं हो पायेंगे। उनके भीतर रूपांतरण
तो हो जायेगा। वे परम शिष्य तो बन जायेंगे लेकिन कभी गुरु न बन पायेंगे।

गुरु होने के लिये दो बातें जरूरी हैं। शिष्य जब तुम थे तब प्रेम से सुना
हो और समझ और साक्षी से भी। इधर हृदयपूर्वक सुना हो और उधर पूरी
प्रतिभा को, बुद्धि को जगाकर रखा हो तो जो तुम्हारे हृदय में घटता हो वह सिर्फ
हृदय में ही न घटे, उसकी झनक, उसकी भनक अंकित होती चली जाये तुम्हारी
बुद्धि में भी। तो ही तुम दूसरे को समझाने में सफल हो पाओगे। इसलिए बहुत

लोग ज्ञान को उपलब्ध हो जाते हैं लेकिन सभी लोग सद्‌गुरु नहीं हो पाते हैं । ज्ञान को उपलब्ध हो जाना एक बात है । तुमने जान लिया, तुमने अनुभव कर लिया, तुम डुबकी मार गये । मगर तुम चुप हो जाओगे । तुम मौन हो जाओगे । तुम बोल भी न पाओगे क्योंकि जब तुमने डुबकी मारी तब तुमने सिर्फ हृदय से मार ली। और हृदय बोलता नहीं । हृदय तो चुप है । हृदय समझा नहीं सकता । हृदय समझ तो लेता है लेकिन समझाने में असमर्थ है ।

अब इस फर्क को खयाल में लेना । बुद्धि न भी समझे तो भी समझाने में समर्थ है और हृदय समझ भी ले तो समझाने में समर्थ नहीं है । और सद्‌गुरु तो वही बन सकता है जिसका हृदय और जिसकी बुद्धि एक संतुलन में आ जाये। जिसके भीतर यह परम समन्वय घटित हो, यह सिन्थीसिस घटित हो । जिसकी प्रतिभा और जिसका प्रेम समतोल हो ।

तुम कहते हो, "आपको प्रेमपूर्वक समझ पाता हूं ।" तुम्हारी समझ तुम्हारे काम नहीं आ रही, इसलिए समझ नहीं हो सकती । और तुम्हारा प्रेम भी तुम्हारी धारणा है । अगर यह प्रेम वस्तुतः हो तो कम से कम तुम्हारे काम आ जाये। अभी तुम्हारे काम बात नहीं आ रही तुम दूसरों को समझा पाते हो । तुम कुशल हो गणित में, तर्क में । तुम निष्णात हो भाषा में । तो तुम दूसरे को समझा पाते हो। मगर दूसरे को समझाने से क्या होगा ? और कैसे तुम दूसरे को समझाओगे जो तुम्हारे जीवन में नहीं जला, जो तुम्हारे जीवन में नहीं उमगा ? जो फूल तुम्हारे जीवन में नहीं खिला उसकी सुगंध की चर्चा करके किसको समझाओगे ? बात में से बात निकलती जायेगी । न सुगंध तुम्हारे पास थी, न सुननेवाले को मिलेगी। और सुननेवाला किसी और को समझायेगा । ऐसे सदियों तक रोग के कीटाणु फैलते चले जाते हैं । इसे रोको । दूसरे को समझाने की तब तक चेष्टा ही मत करना, जब तक तुम्हें समझ में नहीं आ गया ।

और तुम्हें समझ आने का प्रमाण क्या है ? तुम्हें समझ में आने का प्रमाण यही है कि जब तुम मुझे सुन रहे हो, सुनते ही तत्क्षण कोई बात की चोट पड़े और तुम्हें दिख जाये । बिजली कौंधे और तुम्हें दिख जाये कि हां, ऐसा है। ऐसा ही है । और उस 'ऐसे ही है के' अनुभव में तुम्हारा जीवन कल से दूसरा हो जायेगा । फिर कल से दो और दो चार होने लगे । कल से क्यों, अभी से, इसी क्षण से दो और दो चार होने लगे । फिर दो और दो पांच दुबारा न होंगे ।

"आपको प्रेमपूर्वक समझ पाता हूं, औरों को समझा पाता हूं, फिर वही समझ जीवन में प्रमाणिकता लाने में सहायक क्यों नहीं हो पाती है ?"

यह समझ समझ नहीं है । यह समझ का धोका है । यह समझदारी है, समझ

नहीं । यह जानकारी है, ज्ञान नहीं । इसमें बोध नहीं है । बुद्धि होगी बहुत, विद्वत्ता होगी, लेकिन बोध नहीं है, बुद्धत्व नहीं है ।

तुम्हें मेरी बातें चोट करेंगी । तुम थोड़े बेचैन होओगे । क्योंकि मैं यह कह रहा हूं कि तुम्हारे भीतर अभी जो प्रेम है वह भी मन की धारणा है । और तुम जिसे समझ समझ रहे हो वह केवल शब्दों का खेल है । निश्चित तुम्हारा मन बड़ा उदास होगा, बड़ा हताश होगा । लेकिन मैं जानकर ही ये बातें कहा रह हूं। तुम्हें हताश और उदास करना जरूरी है ताकि तुम्हें झटका लगे । नहीं तो तुम इसी रों में बहते चले गये तो तुम मुझसे चूक ही जाओगे । तुम पहले इस हीरे को अपने भीतर डुबा लो । तुम पहले इस किरण को अपने भीतर उतार लो। जल्दी न करो। किसको समझाना है ? किससे क्या लेना-देना है ? जब तुम्हारे फूल खिलेंगे तो सुगंध दूसरों तक पहुंच जायेगी । पहुंची तो ठीक, न पहुंची तो ठीक । यह तुम्हारा कुछ कर्तव्य नहीं है कि पहुंचनी ही चाहिये ।

सुना नहीं ? दरिया कहते हैं कि इस पागल संसार को समझाने से क्या होगा ? यह तो कितना ही समझाओ, समझ समझकर और उलझ जाता है। जितना सुलझाओ उतना सुलझ जाता है । यह संसार पागल है । तुम पागलों को समझाने में सिर न फोड़ो । तुम इतना ही करो कि अपने पागलपन के बाहर आ जाओ । तुम्हारा पागलपन के बाहर आ जाना ही तुम्हारे द्वारा होनेवाली बड़ी से बड़ी सेवा है । फिर जो भी तुम्हारे पास पड़ जायेगा, जो भी कभी जाने-अनजाने तुम्हारे पास से गुजर जायेगा उसको तुम्हारी सुगंध मिलेगी, तुम्हारा संगीत मिलेगा । उसके भीतर की वीणा कंपित होगी । उसके नासापुट भी किसी अनिर्वचनीय सुगंध से भरेंगे । वह भी शायद अनंत की यात्रा पर निकलने को जिज्ञासु हो जाये ।

पर समझाने का गोरखधंधा मत करो । तुम पहले खुद ही पा लो । उस पाने से अगर कुछ किसीको समझाना निकलता हो, ठीक । लेकिन पहले पक्का पता कर लो कि मुझे मिला । अपनी सारी शक्ति नियोजित कर दो समझने में ।

प्रमाणिकता सुनकर पैदा नहीं होती । कान से सुनकर पैदा नहीं होती। प्रमाणिकता का अर्थ होता है, बाहर-भीतर एक । जैसा दरिया ने कहा, साधु का लक्षण बताया कि बाहर-भीतर एक । जैसा भीतर, वैसा बाहर। जिसके भीतर बहुत-बहुत पर्तें नहीं, जिसके भीतर बहुत मन नहीं, जिसके भीतर एक ही धारा है, अनेक-अनेक खंडों में बंटी हुई धारा नहीं है, जिसके भीतर बहुत स्वर नहीं है, भीड़ नहीं है, और जिसके चेहरे पर कोई मुखौटे नहीं है, जिसके पास मौलिक चेहरा है--वही जो परमात्मा ने उसे दिया, वही जो उसका अपना है।

बस, निज पर ही जिसका भरोसा है। यह प्रमाणिकता है।

लेकिन यह प्रमाणिकता कैसे पैदा हो ? तुमने अगर इसको कैसे से जोड़ा तो अड़चन में पड़ जाओगे। क्योंकि प्रमाणिकता तुम्हारे पैदा करने की बात ही नहीं। तुम जो भी पैदा करोगे वह अप्रमाणिक होगा। अब इसे खूब संभालकर हृदय में रख लो। तुम जो भी पैदा करोगे वह अप्रमाणिक होगा। तुम पैदा करोगे वह प्रमाणिक कैसे हो सकता है ? प्रमाणिक तो परमात्मा पैदा कर चुका है। तुम पूछते हो, मैं असली चेहरा कैसे लगाऊं ? असली चेहरा लगाया नहीं जाता। असली चेहरा तो है ही। नकली चेहरे लगाये जाते हैं। तो तुम जो भी लगाओगे वह नकली होगा। जो लगाया जा सकता है वह नकली होगा। तो यह तो पूछो मत कि ठीक, अब नकली चेहरा लगाऊंगा नहीं; तो असली कैसे लगाऊं ! मगर तुम लगाने की बात पकड़े ही हुए हो। तुम कहते हो लगाऊंगा तो ही। चलो, नकली न लगायेंगे, असली लगायेंगे। मगर असली लगाया जाता है ? असली तो वही है जो तुम्हारे बिना लगाये लगा हुआ है। तुम जिसे निकालना भी चाहो, अलग भी करना चाहो तो न अलग कर सकोगे वही असली है। जिसको हम कभी नहीं चूकते और जिसको हम कभी नहीं खोते और जिससे हम कभी नहीं अलग होते वही असली है; वही प्रमाणिक है। तो करना क्या है ? सिर्फ नकली को देख लेना है कि नकली है। बस, फिर हाथ रुक जायेंगे नकली को लगाने से।

कृष्णमूर्ति कहते हैं, जिसने नकली को नकली की तरह देख लिया उनको असली उपलब्ध हो जाता है। असार को असार की तरह देख लेना सार को पा लेना है। अंधेरे को अंधेरे की तरह पहचान लेना बस पर्याप्त है रोशनी की तरफ जाने के लिये।

तो तुम प्रमाणिक होने की चेष्टा मत करना, चेष्टा मात्र अप्रमाणिकता में ले जाती है। प्रमाणिकता साधी नहीं जाती। प्रमाणिकता तो तुम जब सब साधना छोड़ देते हो तब जो बच रहती है, वही हैं। प्रमाणिकता घटती है, घटाई नहीं जाती। उसकी कोई व्यवस्था नहीं होती, कोई विधिविधान नहीं होता। वह तो हो ही चुका है। वह तो तुम लेकर ही आये हो। असली चेहरा तो तुम मां के पेट से लेकर आये थे। उसके लिये किसी स्कूल किसी विद्यालय, किसी विद्यापीठ की कोई जरूरत नहीं है। तुमने जो सीख लिया उसे अनसीखा हो जाने दो। और तुम अचानक पाओगे, जो तुम्हारा है वह उभरकर ऊपर आ गया। नकली की ... नकली के साथ तुम्हारी जो आसक्ति है वह टूट जाये। और कैसे नकली के साथ आसक्ति टूटेगी ? आसक्ति क्यों है ? क्योंकि तुम नकली को असली मानते हो। जिस दिन नकली नकली दिख जाये उसी दिन आसक्ति टूट जाती है।

तुम एक पत्थर का टुकड़ा हीरा मानकर अपनी तिजोरी में संभालकर रखे थे। सोचते थे हीरा है। परख तो थी नहीं हीरे की। पारखी तो तुम थे नहीं, जौहरी तो तुम थे नहीं। रास्ते पर पड़ा मिल गया था; चमकता था तो तुमने सोचा हीरा है। तो तुमने संभालकर रख लिया। डर के मारे किसीको बताया भी नहीं कि कहीं पता चल जाये, कि चोरी इत्यादि की झंझट खड़ी हो कि कहां से लाये, किसका है, कैसे मिला ? तो किसीको बताया भी नहीं। जल्दी से तिजोड़ी में संभालकर रख दिये। अब तुमने इसकी फिक्र करनी शुरू की कि असली है या नकली। तुम किसी जौहरी से दोस्ती कर लिये। सत्संग कर लगे। जौहरी के दुकान पर बैठने लगे। देखने लगे, कैसे परखता है हीरे को ! असली हीरे की परख क्या है ! धीरे-धीरे जौहरी की दुकान पर बैठते-बैठते तुमको भी समझ में आने लगा कि असली क्या, नकली क्या, कांच के टुकड़े क्या हैं। तुमको भी समझ में आने लगा। जो दरिया कहते हैं कांच कांच सो कांच, सांच सांच सो सांच, तो तुम पहचानने लगे कि कांच क्या है, सांच क्या है। फिर एक दिन आये, अपनी तिजोड़ी खोली, देखा उठाकर, वह कांच का टुकड़ा था।

अब इसका त्याग करने के लिये कुछ आयोजन करना होगा ? इसको छोड़ने के लिये कोई जलसा, गांव को निमंत्रण करना होगा ? इसके त्याग के लिये कोई जुलूस, कोई शोभायात्रा निकालनी पड़ेगी ? डुंडी पिटवाओगे, अखबार में खबरें छपवाओगे कि एक हीरे का त्याग कर रहे हैं ? यह कांच का टुकड़ा है, बात खतम हो गयी। अब तुम किससे पूछने जाओगे कि हीरे को कैसे छोड़ें ? अगर तुम पूछते हो हीरे को कैसे छोड़ें तो अभी तिजोड़ी में संभालकर रख लो। अभी हीरा है, छोड़ोगे कैसे ? अगर कांच का टुकड़ा दिखाई पड़ गया तो बात खतम हो गयी। अब पूछना क्या है ? किससे पूछना है ? तुम एक क्षण भी यहां वहां न जाओगे। बच्चों को दे दोगे कि खेलो। तिजोड़ी बंद करके सोचोगे, कहां इतने दिन तक कचरे को तिजोड़ी में रखे रहें ! बात खतम ही गयी। जिस दिन तुम्हें कांच कांच कि तरह दिख गया उस दिन बात खतम हो गयी।

मेरी बातें सुनते-सुनते, तुम ऐसे प्रश्न अपने मन में कभी मत उठाओ कि कैसे इन्हें साधें ? बस, वहां चूक हो रही है। तुम मेरी बातों को ठीक से सुन लो। आंख से सुन लो। ठीक से परख लो, क्या कहा जा रहा है, क्यों कहा जा रहा है। उसकी सब भाव-भंगिमायें पहचान लो। यह तो जोहरी की दुकान है। इसपर बैठे-बैठे ... बैठे-बैठे, आते-जाते, सत्संग करते-करते तुम्हें समझ आ जायेगी कि असली हीरा क्या, नकली हीरा क्या, फिर नकली हीरा तुम फेंक दोगे। और जब सब नकली हीरे फेंक दिये जाते हैं तब तुम्हारे भीतर जो असली है ही, वह प्रगट हो

जाता है। नकली के ढेर में खो गया है असली। असली लाना नहीं है। असली लाया नहीं जा सकता। असली तो तुम हो। असली हीरा तो तुम हो। तुम ही हो, जिसकी तुम तलाश कर रहे हो। खोजनेवाले में ही खोज का अंतिम लक्ष्य छिपा है। साधक में ही सिद्ध बैठा है। तुम्हारे भीतर परमात्मा का वास है। पर तुमने अपनी तिजोड़ी में इतना कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लिया है। जो मिला सो उठा लाये, जो मिला सो उठा लाये, जहां मिला सो उठा लाये।

मैं एक सज्जन के घर में कुछ वर्षों तक रहा। उनका ढंग यह था कि उनको कोई भी चीज कहीं पड़ी मिल जाये तो उठा लायें। नया-नया था तब तो मैं देखता रहा कि बात क्या है। वह थोड़ा संकोच भी करते थे फिर जब मैं कई महीने वहां रहा तो उन्होंने फिर संकोच भी छोड़ दिया। फिर तो वे बेधड़क मेरे सामने उठाकर ले आते थे सड़क पर। पैसेवाले आदमी थे, बड़ा उनका बंगला था, मगर कोई भी चीज उठा लाते।

एक दिन मैंने देखा कि साईकिल का टूटा हुआ हेन्डल कचरेघर में किसीने फेंक दिया होगा, वह उठाकर उसको साफ करते चले आ रहे हैं। मैंने उनसे पूछा कि मुझे पूछना तो नहीं चाहिये, मगर अब जरा हद हो गई। यह साईकल का हेन्डल क्या करोगे? उन्होंने कहा, अरे कुछ मत पूछो। पैडल में पहले ही रखे हूं और हेन्डल भी आ गया। इसी तरह धीरे-धीरे करके पूरी साईकल आ जायेगी। पैंडल वे पहले ही कभी के उठा लाये हैं, कह रहे हैं। आज हेन्डल भी हाथ आ गया। किसी दिन फ्रेम भी मिल जायेगा, फिर किसी दिन केरियर मिल जायेगा। ऐसी आशा में इकट्ठा करते जा रहे हैं। धीरे धीरे जब उनसे मेरी पहचान भी बढ़ गयी, ऐसे तो मैं उनका किरायेदार था लेकिन वह कभी मुझे घर में नहीं बुलाते थे। घर में वे किसीको नहीं बुलाते थे। जब पहचान बढ़ गयी तो कभी उन्होंने मुझे घर में बुलाया। घर में देखा तो मैं हैरान हो गया। वह तो कबाड़खाना था। वहां तो ऐसी-ऐसी चीजें देखी जिनका कोई भरोसा ही नहीं करे कि किसलिये आदमी रखे होगा। घर में जगह ही नहीं थी। सब तरह का कूड़ा-करकट भरा हुआ था। अब अगर तुम सड़कों से उठा-उठा लाओगे इस तरह की चीजें—इस आशा में कि पैंडल भी मिल गया, अब हेन्डल भी मिल गया, अब इसी तरह एक दिन साईकिल भी बन जायेगी। इस आशा में साईकिल बनाओगे तो तुम्हारे घर की हालत तुम समझ सकते हो।

मैंने उनसे पूछा कि इस कूड़े-कबाड़ में रह रहे हो, इस शानदार बंगले में रह सकते थे। इस कचरे में रह रहे हो। वे हंसे। वे इस तरह हंसे जैसे समझदार नासमझों की बातों पर हंसता है। उसने कहा, आप क्या समझो! अव्यवहारिक

आदमी हो आप, यह व्यवहार की बात है। आप देखना धीरे-धीरे, इनमें एक-एक चीज काम में आ जायेगी। वे उसी कचरे में रहते-रहते मर गये। उनके मरने के बाद जब उनकी पत्नी ने सफाई की उस घर की तो उसमें कुछ भी बचाने योग्य नहीं था। वह भी मैंने अपनी आंख से देखा कि एक ठेला भरके कूड़ा-कबाड़ सब तरह का निकालना पड़ा। उसमें कुछ भी बचाने योग्य न था।

तुम अगर अपनी जिंदगी में गौर से देखोगे तो तुमने बहुत सा कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लिया है। भीतर तुम कचरा ही कचरा इकट्ठा किये बैठे हो। इस कचरे के कारण जो असली है वह दिखाई नहीं पड़ रहा। असली दब गया कचरे में। असली को पाना नहीं है, असली तो मिला ही हुआ है। सिर्फ नकली से छूट जाना है। अब नकली से छूटने के लिये क्या करना होता है? नकली नकली है ऐसी समझ भर आ जाये, पर्याप्त। इतनी ही समझ सद्गुरु के पास आ जाती है। सत्संग का इतना ही सार है।

तुम यह तो पूछो मत कि प्रामाणिकता कैसे लाऊं? अगर तुम्हें अप्रमाणिकता की बात समझ में आ गयी कि अप्रमाणिक होने में दुख है, तुम्हें समझ में आ गया कि अप्रमाणिकता आदमी को विक्षिप्तता की तरफ ले जाती है; बाहर कुछ, भीतर कुछ——तो तुम दो आदमी हो गये। और इन दोनों आदमियों में निरंतर संघर्ष होगा, निरंतर कलह होगी, निरंतर झंझट होगी। कुछ कहोगे, कुछ करोगे। तुम्हारा सारा जीवन झूठ का एक व्यवसाय हो जाएगा। फिर तुम्हें याद रखनी पड़ेगी कि किससे क्या कहा।

सत्य के साथ एक सुविधा है. सत्य को याद नहीं रखना पड़ता। कह दिया, बात खतम हो गयी। फिर अगर कोई दस वर्ष बाद भी पूछेगा तो भी तुम सत्य ही तो कहे हो तो फिर सत्य कह दोगे। लेकिन अगर झूठ कहा तो फिर याद रखना पड़ता है। कहीं भूल न जाओ। झूठ बोलनेवाले को याद रखना पड़ता है कि यह झूठ बोला। फिर एक झूठ बोलने के लिये दस झूठ बोलने पड़ते हैं। क्योंकि उसे छिपाने के लिये दस का इंतजाम करना पड़ता है। दस के लिए सौ बोलने पड़ते हैं, सौ के लिये हजार। और ऐसे झूठ की भीड़ बढ़ती चली जाती है। और फिर सब याददाश्त...।

रूस में एक कहावत है कि झूठ बोलनेवाले की स्मृति बहुत अच्छी होती है। होनी ही चाहिये। सच बोलनेवाले को स्मृति से क्या लेना-देना! न भी हुई तो चलेगा। झूठ बोलनेवाले के पास तो अच्छी याददाश्त चाहिये ही। पत्नी से कुछ बोले, बेटे से कुछ बोले, नौकर से कुछ बोले, दफ्तर में कुछ बोले, बाजार में रास्ते पर कोई मिल गया उससे कुछ बोले। अब सब हिसाब रखो। शतावधानी होना

चाहिये। सबका हिसाब रखो, किससे क्या बोले। और फिर किस-किससे क्या-क्या झूठ और बोलनी है आगे और। एक की झूठ दूसरे से पकड़ में न आ जाये। और दूसरा तीसरे से न कह दे। और कोई जाल न खड़ा हो जाये। तो आदमी इस जाल से बचने के लिये जाल को बड़ा करता चला जाता है। धीरे-धीरे तुम झूठ के पहाड़ में दब जाते हो।

तुम्हारी छाती पर मैं झूठ का हिमालय रखा हुआ देखता हूं। उस हिमालय के नीचे तुम्हारी छोटी सी जो धारा थी कल-कल झरने की, वह जो तुम्हारी जीवंत धारा थी चेतना की, वह दब गयी है, अवरुद्ध हो गयी है।

प्रमाणिक होने का अर्थ है, अप्रमाणिक होने में दुख दिखाई पड़ जाये। अप्रमाणिक होने में कष्ट, उलझन, दुविधा, बेचैनी, तनाव, विक्षिप्तता दिखाई पड़ जाये। अप्रमाणिक होने में नर्क बन रहा है यह दिखाई पड़ जाये। बस, बात खतम हो गयी। फिर तुम क्यों नर्क बनाओगे? तुम तो इसी आशा में बना रहे हो कि यह स्वर्ग है। दिखाई पड़ जाये कि नर्क है, तुम बनाना बंद कर दोगे। दिखाई पड़ जाये कि नर्क है, तुम तत्क्षण इसके बाहर आ जाओगे। इसको ही मैं संन्यास कहता हूं।

मेरे संन्यास की परिभाषा इतनी ही है कि तुम्हें दिखाई पड़ गया कि कैसे तुम नर्क बनाते हो। अब नर्क नहीं बनायेंगे। और जो बना लिया है उसकी घोषणा कर देंगे कि भई अब उससे हमें क्षमा कर दो। जो कहा-सुना था, सब झूठा था। अब हम उस झंझट में नहीं रहे, बाहर हो गये। अब आजसे हम सीधा और सरल रेखाबद्ध जीवन जीयेंगे। आजसे हम वही कहेंगे जो सच है। और वही जीयेंगे जो सच है—चाहे जो परिणाम हो। क्योंकि झूठ का परिणाम देख लिया।

झूठ बड़ी आशायें दिलाता है। झूठ बड़ा अद्‌भुत सेल्समेन है। वह बड़ी आशायें दिलाता है। झूठ बड़ा राजनीतिज्ञ है। वह बड़े भरोसे दिलाता है कि यह करेंगे, वह करेंगे, ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे। एक बार मुझे वोट भर दे दो। एक बार मेरे साथ खड़े हो जाओ। झूठ बड़े आश्वासन देता है लेकिन कभी पूरे नहीं करता। एक भी आश्वासन झूठ पूरा नहीं कर सकता। झूठ ने कभी कोई आश्वासन पूरा नहीं किया है। सिर्फ लटकाये रहता है आश्वासनों के आधार पर। झूठ तो ऐसा है जैसे मछली को पकड़ते हैं कांटे पर आटा लगाकर। तो झूठ तो कांटा है और आश्वासन आटा है। झूठ कहता है, ऐसे-ऐसे सुख के सब्जबाग दिखाता है। स्वर्ग बनायेंगे, बहिश्त बनायेंगे तेरे लिये। इतना ऊंचा जीवन ला देंगे। जरा हमारे साथ चल। वह स्वर्ग कभी आता नहीं, आता नर्क है। आता दुख है। आता विषाद, संताप है। इसमें जागकर जो देख लिया...इतना ही यहां तुम्हें घट जाये

कि इतना ही तुम्हें दिखाई पड़ने लगे कि अब और झूठ के घर नहीं बनाने हैं।

बुद्ध को जब पहली दफा ध्यान हुआ, समाधि पहली दफा लगी तो उन्होंने जो पहले वचन बोले वे बड़े बहुमूल्य हैं। उन्होंने आकाश की तरफ मुंह उठाकर कहा कि हे मेरे गृहकारक! मेरे घर बनानेवाले! अब तुझे मेरे लिये और घर न बनाने पड़ेंगे। अब मैं मुक्त हो गया। किससे कह रहे हैं वे कि हे गृहकारक, हे मेरे घर बनानेवाले, अब तुझे मेरे लिये और घर न बनाने पड़ेंगे? अब मैं मुक्त हो गया। अब मैं स्वतंत्र हो गया। अब मेरे लिये और देह न बनानी पड़ेगी। और मेरे लिये नर्क न बनाने पड़ेंगे। और मेरे लिये कारागृह न बनाने पड़ेंगे और मेरे लिये जन्म नहीं है अब। अब बात खतम हो गयी। मैंने देख लिया। जैसा है, उसे देख लिया। अब मैं तेरे आश्वासनों में, तेरी आशाओं में न पड़ूंगा।

बुद्ध ने कहा है, धन्यभागी हैं वे, जिनकी आशा मर जाती है। बड़ी अजीब सी बात है। धन्यभागी है जो परिपूर्ण रूप से निराश हो जाते हैं। क्यों? निराशा में धन्यभाग? समझोगे तो बड़ी बहुमूल्य बात है। क्योंकि जो बिलकुल निराश हो गया, जिसने देख लिया कि आशा यहां पूरी होती ही नहीं, उसको फिर झूठ धोखा नहीं दे पायेगा। फिर कोई आश्वासन झूठ देकर उसे फुसला न पायेगा। फिर झूठ कोई बिक्री न कर पायेगा, कुछ बेच न पायेगा उसे। उसकी आशा ही छूट गयी। आशा को ही हम फुसला लेते हैं। आशा के ही साथ झूठ का संबंध जुड़ जाता है। जो परम निराश हो गया—चाहे इसे तुम विराग कहो, चाहे नैराश्य कहो, चाहे उदासीनता कहो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। बात एक ही है। जिसने देख लिया कि यहां कुछ भी मिलता नहीं। बस बातें हैं।

मैंने सुनी है एक कहानी। एक आदमी ने बहुत दिन तक शिव की भक्ति की। वर्षों की तपश्चर्या के बाद शिव प्रगट हुए और पूछा, तू चाहता क्या है? वह आदमी अपना शंख बाजा रहा था। वर्षो से बजा रहा था भगवान के सामने बैठ-बैठकर। तू चाहता क्या है? तो उसने कहा कि मुझे कोई वरदान दे दें। क्या वरदान चाहता है? तो उसने कहा कि यह मेरा शंख रहा, यही मुझे वरदान दे दें कि शंख से जो भी मैं मांगूं वह मुझे मिल जाये। शिव ने कहा, तथास्तु। वे तो तिरोहित हो गये।

वह आदमी अपने शंख से जो भी मांगता उसे मिल जाता। 'लाख रुपये चाहिये'- और छप्पर फूटता और लाख रुपये गिर जाते। 'बड़ा मकान चाहिये'- और सुबह आंख खोलता और मकान खड़ा हुआ। वह बड़ा प्रसन्न रहने लगा। उसकी बड़ी कीर्ति फैल गयी दूर-दूर तक। दूर-दूर से लोग उसके दर्शन करने आने लगे कि यह बड़ा चमत्कारी पुरुष है। कैसा यह घट रहा है? इसको कौन सा

अटूट खजाना मिल गया है ?

एक संन्यासी भी आया। संन्यासी रात रुका। रात जब संन्यासी अपने कमरे में अकेला था, उसने अपने झोले से एक शंख निकाला- बड़ा शंख। वह गृहस्थी भी बगल के कमरे में था, उसके पास छोटा शंख था। उस संन्यासी ने अपने शंख से कहा, लाख रुपये चाहिये। उसके शंख ने कहा, लाख में क्या होगा, दो लाख ला दूं ? गृहस्थ चौंका कि यह तो गजब हो गया। मैं मांगता हूं. लाख ही देता है मेरा शंख। यह असली चीज तो इसके पास है। लाख मांगो, दो लाख बताता है। कहता है, दो लाख ला दूं ? उसने सुबह संन्यासी के चरण छुए। कहा महाराज, आप संन्यासी, वीतरागी पुरुष ! आप यह किसलिए रखे हुए हैं ? मुझ गरीब को दे दें। हम तो लोभी, कामी। और ऐसा भी नहीं कि मैं आपको कुछ न दूंगा। मैं आपको अपना शंख दे देता हूं। यह मेरा शंख है। मगर आपके पास महाशंख है, बदल लें। संन्यासी ने कहा, जैसी तुम्हारी मर्जी। हम तो संन्यासी आदमी। चलो छोटा ही शंख ले लेंगे।

छोटा शंख लेकर संन्यासी नदारद हो गये। रात हुई, गृहस्थ ने अपना महाशंख निकाला, उससे कहा कि लाख रुपये। महाशंख बोला लाख में क्या होता, दो लाख ले ले। उसने कहा, चलो दो लाख। महाशंख बोला, चार ले लेना। उसने कहा, चलो चार। उसने कहा, अरे आठ ! मगर वह शंख आगे ही बढ़ता जाये, दे इत्यादि कुछ भी नहीं। तब वह घबड़ाया। उसने कहा, भई कुछ देगा भी ? उसने कहा लेना-देना किसकी ? तू जितना मांगेगा, दुगुना हम देंगे। लेना-देना बिलकुल नहीं, बस दुगुना हम देंगे। तू मांग, जितना तुझे मांगना हो। तब उसने छाती पीट ली।

झूठ महाशंख है। झूठ बड़े आश्वासन देता है। अप्रमाणिकता के बड़े आश्वासन हैं। तुम्हें यह समझ में आ जाये तुम अप्रमाणिकता से निराश हो जाओ, बस पर्याप्त। कुछ करने का नहीं है। धीरे-धीरे अप्रामाणिकता तुम्हारे हाथ से छूटकर गिर जायेगी। वह जाल फिर सक्रिय न रह जायेगा। फिर जो बचेगी जीवंत धारा वही प्रमाणिकता है।

तीसरा प्रश्न : कभी-कभी रात में आपसे मुलाकात हो जाती है। क्या यह सपना है ? और कभी-कभी ऐसा स्वाद अनुभव होता है जैसा कभी नहीं जाना था। तो यह क्या है ?

पहली बात, जीवन जितना तुम जानते हो उससे बहुत ज्यादा है। जीवन जितना तुम पहचानते हो, उससे बहुत बड़ा है। इसलिए अगर इसी जीवन को तुमने सच मान लिया तो फिर और कोई भी नई घटना घटेगी तो तुम्हें लगेगी सपना

है। तुमने बड़ी सीमित परिभाषा कर ली जीवन की। तुमने अगर यही मान लिया कि जीवन में बस कंकड़-पत्थर ही होते हैं तो किसी दिन अगर कोहिनूर मिल जायेगा तो तुम कहोगे, सपना है। हो कैसे सकता है ? तुमने अगर दुख ही दुख को जीवन मान लिया तो सुख की किरण उतरेगी तो तुम्हें लगेगा सपना है। हो कैसे सकता है ?

ऐसा राज घटता है यहां। लोग दुख पर तो बड़ा भरोसा करते हैं, सुख पर उनका बिलकुल भरोसा नहीं रहा। और बात भी साफ है। सुख जाना ही नहीं कभी, तो भरोसा कैसे हो ? जब यहां किसीको ध्यान करते-करते, पकते-पकते स्वाद आना शुरू होता हैं तो उसे बड़ी . . . प्रश्नों के जाल उठने लगते हैं उसके भीतर। मेरे पास लोग आकर पूछते है, बड़ा सुख मिल रहा है। क्या यह सपना है ? ये वे ही लोग हैं जिन्होंने बड़ा दुख पाया और कभी नहीं पूछा था कि बड़ा दुख मिल रहा है, क्या यह सपना है ?

दुख पर तुम्हारी बड़ी आस्था है। दुख पर तुम जरा भी संदेह नहीं करते। सुख पर तुम्हारी जरा भी आस्था नहीं है। स्वभावतः जिस पर तुम्हारी आस्था है उसीसे तुम्हारा मिलना हो जाता है, बार-बार आस्था के कारण ही। वही मेहमान तुम्हारे घर आता है, वही अतिथि तुम्हारे घर आता है, जिसको तुम पुकारते हो। सुख आ भी जाये तो तुम दरवाजा बंद कर लेते हो। तुम कहते हो, कहीं यह सपना तो नहीं है ? सुख और मेरे घर ? पूछा है पुष्पा ने। क्या, सुख को स्वीकार करने में ऐसी क्या अड़चन है ?

मैंने सुना है एक मनोरोगी अपने मनोचिकित्सक के पास वर्षों से विश्लेषण करवा रहा था। और रोज-रोज नये-नये दुख लाता था कि ऐसा दुख हो रहा है, वैसा दुख हो रहा है। आज यह दुख, कल वह दुख। मनोविश्लेषक भी थक गया था, ऊब गया था इसकी बकवास सुनते-सुनते। और इसका कोई अंत ही नहीं था। पागलपन का कभी कोई अंत ही होता नहीं। पागलपन बड़ा ही अन्वेषक है। वह रोज-रोज नई चीजें खोज लेता है। बड़ा आविष्कारक है पागलपन। थकता नहीं। मनोवैज्ञानिक थक गया, बीमार नहीं थका था। आखिर मनोवैज्ञानिक ने उससे पिंड छुड़ाने के लिये कहा कि भई, तू एक दो-तीन सप्ताह के लिये पहाड़ चला जा; उससे बड़ा लाभ होगा। इसको होगा कि नहीं होगा इससे मतलब नहीं था, लेकिन दो-तीन सप्ताह के लिये इससे छुटकारा हो, तो मनोवैज्ञानिक को कुछ लाभ हो। समझा-बुझाकर उसको किसी तरह पहाड़ भेजा। चला गया स्विट्झरलेन्ड। पैसेवाला आदमी ! आखिर पैसेवाला होना ही चाहिये नहीं तो आदमी इतना पागलपन कैसे चलाये ? सुविधा तो होनी ही चाहिये, संपदा तो होनी ही चाहिये। गरीब तो

पागल नहीं हो सकते। अमीर ही पागल हो सकते हैं।

इसलिए जो देश जितना अमीर हो जाता है उतना पागलपन से ग्रस्त हो जाता है। अब मनोवैज्ञानिक गरीब को तो मिल ही नहीं सकता विश्लेषण करने को। महंगा काम है। पश्चिम में तो लोग अकड़ बताते हैं कि हम फलां मनोवैज्ञानिक के पास जाते हैं। तुम किसके पास जाते हो? गरीब आदमी तो मनोवैज्ञानिक के पास जा ही नहीं सकता। उसकी बड़ी महंगी फीस है। तो यह भी एक आभूषण है।

वह स्विट्झरलेन्ड चला गया। दूसरे दिन ही उसका तार आया मनोवैज्ञानिक के पास। मनोवैज्ञानिक तो निश्चित हो रहा था कि अब झंझट नहीं। आज ये सज्जन न आयेंगे। मगर तार आ गया उनका। तार में उसने लिखा था: "फीलिंग वेरी हेपी, व्हाय?" बड़ी खुशी मालूम पड़ती है। क्यों? जवाब चाहिये। तुरंत जवाब दो।

अगर जीवन में सुख मिल रहा है तो क्यों पूछते हो क्यों? दुख को तो कभी नहीं पूछते। क्रोध आता है तो क्यों नहीं पूछते, यह सपना तो नहीं है? कभी पूछा? मैंने अब तक आदमी नहीं पाया जिसने पूछा हो कि यह क्रोध उठता है, यह कहीं सपना तो नहीं है? यह मेरे भीतर घृणा उठती है, यह सपना तो नहीं है? यह किसी आदमी को मार डालने का भाव आता है, यह सपना तो नहीं है? यह सब सच है। इसमें तुम कभी शक ही नहीं करते। तुम्हारी श्रद्धा भी बड़ी अजीब है। उलटी खोपड़ी मालूम होती है तुम्हारी। जब सुख की किरण आती है, तत्काल संदेह खड़ा हो जाता है। सुख की किरण को अंगीकार करो। तुम जिसे अंगीकार करोगे वह बढ़ेगा। तुम जिसे स्वीकार करोगे वह रोज-रोज आयेगा। तुम जिसे श्रद्धा से हृदय खोलकर अतिथि की तरह अभिनंदन करोगे, उसके आने की संभावना बढ़ती जायेगी।

दुख पर संदेह करो। संसार सपना है, परमात्मा नहीं। मगर लोग संसार को सच मानते हैं और परमात्मा को सपना मानते हैं। परमात्मा परम आनंद है; आनंद ही आनंद है, सच्चिदानंद है। इसलिए तो लोग कहते हैं, परमात्मा कहां? आनंद ही नहीं जाना। आनंद दूर, सुख नहीं जाना। सुख दूर, शांति नहीं जानी। कैसे परमात्मा को मान लें? पत्थरों को मान सकते हैं, परमात्मा को नहीं मान सकते। पत्थर सच मालूम पड़ते हैं।

इसको बदलो। इस बदलाहट की बड़ी जरूरत है। जब सुख की किरण आये तब भरोसा करो। जब प्यार उमगे, भरोसा करो। जब शांति लहराये, भरोसा करो। यही श्रद्धा है। श्रद्धा का अर्थ यह नहीं होता कि हिंदू हो जाओ,

मुसलमान हो जाओ। श्रद्धा का यह अर्थ नहीं होता कि मंदिर में जाकर सिर पटक आये कि मस्जिद में जाकर कुरान की आयतें दोहरा लीं। श्रद्धा का अर्थ होता है, जब परमात्मा द्वार खटखटाये, स्वीकार करो। अनूठे ढंग से आता है परमात्मा; तुम्हारी बंधी-बंधायी लकीरों से नहीं आता। परमात्मा के आने के ढंग बड़े रहस्यपूर्ण हैं।

अब यह पुष्पा ने पूछा है, "कभी-कभी रात में आप से मुलाकात हो जाती है।" तो हो जाने दो। कुछ बुरा नहीं हो रहा। अच्छा ही हो रहा है। रात में क्यों हो रही है? दिन में तुम्हारा संदेह से भरा हुआ मन बहुत ज्यादा मौजूद है। दिन में तुम मुझे मौका न दोगे। रात में ही चोरी-छिपे तुममें प्रवेश हो सकता है। दिन में तो तुम बड़े सजग रहते हो पहरा देते। दिन में तो तुम बंदूक लिये खड़े रहते। दूसरों की तो बात छोड़ो, तुम मुझे भी दिन में अपने भीतर प्रवेश नहीं होने दोगे। तुम कहते, कहां चले। भीतर मत जाइये, बाहर ही बैठिये। यह बैठकखाना रहा। सब ने बैठकखाने बना लिये हैं, वहां से अंदर नहीं जाने देते। बैठकखाने से भीतर प्रवेश नहीं करने देते। खोपड़ी तुम्हारा बैठकखाना है। बस वह बैठने के लिये है; वह ठहरने के लिये नहीं है. ध्यान रखना। वह जिनको दो मिनट में बिठाकर और विदा कर देना है...।

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन अपने घर का दरवाजा खोला। सज्जन एक प्रवेश किये—मित्र थे, बड़े दिनों बाद आये थे—तो जल्दी से वह मुड़ा। मित्र ने पूछा कि कहीं जा रहे थे? वह हाथ में छड़ी लिये, टोपी लगाये। उसने कहा कि नहीं यह मेरी तरकीब है। उसने कहा, क्या मतलब? मुल्ला ने कहा, यह मेरी तरकीब है। जब भी कोई आता है, मैं जल्दी से टोपी लगाकर छड़ी हाथ लेकर दरवाजा खोलता हूं। उसने कहा, मैं समझा नहीं। बात का मतलब क्या है? उसने कहा कि मतलब यह है कि अगर देखा कि इन सज्जन से नहीं मिलना है तो मैं कहता हूं, मैं बाहर से हूं, मैं बाहर जा रहा हूं। और अगर इनसे मिलना है तो मैं कहता हूं, मैं बाहर से आ रहा हूं। और वह छड़ी और टोपी इसका सबूत होती है। दोनों हालत में काम आती है।

फिर जिनको सदा के लिये नहीं ठहरा लेना है उनको हम बैठकखाने में बिठाते हैं। बैठकखाने का मतलब यह होता है कि आये, बड़ी कृपा की। अब जल्दी कृपा करो और जाओ भी। बड़ी खुशी हुई, आये। इससे भी ज्यादा खुशी होगी, जाओ। बैठकखाने का का मतलब ही होता है सिर्फ बैठो। बैठ भी न पाओ ठीक से, बस।

सिर तुम्हारा बैठकखाना है। दिन में तो तुम मुझे सिर से ज्यादा गहरे

नहीं जाने देते। रात कभी-कभी जब तुम बेहोश हो जाते हो, जब तुम्हारा पहरेदार खो जाता है, जब तुम्हारी सजगता, सावधानी, सावचेती काम नहीं करती, तब कभी तुम्हारे हृदय के करीब आने का मौका मिलता है।

इसलिए पुष्पा, रात में मुलाकात होती होगी। अगर होती रही रात में भी होनी शुरू हो जायेगी। मगर अभी रात में हो रही है, यह भी सौभाग्य। रात में तुम ज्यादा सरल होते हो।

इसलिए तो मनोवैज्ञानिक के पास अगर तुम जाओगे तो वह तुम्हारे सपनों की पूछता है, तुम्हारे दिन की नहीं पूछता। वह यह नहीं कहता कि दिन में तुमने क्या किया, क्या सोचा। दिन में तो तुम इतने झूठे हो, दिन में तो तुम इतने पाखंडी हो कि तुम्हारी दिन की बातों का कोई हिसाब रखने की जरूरत ही नहीं है। मनोवैज्ञानिक पूछता है, रात सपने क्या देखे?

क्यों? मनोवैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचा है कि तुम्हारे सपने तुम्हारे जागने से ज्यादा सच होते हैं। क्यों? क्योंकि सपनों में तुम धोखा नहीं देते। सपनों में तुम धोखा दे नहीं सकते। सपने में कैसे धोखा दोगे? तुम तो सो गये होते, तब सपना होता है। सपना तुम्हारी असलियत को ज्यादा जाहिर करता है। अब यह हो सकता है दिन में तुम बड़े साधु हो और सपने में चोर। सपना ज्यादा असली है। दिन में तुम बड़े त्यागी और सपने में बड़े भोगी। और दिन में किया था उपवास और सपने में बैठ गये होटल में जाकर और जो-जो खाना था वर्षों से, खा रहे हैं। और खाते ही चले जा रहे हैं। दिन का उपवास झूठा था, रात का सपना सच। रात का सपना तुम्हारी असली स्थिति की खबर देता है। तुम्हारी वास्तविकता की खबर देता है। असलियत तो यह है कि तुम्हें भूख लगी है। और नकलीपन यह है कि तुम उपवास कर रहे हो क्योंकि पर्युषण आ गया है और अब सभी कर रहे हैं, पड़ोसी कर रहे हैं। और अब धार्मिक दिन आ गया, अब न करो तो भी बेइज्जती होती है। और करने से प्रतिष्ठा भी मिलती है, सम्मान भी मिलता है, आदर भी मिलता है, अहंकार भी पुजता है कि इन सज्जन ने देखो, उपवास किया। तो कर रहे हो, मगर करना नहीं चाहते हो।

सपना ज्यादा सत्य की झंकार देता है। इसलिए मनोवैज्ञानिक तुमसे यह नहीं पूछता है कि दिन में क्या सोचा? तुम्हारा सोचना इतना झूठा है कि उसकी कोई जरूरत नहीं। वह पूछता है, तुमने रात सपने क्या देखे? सपने की डायरी बनवाता है। धीरे-धीरे सपनों में झांक-झांककर तुम्हारी बीमारी खोजता है। सपने में उतर-उतर कर, सपनों की व्याख्या कर-करके सपने के प्रतीकों को खोल-खोलकर देखता है, और तुम्हारे हृदय की खबर लाता है। तुम्हारे अचेतन में पड़े

हुए विचारों की खबर लाता है, जो कि तुम्हारी वास्तविकता है।

ठीक वैसी ही घटना यहां भी घटती है। पहले तो तुम्हारा और मेरा संबंध रात में ही होगा। पहले तो तुम्हारा मेरा संबंध तुम्हारे सपने में ही होगा। क्योंकि तुम्हारे सपने तुम्हारी सचाई से ज्यादा सच हैं। और तुम्हारे सपनों में तुम ज्यादा भोले-भाले हो, तुम ज्यादा निर्दोष हो। तो घबड़ाओ मत। और सपना कहकर इसका तिरस्कार मत करना। संसार सपना है, परमात्मा सत्य है। लेकिन परमात्मा अभी सपना मालूम हो रहा है और संसार सत्य मालूम हो रहा है। तुम शीर्षासन कर रहे हो।

मैंने सुना है, जब पंडित जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री थे तो एक गधा उनसे मिलने पहुंच गया। ऐसे तो गधे ही प्रधानमंत्रियों से मिलने जाते हैं और कोई जाता भी नहीं। एक गधा मिलने पहुंच गया। संतरी झपकी खा रहा था। सुबह-सुबह का वक्त। रात भर का थका-मांदा था, ड्यूटी बदलने की राह देख रहा था। और फिर आदमी होता तो रोकता भी। गधे को क्या रोकना! गधा क्या बिगाड़ लेगा? न तो गधे हथियार लेकर चलते हैं, न बंदूक तलवार लेकर चलते हैं। न गोली मार सकते हैं। और गधों को क्या लेना-देना! जाने भी दो। वह झपकी मारता रहा, गधा अंदर प्रवेश कर गया। पंडित नेहरू सुबह-सुबह शीर्षासन कर रहे हैं अपने बगीचे में। उस गधे को देखकर उन्होंने कहा भाई, गधे तो बहुत देखे हैं लेकिन तू उलटा क्यों खड़ा है? उस गधे ने कहा महाराज, आप शीर्षासन कर रहे हैं। मैं उलटा नहीं खड़ा हूं। मैं तो बिलकुल सीधा ही खड़ा हूं।

आदमी शीर्षासन कर रहा है। तुमने सारी चीजें उलटी कर ली हैं। तो सपना सच मालूम होता है और सच सपना मालूम होता है। तुम जरा इन मधुर सपनों को मौका देना। अभी सपने ही मालूम हों, चलो सपने ही सही। मगर ये सपने तुम्हारी सचाइयों से ज्यादा मूल्यवान हैं और अंततः बड़ी सचाई की तरफ तुम्हें ले जायेंगे।

"और कभी-कभी ऐसा स्वाद अनुभव होता है ऐसा कभी नहीं जाना था।"

फिर भी मुझसे पूछते हो? जब स्वाद भी अनुभव होता है तो फिर उतरो, डुबकी लो। फिर छोड़ो यह फिकर, कि क्या है! फिर यह विश्लेषण करने की बात छोड़ो। फिर यह लेबल मत लगाओ कि सपना है कि सच है कि झूठ है कि रात है कि दिन है। छोड़ो। स्वाद. . . .स्वाद को निर्णय लेने दो। स्वाद को ही निर्णायक होने दो।

"और कभी-कभी ऐसा स्वाद अनुभव होता है जैसा कभी नहीं जाना था तो यह क्या है?"

बुद्धि को बीच में मत लाओ। 'क्या है' पूछा कि बुद्धि बीच में आई। और बुद्धि अड़ंगे डालेगी। जो बुद्धि की समझ में नहीं आता उसमें बुद्धि बड़े अड़ंगे डालती है। स्वाभाविक! जो उसकी समझ में नहीं आता, बुद्धि कहती है यह हो ही नहीं सकता। बुद्धि कहती है, जो मेरे समझ में आता है वही सच है। और बुद्धि की सीमा को सत्य की सीमा मत समझ लेना। यही बहुत लोगों ने किया है। यही उनकी जिंदगी का सब से बड़ा दुर्भाग्य है। बुद्धि की बड़ी छोटी सीमा है।

यह तो ऐसा ही है जैसा टॉर्च लेकर अंधेरी रात में तुम चले और टॉर्च की छोटी सी रोशनी..जरा सा एक रोशनी का चकता पड़ता है। बस, उतना ही सत्य नहीं है। सत्य बहुत विराट है। यह तुम्हारी बुद्धि की टार्च की रोशनी कितनी है? टिम-टिमाती रोशनी, यह छोटासा चकता, इसमें कुछ चीजें दिखाई पड़ती हैं। सब कुछ थोड़े ही इसमें समाता है! सब कुछ को जानना हो तो बुद्धि से नहीं जाना जाता है। सब कुछ को जानना हो तो बुद्धि के अतीत होकर जाना जाता है। सब कुछ को जानना हो, विराट को पहचानना हो तो क्षुद्र-क्षुद्र चश्मे उतार देने होते हैं।

तो तुम यह पूछो ही मत कि यह क्या है? स्वाद मिल रहा है तो तुमने और स्वादों के संबंध में तो कभी नहीं पूछा। तुम बैठे किसी फल का रस पी रहे हो, स्वादिष्ट है, तब तुम नहीं पूछते यह क्या है? पूछा तुमने कभी? मुझसे तो अभी तक किसी ने नहीं पूछा। और मुझसे जितने प्रश्न लोगों ने पूछे हैं, दुनिया में शायद ही किसीसे पूछे हो। तुम आईस्क्रीम खा रहे हो, बड़ा स्वाद आ रहा है। पूछा कभी कि यह क्या है? स्वाद को जरूरत ही नहीं है प्रश्न की। स्वाद पर्याप्त है। स्वाद अपना प्रमाण है, स्वाद काफी है। लेकिन परमात्मा के स्वाद को ही क्यों पूछते हो?

कारण है। वहां तुम्हें डर लगता है। वहां लगता है कि तुम सीमा के बाहर चले। यह कुछ बेबूझ होने लगा। यह अपनी पकड़ के भीतर नहीं हो रहा है। यह अपने नियंत्रण के बाहर होने लगी बात। इसमें अपनी मालकियत चली जायेगी। यह स्वाद तुमसे बड़ा है, यही खतरा है। तुम छोटे हो। आईस्क्रीम के फल का रस, कि मिठाइयां, कि शराब, वे सब स्वाद तुम्हारे हाथ के भीतर हैं, तुम्हारी मुट्ठी में हैं। यह स्वाद तुमसे बड़ा है। इस स्वाद में तुम डूब जाओगे, खो जाओगे। उन स्वादों में तुम डूबते नहीं, खोते नहीं। क्षण भर को आते, चले जाते हैं। तुम्हारी मालकियत कायम रहती है। तुम्हारा अहंकार डिगमगाता नहीं। तुम्हारा अहंकार सिंहासन पर आरूढ़ रहता है। तुम्हारे अहंकार को उससे कोई चोट नहीं लगती। यह स्वाद अहंकार से बड़ा है इसलिए सवाल

उठता है, क्या है? सूझ-बूझ कर लो, हिसाब-किताब लगा लो, पक्का पता कर लो, फिर ही इसमें उतरो। और तुमने अगर पक्का पता लगाने की कोशिश की तो तुम उतर न सकोगे। और बिना उतरे किसी को पक्का पता लगा नहीं है।

तो अब तुम सोच लो। अगर पक्का पता लगाना हो तो उतर जाओ, पूछो मत। पूछना हो, ज्यादा पूछताछ करनी हो तो फिर एक बात पक्की है कि कभी पक्का पता न लगेगा। क्योंकि तुम उतर ही न पाओगे। बुद्धि बड़ी अटकाती है। जहां-जहां परमात्मा से मेल का मौका आता है, बुद्धि अटकाती है। जहां-जहां क्षुद्र से मेल का मौका आता है, बुद्धि बड़ी सहायता करती है। बुद्धि क्षुद्र की सेवक है, क्षुद्र की दासी है। इस सत्य को पहचानो।

ध्यान में रस आता है....लोग मेरे पास आ जाते हैं, वे कहते हैं, क्या हो रहा? घबड़ाये आ जाते हैं, आनंदित नहीं आते। रस मिल रहा है लेकिन उनके चेहरे पर चिंता मालूम पड़ती है। कौन सी चिंता इन्हें पकड़ ली? क्या बात है जिससे यह परेशान हो गये हैं? और ध्यान के लिये आये थे, ध्यान में रस लेने के लिये आये थे। इसीलिए आये थे मेरे पास; और जब आना शुरू हो जाता है तो बड़े बेचैन हो जाते हैं। बेचैनी का कारण है। यह इतना अनजाना रस है कि यह तुम्हारी पुरानी जानकारी से मेल नहीं खाता। यह इतना अभिनव है, यह इतना अज्ञान है कि तुम्हारे पास न कोई तराजू है तौलने को, न कोई कसौटी है कसने को, तुम्हारा सारा अब तक का जाना हुआ एकदम असंगत हो जाता है। और उसीसे तुम नाप करते हो, उसीसे तुम परख करते हो। तुमने जो अब तक जाना है। बहुत स्वाद तुमने जाने हैं लेकिन ध्यान का स्वाद तो जाना नहीं। अब यह स्वाद आया तो तुम्हारे पास न कोई तराजू है, न कोई भाषा है। कहां इसे रखो? किस कोटि में रखो? कौनसा लेबल लगाओ? किस डब्बे में बिठाओ? तुम्हारी सब कोटियां छोटी पड़ जाती हैं। तुम्हारे सब डब्बे ओछे पड़ जाते हैं। और इससे एक बेचैनी खड़ी होती है।

आदमी को बड़ी बेचैनी होती है जब वह लेबल नहीं लगा पाता। बड़ी बेचैनी होती है। जैसे ही उसने लेबल लगा दिया, निश्चित हो जाता है। लेबल लगाने से लगता है जान लिया। फूल तुमने देखा, बड़ी बेचैनी होने लगती है। किसीने कह दिया गुलाब है, चंपा है, चमेली है, तुम निश्चित हो गये, जैसे कि जान लिया। गुलाब शब्द से क्या खाक जान लिया! कि चंपा किसी ने कह दिया तो जान लिया।

ट्रेन में तुम सफर करते हो, पास में पड़ोस में बैठा एक आदमी अजनबी है। तुम जल्दी बेचैनी अनुभव करने लगते हो। उसको अजनबी रहने देना खतरे से

खाली नहीं है। चोर हो, लफंगा हो, पता नहीं किस तरह का आदमी हो। तुम पूछते हो भई, कहां जा रहे ? तुमने सिलसिला शुरू किया। वह भी राह देखता था कि तुमसे पूछे कि भई कहां जा रहे ? कहां से आ रहे ? क्या काम करते हो ? क्या नाम है ? इस तरह से तुम बारीकी से अब पता लगाने लगे कि कैसा आदमी है, क्या करता है। अगर वह आदमी कह देता है कि भई दुकानदार हूं, तुम जरा निश्चित हुए। वह आदमी कह दे चोर हूं, तुम जरा सरक के बैठ गये। हालांकि शब्द ही बोल रहा है। और पता नहीं, चोर बता सकता है कि मैं दुकानदार हूं; अक्सर बतायेगा। उसने कह दिया कि ब्राह्मण हूं तो तुम और पास आ गये। तुम भी ब्राह्मण हो। और उसने कह दिया शूद्र हूं तो बस संबंध टूट गया। बात खतम हो गयी। एक लेबल लग गया। अब तुमने जान लिया कि बात खतम हो गयी।

ऐसा हुआ, एक दफा मैं बंबई ट्रेन में चढ़ा। बहुत मित्र छोड़ने आये थे। तो जिस एअरकंडिशण्ड डब्बे में मैं था, एक सज्जन और थे। उन्होंने देखा इतने लोग छोड़ने आये तो समझा होगा, कोई महात्मा है। जैसे ही मैं डब्बे में अंदर गया, वे एकदम साष्टांग दंडवत लेटकर उन्होंने मेरे पैर छुए। मैंने कहा भई, आप बड़ी गलती कर रहे हैं। पहले पूछ तो लें कि मैं कौन हूं ? उन्होंने कहा-वे थोड़े बेचैन हुए, क्योंकि ऐसा कोई पूछता है ? ऐसा कोई कहता है ? उन्होंने कहा, आप कौन है ? मैंने कहा, मैं मुसलमान हूं। मेरी दाढ़ी से उनको थोड़ा भरोसा भी आया। यह तो बड़ा बुरा हो गया। मुसलमान के पैर छू लिये। ब्राह्मण थे वे। मगर उनको...।

बैठ गये, थोड़े उदास भी हो गये। फिर मुझसे पूछे कि नहीं-नहीं आप मजाक कर रहे हैं। अब अपने को समझाने की कोशिश करने लगे कि नहीं नहीं, आप मजाक कर रहे है। आप मुसलमान नहीं हो सकते। और जो लोग आपको छोड़ने आये थे उनमें कोई मुसलमान नहीं मालूम हो रहा। नहीं-नहीं आप मजाक कर रहे है। तो मैंने उनसे कहा कि मजाक ही कर रहा हूं। जल्दी से मेरे पास आकर बैठ गये। ज्ञान की बातें पूछने लगे। थोड़ी देर बाद मैंने उनसे कहा कि कुछ शराब इत्यादि पियेंगे ? उन्होंने कहा, क्या मतलब ? महात्मा होकर...। मैंने कहा, अब यहां कौन देखता है ? पी भी लो। वह मेरी... आकर सीट पर बैठ गये थे, जल्दी से उठकर अपनी सीट पर चले गये और कहने लगे, आप आदमी किस तरह के है ? वह ब्रह्मज्ञान की चर्चा उन्होंने बंद कर दी, अपना अखबार पढ़ने लगे। अखबार वे कई दफा पढ़ चुके थे। वह अखबार तो सिर्फ मुझे बचाने को कि मैं दिखाई न पड़ूं। मैंने उनसे कहा अरे भाई, छोड़ो भी। मैं सिर्फ मजाक कर रहा हूं। कैसी शराब ! मैं तो परमात्मा के रस की बात कर रहा था। मैं तो यह कह रहा था

कि कुछ परमात्मा का रस पीयोगे ? उन्होंने कहा, अब मैं समझा। आप भी खूब धक्का मार देते हैं और घबड़ा देते हैं। वे फिर मेरे पास आकर बैठ गये।

ऐसा आदमी लेबल से जीता है। जैसे शब्द सब है ! सब कुछ शब्दों में भरा है। बस एक दफे लेबल लगा दिया, बात खतम हो गयी। तुम निश्चित हो जाते हो कि चलो।

जब मैंने उनसे फिर मजाक की तो वह घबड़ा गये। इगतपुरी पर जब टिकट कलेक्टर आया, उससे बाहर जाकर उन्होंने कहा, मुझे दूसरे कमरे में...। यह आदमी कुछ अजीब सा मालूम होता है क्योंकि बदल-बदल जाता है। और मैं रात यहां नहीं सो सकता। मुझे थोड़ी बेचैनी होती है। वे बदल लिये कमरा।

तब से तो मुझे तरकीब हाथ मिल गई। जब भी मैं अकेला होना चाहता... क्योंकि काफी सफर करता था। महीने में कोई बीस दिन सफर करता था। भीड़-भाड़ से छूटकर बस ट्रेन में ही मुझे सुविधा थी अकेले होने की। तो यह तरकीब मुझे मिल गयी। फिर तो किसीको भी डिब्बे से हटाना हो, बड़ा आसान हो गया। वे अपने आप हट जाते। उनको कुछ कहना न पड़ता।

तुम्हारा एक अतीत है। तुम्हारी अतीत की जानकारियां हैं। तुम्हारे पास शब्दों की एक शृंखला है। जब भी कोई नई चीज घटती है, तुम अपने अतीत ज्ञान में उसको कोई जगह बिठाना चाहते हो। बैठ जाये तो तुम निश्चित हो जाते हो, बेचैनी नहीं होती। न बैठे तो मुश्किल होती है।

तो जब ध्यान का स्वाद आयेगा तब तुम मुश्किल में पड़ोगे। यह आईस्क्रीम का स्वाद नहीं है; न यह शराब का स्वाद है, न यह प्रेम का स्वाद है, न यह सौंदर्य का स्वाद है। यह वह स्वाद ही नहीं है जो तुमने जाने हैं। यह कुछ बड़ा अनूठा स्वाद है। और यह तुम्हारी जीभ पर नहीं घटता, यह तुम्हारे पूरे व्यक्तित्व में घटता है। सिर से लेकर पैर के अंगूठे तक इसका कंपन होता है। यह कुछ बात ही और है। यह तुम्हें पागल कर देनेवाली बात है। तुम बड़े घबड़ाओगे।

यह दर्शन, यह अनुभूति, यह भावदशा इतनी नयी है कि तुम्हारा मन हजार तरह के प्रश्न उठाने लगता है। मन कहता है संदेह करो, शंका करो, प्रश्नचिन्ह लगाओ। इसमें आगे मत जाना। पागल तो नहीं हुए जा रहे ? सपना तो नहीं देख रहे ? कोई धोखा तो नहीं खा रहे ? किसी ने संमोहित तो नहीं कर लिया है ? लौट चलो अपनी पुरानी दुनिया में। जानी-मानी थी। दुख था, ठीक था। लेकिन कम से कम जाना-पहचाना था। आदमी जाने-पहचाने की सीमा के बाहर नहीं जाना चाहता।

तो पुष्पा, अगर स्वाद मिलता, जैसा तूने कभी नहीं जाना था तो अब प्रश्न

मत उठा। अब निष्प्रश्न भाव से इस भोग को ले। छोड़ अतीत को। भविष्य को गह। भूल जाने को, अनजान का हाथ पकड़। अपरिचित मार्ग पर जाना ही पड़ता है खोजी को। जीवन कोई रेल की पटरियां नहीं है कि बंधे-बंधाये दौड़ते रहे एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन और शटिंग करवाते रहे। जीवन बड़ी अज्ञात की खोज है। जीवन तो ऐसा है जैसे हिमालय से निकली कोई सरिता। पता नहीं कहां जायेगी? कौन सा मार्ग लेगी? किन खाई-खड्डों में गिरेगी? किन मैदानों से गुजरेगी? किन नदियों से मिलेगी? किन झरनों को आत्मसात करेगी? किन घाटों को पार करेंगी? किन लोगों के बीच से गुजरेगी? किस सागर में गिरेगी? कुछ भी पता नहीं। कोई रेल की पटरी थोड़े ही है कि बंधी-बंधाई, टाईम टेबल के साथ घूमती रहेगी। अज्ञात है। जीवन की खोज, जीवन का विकास अज्ञात है। तुम ज्ञात को छोड़ते चलो, अज्ञात में उतरते चलो।

आखरी प्रश्न: जो है, है। वही सत्य है; फिर झूठ कहां से आया, जो नहीं है?

प्रकाश है, अंधेरा नहीं है। अंधेरा कहां से आया? अंधेरा आ ही नहीं सकता क्योंकि अंधेरा है नहीं। आने के लिए तो होना चाहिये। अंधेरा न आता, न जाता। अंधेरा होता भी नहीं। अंधेरा सिर्फ प्रकाश का अभाव है। अंधेरे का होना न होना प्रकाश के होने न होने पर निर्भर है।

जब तुम अंधेरा कहते हो, तो असल में तुम यह थोड़े ही कहते हो कि कोई अंधेरे जसी चीज है! तुम इतना ही कहते हो कि प्रकाश नहीं है। इसको ठीक से समझो। भाषा से अड़चन आ जाती है। भाषा बड़ी भ्रांतियां खड़ी कर देती है। तुम कहते हो अंधेरा है; इससे ऐसा लगता है कुर्सी है, मकान है, मंदिर है, ऐसे ही अंधेरा है। भाषा तो वही है--कुर्सी है, मकान है, मंदिर है, अंधेरा है। तो तुम पूछते हो कहां है अंधेरा? कैसा है अंधेरा? कितना बजन होता है अंधेरे का? कहां से आता है, कहां जाता है? भाषा ने सब झंझट खड़ी कर दी।

जब तुम कहते हो अंधेरा है तो उसका केवल इतना ही मतलब होता, प्रकाश नहीं है; और कुछ मतलब नहीं होता। और मतलब होता ही नहीं। अंधेरे में कुछ सार होता ही नहीं, कोई सत्ता होती ही नहीं। अंधेरे का कोई अस्तित्व होता ही नहीं। इसीलिए तो तुम अंधेरे को निकाल नहीं सकते। तुम्हारे कमरे में अंधेरा भरा है, ले आओ तलवार और टूट पड़ो अंधेरे पर--'वाह गुरुजी का खालसा। और काटने लगो अंधेरे को और देने लगो धक्का कि निकाल बाहर करेंगे। कुछ कर न पाओगे तुम। अंधेरा अपनी जगह रहेगा। तुम इसे धक्के मारकर निकाल न पाओगे, न तलवार से काट सकोगे। यह है ही नहीं। इसको तलवार से काटोगे

कैसे? इसको धक्के मारोगे कैसे! तुम चाहे दारासिंग को बुला लो और चाहे मोहंमद अली को। इसमें धक्के से काम नहीं चलेगा। जो धक्का मारेगा वह हारेगा। जो धक्का मारेगा वह टूटेगा। जो धक्का मारेगा वह शिथिल होगा, थकेगा, गिरेगा। और जब दारासिंग मार-मार धक्के गिर जायेगा तो वह भी सोचेगा कि बड़ा मजबूत अंधेरा है। मार डाला मुझे। निकलता नहीं। मुझसे ज्यादा ताकतवर है।

नहीं, अंधेरे में न ताकत है, न अंधेरे में कोई बल है। अंधेरे से ज्यादा कोई नपुंसक स्थिति नहीं है। अंधेरा है ही नहीं। तो करो क्या? सिर्फ दिया ले आओ, प्रकाश ले आओ, और अंधेरा चला जाता है। अंधेरे को निकाला नहीं जा सकता। या तुम समझो कि दुश्मन के घर पर अंधेरा लाकर डालना हो तो डाल भी नहीं सकते। कि टोकरी में भर लाये अंधेरा और डाल दिया पड़ोसी के घर में कि ले बेटा, अब भोग! तुम टोकरी में भरकर अंधेरा ला भी नहीं सकते, डाल भी नहीं सकते किसीके घर में।

अगर तुम्हें अंधेरे के साथ कुछ भी करना हो तो प्रकाश के साथ कुछ करना पड़ेगा। इस बात को खयाल में रखो। अंधेरे के साथ सीधा कुछ किया ही नहीं जा सकता। अगर अंधेरा लाना है तो प्रकाश बुझाओ। अगर अंधेरा हटाना है, प्रकाश जलाओ। प्रकाश है, अंधेरा नहीं है। अंधेरा केवल अभाव है।

ठीक वैसी ही बात सत्य और असत्य की है। सत्य है, असत्य अभाव है। असत्य होता नहीं। इसीलिए तो उसको असत्य कहते हैं क्योंकि वह होता नहीं--असत, असत्य। इसलिए तो असत्य कहते हैं कि वह है नहीं। वैसा है ही नहीं, सिर्फ सत्य का अभाव है। इसलिए असत्य से जो लड़ते हैं वे हारेंगे; वे बुरी तरह हारेंगे। असत्य से लड़ो मत, सत्य का दिया जलाओ। बुराई से लड़ो मत, भलाई का दिया जलाओ। पाप से लड़ो मत, पुण्य का दिया जलाओ। संसार से लड़ो मत, परमात्मा को पुकारो।

यह मेरा मौलिक आधार है। संसार से लड़ो ही मत क्योंकि संसार है ही नहीं, केवल परमात्मा का अभाव है। दुकान से मत लड़ो, मंदिर को खोजो। पत्नी से मत लड़ो, बच्चों से मत लड़ो, ध्यान को खोजो। संसार से मत भागो, संन्यास को खोजो। संन्यास आ जाये, संसार नहीं है। और तुम दुकान में ही रहो, घर में ही रहो, कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए तो दरिया ने कहा कि गृही हो कि संन्यासी हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। दिया भीतर का जल जाये।

विधायक बनो। नकारात्मक से मत जूझते रहो। वह जूझना गलत है; उसमें सिर्फ हार होती है, पराजय होता है। विजेता तो बनता है आदमी विधायक

के साथ।

"जो है, है। वही सत्य है। फिर झूठ कहां से आया, जो नहीं है?"

झूठ आया भी नहीं, गया भी नहीं। झूठ है भी नहीं। जब सत्य छिपा होता है तो झूठ होता है। जब सत्य प्रगट हो जाता है, झूठ नहीं हो जाता।

आज इतना ही।

पारस परसा जानिये

प्रवचन : ९
दिनांक : १९।७।१९७७
श्री रजनीश आश्रम, पूना
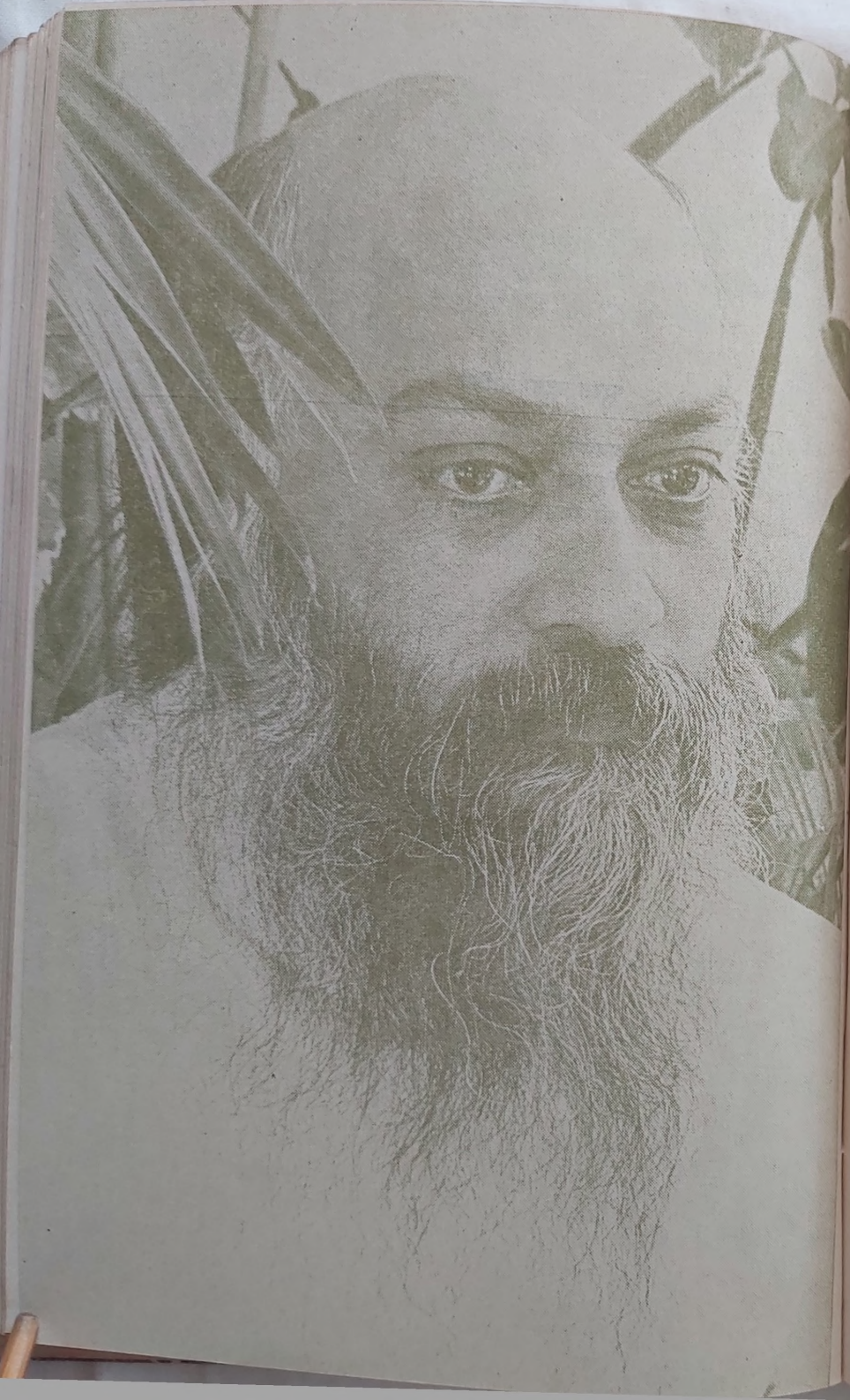
पारस परसा जानिये, जो पलटे अंग अंग।
अंग अंग पलटे नहीं, तो है झूठा संग॥
पारस जाकर लाइये जाके अंग में आप।
क्या लावे पाषान को घस-घस होय संताप॥
दरिया बिल्ली गुरु किया उज्जल बगु को देख।
जैसे को तैसा मिला ऐसा जक्त अरू भेख॥
साध स्वांग अस आंतरा जेता झूठ अरू सांच।
मोती मोती फेर बहु इक कंचन इक कांच॥
पांच सात साखी कही पद गाया दस दोय॥
दरिया कारज ना सरै पेट-भराई होय॥
बड़ के बड़ लागे नहीं बड़ के लागे बीज।
दरिया नान्हा होयकर रामनाम गह चीज॥
माया माया सब कहे चीन्हे नाहीं कोय।
जन दरिया निज नाम बिन सब ही माया होय॥

है को संत राम अनुरागी, जाकी सुरत साहब से लागी।
अरस-परस पिव के संग राती होय रही पतिबरता।
दुनिया भाव कछू नहिं समझे ज्यों समुंद समानी सरिता॥
मीना जायकर समुंद समानी जहं देखे तहं पानी।
काल-कीर का जाल न पहुंचे निर्भय ठौर लुभानी॥
बावन चंदन भंवरा पहुंचा जहं बैठे तहं गंधा।
उड़ना छोड़िके थिर हो बैठा निसदिन करत अनन्दा॥
जन दरिया इक रामभजन कर भरम-वासना खोई।
पारस-परस भया लोह कंचन बहुर न लोहा होई॥

पारस परसा जानिये, जो पलटे अंग-अंग
अंग-अंग पलटे नहीं, तो है झूठा संग

सद्गुरु की पहचान क्या ? फिर सद्गुरु के साथ सत्संग हुआ इसकी पहचान क्या ? तुम सद्शिष्य बने, इसकी पहचान क्या ? किस कसोटी पर परखते चलोगे ? किस तराजू पर तौलते चलोगे कि दिशा ठीक है, कि मार्ग ठीक है ?

चलने से ही तो तय नहीं होता कि पहुंच जाओगे क्योंकि चलना तो गलत दिशा में भी हो सकता है। कुछ करते रहने से ही तो तय नहीं होता कि सफल होओगे, कि सुफल होओगे। क्योंकि करना असंगत हो सकता है।

राह अंधेरी है, घनी अमावस है, तुम रोशनी की तरफ यात्रा कर रहे हो इसकी कुछ न कुछ कसौटी तो होना चाहिये। कहीं ऐसा तो नहीं है, और अंधेरी रात में प्रवेश करते जाओ ! सूरज न भी दिखाई पड़े लेकिन पूरब की तरफ चल रही हो इतना तो पक्का हो। सूरज आज नहीं कल दिखाई पड़ेगा लेकिन यात्रा प्राची की तरफ हो रही है, आंखें पूरब की तरफ लगी हैं इतना तो साफ होना ही चाहिये। पर पूरब की तरफ चल रहे हैं—अंधेरे में सही। तुम पश्चिम की तरफ चलते रहो तेजी से भी तो भी सूरज के पास न पहुंचोगे। सूरज से दूर निकलते जाते हो। और पूरब की तरफ तुम धीमे-धीमे भी चलो, अगर पूरब की तरफ मुंह उठाकर खड़े भी रहो तो सूरज खुद आ जायेगा।

तो दिशा ठीक है या नहीं, यह अत्यंत अनिवार्य है। तुम एक बगीचे की तरफ चलते हो, अभी बगीचे के हरे वृक्ष, अभी बगीचे की हरी झाड़ियां दिखाई नहीं पड़तीं। तुम अभी दूर हो लेकिन फिर भी कुछ प्रतीक, कुछ लक्षण मिलने शुरू हो जाते हैं। हवा ठंडी होने लगती है। वह जो ताप था बाजार का, कम होने लगता है। वह जो भीड़-भाड़ का शोरगुल था वह कम होने लगता। और हवाओं में धीरे-धीरे गंध के रेशे फैलने लगते हैं। थोड़ी-थोड़ी गंध कभी-कभी आ जाती है। फूलों की गंध, बगीचे की ठंडक, हवा में तुम्हें खबर देने लगती है

कि तुम ठीक दिशा में हो। बगीचा अभी दिखाई नहीं पड़ता लेकिन तुम पुलक से भर सकते हो कि मार्ग ठीक है तो पहुंच जाओगे; पहुंच ही रहे हो। एकेक कदम तुम बढ़ रहे हो, एकेक कदम मंजिल तुम्हारी तरफ बढ़ी आ रही है।

जैसे-जैसे करीब पहुंचोगे वैसी-वैसी हवा और भी शीतल हो जायेगी, और भी सुवासित हो जायेगी। जैसे-जैसे करीब पहुंचोगे, मनुष्यों की आवाज और शोरगुल और बाजार का गोरखधंधा शांत होने लगेगा, पक्षियों की कलकलाहट, झरनों का कलरव उसकी जगह लेने लगेगा। ये लक्षण होंगे। अभी शायद बगीचा दिखाई भी न पड़ा हो लेकिन तुम आनंदित हो सकते हो कि देर-अबेर पहुंच जाओगे।

आज के सूत्र कसौटी के सूत्र हैं। आज के सूत्र तुम्हारे बड़े काम के हैं। क्योंकि जीवन में ऐसा रोज देखा जाता है, बहुत लोग श्रम करते हैं, फल तो बहुत कम लोगों को मिलता है। ऐसा नहीं कि प्रार्थना लोग नहीं करते, लेकिन प्रार्थना परमात्मा तक पहुंचे तब न ! अक्सर तो तुम प्राथना करते वक्त ही कुछ ऐसी बाधाय खड़ी कर देते हो कि प्रार्थना पहुंच ही नहीं सकती।

तुम्हारी प्रार्थना में ही बुनियादी चूक है। प्रार्थना में मांग खड़ी है। प्रार्थना करते ही हो मांगने के लिये। भिखमंगे की तरह प्रार्थना करते हो। तो यह प्रार्थना परमात्मा तक नही पहुंचेगी। परमात्मा तक तो उनकी आवाज पहुंचती है जिनके भीतर का सम्राट पुकारता है, भिखमंगा नहीं। भिखमंगों का कहीं समादर नहीं है; परमात्मा की दृष्टि में तो बिलकुल नहीं। कैसे हो ? क्योंकि उसने तुम्हें सम्राट बनाकर भेजा है। उसने तुम्हें सम्राट बनाकर भेजा है। उसने तुम्हें सम्राट होने को भेजा है। उससे कम अगर तुम हो तो तुमने परमात्मा को धोखा दिया। उससे कम अगर तुम हो तो तुमने अपना दायित्व न निभाया। उससे कम अगर तुम हो तो तुम भटके हो।

भिखमंगे की तरह प्रार्थना करते हो, प्रार्थना चूक जाती है। प्रार्थना में मांग आई कि प्रार्थना मर गयी, मांग ही रह गयी। मांग कोई प्रार्थना थोड़े ही है ! फिर जैसे भिखमंगा स्तुति करता है, खुशामत करता है, ऐसे ही तुम अपनी मांग को पूरा कराने के लिये स्तुति करते हो।

और ध्यान रखना, जिसकी भी तुम स्तुति करते हो किसी हेतु से, वह प्रार्थना नहीं बन सकती। परमात्मा खुशामत-पसंद नहीं है। अगर परमात्मा भी खुशामत-पसंद हो तो फिर तो इस जगत में प्रेम संभव ही न रह जायेगा। फिर तो प्रेम असंभव हो जायेगा। फिर तो प्रार्थना किस द्वार पर करोगे ? फिर तो सभी जगह खुशामद-पसंद लोग बैठे हैं।

परमात्मा के साथ तो खुशामद मत करो। खुशामद का मतलब होता है, परमात्मा को खूब बढ़ाकर बताओ, फुलाओ, मक्खन लगाओ। तुम जैसे यह सोच रहे हो कि परमात्मा आदमियों जैसा आदमी है। कि तुम उसके अहंकार को फुसला लोगे; कि तुम उसके अहंकार को फुसलाकर कर उसको अपनी मांगों पूरा करने के लिये राजी कर लोगे। तुम्हारी चेष्टा पहले से हीं गलत हो गयो। प्रार्थना शुरू ही न हुई और मर गई; गर्भपात हो गया।

प्रार्थना बहुत लोग करते हैं, किसी एकाध की हो पाती है। और तपश्चर्या भी लोग नहीं करते ऐसा भी नहीं है। लोग तपश्चर्या भी करते हैं लेकिन तपश्चर्या से सुगंध नहीं उठती, दुर्गंध उठती है। तपश्चर्या से अहंकार उठता है--मैं तपस्वी, मैं त्यागी। यह मैं तुम्हारी गर्दन फांसी है। इस मैं के कारण तुम हो नहीं पाते। यह तुम्हें अटकाये हुए है। यह मैं जाना चाहिये।

तो बड़ी से बड़ी तपश्चर्या वही है जिसमें मैं गलता हो। वह कसौटी होनी चाहिये कि मैं गल रहा है तो ठीक रास्ते पर हो, मैं बढ़ रहा है तो गलत रास्ते पर हो। मैं बढ़ता जाये तो तुम संसार को तरफ उन्मुख हो। मैं घटता जाये तो तुम परमात्मा की तरफ उन्मुख हो; तो तुम राम-सन्मुख हुए। राम के सन्मुख खड़े होओगे और मैं बचेगा? जरा सी याद भी आ जाये राम की तो मै खो जाता है। अपने घर की आ गयी। असली घर की याद आ गयी। जहां तुम ठहरे हो वह घर उसी क्षण धर्मशाला हो जाता है--उसी क्षण!-- जब तुम्हें असली घर की याद आ जाती है।

कफस में रोता हूं मैं अपने हमसफीरों को
यह कौन कहता है मुजतिर हूं मैं चमन के लिये

इसलिए थोड़े ही रोता है भक्त कि सुख चाहता है। इसलिए रोता है कि, स्वरूप चाहता हैं। इसलिए रोता है कि मैं जो हूं वही हो जाऊं। इसलिए रोता है कि मैं अपने मूल स्त्रोत से मिल लाऊं। इसलिए रोता है कि जहां से आया हूं वहां वापिस पहुंच जाऊं।

कफस में रोता हूं मैं अपने हमसफीरो को

वे जो मेरे साथी, मेरे संगी, वह जो मेरा स्वभाव, वह जो मेरा स्वरूप छूट गया है, वह जो मेरा घर छूट गया है वह मुझे वापिस मिल जाये।

कफस में रोता हूं मैं अपने हमसफीरों को

इस संसार के पिंजड़े में बंद मैं अपने उन मित्रों के लिये रोता हूं, जो पीछे छूट गये हैं।

यह कौन कहता है मुजतिर हूं मैं चमन के लिये

स्वर्ग के लिये थोड़े ही रोते हैं, सुख के लिये थोड़े ही रोते हैं। भक्त स्वर्ग थोड़े ही मांगता है। भक्त तो इतना ही मांगता है, मुझे वापिस दे दो मेरा लोक। यहां मैं अजनबी हूं। यहां मैं परदेसी हूं। यहां मेरा घर नहीं है। यहां कितना हीं बनाऊं, गिरेगा। यहां सब बड़े से बड़े घर, मजबूत से मजबूत, पत्थर से बनाये घर भी ताश के घर सिद्ध होते हैं। यहां क्षणभंगुर है। मुझे मेरा शाश्वत दे दो।

मेरे वजूद से महफिल उदास रहती थी
मेरा वजूद मुसीबत था अंजुमन के लिये
चमन में था तो कफस के लिये तड़फतां था
कफस में हूं तो हूं बेताब मैं चमन के लिये

और आदमी का मन ऐसा है, तुम भगवान में थे जरूर तुम भगवान से दूर होने के लिये तड़फे होओगे; नहीं तो दूर कैसे हो जाते?

चमन में था तो कफस के लिये तड़फता था
कफस मैं हूं तो हूं बेताब मैं चमन के लिये

ऐसा आदमी का मन है। जहां हो वहीं का नहीं हो पाता। चमन में था तब चमन का न हो पाया तो कफस का हो कैसे सकता है? स्वतंत्र था तब स्वतंत्रता का न हो पाया और हजार ढंग से जंलीरें बना लीं। अपनी जंजीरें खुद ढाल लीं। जब स्वतंत्रता का भी न हो सका तो इस कारागृह का कैसे हो सकता है? जब तुम परमात्मा के भी न हो सके और वहां से भी हट आये तो संसार के तो हो कैसे सकोंगे?

लेकिन परमात्मा को खोना पड़ता है; पाने के पहले खोना पड़ता है। कोई और उपाय नहीं है। जब तक तुम खोओ न, तब तक उसका मूल्य ही पता नहीं चलता। मछली जब तक सागर में होती है तब तक सागर का पता ही नहीं चलता। एक बार मछली को सागर के तट पर जाना ही होता, तड़फना ही होता है पानी के बाहर; तभी उसे समझ आती है, तभी बोध आता है, तभी सागर की स्मृति आत है और सागर के प्रति कृतज्ञता का भाव आता है। फिर जब लौटकर वह सागर में गिरती है तो जानती है, यह सागर है। यह मेरा घर।

यह तुम्हें बेबूझ लगेगा, लेकिन अपना घर पाने के लिये खोना पड़ता है। स्वयं को पाने के लिये स्वयं को खोना पड़ता है। संसार का कुछ और अर्थ नहीं है। संसार का इतना ही अर्थ है, मछली सागर में रहते-रहते सागर कोन पहचान पाई, तट पर तड़फ रही है।

चमने में बायस-ए-राहत था, आशियां न रहा
चमन न मेरे लिये, अब न मैं चमन के लिये

यह मुख्तसर सी है यह अश्क दास्ताने-फिराक
रही है वख्व मेरी जां गमो-मिहन के लिये
यह छोटी सी कहानी है हमारी जिंदगी की।
यह मुख्तसर सी है अश्क दास्ताने फिराक
रही है वख्व मेरी जां गमो-मिहन के लिये

हम न मालूम किन-किन अनजान रास्तों से दुख-दर्द को खोजते रहे।
रही है वख्व मेरी जां गमो-मिहन के लिये। हमारे प्राण दुख के लिये तड़फते रहे। क्यों? क्यों ऐसा होगा कि हम दुख के लिये तड़फते रहे हैं? हमने क्यों दुख निर्माण किया है? कारण है। जब दुख निर्मित होता है तो तुम निर्मित होते हो। सुख में खो जाते हो, दुख में हो जाते हो। दुख में अहंकार मजबूत खड़ा हो जाता है। इसीलिए तो लोग दुख को पकड़ते हैं।

मेरे पास हजारों लोग आते हैं, मगर शायद ही कभी कोई आदमी मुझे दिखाई पड़ता है जो सच में सुखी होना चाहता है। इससे तुम हैरान होओगे क्योंकि वे सभी यही कहते आते हैं कि हम सुख की तलाश में हैं। वे सभी यही कहते आते हैं कि हमें दुख से कैसे छुटकारा मिले? हम दुख के बाहर कैसे हों? लेकिन मैं उनकी आंखों में झांकता हूं, उनके हृदय में टटोलता हूं और दुख से वे छूटना नहीं चाहते। कहते जरूर हैं। शायद यह कहना भी एक नये दुख को पैदा करने की तरकीब है। इस दुख पैदा करने की तरकीब कि मुझे सुख नहीं है। मुझे सुख चाहिये। यह सुख चाहने की बात सुख चाहने की नहीं मालूम होती, यह एक और नया दुख पैदा करने की होती है कि मुझे सुख नहीं है।

ख्याल करो इस बात पर। इस पर ठीक से नजर दो। तुम सच में सुख चाहते हो? अगर सुख चाहते हो तो तुम्हें कौन रोक सकता है? एक क्षण को भी तुम कैसे रोके जा सकते हो? सुख तुम्हारा स्वभाव है। इधर चाहा, उधर हुआ।

मैं तुमसे एक अजीब सी बात कहना चाहता हूं। सुख पाना तो बहुत सरल है, दुख पाना बहुत कठिन है। क्योंकि दुख स्वभाव के विपरीत है। दुख स्वाभाविक नहीं है इसलिए कठिन है। कठिन को तो तुमने कर लिया है और सरल की तुम पूछते हो, कैसे हो? तुमने अति कठिन को करके दिखला दिया है। आत्मा को दुख हो ही नहीं सकता। वह भी तुमने बना कर दिखला दिया है। उसका भी तुमने आत्मा को धोखा दे दिया है। और सुख का झरना तो वह ही रहा है भीतर। सुख को पाना नहीं होता, सिर्फ दुख को पकड़ना छोड़ते ही सुख हो जाता है। यह जो कफस है, यह पिंजड़ा है संसार का, इसने तुम्हें बंद किया है इस ख्याल

में मत पड़ना। हालत उलटी ही है, तुम इसमें खुद ही अपने हाथ से बंद हो गये हो। मैंने सुना है, एक पहाड़ी घाटी में ऐसी घटना घटी, एक छोटी सी सराय थी। उस सराय के मालिक के पास एक तोता था। सराय के मालिक ने उसे एक बात सिखा रखी थी। सराय के मालिक स्वतंत्रता का बड़ा प्रेमी था। प्रेम झूठ-मूठ का ही रहा होगा नहीं तो तोते को कैसे बंद करता? लोग मोक्ष की आकांक्षा रखते हैं और तोते को बंद कर देते हैं। और तोते को मोक्ष की बातें सिखा देते हैं, राम-राम जपना सिखा देते हैं। कम से कम तोते को तो छोड़ो। तुम जब छूटोगे तब छूटोगे। इस गरीब को क्यों बांधा? तुम बंधे हो, इसको भी बांध लिया।

मालिक जो था, स्वतंत्रता का बड़ा प्रेमी था। कहते हैं बड़ा क्रांतिकारी था। तो उसने अपने तोते को सिखा रखा था, वह एक ही शब्द जानता था तोता: स्वतंत्रता! स्वतंत्रता। स्वतंत्रता! दिन में हजारों बार चिल्लाता था। उसकी आवाज घाटी में गूंजती थी—"स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!"

एक रात एक आदमी मेहमान हुआ। सूरज के ढलते समय जब घाटी बड़ी सुंदर थी, वह तोता चिल्लाया, "स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!" उस आदमी को दया आ गई। उसने कहा, बेचारा तोता! कितनी स्वतंत्रता की मांग कर रहा है। दिन भर चिल्लाता रहा है, कोई इस पर ध्यान भी नहीं देता। उठा वह। कोई था भी नहीं, एकांत में तोता लटका था। मालिक अपने काम में सराय के भीतर लगा था। उसने धीरे से जाकर तोते का दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खोलकर अपने कमरे में चला गया कि तोता उड़ जायेगा, लेकिन घड़ी-दो घड़ी बाद उसने फिर आवाज सुनी, "स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!"

तो वह बाहर आया, उसने कहा यह जरा अजीब स्वतंत्रता है। दरवाजा खुला है, यह तोता उड़ क्यों नहीं जाता? वह तोता अभी भी पकड़े हुए है सींखचों को भीतर और चिल्ला रहा है, "स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!" उसे बड़ी दया आई। अब तो रात हो गई थी, लोग सोने के करीब हो गये थे, मालिक भी जा चुका था, सो गया होगा। वह बाहर आया यात्री, उसने तोते को निकालने की कोशिश की। तोता उसके हाथ पर चोंचें मारने लगा। उसे लहूलहान कर दिया। और चिल्लाता है, "स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!"

सभी सद्‌गुरुओं के साथ तुमने ऐसा ही किया है। तुम्हें तुम्हारे पिंजड़े से बाहर निकालना आसान बात नहीं है। तुम चिल्लाते हो, "मोक्ष! आनंद! स्वतंत्रता!" मगर कोई निकाले तो तुम लहूलुहान कर दोगे। नहीं तो तुमने जीसस को सूली क्यों दी? और तुमने सुकरात को जहर क्यों पिलाया? ये तुम्हारी आवाज के धोखे में आ गये। तुम चिल्लाते थे स्वतंत्रता, इन्होंने सोचा कि बेचारा...।

फिर भी वद आदमी जिद्दी था; जैसे कि सद्‌गुरु जिद्दी होते ही हैं। तुम लाख लहूलुहान करो, तुम फांसी लगाओ, वे फिर लौट-लौटकर आ जाते हैं। फिर-फिर अवतार हो जाता। तुम उन्हें मार-मारकर भी मार नहीं पाते। उस आदमी ने कोई फिक्र न की तोते की, उसने तो उसे निकालकर फेंक ही दिया बाहर। हाथ तो लहूलुहान हो गया था लेकिन फिर भी वह प्रसन्न था कि चलो, एक जीवन तो मुक्त हुआ। एक को तो स्वतंत्रता मिली।

वह आकर निश्चितता से सो गया। जब सुबह उसकी आंख खुली, वह बड़ा हैरान हुआ। तोता पिंजड़े में बैठा था और चिल्ला रहा था, "स्वतंत्रता! स्वतंत्रता! स्वतंत्रता!" और अभी पिंजड़ा खुला ही पड़ा था। क्योंकि रात से किसीने उसे बंद नहीं किया था।

ऐसी दशा है आदमी की। तुम कहते हो सुख, तुम कहते हो स्वतंत्रता, तुम कहते हो स्वरूपानंद, बाकी तुम...तुम्हें देखकर बात कुछ और ही लगती है। तुम दुख से जकड़ते हो। तुम दुख को पकड़ते हो। तुम दुख को सब तरफ से सुरक्षित करते हो।

यह मुख्तसर सी है यह अश्क दास्ताने फिराक
रही है वख्व मेरी जां गमो मिहन के लिये

जैसे तुम्हारे प्राण दुख के लिये ही सुरक्षित हैं।

बिछाये जाल जो बैठे थे बन गये गुलचीं
यह उनकी फिक्र बड़ी फिक्र है चमन के लिये

और इसीलिए यह घटना घटती है कि जो जालसाज हैं, जो धोखेबाज हैं, जो धूर्त हैं वे समझ लेते हैं कि तुम्हारी असली आकांक्षा तो कारागृह में रहने की है। इसलिए वे तुमसे कहते हैं कि चलो, ये उपाय रहे स्वतंत्र होने के। और तुम्हें ऐसे उपाय देते हैं कि तुम्हारा कारागृह और बड़ा होता चला जाता है। और तुम उनसे बड़े राजी होते हो। तुम्हारी जंजीरों को वे और मजबूत कर देते हैं। तुम्हारे भय को और प्रगाढ़ कर देते हैं। तुम्हारे लोभ को और जलता हुआ बना देते हैं।

और तुम उनसे बड़े प्रसन्न होते हो। तुमने पंडितों-पुरोहितों की पूजा की है और सद्‌गुरुओं को तुमने सदा गाली दी है। पंडित-पुरोहित का तुम्हारे मन में इतना सम्मान क्यों है? और तुम भी भलीभांति जानते हो कि उनके पास कुछ भी नहीं है। न जानोगे कैसे? आंखें तुम्हारे पास भी हैं। कितना ही झुठलाओ। तुम्हारे घर जो आदमी सत्यनारायण की कथा करने आ जाता है उसका सत्य-नारायण से मिलना हुआ है? और सत्यनारायण से मिलना होता तो तुम्हारे घर आकर सत्यनारायण की कथा करता? उस सत्यनारायण की कथा में न तो सत्य

है, न नारायण है, कुछ भी नहीं है।

तुम जिससे यज्ञ करवा लेते हो, हवस करवा लेते हो इसके जीवन में यज्ञ हुआ है? इसके जीवन में कहीं भी तो अग्नि का रंग दिखाई नहीं पड़ता। कहीं वह क्रांति दिखाई नहीं पड़ती। तुम मंदिर-मस्जिदों में जिनके द्वारा प्रार्थना में ले जाये जाते हो, तुमने कभी पूछा, इनकी प्रार्थना फली है? इनकी प्रार्थना हुई है? इन्होंने कभी प्रार्थना की है? तुम्हारा मौलवी कि तुम्हारा पंडित कि तुम्हारा पुरोहित नौकर-चाकर हैं तुम्हारे; परमातमा से उन्हें कुछ भी लेना-देना नहीं है।

मगर उनसे तुम राजी हो। राजी तुम उनसे इसीलिए हो कि वे तुम्हारे कारागृह को बढ़ाते हैं, घटाते नहीं। वे तुम्हें छेड़ते नहीं। तुम स्वतंत्रता की बातें करते रहते हो, वे भी तुम्हें स्वतंत्रता की बातें सुनाते रहते हैं। तुम भी अपना कारागृह बनाते रहते हो, वे भी तुम्हारे कारागृह में ओर चार ईटें जोड़ते रहते हैं।

दरिया कहते हैं, 'पारस परसा जानिये।' पारस के पास आये, इसकी परख क्या?—'जो पलटे अंग-अंग'। समग्ररूपेण क्रांति घटित हो। स्वतंत्रता तुम्हारे जीवन की चर्या बन जाये। 'जो पलटे अंग-अंग।' बुद्धि ही न पलटे, कि खोपड़ी में विचार भर जाये—अंग-अंग! तुम्हारा समग्र रूप बदल जाये। तुम्हारा आमूल व्यक्तित्व बदल जाये—पैर से लेकर सिर तक। शरीर से लेकर आत्मा तक एक ही धुन बजने लगे। एक ही इकतारा। एक ही गीत उमगे और एक ही नृत्य फैल जाये। तुम प्रभु के रंग में रंग जाओ—आमूल, अखंड।

पारस परसा जानिये...

क्या परख कि पारस के पास आये? लोहा सोना हो जाये। अगर लोहा सोना न होता हो तो दो ही कारण हो सकते हैं। या तो जिसको तुमने पारस समझा वह पारस नहीं है या तुम पारस से दूर-दूर हो; पास नहीं आते। पारस भी हो तो तुम पास नहीं आते। दो ही कारण हो सकते हैं।

या तो तुमने जो खोज लिया, सद्‌गुरु नहीं है; तुम्हारे जैसा ही है। तुमसे कुछ भी भिन्न नहीं है। तुम जैसे गर्त में पड़े हो वैसे ही गर्त में पड़ा है। तुम जैसे मोह-माया में हो वैसी ही मोह-माया में पड़ा है। तुम्हारे जीवन में जितने जंजाल हैं वैसे ही उसके जीवन में जंजाल हैं।

तो या तो तुम जिसके पास आ गये हो वह सद्‌गुरु नहीं है; तो तुम कितने ही पास आ जाओ, कुछ फर्क न पड़ेगा। या फिर हो सकता है सद्‌गुरु हो लेकिन तुम पास आने में डर रहे हो। पास आने में डर लगता है। पास आने में बड़ा भय लगता है।

पंडित-पुरोहित के पास आने में कोई भय का कारण नहीं है। तुम जैसे ही

लोग हैं। तुम उन्हें खरीद सकते हो। लेकिन सद्गुरु के पास आने में खतरा है। सद्गुरु तो मृत्यु है। तुम मरोगे। सद्गुरु के पास आये तो तुम मरोगे। गोरख ने कहा है :

मरो, हे जोगी मरो, मरन है मीठा
तिस मरनी मरो जिस मरनी मर गोरख दिठा

ऐसे मरो जैसे गोरख मर गया। ऐसे मर जाओ जैसे मरकर गोरख को दिखाई पड़ा। मरो, मरना है मीठा। मरने से बड़ी और कोई मीठी बात नहीं। यह तो गुरु का पूरा संदेश है कि आओ, मृत्यु में समा जाओ। कि आओ, डूबो, मिटो, गलो, खो जाओ।

मरो, हे जोगी मरो, मरन है मीठा
तिस मरनी मरो जिस मरनी मर गोरख दिठा

और ऐसे मरने की कला गुरु सिखाता है जैसे मरकर उसने देखा। जैसे वह मिटा और पाया, ऐसे वह तुम्हें कहता है, तुम भी मिट जाओ और पा लो। जीसस ने कहा है, जो बचायेगा वह खो देगा और जो खोने को राजी है उसने बचा लिया।

जीवन को पकड़े मत रहो। पकड़ने के कारण ही मौत पास आती है। मौत के साथ रास रचा लो। मौत आलिंगन कर लो, फिर मौत नहीं आती, फिर अमृत ही आता है। फिर अमृत के अतिरिक्त कुछ भी नहीं बचता है।

पारस परसा जानिये जो पलटे अंग-अंग

मगर अंग-अंग तो तभी पलटेगा जब तुम पूरे मर जाओ। तुम कुछ भी बचे तो उतना हिस्सा पुराना रहा। तुम जरा भी बचे तो उतना हिस्सा तो सड़ा-गला रहा, अतीत का रहा। तो पूरे न बदले।

तुम धीरे-धीरे... बड़ी मुश्किल से राजी होते हो। कहते हो धीरे-धीरे, एकेक कदम, थोड़ा-थोड़ा बदलेंगे। मगर थोड़ा-थोड़ा बदलना ऐसा ही है, जैसे कोई सागर में चम्मच-चम्मच रंग डालता रहे। ऐसे कुछ होगा नहीं। हिंमत करो। यह साहसियों का काम है। बात जंच गई हो तो फिर ठहरना क्या; फिर रुकना क्या? बात समझ में पड़ रही हो तो अवसर चूको मत।

पारस परसा जानिये जो पलटे अंग-अंग
अंग-अंग पलटे नहीं तो है झूठा संग

तो संग दो तरह से झूठा हो सकता है। एक : तो जिसका संग किया वह झूठा हो तो झूठा हो जायेगा। और दूसरा : जिसका संग किया वह तो सच्चा हो लेकिन संग ही नहीं किया। दूर खड़े रहे, दीवाल बनाकर खड़े रहे। अपनी सुरक्षा कायम रखी।

बीच में फासला रखा।

मेरे पास जो आते हैं और बिना संन्यस्त हुए चले जाते हैं उन्होंने फासला बचा लिया। आये भी और नहीं भी आये। आये भी और चूक भी गये। आये भी और दूर के दूर रहे। तो उन्हें मौका नहीं मिलेगा।

लोग मुझे लिखते हैं पत्र, मुझसे पूछते भी हैं आकर कि आप जो कहते हैं, हम अगर वही करें और संन्यास न ले तो लाभ नहीं होगा? लाभ होगा मगर परम लाभ नहीं होगा। लाभ तो होगा। कुछ तो करोगे तो कुछ लाभ होगा। मगर अंग-अंग न पलटेगा। ऐसे थोड़े-बहुत यहां-वहां पलस्तर ठीक हो जायेगा। दीवाल कहीं से गिरती थी तो थोड़ा उसमें टेका लगा देना। मगर नया भवन न बनेगा। मंदिर न उठेगा।

इधर नये मंदिर को बनाने की बात चल रही है। हां, तुम्हारे पुराने ही भवन में तुम थोड़ा सा सहारा लगा लोगे। मेरी बातों से कुछ चुन लोगे जो तुम्हारे मकान में सजावट के काम आ जायेंगे। दीवाल दरवाजों पर लिख दोगे वचन। और क्या करोगे? रंग-रोगन कर लोगे घर में। इससे नहीं होगा।

संन्यास का और कुछ अर्थ नहीं है, संन्यास का इतना ही अर्थ है कि तुमने अपनी तरफ से कहा कि मैं तो राजी हूं। जितने पास बुलाओ उतना राजी हूं। मुझे मारना हो तो मार डालो। यह रही गर्दन। यह झुकी गर्दन। उठा लो तलवार और मुझे काट दो। संन्यास का इतना ही अर्थ है कि मैं बेशर्त अपने को छोड़ता हूं।

पारस परसा जानिये जो पलटे अंग-अंग
अंग-अंग पलटे नहीं तो है झूठा संग
पारस जाकर लाइये जाके अंग में आप
क्या लावे पाषान को घस-घस होय संताप

पारस जाकर लाइये--खोजो पारस को। पारस मिल जाये तो खोजो पारस के सत्संग को। पारस मिल जाये तो भागो मत। तो करीब आओ, निकट आओ।

उपनिषद् शब्द का यही अर्थ होता है : गुरु के पास बैठना। गुरु के पास बैठना। उपासना शब्द का भी यही अर्थ होता है : उप आसन। पास बैठ जाना। पास ही आसन जमा देना। उपासना, उपवास, उपनिषद् तीनों का एक ही अर्थ होता है। इतना ही अर्थ होता है कि कहीं कोई दिख जाये पारस तो फिर दांव पर लगा देना।

पारस जाकर लाइये--अगर खोजना ही है, अगर जिंदगी में कुछ सार ही पाना है तो पत्थरों से मत अपनी खोपड़ी घिसते रहो। पारस जाकर लाइये। खोजो पारस। और मिल जाये पारस तो छूने से डरो मत। स्पर्श हो जाने दो।

मिटायेगा स्पर्श। उतनी सावधानी तो पहले से ही ख्याल में ले लेना।

पारस तुम्हें तो बिलकुल मिटा देगा निश्चित ही। अगर लोहा डरता हो कि कहीं मैं मिट न जाऊं तो सोना नहीं बन सकेगा। पारस के पास आकर डरे कि कहीं मेरा लोहा होना न मिट जाये। और चाहे कि मैं सोना भी हो जाऊं और लोहा होना भी न मिटे तो फिर अड़चन है। फिर गणित तुमने बड़ा उलटा पकड़ लिया। लोहे को एक बात तो तय करनी ही होगी कि मैं तो मिटूंगा। लोहे की तरह तो मैं नहीं बचूंगा। अंग-अंग पलट जायेगा। एक कण भी लोहे का नहीं बनेगा। एक अणु भी लोहे का नहीं बचेगा।

तो तुम्हें तो लोहे से तो मोह छोड़ ही देना होगा। और तुम अब तक जो हो, लोहे हो। मगर लोहे की भी तकलीफ तो समझो। तकलीफ उसकी भी बड़ी तार्किक है। लोहा कहता है, मैं इतना ही जानता हूं कि मैं लोहा हूं। इसको भी गंवा दूं! क्या पता सोने का, हो न हो! अब तक मुझे तो ऐसा घटा नहीं है। और-और लोग कहते हैं, सच कहते हों, झूठ कहते हों, क्या पता? भ्रम में पड़े हों क्या पता? मुझे तो घटा नहीं है अभी तक। मुझे तो पता नहीं। तो जो पता नहीं उसके लिये उसे छोड़ दूं जिसका मुझे पता है? तो समझदारी तो कुछ उलटी है। कहावतें कहती हैं कि समझदारी कहती है, हाथ की आधी रोटी बेहतर। आकाश की पूरी रोटी से हाथ की आधी रोटी बेहतर। अठन्नी हाथ की बेहतर, रुपया दूर दिखता है आकाश में उससे तो। क्योंकि जो हाथ में है उसका उपयोग हो सकता है। वह रुपया पता नहीं हो न हो। पता नहीं, तुम पहुंच सको, न पहुंच सको। पता नहीं, पहुंचकर पता चले कि रुपया था नहीं, केवल चमक मात्र थी, धोखा था। या टीन का ठीकरा चमक रहा था।

समझदारी की कहावतें सारी दुनिया में हैं। वे कहती हैं, हाथ का मत गंवा देना। जो हाथ का है उसको तो सम्हाले रखना। उसको सम्हालकर और जो दूर है उसको पाने की कोशिश करना। इस समझदारी से जो चला वह धार्मिक नहीं हो पाता। यह समझदारी बड़ी नासमझी भरी है। यह संसार में तो बड़े काम की है लेकिन सत्य के जगत में जरा भी काम की नहीं है, बड़ी बाधा है। वहां तो बड़ी नासमझी चाहिये। वहां तो बावलापन चाहिये, मस्ती चाहिये।

एक बात देख लो कि तुम्हारे हाथ में है जो, इसका मूल्य क्या है? इसको बचाकर भी क्या बचेगा? लोहा अगर बच भी रहा तो लोहा ही रहना है। बचकर भी तो कुछ न बचेगा। तो लो जोखम। लोहे से तो और बदतर क्या हो सकोगे? अगर पारस झूठा रहा तो तुम लोहा तो बचोगे ही, कोई हर्जा नहीं है। अगर पारस सच्चा हुआ तो सोना हो जाओगे। इसमें कठिनाई क्या है? पास जाने में भय क्या है?

और जो लोहे की अड़चन है वही तुम्हारी भी अड़चन है। वही सबकी अड़चन है। तुम चाहते हो, मैं जैसा हूं वैसा ही बचा रहूं और सद्गुरु से मिलना भी हो जाये। यह नहीं हो सकता। यह नहीं हुआ कभी। यह नहीं होगा कभी। यह जीवन का नियम नहीं है।

पारस जाकर लाइये जाके अंग में आप

जिसके अंग-अंग में आब है, जौहर है; जिसके अंग-अंग में ज्योति है, जिसका दीया जल गया है, जहां परम ज्योति ने निवास किया है, ऐसे जलते दीये को खोजो।

पारस जाकर लाइये जाके अंग में आप
क्या लाइये पाषान को घस-घस होय संताप

पत्थर को लेकर आ भी गये और खूब घिसा भी अपने लोहे पर तो भी कुछ न होगा, सिर्फ संताप होगा। यह बात भी बड़ी मीठी है। और बड़ी अर्थपूर्ण है।

तुम्हारे पंडित-पुरोहित के कारण तुम्हारे जीवन में संताप बढ़ा है, घटा नहीं। तुम्हारी जिंदगी इनके बिना ज्यादा सुखद हो सकती है। इनके कारण तुम्हारी जिंदगी बड़ी उलझन से भर गई है, बड़े विषाद से भर गई है। ये किसी चीज में तुम्हें रस भी नहीं लेने देते। परम रस की तरफ तो जाने नहीं देते और यहां की किसी चीज में रस नहीं लेने देते। संसार की ये खिलाफत करते हैं और परमात्मा की तरफ जाने का न इनको कुछ रास्ता पता है, न ये गये हैं, न तुम्हें ले जा सकते हैं। ये तुम्हें बड़ी विडंबना में डाल जाते हैं। ये तुम्हें त्रिशंकु बना देते हैं।

ये संसार में तो तुम्हें खराब कर देते हैं। ये कहते हैं, पत्नी? इसमें क्या रखा है? मांस-मज्जा-हड्डी, कफ-वात-पित्त! पत्नी में कुछ रखा नहीं। परमात्मा का कुछ पता देते नहीं, पत्नी में कुछ रखा नहीं। पति में क्या रखा? मल-मूत्र की थैली है। पति मल-मूत्र की थैली हो गये और परमात्मा का कुछ पता नहीं। बेटे-बच्चे, इनमें क्या रखा है? यह तो दो दिन का खेल है। ये तो अभी हैं, अभी नहीं है। इनमें मोह मत लगाना।

मोह कहां लगाना? मोह को कोई दिशा चाहिये। मोह के लिये कोई मार्ग चाहिये। उसे कहां ले जायें? परमात्मा की पूछें तो इनको भी पता नहीं है। ये सारे संसार की निंदा तो कर देते हैं। निषेध से तो भर देते हैं मन को, नकार से तो भर देते हैं और अकार का कुछ हिसाब नहीं है। तुम जो भी करते हो, सब गलत है इनके हिसाब से। सही क्या है? तो गलत.... गलत.... गलत। सब गलत

कर दिया।

तो तुम्हें सब जगह से मुश्किल में डाल दिया। भोजन करो तो दिक्कत क्योंकि स्वाद पाप है। गांधीजी के आश्रम में अस्वाद का व्रत दिलवाते थे कि भोजन तो करना लेकिन स्वाद नहीं लेना। आदमी को क्यों सताते हो? घस-घस होय संताप! अब महात्मा गांधी का पत्थर लेकर घिसते रहो अपनी खोपड़ी पर तो संताप पैदा होगा। मैंने तो एक गांधीवादी को आनंदमग्न नहीं देखा। घिसते रहो, संताप पैदा होगा। स्वाद में स्वाद मत लेना। अस्वाद का व्रत लो।

जो जानते हैं वे कहेंगे, स्वाद में इतना स्वाद लो कि परमात्मा का स्वाद बन जाये। अन्नं ब्रह्म - यह जाननेवालों ने कहा है। यह ज्ञानियों ने कहा है। अन्न में ब्रह्म छिपा है। स्वाद मत लो.... ये पत्थर मिल गये तुम्हें। अब इनसे घस-घस बहुत संताप होगा। ये हर चीज के खिलाफ हैं। ये किस चीज के पक्ष में हैं यह तो कुछ पता नहीं, मगर हर चीज के खिलाफ जरूर हैं। ये तुम्हें बड़ी दुविधा में छोड़ जाते हैं। जो जीवन के सामान्य सुख हैं उनके प्रति तुम्हें बड़ी तिक्तता से भर देते हैं। और जो जीवन का परम सुख है उसकी तरफ इशारा नहीं हो पाता। तो तुम हो गये धोबी के गधे--घर के न घाट के। अटक गये बीच में। ऐसी अटकी स्थिति तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी और महात्माओं की है।

एक जैन मुनि ने मुझे कहा कि मैं पचास साल से मुनि हूं--सत्तर साल के करीब उनकी उम्र है--और मुझे कोई आनंद वगैरह, आत्मानंद वगैरह तो कुछ मिला नहीं। अब मैं क्या करूं? और जो भी मुझे कहा गया.... वे आदमी भले हैं। भले न होते तो वे इतनी ईमानदारी की बात नहीं कह सकते थे। प्रामाणिक हैं। सच में ही खोजी हैं, धोखेबाज नहीं हैं। धोखेबाज तो यह बात कहेंगे ही नहीं कि हमको नहीं मिला। यह कहकर और अपनी दुकान खराब करवानी है कि हमको नहीं मिला? ईमानदार आदमी हैं। सच्ची बात तो स्वीकार की।

पचास वर्ष से जो उन्होंने किया उसे बड़ी निष्ठा से किया है इसलिए यह कोई भी नहीं कह सकता कि तुम्हारे करने में भूल है, इसलिए नहीं मिला आनंद। बड़ी निष्ठा से किया है। जिस संप्रदाय के वे माननेवाले हैं उस संप्रदाय की एकेक बात नियम से पूरी की है, रत्ती-रत्ती पूरी की है। इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है। अब सत्तर साल की उम्र होते हुए जब मौत करीब आने लगी तो उनको भी तो अड़चन शुरू होती है। पचास साल गंवा दिये। सारी जिंदगी हाथ से बहा दी और सुख तो अभी तक जाना नहीं। और अब यह मौत करीब आ रही है।

तो एक संदेह भी मन में उठता है। उन्होंने मुझसे कहा कि और किसीसे तो कह नहीं सकता, आपसे कह सकता हूं। एक संदेह भी मन में उठता है कि कहीं

मैंने भूल तो नहीं की? यह संन्यास लेकर मैंने भूल तो नहीं की? कभी-कभी मेरे मन में यह विचार उठने लगता है, रात पड़े-पड़े एकांत में यह ख्याल आने लगता है कि कौन जाने, संसार में ही रहता तो ठीक होता। बीस साल का था तब घर छोड़ दिया था। तब जिंदगी बहुत कुछ जानी न थी। मां मर गई, पिता मुनि हो गये। अक्सर लोग ऐसे ही मुनि होते हैं। अब कुछ उपाय न रहा। एक ही बेटा था बीस साल का। जब पिता मुनि हो गये और मां मर गई तो मां के मरने का दुख और पिता का तत्क्षण मुनि हो जाना ...बेटे ने सोचा, मैं भी क्या करूं? वे भी दीक्षा ले लिये।

निष्ठा से पचास साल बिताये। जो भी कहा उसे किया। मैं उन्हें भलीभांति जानता हूं। उनकी निष्ठा पर मुझे जरा भी संदेह नहीं है। उन्होंने नियम में कोई उल्लंघन किया हो ऐसा मुझे भी नहीं लगता। इसलिए बात और मुद्दे की हो जाती है और महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि उनका गुरु भी उनसे नहीं कह सकता कि तुमने कुछ गलती की। गलती तो बता नहीं सकते। एकेक बात को गणित के पूरे नियम को उन्होंने पालन किया है।

फिर कहां चूक हो गई? और अब पचास साल बीत जाने के बाद मन में यह शंका उठती है। तुम उनका कष्ट समझोगे? उनका संताप तुम्हें समझ में आता? घस-घस होय संताप। पचास साल घसे, अब संताप बहुत गहन हो रहा है। घाव रह गये हैं मन पर। संसार तो गया, इसे भोगा नहीं। कौन जाने उसी भोग में असली बात थी। कौन जाने! कौन जाने दूसरे ही ज्यादा मजे में हैं, मैं ही नासमझ बन गया।

और अक्सर तुम पाओगे कि कभी-कभी संसारी तुम्हें मुस्कुराता मिल जाये। कभी-कभी संसार के चेहरे पर तुम्हें थोड़ा ओज भी मिल जाये--कभी-कभी! लेकिन तुम्हारे तथाकथित महात्मा तो बिलकुल मुर्दा हैं। संसारी के चेहरे पर भी कभी-कभी जो चमक आती है और कभी जो मुस्कुराहट के फूल खिलते हैं वे तुम्हारे महात्माओं के चेहरों पर कभी नहीं खिलते। वे कभी तुम्हारे महात्माओं के चेहरों पर नहीं दिखाई पड़ते। उनकी आंखें बिलकुल बुझी हुई हैं। उनमें कोई भीतर ज्योति जलती नहीं दिखाई पड़ती। ये मंदिर बिलकुल खाली पड़े हैं।

तो इनको भी तो दिखाई पड़ता होगा कि संसारी भी कभी-कभी प्रसन्न होते हैं। मान लिया उनकी प्रसन्नता क्षणभंगुर है; क्षणभंगुर ही सही, मगर कभी तो होती है। यहां तो कुछ भी नहीं हुआ। शाश्वत के पीछे क्षणभंगुर भी गया और शाश्वत हुआ नहीं; यह है संताप।

दरिया ठीक कहते हैं,

पासर जाकर लाइये जाके अंग में आप
क्या लावे पाषान को घस-घस होय संताप

तो ऐसे व्यक्तियों से बचना, जो तुम्हारे जीवन को नकार से भरते हों, निषेध से भरते हों। जो कहते हैं, यह गलत, यह गलत, यह गलत। ऐसे व्यक्तियों से बचना, ये सद्गुरु नहीं हैं। सद्गुरु गलत की तो बात ही नहीं करता। सद्गुरु तो कहता है, यह सही। इसे कर। सद्गुरु कहता है, अंधेरे से मत लड़, दिया जला। दिया जल गया, अंधेरा गया। सद्गुरु कहता है, विधायक को पकड़। क्षण-भंगुर को मत छोड़, शाश्वत को खोज। जैसे-जैसे शाश्वत हाथ में आने लगेगा, क्षणभंगुर अपने से छूटता जाता है। जिसे असली हीरे–जवाहरात मिल गये वह कंकड़-पत्थर लिये चलेगा अपनी झोली में? कौन वजन ढोता फिर? उतना ही वज़न ढोना है तो उतने वजन में तो हीरे–जवाहरात का बजन ढो लेंगे। जब वजन ही ढोना है तो हीरे-जवाहरात का ढोयेंगे। कंकड़-पत्थर का कौन ढोयेगा?

छोड़ना नहीं पड़ता संसार। सद्गुरु के साथ संसार छोड़ना नहीं पड़ता। सद्गुरु के साथ संसार छूटता है। असद्गुरु के साथ संसार छोड़ना पड़ता है और परमात्मा कभी मिलता नहीं। अंधेरे से लड़ाई बहुत होती है और आखिर में चारों खाने चित्त पड़े पाये जाते हो। घस–घस होय संताप। दिया कभी जलता नहीं। यह दिया जलाने का कोई ढंग ही नहीं।

दरिया बिल्ली गुरु किया उज्जल बगु को देख
जैसे को तैसा मिला ऐसा जक्त अरु भेख

कहते हैं, बिल्ली ने गुरु किया। अब बिल्ली गुरु करे! कहते हैं न, कि सौ-सौ चूहे खाये बिल्ली हज को चली! मगर सौ चूहे खाकर जो बिल्ली हज को जायेगी उसका हज भी चूहों की ही तलाश होगी। शायद वहां हजी चूहे मिल जायें, बड़े चूहे मिल जायें, धार्मिक चूहे मिल जायें।

मैंने सुना है एक बिल्ली. . . अभी–अभी इंग्लैण्ड की महारानी का जलसा हुआ न! तो एक बिल्ली भी हिंदुस्तान से गई जलसा देखने। बिल्लियों ने भेजा। आदमी भी भेज रहे हैं अपने प्रतिनिधि, मोरारजी देसाई गये, बिल्लियों ने कहा कि हम भी अपने प्रधानमंत्री को भेजते हैं। तो उन्होंने अपने प्रधानमंत्री को भेज दिया होगा।

स्वागत-समारंभ में सम्मिलित हुई। जब लौटकर आई तो लोगों ने पूछा क्या देखा? उसने कहा, गजब की बात देखी। रानी की कुर्सी के ठीक नीचे बड़ा चूहा बैठा था। बिल्ली को और दिखाई भी क्या पड़े? रानी में क्या रस बिल्ली को! रानी में क्या रखा! सिंहासन के ठीक नीचे एक चूहा बैठा है। बड़ा चूहा।

शाही चूहा! दिल प्रसन्न हो गया। हज को भी जायेगी बिल्ली तो हजी चूहों को खोजने जायेगी। और क्या करेगी?

कहते हैं दरिया, 'दरिया बिल्ली गुरु किया।' तो उसने अपनी ही बुद्धि से तो करेगी न! और तो बुद्धि लाये भी कहां से? समझना थोड़ा क्योंकि तुम्हारे जिंदगी का ही यह सवाल है। यह बिल्ली का सवाल नहीं है। यह तुम्हारी बुद्धि का ही सवाल है। तुम्हारी बुद्धि जब गुरु करेगी तो तुम भूल में पड़ोगे। क्यों भूल में पड़ोगे? क्योंकि तुम्हारी बुद्धि ही तुम्हें भटकाती रही है अब तक। उसी बुद्धि से गुरु करोगे; और कहां से लाओगे?

तुम्हें बड़ी अड़चन मालूम होगी कि यह तो बड़ी झंझट की बात है। इसी बुद्धि ने भटकाया जन्मों-जन्मों तक। इसी बुद्धि ने संसार में भटकाया। इसी बुद्धि ने धन में भटकाया, पद में भटकाया, लोभ, मोह, तृष्णा सब में भटकाया। अब यही बुद्धि तुम्हारे पास है। और तो तुम्हारे पास कोई बुद्धि है नहीं। इसी बुद्धि से गुरु करोगे। इसी बुद्धि से तो परखोगे न! और यह बुद्धि ही तुम्हारा जाल है। यही तुम्हारा उपद्रव है। इसी बुद्धि ने तो तुम्हें सारे भ्रम खड़े करवाये। तो अब यह तुम्हें आखिरी भ्रम भी करवायेगी। तुम गलत गुरु को ही चुनोगे।

समझो, कैसे घटना घटती है। तुम धन के पीछे दीवाने हो। तुमने धन के पीछे सब कुछ जिंदगी लगा दी। अब तुम धन से ऊब गये हो, धन से परेशान हो गये हो। तो तुम कैसा गुरु चुनोगे? अब तुम ऐसा गुरु चुनोगे, जो पैसा भी न छूता हो। जिसके पास पैसा ले जाओ तो सांप-बिच्छू की तरह उचककर खड़ा हो जाये कि यह तुमने क्या किया? कामिनी-कांचन! पैसा मेरे पास ले आये?

तुम स्त्री के पीछे दीवाने रहे हो। अब तुम ऐसा गुरु चुनोगे जो स्त्री को देखता ही न हो। तुम स्वामी नारायण संप्रदाय के गुरु के शिष्य हो जाओगे। चालीस साल मे स्त्री नहीं देखी उन्होंने। ये जंचते हैं। यह बात जंचती है। अभी वे भी इंग्लैण्ड गये तो हवाई जहाज पर विशेष इंतजाम करना पड़ा। पर्दे लगाये गये उनकी कुर्सी के चारों तरफ। एयर होस्टेसेस अप्सरायें! कोई दिखाई पड़ जायें तो झंझट खड़ी हो जाये। चालीस साल से उन्होंने स्त्री नहीं देखी। लंदन एयरपोर्ट पर बंद गाड़ी में उनको निकाला गया। एयरपोर्ट पर थोड़ी देर रुकना पड़ा सामान इत्यादि की जांच-परख के लिये तो वहां भी पर्दा लगाकर एक कुर्सी पर उनको बिठाया गया।

इस मूढ़ता पर सारी दुनिया हंसती है। ज्युबिली समारोह चल रहा था महारानी का–जिसमें बिल्ली भाग लेने गई थी––मगर वे तो देख नहीं सकते क्योंकि रानी स्त्री है। टी वी पर भी नहीं देख सके। मगर मन तो आदमी का ही,

बिल्ली का मन, देखने को मन तो था ही। मगर रानी है स्त्री इसलिए देख तो सकते नहीं टी. वी. पर। तो क्या किया उन्होंने ? एक कमरे में बैठ गये, दूसरे कमरे में बैठे सुन रहे हैं। मन तो बिल्ली का ही है। मगर देख भी नहीं सकते। तस्वीर भी नहीं देख सकते।

यह कैसा भय ? यह कोई मुक्ति हुई ? यह तो महाबंधन हो गया। यह तो रुग्णता हो गई। यह तो चित्त विषाक्त हो गया। स्त्री में परमात्मा दिखाई पड़ने लगे यह तो समझ में आनेवाली बात है। लेकिन स्त्री में ऐसा भय समा जाय तो एक ही अर्थ होता है कि कामविकार बहुत बढ़ गया। इन सज्जन को मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। इनका इलाज होना चाहिये। इन पर कोई दया करे। इनकी खोपड़ी अत्यंत विकार से भरी है।

मगर तुम जिंदगी भर अगर स्त्री के पीछे दीवाने रहे हो और स्त्री से परेशान हुए हो—कौन नहीं परेशान होता स्त्री से ? परेशान तुम होता हो यह सच है। स्त्री की झंझट उठाई वह भी सच है। स्त्री तुमसे परेशान हो चुकी है; उसने भी झंझट उठा ली है। तो ऐसे गुरु को तुम जल्दी चुन लोगे कि हां, यह रहा गुरु। यह तुम्हारे जिंदगी भर की जिस बुद्धि ने तुमको भटकाया है वही बुद्धि चुनने का रास्ता बता रही है। वह कह रही है, यह है गुरु। इसको चुन लो। अब तुम एक बड़ी भूल में पड़ रहे हो। तुम्हारा संसार भी भ्रांति से भर गया, अब यह गुरु भी तुम्हारी भ्रांति का ही हिस्सा है। उलटा, मगर है तुम्हारी भ्रांति का ही हिस्सा।

'दरिया बिल्ली गुरु किया'.......तो स्वभावतः बिल्ली ने सोचा, बिल्ली रही होगी काली। तो उसने सोचा कि 'उज्जल बगु को देख'......देखा बगुले को शुभ्र, उसने कहा यह है गुरु के योग्य। काली बिल्ली। कालेपन से थक गई और अब जानने लगी कि कालापन तो सिर्फ चूहों को पकड़ता है और कुछ करता नहीं। सफेद ! यह शुभ्र बगुला खड़ा था, यह जंचा। मगर उसको पता नहीं कि यह बगला भी वहां जो खड़ा हुआ है ध्यानस्थ, ये मछलियों को पकड़ने खड़े हुए है। ये बिल्ली से भी पहुंचे हुए पुरुष हैं। इनका जो ध्यान इत्यादि लगाये खड़े हैं, यह कोई ध्यान वगैरह नहीं है। ये जो एक पैर पर खड़े हुए हैं यह कोई योगासन वगैरह नहीं है। ये जो बिलकुल बिना हिले-हुले खड़े हैं महाराज, ये बिल्ली से ज्यादा पहुंचे हुए हैं। ये मछली की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ये निष्कंप खड़े हैं सिर्फ इसीलिए कि पानी की मछली जरा भी हलन-चलन हो जाये तो भाग जाती है। नजर मछली पर गड़ी है। मगर इनको देखकर बिल्ली को धोखा आ जाये तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

तुम्हारे मन की बिल्ली भी ऐसे ही बगुलों के धोखे में आ जाती है।

दरिया बिल्ली गुरु किया उज्जल बगु को देख

जैसे को तैसा मिला ऐसा जक्त अरु भेख

फिर जैसे को तैसा ही मिल जाता है। जैसा भक्त वैसा गुरु। फिर तो बड़ी अड़चन की बात उठी। फिर तो बड़ा सवाल उठेगा तो फिर चुनना कैसे? चुनने को तो एक ही उपाय है तुम्हारे पास तुम्हारी बुद्धि। और वह काम की नहीं है। फिर चुनना कैसे ?

इसलिए समस्त जगत के जो गहरे शास्त्र हैं वे कहते हैं, शिष्य गुरु को नहीं चुनता, गुरु शिष्य को चुनता है। गुरु ही चुन सकता है, शिष्य कैसे चुनेगा ? शिष्य तो अपने को सिर्फ समर्पण कर सकता है। कह सकता है, मैं मौजूद हूं। अगर आपकी मर्जी हो तो मुझे चुन लें। अगर मुझे योग्य पायें तो मुझे चुन लें। अगर मुझमें कुछ दिखाई पड़ता हो तो मुझे कुछ रास्ता सुझा दें। अगर मुझमें कोई भी कहीं फीकी सी भी संभावना हो तो उसे जगा दें। यह रहा मैं मौजूद। मेरा जो करना हो, कर लें। मैं तो यह भी नहीं कह सकता कि मुझे चुन लें। मैं तो आपको चुनूं यह बात भी कैसे कर सकता हूं ? यह भी दंभ की बात होगी।

इसलिए मेरे पास दो तरह के लोग संन्यास लेते हैं एक संन्यास लेनेवाला वह होता है, जो कहता है मैं सोचूंगा। सोच-विचारकर कि आपसे संन्यास लेना, दीक्षा लेनी की नहीं ? फिर निर्णय करूंगा। यह आदमी जिस दिन निर्णय करेगा वह निर्णय इसीका होगा। और इसके निर्णय में बुनियादी भूल रह जानेवाली है। अगर यह तय करेगा कि नहीं संन्यास लेना तो किसी गलत कारण से तय करेगा। अगर यह तय करेगा कि संन्यास लेना तो भी गलत कारण से तय करेगा। यह गलत कारण से ही तय कर सकता है। इसके सभी निश्चय और निष्पत्तियां गलत होंगे। इसकी बुद्धि से सही तो उमगता ही नहीं। उमग ही नहीं सकता। नहीं तो कभी का यह परमात्मा को उपलब्ध हो जाता। इसी बुद्धि पर इसका अभी भी भरोसा है। यह कहता है मैं तो इसी बुद्धि.... यही है मेरे पास। मैं सोचूंगा, विचारूंगा।

जब तुम कहते हो, मैं सोचूंगा, विचारूंगा, क्या कहते हो तुम ? किससे सोचोगे ? किससे विचारोगे ? तुम्हारे पास क्या है ? जो परम संन्यासी है वह दूसरे ढंग से....। वह आकर कहता है कि मैं यह रहा। अगर आप स्वीकार कर लें तो स्वीकार कर लें। आप इन्कार कर दें तो रोता हुआ लौट जाऊंगा। मुझे दे दें अगर लगता हो कि मैं योग्य हूं। लगता हो कि कभी योग्य बन सकता हूं तो मुझे दे दें। यह परम संन्यासी है।

तुम गुरु को चुन नहीं सकते। तुम सिर्फ गुरु को मौका दे सकते हो कि तुम्हें चुन ले। इस भेद को खूब समझ लेना। यह भेद बड़े अर्थ का है। सदा सद्गुरु चुनता। जब शिष्य तैयार होता तो सद्गुरु मौजूद हो जाता है।

और तुम यह दंभ करना मत कि मैं चुनूंगा । मैंने चुना तो मैं बना रहा। तुमने अगर यह भी कहा कि मैं समर्पण करता हूं तो समर्पण नहीं है यह । क्योंकि मैं कैसे समर्पण करेगा ? समर्पण का तो अर्थ होता है, मैं नहीं रहा । यह रहा मेरा होना, आप कुछ कर लें । कुछ उपाय हो सके तो लगा दें । आप जहां जायें, जहां ले जायें, चलूंगा । आपकी मर्जी अब से मेरी मर्जी है । अब तक मैंने अपनी बुद्धि पर भरोसा किया, आज से आपके विवेक पर भरोसा करता हूं; आज से आपकी जागरूकता पर भरोसा करता हूं । इसका नाम श्रद्धा ।

श्रद्धा तुम्हारी बुद्धि की निष्पत्ति नहीं है । श्रद्धा का अर्थ है, तुम अपनी बुद्धि से थक गये । और तुमने कहा, हाथ जोड़े, नमस्कार । अपनी बुद्धि को नमस्कार कर लिया, उस दिन श्रद्धा का जन्म होता है । और श्रद्धा ही सद्गुरु को चुन पाती है ।

जैसे को तैसा मिला ऐसा जक्त अरु भेख
साध स्वांग अस आंतरा जेता झूठ अरु सांच
मोती-मोती फेर बहु इक कंचन इक कांच

कहते हैं दरिया, 'साध स्वांग अस आंतरा।' असली साधु में और स्वांगी साधु में बड़ा अंतर है । साध स्वांग अस आंतरा...' बहुत अंतर है । ऐसा अंतर है, 'जेता झूठ अरु सांच।' जितना झूठ और सच में अंतर है, इतना ही अंतर है।

असली साधु कौन ? असली साधु वह, जिसने जाना, जिसने अनुभव किया, जो प्रभु में डूबा और पगा, जो अपने भीतर शून्य हुआ और शून्य होकर जिसने पूर्ण को अपने भीतर विराजमान होने के लिये जगह दी । सत्य जिनके भीतर आ गया वही साधु । सत्य जिसके भीतर जीवंत हो उठा वही संत । इसलिए तो संत कहते हैं उसको । उसके भीतर सत प्राणवान हो उठा ।

लेकिन बाहर से साधु बनना भी बड़ा आसान है; सच में तो वही आसान है । महावीर नग्न खड़े हैं, इसलिए नहीं कि नग्न होने से कोई साधु होता है । नहीं तो सभी साधु नग्न होते । फिर राम भी नग्न होते, कृष्ण भी नग्न होते और क्राइस्ट भी और मोहम्मद भी और बुद्ध भी और कपिल भी और कणाद भी। मगर ये कोई नग्न नहीं हैं, महावीर नग्न खड़े हैं ।

तो नग्न होने से कोई साधु नहीं होता । जब महावीर साधु हुए तो उन्हें सहज ही नग्नता उत्पन्न हुई । वे निर्दोष हो गये बच्चे की भांति । जिन्होंने महावीर को माना उन्होंने बड़ी भूल कर ली । भूल कहां कर ली ? अगर उन्होंने महावीर को अपनी बुद्धि से माना तो वे यह निष्पत्ति लेंगे कि नग्न होने से महावीर को ज्ञान उत्पन्न हुआ, हम भी नंगे ही जायें ।

यह तो बुद्धि की बात हुई । सीधा गणित हो गया । देखा, जांचा, परखा कि महावीर नग्न हो गये हैं, ज्ञान को उपलब्ध हो गये; मौन रहते हैं, ज्ञान को उपलब्ध हो गये; मुश्किल से कभी-कभी भोजन लेते जाते हैं, ज्ञान को उपलब्ध हो गये । गणित बिठा लिया पूरा । तो अब हम भी कभी-कभी भोजन लेंगे, ज्यादा उपवास करेंगे, चुप रहेंगे, बोलेंगे नहीं, नंगेरहेंगे, धूप-ताप सहेंगे । खड़े रहेंगे जंगलों में ।

खड़े हो जाओ । भूखे रहो, उपवास करो, नंगे रहो, कुछ भी न होगा। सिर्फ घस-घस होय संताप । और महावीर सद्गुरु थे । मगर तुम चूक गये । तुमने अपनी बुद्धि से निष्कर्ष लिया । तुमने समर्पण न किया । तुमने अगर समर्पण किया होता तो तुम्हें एक बात दिखाई पड़ती, महावीर का बहिरंग न दिखाई पड़ता, महावीर के अंतरंग से जोड़ हो जाता ।

तुम अपने बुद्धि से जैसे ही टूटे कि तुम्हारे भीतर छिपी हुई एक और गहन बुद्धि है, प्रज्ञा जिसको कहते हैं, उसका आविर्भाव होता है । तुम्हारे भीतर एक अंतर्दृष्टि का जन्म होता है । तब तुम देखते कि महावीर के भीतर कुछ घटा है । समाधि घटी है, सत्य घटा है । उस घटने के कारण बाहर की घटनायें आई है ? बाहर की घटनाओं के कारण भीतर की घटना नहीं घटी है, भीतर की घटना के कारण बाहर की घटना घटी है ।

और प्रत्येक को बाहर की घटना अलग-अलग घटती है । भीतर की घटना तो एक है । भीतर का तो प्राण एक है । भीतर का सत्य तो एक है लेकिन बाहर अलग-अलग होगा । मीरा गाई और नाची । अब महावीर न नाचे और न गाये । वह उनके व्यक्तित्व का अंग न था । घटना तो एक ही घटी । भीतर तो एक ही सत्य उमगा, एक ही कमल खिला । लेकिन जब मीरा के भीतर खिला तो मीरा स्त्री थी । नाच उसे सुगम था । भीतर का कमल खिला तो अब कैसे प्रगट करें ? उसने नाचकर प्रगट किया । वह मदमस्त होकर नाची । लोकलाज छोड़ी । दीवानी हो गयी ।

सत्य तो वही महावीर को भी घटा लेकिन महावीर पुरुष हैं, क्षत्रिय । एक अलग ढंग की व्यवस्था में उनका व्यक्तित्व निर्मित हुआ है । उसमें नाचगान का अंग नहीं है। महावीर के लिये नाच-गान नहीं घटा । जीसस एक ढंग से, मोहम्मद और ग ढंसे, कृष्ण और तीसरे ढंग से ।

जब भी कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होता है, इसे स्मरण रखना, दो सत्य को उपलब्ध व्यक्तियों का बहिरंग एक सा नहीं होता; सिर्फ असत्यवादियों का बहिरंग एक सा होता है । तुम पांच सौ जैन मुनि एक से पा सकते हो, मगर पांच

सौ महावीर एक से पाओगे ? तुम हजार हिंदू संन्यासी एक से पा सकते हो लेकिन हजार शंकराचार्यों को एक से पाओगे ? दो तो पा लो। इन शंकराचार्य की बात नहीं कर रहा हूं--पुरी के और द्वारका के, इनकी बात नहीं कर रहा हूं। इनको तो तुम हजार पा सकते हो। मैं आदि शंकराचार्य की बात कर रहा हूं। वे शंकर तो एक ही बार होते हैं। वह घटना तो एक ही बार घटती है।

और फिर भी स्मरण रखना कि जो शंकर के भीतर घटता, बुद्ध के, महावीर के, वह एक ही है। घटना एक ही है। ऐसा ही समझो कि तुमने बहुत ढंग के पात्र फैलाकर बगीचे में रख दिये और वर्षा हुई। पानी सब पात्रों में गिरा, एक ही गिरा लेकिन कोई पात्र एक ढंग था तो पानी ने वही ढंग उसमें ले लिया। गिलास का था तो गिलास के रूप का हो गया। घड़ा था तो घड़े के रूप का हो गया। थाली थी तो पानी थाली के रूप का हो गया। पानी तो एक बरसा लेकिन जिसमें बरसा वे व्यक्तित्व के पात्र अलग-अलग थे।

महावीर के पास एक पात्र था, कृष्ण के पास दूसरा पात्र था। और परमात्मा एक जैसे पात्र दो बार बनाता नहीं। परमात्मा कोई फोर्ड कंपनी थोड़े ही है कि एक सी कारें बनाता चला जाये। परमात्मा प्रत्येक बार नया अनूठा निर्मित करता है। परमात्मा अद्वितीय है, मौलिक है, सदा मौलिक है। तुम जैसा व्यक्ति न तो पहले उसने बनाया न फिर कभी बनायेगा। सांचे उसके पास हैं ही नहीं। बिना सांचे के बनाता है। इसलिए हर व्यक्ति अनूठा है।

लेकिन जब तुम बाहर से निर्णय लोगे तो अड़चन में पड़ जाओगे क्योंकि बहिरंग तो अलग-अलग है। तुमने महावीर को बाहर से देखा तो नंगे खड़े हो जाओगे। बुद्ध को देखा तो एक चादर लपेटकर बैठ जाओगे। कृष्ण को देखा तो बांसुरी लगाकर मोर-मुकुट बांधकर खड़े हो जाओगे। वह नाटक होगा--रासलीला। कुछ अर्थ नहीं होनेवाला उससे। झूठा होगा सब। राम को देखा, लेकर धनुषबाण खड़े हो गये। तो रामलीला शुरू होगी, राम का असली जीवन नहीं। यह नाटकीय होगा। इससे सावधान रहना।

जब तुम गुरु के पास जाओ तो अपनी बुद्धि से निर्णय मत करना। अपनी बुद्धि को उससे चरणों में रख देना। उस पर छोड़ देना निर्णय कि अब तू कह; अब तू चला। और बेशर्त छोड़ देना। ऐसा नहीं कि फिर हम सोचेंगे कि करना कि नहीं। तुम कहोगे वह तो ठीक, सुन लेंगे, फिर हम सोचेंगे कि करना कि नहीं। अगर सोचना तुम्हीं को है तो निर्णायक तुम्हीं रहोगे।

साध स्वांग अस आंतरा जेता झूठ अरु सांच
मोती-मोती फेर बहु इक कंचन इक कांच

मोती-मोती एक जैसे ऊपर से दिखाई भी पड़े तो भी धोखे में मत पड़ना। उसमें कोई कांच का टुकड़ा होता है, कोई असली होता है।

पांच सात साखी कही पद गाया दस दोय
दरिया कारज ना सरे पेट-भराई होय

और यह मत समझ लेना कि पांच-सात साखी कह दी तो संत हो गये; कि पांच-सात पद बना लिये तो संत हो गये। "पद गाया दस दोय--" कि भजन बना लिये दो-चार और समझे कि संत हो गये।

'दरिया कारज ना सरे...।' ऐसे तो कुछ होगा नहीं। ऐसे ऊपर-ऊपर की बातों से कुछ न होगा। पेट-भराई हो सकती है। तुम्हारे तथाकथित महात्मा पेट-भराई ही करते हैं और कुछ नहीं करते। तुम एक ढंग से करते हो पेट-भराई, वे दूसरे ढंग से करते हैं, बस।

बड़ के बड़ लागे नहीं, बड़ लागे बीज
दरिया नान्हा होयकर रामनाम गह चीज

प्यारा वचन है। बड़ा मधुसिक्त। कंठ अमृत से भर जाये ऐसा वचन है। 'बड़ के बड़ लागे नहीं--" तुमने कभी बड़ में बड़ को लगते देखा? बड़ में तो बीज लगता है, फिर बीज से बड़ होता।

तो तुम अगर गुरु के पास अगर गुरु होकर गये तो संग-साथ नहीं हो पायेगा। गुरु के पास तो बीज होकर गये तो लगोगे। बड़ी अद्भुत बात है; 'बड़ के बड़ लागे नहीं बड़ के लागे बीज।' गुरु के पास तो छोटे होकर जाना। निरहंकार शून्य भाव से जाना। बीज जैसे होकर जाना तो गुरु सब तुममें उंड़ेल देगा। लेकिन अगर तुम अकड़कर गये, बड़े होकर गये, गुरु होकर गये, अपना ज्ञान लेकर गये, अपनी संपदा दिखाते हुए गये, अपनी अकड़ खोयी नहीं तो चूक जाओगे।

बड़ के बड़ लागे नहीं बड़ के लागे बीज
दरिया नान्हा होकर रामनाम गह चीज

यह जो रामनाम की चीज है, यह जो बहुमूल्य सत्व है, यह जो रामनाम की सुरति है, अगर गुरु से लेनी हो तो बीज बन जाओ, छोटे हो जाओ; तुममें पोर देगा। फिर तुमसे भी वृक्ष उठेगा तुम भी बड़वृक्ष बनोगे। जो एक बार ठीक से सद्शिष्य बन गया वह किसी दिन सद्गुरु बनेगा। लेकिन जो सद्शिष्य नहीं बना; जो शिष्य होते समय भी गुरुता का बोझ लिये रहा वह तो शिष्य ही नहीं बना; तो कैसे बन पायेगा ?

माया माया सब कहै चीन्हैं नाहीं कोय
जन दरिया निज नाम बिन सब ही माया होय

दरिया कहते हैं, बहुत लोग माया-माया कहते हैं। यह भी माया, वह भी माया, सब माया। मगर दरिया कहते हैं, 'जन दरिया निज नाम बिन सब ही माया होय।' सिर्फ राम के नाम को छोड़कर बाकी सब माया है।

इसलिए अलग-अलग गिनाने की कोई जरूरत नहीं है कि धन माया कि पद माया कि ईर्ष्या कि लोभ कि मोह, कुछ गिनने की जरूरत नहीं। सिर्फ परमात्मा के अतिरिक्त सब माया है। तो अगर परमात्मा को पा लिया तो कुछ पाया। नहीं तो माया के जादू में भटके रहे।

प्रभो, तुम्हारा नाम बाती है
शरीर दिया है, वेदना तेल है
तीनों का कितना अच्छा मेल है!
शीतलता बढ़ती है, आंखें जब नम होती हैं
नाम जितना ही उजलता है
वेदना उतनी ही कम होती है
प्रभु तुम्हारा नाम बाती है
शरीर दिया है, वेदना तेल है
तीनों का कितना अच्छा मेल है!

वह जो प्रभु का स्मरण है, जैसे-जैसे बढ़ने लगेगा, वैसे-वैसे तुम्हारे जीवन का दुख कम होने लगेगा। इधर प्रभु की याद बढ़ी, उधर जीवन का दुख कम हुआ। इधर प्रभु की याद आई, उधर जीवन का दुख गया। इधर से प्रभु आया द्वार, प्रविष्ट हुआ, दूसरे द्वार से सब अंधेरा निकल जाता है—वैसा ही दुख, वेदना, संताप निकल जाता है।

शीतलता बढ़ती है, आंखें जब नाम होती हैं
नाम जितना ही उजलता है
वेदना उतनी ही कम होती है

जिस दिन नाम पूरा उज्वल होकर भीतर बैठ जाता है, जिस दिन सुरति पूरी हो जाती है, उसकी स्मृति पूरी हो जाती है, उसी दिन सब हो गया। उसी दिन सत्य हुआ। उसके पहले सब माया है।

है को संत राम अनुरागी जाकी सुरत साहब से लगी

कहते हैं दरिया, वही है प्रभु का असली प्रेमी, जिसने अपनी सुरत को साहब से लगा दिया है। जिसने अपनी याद, जिसने अपनी स्मृति प्रभु से जोड़ दी

कल मैं एक किताब देखता था। एक अमरीकन मनोवैज्ञानिक ने मनुष्यों के मन में कितने काम-विचार चलते हैं उसकी बड़ी खोजबीन की है, बड़ा विश्लेषण

किया है। और चकित करनेवाली बात है। उसने लिखा है कि अठारह साल की उम्र में—हजारों युवकों का उसने अध्ययन किया, उनसे। पूछा, सब जांच-पड़ताल की। हर दो मिनट में एक बार आदमी कामवासना की याद करता है। हर दो मिनट में-अठारह साल की उम्र में। छत्तीस साल की उम्र में हर चार मिनट में। इसी तरह पचास के करीब पहुंचते-पहुंचते हर छह मिनट में। सत्तर साल की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते हर आठ मिनट में, दस मिनट में कामवासना की याद करता है।

जरा जांचना अपने भीतर तो अभी तुम्हारी सुरति काम से लगी है। जब ऐसी ही याद राम की आने लगती है तो सुरति राम से लगी। काम में लगी सुरति राम में लग जाये तो क्रांति घट जाती है।

सद्गुरु का इतना ही अर्थ है कि वह राम की सुरति में जी रहा है। सुरत साहब से लागी। उसके पास बैठे-बैठे उसकी सुरति की तरंगें तुम्हारे हृदय को भी आंदोलित करेंगी। उसकी सुरति धीरे-धीरे तुम्हें भी संक्रामक हो जायेगी। यह संक्रामक बात है। यह छूत की बीमारी है। इसलिए सत्संग का पूरब में इतना मूल्य है। इसलिए सदियों से हमने सत्संग की इतनी महिमा गयी है और सद्गुरु की इतनी महिमा गाई है। इस महिमा का कारण है, बड़ा कारण है।

तुमने देखा? एक स्त्री राह से निकली, एक सुंदर स्त्री राहसे निकली, तत्क्षण तुम्हारी सुरति काम में लग जाती है। देखा तुमने यह। मगर इससे तुमने कुछ सीखा? खाक कुछ नहीं सीखा। एक सुंदर स्त्री राह से निकली, तत्क्षण तुम्हारी सुरति सौंदर्य में लग गयी।

ऐसे ही जब तुम सद्गुरु के पास बैठोगे, सद्गुरु को निहारोगे तो बार-बार.. बार-बार तुम्हारी सुरति राम में लगने लगेगी। और धीरे-धीरे जब राम में लगेगी और रसमग्न होने लगोगे राम में डूबकर तो अपने आप काम में न लगेगी।

फिर तुम्हें स्वामी नारायण संप्रदाय के गुरु की भांति चालीस साल तक स्त्रियों से बचने की जरूरत न रहेगी। स्त्री निकले कि पुरुष निकले, एक दफे सद्गुरु का साथ हो गया और सद्गुरु की तरंग तुम्हारे भीतर राम की स्मृति को जगा दी, जलने लगा वह दिया, फिर तो तुम जिसको देखोगे उसीको देखकर राम की स्मृति आयेंगी। स्त्री को देखोगे तो स्त्री का सौंदर्य तुम्हें परमात्मा के सौंदर्य की याद दिलायेगा। पुरुष को देखोगे तो पुरुष का बलिष्ठ शरीर, बल, शौर्य तुम्हें परमात्मा के बल की याद दिलायेगा। फूल देखोगे तो परमात्मा को खिला हुआ पाओगे। पक्षी गुनगुनायेंगे गीत तो तुम परमात्मा को गीत गाता पाओगे। झरनों में और सागर में और पहाड़ों में और रेत में, हर जगह तुम पाओगे। अनेक-अनेक रूपों में परमात्मा की याद छुपी पड़ी है। एक बार तुम्हारे भीतर सूत्र बैठ जाये,

सब तरफ उसीके दर्शन होने शुरू हो जाते हैं। सारा संसार परमात्मा से भरा पड़ा है, ब्रह्म से भरपूर पड़ा है।

है को संत राम अनुरागी जाकी सूरत साहब से लागी
अरस-परस पिव के संग राती होय रही पतिबरता

और एक दफा यह बात लग जाये, एक बार यह सुरति जगने लगे, यह याद जगने लगे भीतर, जैसे अभी काम की याद जगती है, भीतर ऐसी राम की जगने लगे--अरस-परस पिव के संग राती। फिर तो बार-बार प्रभु सामने आने लगे स्मरण के, बार-बार पर्दे पर झलक मारने लगे। अरस-परस--फिर तो आमने-सामने मिलन होने लगता है, अरस-परस होने लगता है।

"अरस-परस पिव के संग राती ... फिर तो उस प्यारे का रंग तुम्हें रंगने लगता है; फिर तो तुम डोलने लगते हो।

अरस-परस पिव के संग राती होय रही पतिबरता

और तब वह घटना घटती है भक्ति की कि प्रभु के अतिरिक्त कोई याद नहीं आता, तब पतिव्रता। तब तुम पातिव्रत्य को उपलब्ध हो गये। अब एक ही मालिक रहा, एक ही पति रहा। अब परमात्मा ही पति रहा।

सुरति घनी होते-होते ... घनी होते-होते एक दिन तुम्हारे भीतर उस एक में ही, बस एक में ही लौ लग जाती है। उठते-बैठते उसीकी याद आती है, सोते-जागते उसीकी याद आती है, सुख-दुख में उसीकी याद आती है, हर पल उसीकी याद आती है।

यह जिस मनोवैज्ञानिक ने खोज की है कि हर दो मिनट में अठारह साल का युवक एक बार कामवासना की बात को सोच लेता है, यह तो दो मिनट में सोचता है; जब राम की याद बैठनी शुरू होती है तो एक पल बिना उसकी याद के नहीं बीतता। उसकी धुन बजता ही रहती है। वह तो श्वासप्रश्वास जैसा हो जाता है।

अरस-परस पिव के संग राती होय रही पतिबरता
पैहम मुसीबतों से मिले तो करार लें
यादों के बुतकदों को जरा फिर सम्हाल लें

जरा फुरसत मिले संसार की झंझटों से, जरा बेचैनी कम हो।

पैहम मुसीबतों से मिले तो करार लें

तो जरा चैन हो।

यादों के बुतकदों को जरा फिर सम्हाल लें

तो फिर यादों के जो मंदिर हैं उनकी थोड़ी देखभाल कर ली जाये।

दिन थे फलक सिगाफ थे जब अपने कहकहे
फिर मिल सकें तो वे दिन कहीं से उधार लें

कभी तो तुम परमात्मा में थे। कभी! हरेक वहीं से आया है।

दिन थे फलक सिगाफ थे जब अपने कहकहे

कभी ऐसे भी दिन थे जब हमारे आनंद की गूंज आकाश तक उठती थी। ऐसे कहकहे उठते थे।

दिन थे फलक सिगाफ थे जब अपने कहकहे
फिर मिल सकें तो वे दिन कहीं से उधार लें

अब तो किसी सद्गुरु के चरणों में मैं बैठो तो वे दिन उधार मिल जायें। तुम्हारे थे कभी, लेकिन चूक गये हो। चूकना पड़ा है। चूकना पड़ता ही है। अब तो फिर कोई उस याद को जगाये, उस सो गयी याद को, उन खंडहरों को कोई फिर से सम्हाले।

यादों के बुतकदों को जरा फिर से सम्हाल लें
पैहम मुसीबतों से मिले तो करार लें

सद्गुरु के पास बैठकर तुम थोड़ी देर को संसार की झंझटों से मुक्त हो जाते हो। थोड़ी देर को संसार मिट जाता है। थोड़ी देर को सद्गुरु की छाया में संसार विस्मरण हो जाता है। वही विस्मरण प्रभु का स्मरण बन जाता है।

हमने बसायीं बस्तियां तुमने उजाड़ दीं
कुछ पल तो इन खराबगाहों में गुजार लें

तुमने जो-जो बनाया है वह सब तो परमात्मा उजाड़ता जाता है। तुम्हारा बना हुआ बचता नहीं। मगर फिर भी मन है कि मन कहता है, कुछ पल तो इन खराबगाहो में गुजार लें। ये खंडहर अपने बनाये हुए ही हैं, कुछ पल तो इनमें गुजार लें। तुम्हारा मन यही कहे जाता है। इस मन से जरा सावधान रहना। पहले बनाने में लगा रहता है फिर जब भवन खंडहर हो गये तो भी मोह नहीं छूटता। खंडहरों से भी मोह नहीं छूटता। लौट-लौटकर...।

हमने बसायीं बस्तियां तुमने उजाड़ दीं
कुछ पल तो इन खराबगाहों में गुजार लें
साकी से गर नज़र न मिले हम न जाम लें
और जब मिले तो दौड़कर दीवाना वार लें

प्यारा वचन है।

साकी से गर नजर न मिले हम न जाम लें

यही दरिया का मतलब है-अरस-परस पिव के संग राती। परमात्मा आमने-

सामने खड़ा हो तभी कुछ होगा। अरस-परस हो।

अरत-परस पिव के संग राती

मूर्तियों से नहीं चलेगा काम। मूर्तियों से चलता तो मंदिरों में जाने से बात हो जाती। शास्त्रों से नहीं चलेगा काम। शब्द भी कागज पर खींची गयी स्याही से बनाई गयी मूर्तियां हैं। इनसे भी नहीं काम चलेगा। अरस-परस पिव के संग राती। यह तो जीता-जागता परमात्मा सामने खड़ा हो।

कहां खोजे जीते-जागते परमात्मा को? कहीं अगर किसीमें उतरा हो तो उससे थोड़े से क्षण उधार ले लो। उसके पास थोड़े डूबो। पिव के संग राती।

साकी से गर नजर न मिले हम न जाम लें।

परमात्मा से आंख से आंख मिले तभी जाम लेने का मजा है, नहीं तो सब जाम पानी ही समझना। वहां शराब नहीं। वहां मस्ती नहीं।

मंदिरों में जाओगे और खाली लौट आओगे। शास्त्रों में जाओगे और खाली लौट आओगे। वहां मस्ती नहीं पाओगे। वहां डूब नहीं सकोगे। कोई शास्त्रों में डूबा? किताबों में कोई डूबा?

साकी से गर नजर न मिले हम न जाम लें
और जब मिले तो दौड़कर दीवाना वार लें

और जैसे ही परमात्मा से नजर मिल गयी-'अरस-परस पिव के संग राती' -वैसे ही डूब गये उसके रंग में। और जब उससे आंख मिल जाती है तो दौड़कर आदमी जाम ले लेता है।

एक आग है कि दिल में सुलगती है हर घड़ी
चाहो तो उसको गीत गजल में उतार लें

यह जो आग है अभी, तब गीत-गजल बनने लगती है। ऐसी ही गीत-गजल तो ये दरिया के शब्द हैं।

एक आग है कि दिल में सुलगती है हर घड़ी
चाहो तो उसको गीत गजल में उतार लें
गम के लिये लिये पड़ी है अभी एक उम्र अश्क
आओ ये चंद लमहें तो हंसकर गुजार लें

गम को इतना मत पकड़ो। दुख को इतना मत पकड़ो। सींखचों को इस तरह मत अपना बनाओ। सद्गुरु के पास चलो, कुछ लमहें ही सही! कुछ क्षण ही सही!

गम के लिये पड़ी है अभी एक उम्र अश्क
आओ ये चंद लमहें तो हंसकर गुजार लें

अगर कहीं कोई मिल जाये जीवन का स्रोत तो उसके पास बैठकर कुछ लमहे, कुछ क्षण हंसकर गुजार लेना। अगर एक बार हंसी का राज सीख गये तो हंसी फिर जाती नहीं। फिर तुम जहां भी रहोगे, हंसते रहोगे। फिर तुम जहां भी रहोगे, वहा आनंद का झरना बहता रहता है।

यही अर्थ है: 'अरस-परस पिव के मंग राती।' डूब गये उसीके रंग में। हो गये उसीके रंग। पतिंगा डूब गया अग्नि के रंग में। हो गया अग्नि का रंग। ये गैरिक वस्त्र उसी अग्नि के रंग हैं।

...होय रही पतिबरता
दुनिया भाव कछू नहीं समझे ...

अब कुछ समझ में नहीं आता कि दुनिया क्या कहती है। अब दुनिया से कुछ प्रयोजन भी नहीं है।

...ज्यों समुंद समानी सरिता

जैसे सागर में उतर गयी नदी को अब क्या फिकर किनारों की और घाटों की? चाहे घाट बनारस के हों कि प्रयाग के। फिर क्या मतलब उन सब लोगों से, जो राह में मिले थे और तरह-तरह की बातें कही थीं? किसीने अच्छा कहा, किसीने बुरा कहा, किसीने दुर्जनसज्जन कहा।

दुनिया भाव कछू नहि समझें समुंद समानी सरिता
मीन जायकर समुंद समानी जहं देखे तहं पानी

और जैसे मछली तड़फ-तड़फकर किनारे से वापिस कूद गयी सागर में, अब तो जहां देखती है वहीं सागर है। ऐसी ही दशा भक्त की है। ऐसी ही दशा पतिव्रता की है। अब एक ही दिखाई पड़ता है। अब उस एक के अतिरिक्त कोई भी नहीं दिखाई पड़ता।

कहते हैं, मीरा जब वृंदावन में गयी तो वहा वृंदावन मे जो कृष्ण का बड़ा मंदिर था, उसका पुजारी किसी स्त्री को भीतर प्रवेश नहीं करने देता था। रहा होगा स्वामी नारायण संप्रदाय के गुरु जैसा। वर्षों से कोई स्त्री प्रविष्ट न हुई थी। मीरा को तो कौन रोके? मीरा तो नाचती हुई मंदिर में प्रविष्ट हो गयी। उसके नाच की मस्ती ऐसी थी कि द्वारपाल भी अवाक खड़े रह गये। रोकना भी चाहा तो न रोक सके। यह बात ही कुछ और थी। यह कोई स्त्री थोड़े ही थी। यहां कहां स्त्री और पुरुष! वे ऐसे मस्त हो गये उसकी मस्ती में। उसके वीणा के स्वर उन्हें डुबा लिये। भीड़ खड़ी थी। अनेकों के मन में ख्याल उठा कि यह झंझट हुई जा रही है। वह जो पुरोहित है, बहुत नाराज हो जायेगा। मगर मीरा तो चली ही गयी। मीरा तो पहुंच गयी जहां कोई स्त्री वर्षों से नहीं गयी थो। वहां जाकर वह नाचने

लगी कृष्ण की मूर्ति के सामने। प्रधान पुरोहित बहुत नाराज हुआ। आया। उसने कहा, तुझे मालूम नहीं है स्त्री, कि इस कृष्ण के मंदिर में किसी स्त्री के लिये कोई प्रवेश नहीं है? यह तूने जघन्य पाप किया है।

पता है मीरा ने क्या कहा? मीरा खूब हंसी और उसने कहा, मैं तो सोचती थी कृष्ण के अतिरिक्त कोई पुरुष ही नहीं है। तो एक आप भी पुरुष हैं? तो अभी तक पतिव्रता नहीं हुए!

पानी पड़ गया होगा उस पुरोहित पर। खूब बात कही। जो कहनी थी बात कही। और फिर मीरा नाचने लगी। फिर किसीकी हिंमत न पड़ी उससे कुछ कहने की। उसने यह कहा, कृष्ण के अतिरिक्त और कौन पुरुष है, जरा मैं भी देखूं। आप भी पुरुष हैं? तुम्हारा यह भ्रम अभी मिटा नहीं? हम सब उसी एक प्यारे के प्रेमी हैं।

मीन जायकर समुंद समानी जहं देखे तहं पानी।

अब तो एक ही दिखाई पड़ता है सब तरफ। एक ही पुरुष दिखाई पड़ता है। एक ही अविनाशी।

काल-कीर का जाल न पहुंचे निर्भय ठौर लुभानी

और अब समय का और मृत्यु का जाल इस मछली को पकड़ नहीं सकता।

काल-कीर का जाल न पहुंचे निर्भय ठौर लुभानी

अब तो आ गई अभय पद में। अब कहां, अब कैसी मृत्यु! परम से मिलन हो गया। अमृत में डुबकी लग गयी।

बावन चंदन भंवरा पहुंचा जहं बैठे तहं गंधा

खोद लेना सोने के अक्षरों में अपने हृदय पर ये शब्द 'बावन चंदन भंवर पहुंचा....'' चंदन के बगीचे में आ गया। चंदन के वन में आ गया भंवरा।

बावन चंदन भंवरा पहुंचा, जहं बैठे तहं गंधा।

अब तो जहां बैठ जाता है वहीं गंध है। इधर बैठे इधर, उधर बैठे उधर, इस वृक्ष पर तो, उस वृक्ष पर तो। यह चंदन का वन है। भंवरा बड़ा चकराया होगा। क्योंकि भंवरा तो बेचारा खोजता फिरता है। जहां गंध होती है वहां जाता है। इधर बैठा, गंध पी ली। गंध समाप्त हो गयी, दूसरे फूल पर गया। कई फूलों में गंध होती ही नहीं, सिर्फ धोखा होता है। साध स्वांग अस आंतरा। कई फूल तो सिर्फ कागजी होते हैं। स्वांग भर होता है। फूल में कोई गंध नहीं होती। मौसमी फूल होते हैं। नाम मात्र को फूल होते हैं। कहने भर को फूल होते हैं।

तो भंवरे को खोजना पड़ता है। इस फूल जाता, उस फल जाता। कभी लाख में खोजते को एक मिलता है, जिसकी गंध में डूबता है। मगर वह भी चूक जाती है।

थोड़ी-बहुत देर में वह गंध भी उड़ जाती है। फिर खोज शुरू जाती है।

संसार में आदमी ऐसा ही खोजता है भंवरे की तरह। एक स्त्री सुंदर दिखायी पडती है। मगर कितनी देर सुंदर रहेगी? अगर मिल गयी तो जल्दी ही साधारण हो जायेगी। दो-चार दिन सौंदर्य चलता है। चमड़ी कितने दिन आकर्षण में रखती है? सुंदर कार दिखायी पड़ गयी, खरीद लिया। कितनी देर सुंदर रहेगी? दस-पांच दिन। खड़ी-खड़ी पोर्च में साधारण हो जाती है। तुमने कितनी ही चीजों पर तो बैठकर देख लिया। गंध कितनी देर टिकती है? तुम बैठे नहीं कि गंध गयी नहीं।

इस संसार में तो हम भंवरे की तरह हैं। और यहां हजार फूलों में कभी कोई एकाध फूल है जिसमें थोड़ी-बहुत गंध होती है। वह भी क्षणभंगुर होती है। वह भी टिकती नहीं। वह भी दूर से बड़ी लुभावनी, पास आने पर बिलकुल समाप्त हो जाती है। बड़ी मृगतृष्णा जैसी।

बावन चंदन भंवरा पहुंचा....

दरिया कहते हैं, जब गुरु के द्वार से प्रवेश करके कोई परमात्मा के सागर में उतर जाता है तो ऐसी घटना घटती है जैसे भंवरा चंदन के वन में पहुंच गया।

बावन चंदन भंवना पहुंचा जहं बैठे तहं गंधा

बड़ी बेबूझ बात। गंध ही गंध है। गंध का सागर है। जहां बैठो तहां है। अब कोई चुनने की जरूरत नहीं है। जहां हो वहीं। यहां बैठो तो, वहां बैठो तो। और एक ही गंध है। और एकरस। 'जहं बैठे तहं गंधा।'

''उड़ना छोड़िके थिर हो बैठा''

अब क्या फायदा उड़ने से? उड़ता था संसार में क्योंकि गंध क्षणभंगुर थी। मिली-मिली, गयी। सुख क्षणभंगुर था। आया नहीं कि गया। और हर सुख के पीछे दुख छिपा था। और हर फूल के पीछे कांटे छिपे थे।

उड़ना छोड़िके थिर हो बैठा।

अब क्या चलना, अब क्या फिरना! अब कहां जाना, अब कहां आना! इस स्थिरता का नाम समाधि है। इसके कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ कहा। जिसकी प्रज्ञा स्थिर हो गयी, स्थिरधी कहा; जिसकी धी स्थिर हो गयी निष्कंप हो गयी निष्कंप होती तभी है, ''बावन चंदन भंवरा पहुंचे''.... जब भंवरा चंदन के बन में पहुंच जाता है। उसके पहले नहीं होती।

उड़ना छोड़िके थिर हो बैठा निस दिन करत अनन्दा

अब तो दिन हो कि रात, आनंद ही आनंद है। जागे कि सोये, गंध ही गंध में डूबा रहता है।

जन दरिया इक रामभजन कर भरम-वासना खोई

ऐसी ही घटना घटती है रामभजन में डूबनेवाले को। धीरे-धीरे द्वार खुलत है। चंदन का वन प्रगट हो जाता है।

जन दरिया इक रामभजन कर भरम-वासना खोई

समझना इस सूत्र को। जिसने जाना है वह सदा यही कहेगा, राम को पहले बुला लो, भरम-वासना खो जायेगी। जिसने नहीं जाना है वह कहेगा, भरम-वासना पहले खोओ तब राम आयेगा। इसे कसौटी समझो। कसौटी- 'साध स्वांग अस आंतरा जेता झूठ अरु सांच।' यह अंतर इतना है जितना झूठ और सच का; जितना पृथ्वी और आकाश का।

जो तुमसे कहे, पहले गलत को छोड़ दो फिर ठीक मिलेगा; गलत को छोड़ोगे तो ही ठीक मिलेगा, समझ लेना कि उसे अभी कुछ भी पता नहीं है। जो तुमसे कहे, ठीक की तरफ लगो, गलत से क्या उलझते हो? गलत से उलझकर क्या मिलेगा? गलत को पाकर भी कुछ नहीं मिलता, गलत से उलझकर भी कुछ नहीं मिलता। गलत में कुछ है ही नहीं तो मिलेगा कैसे?

धन को इकट्ठा कर लो तो कुछ नहीं मिलता। यह तो तुमसे कहा, तुम्हारे तथाकथित महात्माओं ने। तुम धन को छोड़ भी दो तो भी कुछ नहीं मिलता। धन में कुछ है ही नहीं। मिलेगा कैसे? अब यह बड़े मजे की बात है कि जो लोग कहते हैं धन से कुछ नहीं मिलता, वे भी कहते हैं, धन छोड़ो तो कुछ मिलेगा। तब तो फिर धन में कुछ मिलता है। तब तो बात....धन छोड़ने से मिलता है तो भी मिलता तो धन से ही है। तो जिसके पास धन नहीं है उनको मिलेगा या नहीं? उनके पास तो छोड़ने को कुछ नहीं है।

कबीर को मिला कि नहीं? महावीर को मिल गया धन छोड़ने से। और बुद्ध को मिल गया राज्य छोड़ने से। कबीर को कैसे मिला? दरिया को कैसे मिला? इस गरीब दरिया को कैसे मिला? ये दरिया तो धुनिया थे। लेकिन दरिया ने कहा है, 'जो मैं धुनिया तो भी राम तुम्हारा'। माना कि धुनिया हूं, इससे क्या फर्क पड़ता है? हूं तो तुम्हारा ही। इसमें तो कमी नहीं। बुद्ध होंगे राजा के बेटे होंगे, रहे होंगे। मैं धुनिया का बेटा हूं। 'जो मैं धुनिया तो भी राम तुम्हारा।' इससे क्या फर्क पड़ता है? हूं तो तुम्हारा ही। गरीब धुनिया सही!

धन के होने से भी नहीं मिलता, धन के छोड़ने से भी नहीं मिलता। हां, जब मिल जाता है तो धन पर पकड़ छूट जाती है। और जब धन पर पकड़ छूट जाती है तो दोनों पकड़ छूड जाती है--भोग की भी और त्याग की भी। दोनों

पकड़ हैं। और तब यह भी अकड़ नही रह जाती कि मेरे पास धन है और यह भी अकड़ नहीं रह जाती कि मैंने लाखों पर लात मार दी। ये दोनों अकड़ धन की ही अकड़ हैं।

जन दरिया इक रामभजन कर भरम-वासना खोइ

सब खो गया। एक राम की सुरति....सुरति गहरी होती गयी, भजन बन गया। राम ही श्वास-श्वास में समा गया। अपने आप भरम वासना का जगत शांत होता गया, शून्य हो गया।

पारस परस भया लोह कंचन, बहुर न लोहा होइ

और एक बार पारस के परस से सोना हो जाये लोहा, तो फिर कोई उपाय नहीं उसे लोहा बनाने का। जो पाया जाता है वह कभी फिर खोता नहीं। ज्ञान के इस अभियान में तुम जहां पहुंच जाते हो वहां से नीचे नहीं गिर सकते।

पारस परस भया लोह कंचन बहुर न लोहा होइ

बस एक बार यह क्रांति घट जाये, तुम किसी अग्नि के पास आ जाओ, तुम किसी गुरु नाम की महामृत्यु के पास आ जाओ। एक बार तुम अपने लोहे होने का मोह छोड़ दो और एक बार तुम मिटने को तैयार हो जाओ--

पारस परस भया लोह कंचन बहुर न लोहा होइ
पारस परसा जानिये जो पलटे अंग-अंग
अंग-अंग पलटे नहीं तो है झूठा संग

आज इतना ही।

मीन जायकर समुंद समानी

प्रवचन : २०

दिनांक : २०।७।१९७७

श्री रजनीश आश्रम, पूना
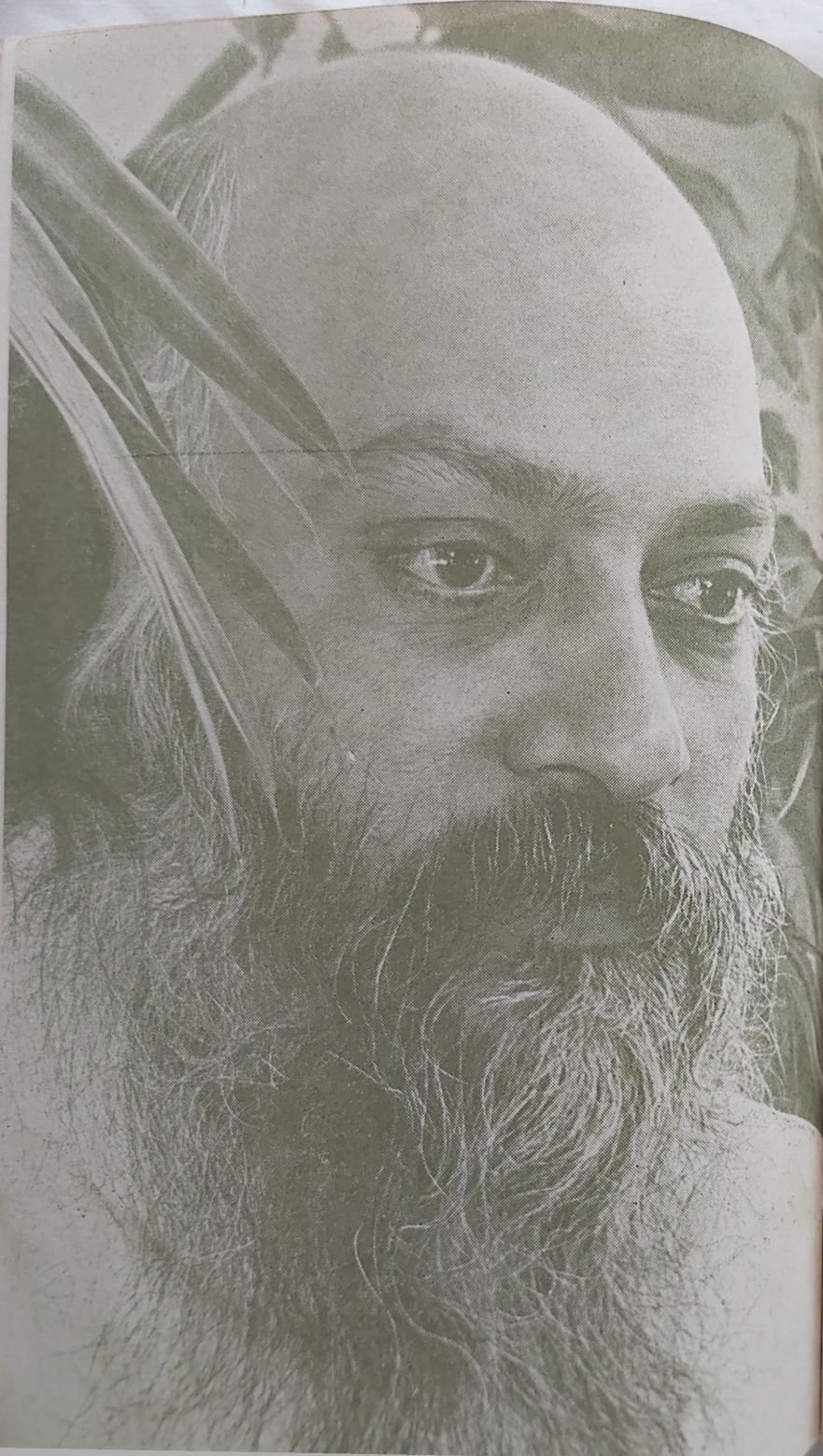
प्रश्नसार

- संन्यास मनुष्य की संभावना है या नियति ?
- झूठ इतना प्रभावी क्यों है ?
- प्रार्थना सम्राट की तरह कैसे की जाये ?
- क्या प्रेम की जिज्ञासा ही अद्वैत प्रेम के अनुभव में परिणत होती है ?
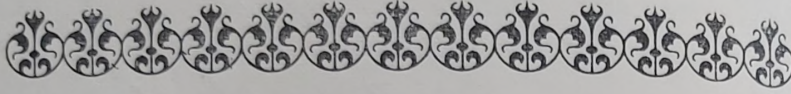
पहला प्रश्न : संन्यास मनुष्य की संभावना है या कि नियति ? कृपा करके कहिये ।

नियति की भाषा खतरनाक है । नियति की भाषा का उपयोग आदमी सिर्फ जीवन को स्थगित करने के लिये करता रहा है । जैसे ही तुमने कहा, नियति है, फिर तुम्हें कुछ भी नहीं करना । होगा, अपने से होगा; जब होना है तब होगा ।

संभावना है संन्यास, नियति नहीं । नियति का अर्थ है, होगा ही । संभावना का अर्थ है, चाहो तो होगा; न चाहा तो न होगा । बीज का वृक्ष होना नियति नहीं है, संभावना है । बीज बिना वृक्ष हुए भी रह जा सकता है । सभी बीज वृक्ष नहीं होते, बहुत से बीज तो बीज ही रहकर मर जाते हैं । फिर सभी वृक्षों में फूल नहीं आते, बहुत से वृक्ष वृक्ष रहकर मर जाते हैं ।

नियति का अर्थ होता है, अनिवार्य । होगा ही । टलेगी नहीं बात । चाहे कुछ हो लेकिन यह घटना होकर रहेगी । जैसे मृत्यु नियति है । तुम कुछ करो, न करो, मृत्यु घटेगी । जन्म के साथ ही घट गई । देर-अबेर होने होनेवाली है । इस जीवन में मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ भी नियति नहीं है । और सब हो सकता है, न भी हो । हो भी सके, न भी हो । तुम पर निर्भर है । तुम्हारे भीतर परम काव्य पैदा होना या नहीं होगा, बस संभावना मात्र है, बीज मात्र है । बीज तो तुम लेकर आये हो । गीत का झरना फूट सकता है । वीणा तुम्हारे हृदय में पड़ी है, झंकार उठ सकता है । मगर उठेगा ही, ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है ।

अनिवार्यता तो यांत्रिकता है । और जहां अनिवार्यता है वहां स्वतंत्रता भी नहीं है । अगर संन्यास होगा है तो फिर तुम्हारी स्वतंत्रता क्या रही ? फिर तुम्हारी मालकियत क्या रही ? फिर तो एक मजबूरी हुई । स्वामित्व न हुआ, एक तरह की यांत्रिक गुलामी हुई ।

नहीं, संन्यास नियति नहीं है; बीजरूप संभावना है । सम्हालोगे, सम्हल जायेगी बात । ठीक भूमि दोगे, पानी जुटाओगे, सूरज की धूप आने दोगे, श्रम करोगे

तो घटेगी । नहीं तो बीज कंकड़ की तरह पड़ा रह जायेगा । और जो बीज बीज ही रह गया, उसमें और कंकड़ में कोई भेद थोड़े ही है ! भेद तो तभी होता जब बीज वृक्ष बनता । भेद तो तभी पता चलता वृक्ष बनकर, आकाश में उठकर, हजार ढंग से प्रगट होकर । प्रकट होता तो भेद पता चलता । बीज बीज ही रह गया तो कंकड़ और बीज में क्या फर्क है ? कंकड़ भी वृक्ष नहीं हुआ, बीज भी वृक्ष नहीं हुआ । बीज वृक्ष हो सकता है लेकिन तुम्हारे बड़े सहयोग की जरूरत होगी ।

तुम उलटे विरोध करते हो । तुम्हारे जीवन में परम घटे, इसके लिये तुम सहयोग तो करते नहीं, तुम हजार तरह की बाधायें खड़ी करते हो । तुम बीज को जमीन दो ऐसा तो नहीं, बीज के आसपास पत्थर जुटाते हो । तुम उलटा ही करते हो ।

प्रेम का बीज खिलना चाहिये, तुम धन इकट्ठा करते हो । धन पत्थर की तरह प्रेम के आसपास इकट्ठा हो जायेगा । समर्पण की घटना घटनी चाहिये, समर्पण की जगह तुम अहंकार की शिलायें इकट्ठी करते हो, चट्टानें इकट्ठी करते हो ।

तुम जैसे जीते हो, उस ढंग से तो संभावना मर जायेगी, गर्भपात हो जायेगा । संन्यास का कभी जन्म न होगा । और मैं न कहूंगा कि नियति है क्योंकि नियति कहते ही तुम निश्चिंत हो जाते हो । तुम कहते हो, चलो बोझ उतरा । होना ही है, बात गई ।

अब यह भी समझ लेना कि आदमी कितना बेईमान है । जीवन के परम सिद्धांतों का भी बड़ा दुरुपयोग कर लेता है । आदमी ऐसा है कि उसके हाथ में जो पड़ जाता है उसका गलत उपयोग करता है । देनेवाले जो भी देते हैं, इसलिए देते हैं कि ठीक उपयोग हो सके । जिन्होंने नियति की भाषा बोली, परम ज्ञानी थे । उनका क्या प्रयोजन था ?

ऐसे लोग हैं, जिन्होंने कहा नियति है । और उन्होंने क्यों कहा है ? उन्होंने कहा है कि तुम्हें यह भरोसा आ जाये कि नियति है तो शायद तुम श्रम करने में लग जाओ । जो होने ही वाला है, फिर हो ही जाने दो । जरूर किसीने कहा है कि नियति है; बहुतों ने कहा है नियति है । बहुतों ने कहा है, जो होना है वह भाग्य है; होकर रहेगा । मगर उनका प्रयोजन क्या था ?

उन महाज्ञानियों ने इसलिए कहा था कि होकर रहेगा, होने ही वाला है । यह इतना जो इसलिए था ताकि तुम उठ आओ नींद से कि जो होने ही वाला है फिर उसे हो ही जाने दो । फिर देर क्यों ? फिर कल के लिये क्यों टालना ? जो कल होने वाला है, आज हो जाये । फिर कल तक क्यों दुख पाना । फिर कल तक

क्यों संताप झेलना ? फिर आज ही हो जाने दें। फिर आज ही उसे स्वीकार कर लें। होगा ही तो फिर हम बाधायें क्यों खड़ी करें ? हमारी बाधायें तो सब टूट जायेंगी और घटना घटेगी।

ज्ञानियों ने कहा था कि तुम बाधा मत खड़ी करना--यह प्रयोजन था जब उन्होंने कहा कि संन्यास नियति है।

और ज्ञानियों ने इसलिए कहा था कि अगर तुम्हें नियति की समझ आ जाये तो तुम अतीत से मुक्त हो जाओ। जैसे ही तुम्हें यह समझ में आ जाता है कि कल किसीने गाली दी, वह होने ही वाली ही थी तो गाली देनेवाले का कोई दायित्व नहीं रहा। होना ही था। यह गाली तुम्हें मिलनी नहीं थी। यह तुम्हारा भाग्य था। तो तुम्हारे मन में वैमनस्य नहीं उठता, क्रोध नहीं उठता, प्रतिशोध नहीं उठता क्योंकि जो होना था, हुआ। राह से तुम निकलते थे और एक वृक्ष की शाखा टूट गयी और तुम्हारे सिर पर गिर पड़ी और खून निकल आया तो तुम वृक्ष पर मुकदमा नहीं चलाते, न गालियां देते हो, न वृक्ष को लेकर कुल्हाड़ी पहुंचकर काट देते हो। तुम कहते हो यह होना था। संयोग की बात थी कि मैं वृक्ष के नीचे था और कि डाल टूट गयी।

जब कोई आदमी तुम्हें गाली देता है तब तुम नहीं कहते कि संयोग कि बात थी। कि मैं पास था और आदमी को क्रोध आ गया और उसने मुझे गाली दे दी उसकी डाली टूटकर मेरे सिर पर लग गयी।

ज्ञानियों ने कहा है, जो हुआ, होना था। क्यों ? इसलिए की तुम्हें अगर यह बात ठीक से बैठ जाये कि जो होना था वही हुआ है तो फिर क्या शिकायत है? फिर किससे शिकायत ? फिर कैसा क्रोध ? फिर यह गांठ बांधकर कौन चलेगा बदला लेने की, प्रतिशोध की ? फिर तुम्हारे जीवन में गांठें न होगी। तुम सरल हो जाओगे। जो होना था वही हुआ है। तुम्हारे भीतर परम स्वीकार होगा। और जो होनेवाला है वही होगा तो अन्यथा मत करो। अन्यथा किया गया श्रम व्यर्थ जायेगा।

तो जरूर ज्ञानियों ने कहा है कि नियति है। मगर उनका प्रयोजन और था। तुमने जब पकड़ा इस शब्द को, तुमने प्रयोजन बदल दिया। तुमने उलटी ही कर दी बात। उन्होंने कहा था, जो कल होनेवाला है, होने ही वाला है, उसे आज हो जाने दो। तुमने कहा, जो होने ही वाला है, उसकी हम फिकर ही क्यों करें ? जब होना होगा, हो जायेगा।

तुमने अर्थ बदल दिये। अर्थ विपरीत हो गये। उन्होंने कहा था, कल पर मत टालो अब। आज ही ले लो। आज ही उठ जाने दो। आज ही क्रांति घट जाने

दो। तुमने कहा, जब होने ही वाला है तो जल्दी क्या है। फिर जल्दी क्यों करें ? कल तक मजा-मौज कर लें, फिर कल तो होगा ही। इतनी देर तो मजा-मौज कर लें। फिर कल तो होगा ही। इतनी देर तो मजा-मौज कर लें। इतनी देर तक तो संसार का सुख ले लें। फिर तो होने ही वाला है। फिर होने ही वाला है तो फिर जल्दी क्या ? जितनी देर तक टाल सकें, टालें। जब न टाला जा सकेगा, जब होना ही होगा तो हो ही जायेगा। तुमने यह अर्थ लिया।

ज्ञानियों ने कहा था कि कल तक हो गया है अतीत, उसे स्वीकार लेना ताकि तुम्हारे मन पर उसका कोई बोझ न रह जाये। इस महाकुंजी को ख्याल में रखो। अगर तुम स्वीकार कर लो तो फिर बोझ कहां है ? तुम अस्वीकार करते हो, उसीसे बोझ है। तुम कहते हो, ऐसा न होता तो अच्छा था। ऐसा हो जाता तो अच्छा था। मैंने यह धंधा किया होता, यह नहीं किया होता तो लाभ हो जाता। इस वक्त खरीद कर ली होती, इस वक्त बेच कर दी होती तो लाभ हो जाता। ऐसा न किया उलटा कर बैठा, हानि में पड़ गया। ऐसा करता तो लाभ, ऐसा कर बैठा तो नुकसान।

तो तुम बड़ी चितायें लेते हो। अगर तुम्हें यह समझ में आ जाये, जो होना था वही हो सकता था; अन्यथा का कोई उपाय नहीं है तो तुम्हारे भीतर तथाता का जन्म होगा। तुम कहोगे, ठीक। कैसी चिता ! तुम पीछे लौट-लौटकर नहीं देखोगे। जब अन्यथा हो ही न सकता था तो चिता कहां ? लौटकर देखना कहां ? प्रयोजन क्या? जो हो गया, हो गया। होते ही समाप्त हो गया।

ज्ञानियों ने कहा था कि जो होता है वही होता है, ताकि तुम निर्भार हो जाओ अतीत से। तुमने क्या किया ? तुम अतीत से तो निर्भार नहीं हुए, तुमने यह प्रयोग तो नहीं किया इस नियति के शब्द का, तुम उलटे अकर्मण्य हो गये। तुमने कहा जो होता है वह होता है। तो हमारे किये क्या होगा ? तुम बैठ गये।

यह देश अकर्मण्य हुआ। यह देश निष्क्रिय हुआ। यह देश महाआलसी हो गया। आज जमीन पर इस देश के भिखमंगे और गरीब होने का और क्या कारण है ? सारी दुनिया धीरे-धीरे संपन्न होती चली गई। यह देश कभी सबसे ज्यादा संपन्न देश था। सोने की चिड़िया था कभी। यही सोने की चिड़िया आज मिट्टी होकर पड़ी है, मिट्टी की चिड़ियायें सोने की होकर उड़ रही हैं।

क्या हुआ इस देश को ? कौन सा दुर्भाग्य आया इस पर ? यह बहुमूल्य शब्दों का दुरुपयोग हुआ। जिन्होंने कहा नियति, उन्होंने कहा था तथाता पैदा हो। तुम्हारे भीतर तथाता तो पैदा न हुई, अकर्मण्यता पैदा हुई। तुमने कहा, फिर ठीक है, फिर बैठे रहो। बाबा मलकूदास तो कह गये न !

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम

तो बैठो। जब दाता राम ही है तो फिर क्या चिंता। फिर देगा जब देना है। नहीं देना तो नहीं देगा।

मलूकदास का यह अर्थ नहीं है। और मलूकदास के पंक्ति में तुमने गलत अर्थ पढ़ लिये। तुम सदा ही संतों में गलत अर्थ पढ़ते रहे इसीलिए तो तुम भटके हो। अगर एक भी बार तुम्हारे जीवन में सही अर्थ की किरण उतर गई होती तो तुम कहीं और होते। तुम उत्तुंग शिखरों पर होते। तुम स्वर्ण शिखरों को छू लेते। तुम कहीं दूर विराट आकाश में उड़ते होते। जमीन पर कीड़ों की तरह न घसिटते।

मगर तुम हर जगह गलत को पढ़ने के आदी हो। मैं समझता हूं कि अड़चन कहां से आती है। तुम गलत हो। जो भी तुम्हारे हाथ पड़ता उससे तुम गलत अर्थ निकाल लेते हो। जो भी तुम्हारे हाथ में पड़ता है, तिरछा हो जाता है। तुम्हारा हाथ छूआ नहीं कि तिरछा हो जाता है। तुम्हारे हाथ में लगा नहीं कि तुम उसमें हजार तरह के उपद्रव खड़े कर देते हो। तुम ठीक पकड़ने में असमर्थ ही मालूम पड़ते हो।

इसलिए दरिया जैसे गुरु कहते हैं, सत्संग। तुम तो गलत ही कर लोगे। जिसको ठीक मिल गया गया हो उसके पास बैठकर समझना; उससे समझना। और वह जैसा कहे वैसा समझना। और अपनी समझ बीच-बीच में मत लाना। अपनी समझ को हटा ही देना : अपनी बुद्धि को भी दर-किनार रख देना। जहां जूते उतारकर आते हो वहीं बुद्धि को भी उतारकर रख आना। यहां मेरे पास आओ तो बिलकुल ही छोटे बच्चे की तरह अज्ञानी होकर आ जाना। धन्यभागी हैं अज्ञानी क्योंकि कम से कम एक बात उनमें खूबी की है, वे बिगाड़ेंगेनहीं। जो दिया उसको वैसा ही ग्रहण करेंगे। उनके पास व्याख्या करने के लिये कोई स्मृति नहीं, कोई शास्त्र नहीं है। उनके पास शास्त्र की धूल नहीं है। उनका दर्पण विशुद्ध है।

यह शब्द तो महत्वपूर्ण है। तुम्हें मेरी बात समझ में आई ? नियति शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। लेकिन आदमी ने जो उसका उपयोग किया है वह इतना गलत हो गया है कि मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि संन्यास अपने आप नहीं घटेगा। जानते हुए कि अपने आप घटता है, मैं तुमको कहता हूं कि संन्यास अपने आप नहीं घटेगा। भली भांति जानने हुए कि जो घटता है वह अपने आप ही घटता है, फिर भी तुमसे मैं कहता हूं कि तुम नियति के शब्द में मत पड़ना। तुम्हें उससे लाभ नहीं होगा। नियति शब्द बहुत बड़ा है। तुम अभी उतने बड़े शब्द तक न उठ पाओगे।

तुम उस शब्द को खींच लोगे अपने गड्ढे में और उसको छोटा कर लोगे।

भाग्य शब्द बहुत बड़ा है। भाग्यशाली ही भाग्य शब्द को समझने में समर्थ हो पाते हैं। अधिक अभागे तो भाग्य शब्द का जहर बना लेते हैं। इसलिए कहता हूं, समझ सको तो जो होता है वही होता है। मगर अभी समझ कहां ? किसी दिन समझोगे। ज्ञानियों की भाषा ज्ञानी होकर ही समझोगे। तब कोई अड़चन न रहेगी। तब तुम्हें दोनों बातें समझ में आ जायेंगी कि मैंने क्यों कहा कि संभावना है, और क्यों साथ ही यह भी जोड़ दिया कि नियति है। ये दोनों बातें तुम्हें विरोधी लगती हैं अभी। क्योंकि तुम जहां खड़े हो, वहां से इन दोनों में सामंजस्य और समन्वय देखना कठिन है।

वह भी तुम्हें मैं कहूं कि क्यों इनमें सामंजस्य है। जैसे तुम हो, वहां तो संभावना शब्द ही सार्थक है। जैसा मैं हूं वहां नियति शब्द सार्थक है। तुम जिस तल पर खड़े होकर देखते हो जीवन को, वहां से तो संभावना ही तुम्हें आगे ले जायेगी। मुझे अब कहीं आगे जाना नहीं है इसलिए अब संभावना शब्द का कोई अर्थ नहीं है मेरे लिये। फूल खिल गये हैं। अब मैं जानता हूं फूल खिलने की वजह से, जो हुआ, अपने से हुआ है। आदमी के किये क्या कुछ होता है ? अहंकार जिस दिन मिट जायेगा, उस दिन तुम भी यही जानोगे कि आदमी के किये क्या कुछ हो सकता है ?

सबके दाता राम दास मलूका कह गये

मगर यह आखिरी बात है। यह शिखर पर पहुंचे हुए आदमी की बात है। यह मलूकदास अद्भुत आदमी है। ये संतों में भी विरले संत हैं। यह तो बड़ी ऊंचाई की बात है। उस ऊंचाई के तल पर जब तुम्हारी चेतना पंख मारेगी तो ही तुम समझोगे। जहां तुम अभी खड़े हो, वहां संभावना शब्द को पकड़ो। ताकि किसी दिन उस जगह पहुंच सको, जहां नियति शब्द समझ में आ जाये।

मेरी नजर तुम पर है। तो कई बातर मैं वह बात भी तुमसे कहूंगा जो तुम्हारे लिये कल्याणकारी है- चाहे सौ प्रतिशत सच न भी हो। निन्यानवे प्रतिशत सच हो, चलेगा; तुम्हारे लिये कल्याणकारी हो, वह जो एक प्रतिशत उसमें असच है, जिस दिन तुम जानोगे उस दिन छोड़ दोगे, उसमें कुछ अड़चन नहीं है बहुत। लेकिन सौ प्रतिशत सच बात तुमसे कह दूं और तुम इंच भर भी आगे न बढ़ो तो वह सत्य तुम्हारे लिये महाअसत्य हो गया।

दूसरा प्रश्न : झूठ इतना प्रभावी क्यों है ?

झूठ राजनीतिज्ञ है। झूठ कूटनीतिज्ञ है। झूठ प्रलोभन देने में कुशल है। झूठ कुशल विक्रेता है। होना ही पड़ेगा झूठ को। सत्य चुपचाप आकर खड़ा हो जाता

है बिना विज्ञापन के। झूठ हजार तरह के विज्ञापन करता है, क्योंकि झूठ को अपने पर तो भरोसा नहीं है। उसे तो पता है, विज्ञापन के सहारे चल जाये। झूठ के पास अपने पैर नहीं हैं। झूठ अगर थोड़ी-बहुत यात्रा भी करता है तो वैसाखियों के सहारे करता है। वैसाखियां.... सत्य को तो जरूरत नहीं है उनकी।

इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम्हें झूठ तो समझ में आता है क्योंकि विज्ञापन करता है, प्रलोभन देता है, आश्वासन देता है। बड़े बुलावे खड़े करता है, बड़े सब्जबाग खड़े करता है। बड़ी कल्पनाओं और सपनों में तुम्हें ले जाता है।

और सत्य निपट खड़ा हो जाता है। पुकारता भी नहीं, द्वार पर दस्तक भी नहीं देता, शोरगुल करता नहीं, प्रलोभन भी नहीं देता, बस सामने आकर खड़ा हो जाता है। और जब सत्य कुछ भी नहीं बोलता, सत्य चुप है, मौन है तो तुम प्रभावित नहीं होते।

तुम्हें तो चाहिये कोई तुम्हें फुसलाये, कोई तुम्हें समझाये, कोई तुम्हें लुभाये। झूठ ये सब उपाय करता है। सत्य कोई उपाय नहीं करता। सत्य उपाय ही नहीं करता। और सदियों तक झूठ ने हमें अपनी व्यवस्था में पारंगत कर दिया है।

तुम ऐसा ही समझो....बर्ट्रांड रसेल ने अपनी किताब में उल्लेख किया है कि एक बार एक प्रयोग किया गया। एक टूथपेस्ट के पक्ष में दस वैज्ञानिकों ने अपने दस्तखत किये लेकिन उसकी बिक्री नहीं बढ़ी। वैज्ञानिकों के नाम ही कोई नहीं जानता था। रहे होंगे बड़े वैज्ञानिक, मगर उनके नाम कौन जानता था? लोगों ने देख लिये मगर कोई प्रभावित नहीं हुआ। और यह टूथपेस्ट सच में वैज्ञानिक विधि से बनाया गया था।

फिर एक दूसरे टूथपेस्ट पर, जो कि बिलकुल ही झूठ था, जिसमें कुछ भी सार नहीं था, यह तो प्रयोग ही किया गया था, दस अभिनेता-अभिनेत्रियों ने दस्तखत किये और कहा कि उनके दांतों का सौंदर्य इसी टूथपेस्ट के कारण है। उसकी खूब बिक्री होने लगी। वैज्ञानिक की बात पर किसीको भरोसा नहीं है। वैज्ञानिक ने सीधा-सादा कह दिया। और वैज्ञानिक ने अपने ढंग से कहा। उसने कहा, इसमें इतना फलां तत्व है, इसमें इतना फलां तत्व है, दांतोंको मजबूत करने की इसमें इतनी संभावना है, मसूड़ों को मजबूत करने की ऐसी संभावना है। वह विज्ञान की भाषा बोला, मगर विज्ञान की भाषा किसको समझ में आती है? उसने रसायन की बात कही।

अभिनेत्री ने वह भाषा बोली, जो तुम समझते हो। अभिनेत्री खिलखिलाकर खड़ी हो गई। नग्न खड़ी अभिनेत्री। खिलखिलाती हुई अभिनेत्री। उसके मोतियों

जैसे चमकते दांत। वह भाषा तुम्हें समझ में आती है। तुम बच्चे हो। तुम्हें चित्र समझ में आते हैं, प्रत्यय समझ में नहीं आते। फिर तुम्हें यह समझ में थोड़े ही आया कि यह टूथपेस्ट खरीदना है। तुम जब इस टूथपेस्ट को खरीदे तो इस नंगी औरत को खरीदे। यह जो नग्न औरत खिलखिलाकर हंसी थी इसकी हंसी बिकी। तुम्हें इसकी फिकर भी नहीं कि इसकी हंसी से टूथपेस्ट का कोई भी संबंध है।

मुल्ला नसरुद्दीन सौ साल का हो गया तो पत्रकार उससे मिलने आये और उन्होंने कहा कि तुम्हारी मजबूती, स्वास्थ्य, इस सबका राज क्या है? उसने कहा, जरा दो-चार दिन बाद बता सकता हूं। उन्होंने कहा कि हद की बात हो गई। चार-पांच दिन में ऐसा क्या हो जायेगा, जो तुम अपना राज बता सकोगे? और अभी क्यों नहीं बता सकते? सौ साल जी लिये हो तो राज तो तुम्हें पता होगा ही। उसने कहा, भई राज अभी मुझे भी पता नहीं। कई कंपनियों से बातचीत चल रही है। कोई कहता है मेरी डबलरोटी बिकवा दो, कोई कहता है मेरे बिस्कुट। अभी जरा दो-चार दिन रुको। जो सबसे ज्यादा दाम देगा वही मेरा राज है।

तुम कुछ एक भाषा समझते हो। तुम धोखे की भाषा समझते हो क्योंकि तुम धोखे की भाषा में ही जिये हो। झूठ तुम्हारे बहुत करीब पड़ता है। क्योंकि झूठ तुम्हारी उस रग को छूता है जिससे तुम प्रभावित होते हो।

इसलिये तुमने देखा? तुम जरा अपने विज्ञापन उठाकर देखो अखबारों के। तुम चकित होओगे कि क्या मामला है? कार बेचनी हो तो नग्न स्त्री को खड़ी करो....या अर्धनग्न; और अर्धनग्न नग्न से ज्यादा सुंदर स्त्री होती है, ख्याल रखना। अर्धनग्न यह मत सोचना कि शिष्टाचार के कारण अर्धनग्न खड़ी की गई है। अर्धनग्न स्त्री नग्न स्त्री से ज्यादा सुंदर होती है। कुछ छिपा रहे तो उघाड़ने की संभावना रहती है। कुछ छिपा रहे तो कल्पना से तुम उघाड़ सकते हो। एकदम उघाड़कर ही खड़ा कर दो तो कल्पना एकदम ठप्प हो जाती है। एकदम नग्न स्त्री सामने खड़ी हो तो कुछ करने को बचता नहीं। तो थोड़ी-थोड़ी छिपाकर खड़ा कर देते हो।

कार बेचनी हो तो नग्न स्त्री को खड़ा करो, टूथपेस्ट बेचना हो तो नग्न स्त्री खड़ी करो। कुछ भी बेचना हो। जिससे कुछ भी संबंध नहीं....मैंने एक विज्ञापन देखा पार्कर फाउंटन पेन एक नग्न स्त्री कंधे पर लिये खड़ी है। अब पार्कर फाउंटन पेन को नग्न स्त्री से बेचने का क्या संबंध है। पार्कर थोड़े ही खरीदते हो तुम, तस्वीर खरीदोगे।

और अगर नग्न स्त्री तुम्हें जंच गई....जो कि तुम्हें जंचती ही है। वही तो भरोसा है विज्ञापनदाता का। तुम्हें जो जंचता है उसके साथ उसका साहचर्य जोड़

देना है, एसोसियेशन जोड़ देना है, जो बेचना है।

सत्य सीधा-साधा आता है, निपट आता है। बिना विज्ञापन के आता है। तुम्हारे कमजोरियों को छूता नहीं, सीधा आकर खड़ा हो जाता है। सत्य तुम्हें नहीं जंचता। सत्य धार्मिक है। झूठ राजनीतिज्ञ है।

इसलिए राजनीतिज्ञ कितने आश्वासन देते हैं। और एक दफा चुनाव हो गया, फिर न लोग पूछते हैं कि उन आश्वासनों का क्या हुआ? फिर बात खतम हो गई। और आदमी कुछ ऐसा है कि सदियों से धोखा दिया जाये तो भी धोखा खाता चला जाता है। ज्यादा से ज्यादा इतना होगा कि इस राजनीतिज्ञ के धोखे में अगले इलेक्शन में न आयेगा तो दूसरे राजनीतिज्ञ के धोखे में आयेगा।

और राजनीतिज्ञ षड्यंत्र में हैं। एक जब असफल हो जाता है, दूसरा सफल हो जाता है। जब तक दूसरा असफल होगा तब तक पहलावाला तुम फिर भूल चुके होओगे कि इसने पहले क्या किया था। तब तक तुम फिर स्मृति तुम्हारी साफ हो गई; फिर विस्मरण हो गया। और लोगों की स्मृति बड़ी कमजोर है, दिन-दो दिन चल जाये तो बहुत। तब तक तुम फिर राजी हो गये।

ऐसे सदियों से आदमी का शोषण हुआ है। इसलिये संत शायद तुम्हें न भी जंचे, पंडित-पुरोहित खूब जंचता है। क्योंकि पंडित-पुरोहित तुम्हारी भाषा बोलता है। संत अपनी भाषा बोलता है....सधुक्कड़ी। उसने कुछ जाना है, उस जानने को तुम्हारे सामने रख देता है। जंचे तो ठीक, न जंचे तो ठीक। जबरदस्ती जंचाने की चेष्टा नहीं होती। कोई आग्रह नहीं होता। कुछ बेचना थोड़े ही है। तुम खरीद ही लो, ऐसी कोई चेष्टा नहीं है। तभी चूक हो जाती है।

पश्चिम की दुकानों में सेलसमन की जगह सेलसवुमन आ गई है। पश्चिम की दुकानों में अब तुम्हें आदमी नहीं मिलता चीजें बेचता हुआ, स्त्रियां आ गई हैं। क्योंकि एक बात समझ में पड़ चुकी है कि स्त्री ज्यादा कुशलता से बेच देती है। उसमें भी सुंदर स्त्री की फिकर की जाती है।

अब एक जूता खरीदने गये हो तुम, अब इससे कोई संबंध नहीं है कि कौन बेचे। तुम्हें जूता देखना चाहिये कि कौन सा जूता कम काटता है, कौन सा जूता ज्यादा मुलायम है, कौन सा ज्यादा चलेगा, कौन सा मजबूत है, किसका तल्ला टिकेगा। तुम्हें जूते पर ध्यान देना चाहिये। लेकिन तुम्हारा ध्यान चुकाना है। जूते पर ध्यान गया कि जूते को बेचना मुश्किल हो जायेगा। तुम्हारा ध्यान चुकाने का सबसे ठीक उपाय एक सुंदर स्त्री को खड़ा कर दिया। वह जल्दी से तुम्हारा पांव पोंछ देगी।

अब तुम भूल गये जूता इत्यादि। अब तुम....जूते-वूते से कोई संबंध नहीं

रहा। आये थे जूता पैर में पहनने, पड़ेंगे सिर पर अब। भूल ही गये। अब तुम्हें होश ही है। और यह सुंदर स्त्री तुम्हारा पैर पोंछ रही है। और उसने तुम्हें एक जूता पहना दिया और वह दूर खड़ी होकर कहती है, कितना सुंदर लगता! आपके पैर पर बिलकुल फबता। बहुत लोगों को इस जूते को पहने देखा मगर किसी के पैर पर ऐसा नहीं फबता। अब तुम्हें भीतर काट भी रहा है मगर अब तुम कुछ कह भी नहीं सकते। अब इस सुंदर स्त्री को कौन इन्कार करे? तुम कहते हो, खूब! अच्छा तो लग रहा है, सुंदर है। जैसे-जैसे वह सुंदर स्त्री देखती है, तुम्हें जंचने लगा, दाम भी उसके बढ़ने लगे भीतर। बीस रुपये से तीस हुए, पैंतीस हुए, चालीस हुए। जब उसने देख लिया कि अब चालीस मांगे जा सकते हैं और तुम दोगे....।

झूठ सब तरह की व्यवस्था करके आता है। सेना अपने चारों तरफ आयोजन करके आता है। सत्य ऐसे ही आकर खड़ा हो जाता है इसलिए तुम्हें जंचता नहीं। तुम्हें अगर परमात्मा मिल जाये तो शायद ही जंचे। शायद मिलता भी है। शायद कभी-कभी रास्तेपर तुम्हारा मिलन भी हो जाता है लेकिन तुम पहचान ही नहीं पाते। तुम्हारी आंखे जिसको पहचान सकती हैं उस ढंग से परमात्मा नहीं आता। तुम्हारी आंखोंने जो पहचान के रास्ते बनाये हैं उस तरह तो चोर-लफंगे ही आते हैं। उस तरह तो धोखेबाज-पाखंडी ही आते हैं।

प्रश्न महत्वपूर्ण है। तुम पूछते हो, "झूठ इतना प्रभावी क्यों है?" क्योंकि तुम्हें सत्य की पहले तो खोज नहीं। तुम्हें खोज कुछ और बात की है। तुम जब सत्य की भी बात करते हो तब भी तुम्हें सत्य की खोज नहीं है, तुम्हें खोज किसी और बात की है। तुम्हें जिसकी खोज है, झूठ तुम्हें उसका आश्वासन दिलवाता है।

समझो। सत्य को पाने से सुख मिलता है लेकिन सत्य तुम्हारे द्वार पर आकर यह नहीं कहता कि मैं तुम्हें सुख दूंगा। सत्य कहेगा, मैं सत्य हूं। आओ, डूब जाओ मुझमें। सुख मिलता है, यह दूसरी बात है। यह तो अनायास घट जाता है सत्य में प्रवेश करने से। लेकिन झूठ आकर यह नहीं कहता कि मैं सत्य हूं, झूठ आकर कहता है, मुझमें डूबो, सुख मिलेगा। फर्क समझना तुम। सत्य कहता है, मैं सत्य; इतना ही बिना किसी और प्रलोभन के। झूठ यह नहीं कहता कि मैं कौन हूं। झूठ कहता है, मुझमें डूबो, सुख मिलेगा। खूब सुख मिलेगा। महास्वर्ग तुम्हें ले चलूंगा।

तुम्हारी आकांक्षा तो सत्य है भी नहीं, तुम्हारी आकांक्षा सुख की है। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान करेंगे, लाभ क्या होगा? ध्यान में भी

लाभ ? तो तुम गलत ही बात पूछ रहे हो। ध्यान में तो लाभ-लोभ छोड़कर जाओगे तो पहुंचोगे। और ऐसा नहीं है कि ध्यान में लाभ नहीं है, परम लाभ है। लेकिन तुम लाभ-लोभ की भाषा से गये तो तुम ध्यान में जा ही न सकोगे। तब तो तुम किसीसे गंडे-ताबीज लोगे, किसीसे कान फुंकवाओगे। किसी मदारी के चक्कर में पड़ोगे। क्योंकि तुम्हें लोभ और लाभ पकड़ा हुआ है।

ध्यान के जगत में लोभ और लाभ की बात लानी होती ? ध्यान के जगत में तो वही प्रविष्ट होता है, जो कहता है खूब लोभ करके देख लिया और कुछ भी न पाया। आश्वासन बहुत मिले, पूरे कभी न हुए। बहुत झूठों के साथ चलकर देख लिया, कुछ भी नहीं पाया। पाने की दौड़ ही व्यर्थ हो गई है। इतने विषाद से भर गया है, कोई इतना हार गया है तो वह कहता है, अब नहीं दौड़ना लोभ में। अब मुझे कोई ऐसी दशा में पहुंचा दें जहां कोई लोभ न रह जाये, कोई लाभ न रह जाये। कोई दौड़ न रह जाये, कोई वासना, कोई तृष्णा न रह जाये। मुझे ऐसे चित्त की थोड़ी सी झलक दिला देना, जहां मैं अपने में तृप्त हो जाऊं; जहां मेरी कोई मांग न रह जाये।

तब तो शायद तुम ध्यान में जा सको। लेकिन तुम गलत ही सवाल पूछते हो। तुमने गलत सवाल पूछा, कोई न कोई गलत जवाब देकर तुम्हें प्रलोभित कर लेगा। तुम्हें मिल जायेगा कोई न कोई कहीं न कहीं तुम्हारे गर्दन को फांसी लगा देनेवाला। वह कहेगा कि ठीक है, तुम्हें लाभ चाहिये ? हम लाभ देंगे। तुम्हें व्यवसाय में, रोजगारी में बढ़ती होगी, जल्दी ही पदोन्नति होगी अगर ध्यान करोगे। ये फिजूल की बातें हैं लेकिन इनको भी बतानेवाले लोग हैं।

महर्षि महेश योगी लोगों से यही कहते हैं, पदोन्नति भी होगी ट्रान्सेंडेंटल मेडिटेशन करने से। रोजगार भी अच्छा चलेगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी। सफलता मिलेगी जीवन में। अगर अमरीका में उनके भावातीत ध्यान का इतना प्रभाव है तो उसका कोई और कारण नहीं है क्योंकि अमरीका बड़ा लोभी है। भयंकर लोभ है। हर चीज को जांचने का एक ही उपाय है : सफलता। क्या मिलेगा, इसका ठीक-ठीक हो तो कोई भी जाने को, किसी भी बात के साथ जाने को तैयार है। भारत में बहुत प्रभाव नहीं पड़ा; जरा भी नहीं पड़ा, लकीर भी नहीं खिंची। लेकिन अमरीका में बहुत प्रभाव पड़ा। क्योंकि अमरीका इस भाषा को समझा।

अमरीकन मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि भारत और पूरब से जितने गुरु अमरीका आये उन्होंने अमरीका को बदला ऐसा तो नहीं दिखता, अमरीका ने उन्हें बदल दिया इतना साफ है। और यह बात साफ दिखती है। भारत से जितने गुरु अमरीका गये उनमें से किसीने भी अमरीका को जरा नहीं बदला। मगर

अगर तुम विश्लेषण करके गौर से देखो तो अमरीका ने उन्हें बिलकुल बदल दिया। वे ऐसी भाषा बोलने लगे जो ज्ञानियों की भाषा ही नहीं है। वे ऐसी बातें करने लगे जो कि सिद्धों के जगत में कभी नहीं की गई। वे ऐसी चीजों के पीछे दौड़ने लगे, जिनमें संतों का कोई रस नहीं होना चाहिये। मगर यह होता है।

अमरीका बहुत बलशाली है। तुम्हारे तथाकथित महात्मा अमरीका पहुंचकर बड़े कमजोर सिद्ध होते हैं। अमरीका जीत जाता है। और कैसे जीत जाता है ? बात सीधी-साफ है। अमरीकन आदमी को प्रभावित करना हो तो लोभ की बात करो। और तुमने लोभ की बात कि तो फिर सत्य की बात हो ही नहीं सकती। लोभ के पीछे झूठ जाता है। लोभ की भाषा झूठ को भाषा है। और तुम लोभ समझते हो इसलिए झूठ प्रभावी हो जाता है।

और फिर एकेक इंच दूसरी चीजें सरकती आती हैं। हर चीज एक-दूसरे से जुड़ी है। और मजा यह है कि चूंकि ये बातें झूठ भी नहीं हैं इसलिए इनको बोलनेवाला सोचता है, कोई झूठ तो नहीं बोल रहा है। जैसे परोक्ष परिणाम होते हैं, मगर सीधा उन्हें ध्यान से जोड़ना नहीं चाहिये। जैसे, यह बात सच है, अगर तुम ध्यानी हो जाओ तो तुम्हारे जीवन में ज्यादा सफलता घटित होगी, इसमें कोई शक नहीं है। इसलिए नहीं कि ध्यान से सफलता का कोई संबंध है बल्कि इसलिए कि ध्यान तुम्हें शांत कर देगा। और शांत आदमी जो करेगा, जैसा करेगा उसमें भूल-चूक कम होगी। ध्यान शांति देगा, सफलता नहीं देगा, नौकरी में तरक्की नहीं देगा। ध्यान शांति देगा, परम विश्राम देगा। इसके परिणाम होंगे। इसके परिणाम तुम्हारे सारे जीवन पर होंगे।

तुम अगर चित्रकार हो तो तुम बेहतर चित्रकार हो जाओगे। तुम मूर्तिकार हो तो तुम्हारी मूर्ति अब नये रंग-रूप में उभरेगी। तुम अगर संगीतज्ञ हो तो तुम्हारे संगीत में नये प्राण आ जायेंगे। तुम अगर दुकानदार हो तो तुम्हारे ग्राहक से संबंध बड़े मधुर हो जायेंगे। तुम अगर मालिक हो तो नौकर और तुम्हारे बीच एक भाईचारा खड़ा होगा, जो कभी भी नहीं था। तुम अगर शिक्षक हो तो इन बच्चों जिनको तुम पढ़ाते हो और तुम्हारे बीच एक नया संबंध जुड़ेगा, एक नया प्रेम।

इस प्रेम के माध्यम से बहुत कुछ घटित होगा मगर ये सब परोक्ष परिणाम हैं, इनको सीधे जोड़ना गलत है। क्योंकि जोड़ा कि भूल हुई। जो आदमी मुझसे आकर पूछता है कि ध्यान से लाभ क्या होगा ? मैं उससे कहता हूं, कोई लाभ नहीं होगा। क्योंकि अगर यह लाभ की बात पूछ रहा है तो ध्यान तो यह कभी करेगा ही नहीं। लाभ की चिंता से डूबा आदमी ध्यान ही नहीं करेगा। और ध्यान ही नहीं करेगा तो लाभ कैसे होगा ?

अब यह बड़ी . . . बेबूझ मत समझ लेना इस बात को, यह सीधी-साफ है। विरोधाभासी जरूर है। जो आदमी लाभ की भाषा छोड़कर आता है उसको ध्यान से लाभ होता है। इसलिए ध्यानियो ने कभी नहीं कहा कि लाभ होगा; वे चुप रहे। वे बोले कि लाभ की भाषा छोड़ दो तो ध्यान होगा । फिर ध्यान हो गया तो सब हो जायेगा । वह तुम पीछे जानना।

जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है : " सीक यी फर्स्ट द किंगडम ऑफ गॉड देन ऑल एल्स शैल बी एडेड अन्टू यू " । तुम और मत पूछो दूसरी बातें । तुम पहले परमात्मा का राज्य खोजो, फिर सब उसके पीछे अपने से आ जायेगा--ऑल एल्स शैल बी एडेड अन्टू यू । वह आ ही जाता है, उसकी बात ही मत उठाओ। उसकी चर्चा ही मत छेड़ो।

जरूर जब उन्होंने यह वचन कहा तो किसी ऐसे आदमी से कहा होगा, जिसने आकर पूछा होगा, ध्यान से लाभ होगा ? परमात्मा को पाने से धन बढ़ेगा, पद बढ़ेगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी ? उससे कहा होगा कि तू ये फिजूल की बातें न कर। तू सिर्फ परमात्मा को खोज ले फिर शेष सब अपने से हो जाता है। इसकी बात ही मत उठा। यह बात ही क्षुद्र है । और अगर इसकी बात उठाई तो तू परमात्मा को खोज ही न सकेगा क्योंकि तेरी नजर तो इन चीजों पर लगी रहेगी।

जिसकी नजर धन पर लगी है वह ध्यान कैसे खोजेगा ? जो अभी धन से उकताया नहीं वह ध्यान कैसे खोजेगा ? हालांकि यह सच है कि जो ध्यान को उपलब्ध होगा उसके समस्त जीवन-व्यवहार में बड़ी आभा आ जायेगी। वह जो करेगा, जैसे करेगा, उसमें कुशलता आ जायेगी। चित्त जब शांत होता है, तो उसकी छाया जीवन के सभी व्यवहार पर पड़ती है। समस्त व्यवहार में रूपांतरण होता है । लेकिन वह बात करने की नहीं है। वह बात की कि ध्यान ही नहीं होगा।

झूठ होशियार है। झूठ कहता है, आओ मेरे पास। धन बढ़ेगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी, दौलत मिलेगी; स्वर्ग, बहिश्त सब मिलेंगे। परमात्मा भी मिलेगा । और तुम इन चीजों को चाहते हो। तुम्हारी चाहत बड़ी गहरी है । तुम्हारी चाहत का शोषण हो जाता है।

तुम्हारे मन में जब तक चाहत है तब तक जिसको दरिया ने झूठा साधु कहा है, स्वांग कहा, उसीसे तुम्हारा मिलन होगा। तुम किसी स्वांग के ही चक्कर में पड़ोगे। देखा नहीं ? बिल्ली ने गुरु किया तो बिल्ली को बगुला मिल गया। वह जंचा। वह बिल्ली को जंचा होगा। वही भाषा, जो बिल्ली की, वही बगुले की। बिल्ली को देखा तुमने कभी, जब चूहे को पकड़ने को बैठती है ? कैसी शांत हो

जाती है। स्थिर, 'स्थिरधी'। बिलकुल शांत हो जाती है। हिलती भी नहीं, डोलती भी नहीं। चूहे को पता ही नहीं चलता कि कोई आसपास है। सांस भी रोक लेती है।

यह बिल्ली की भाषा है। बगुला इसी भाषा के जगत में और भी आगे है। वह बिल्ली से भी ज्यादा निष्णात है। एक ही टांग पर खड़ा हो जाता है। और बिलकुल अडिग हो जाता है। स्वभावतः उसे ज्यादा अडिग होना पड़ता है क्योंकि वह जिस माध्यम में खड़ा है--पानी में, वह जरा से कंपन को पकड़ लेगा। बिल्ली का माध्यम इतना कंपित होनेवाला नहीं है, जमीन पर बैठी है। तो अगर थोड़ी-बहुत कंपेगी भी तो कोई हर्जा नहीं है। चलना नहीं चाहिये, आवाज नहीं होनी चाहिये, बस। क्योंकि चूहा आवाज से डर जायेगा और अपने बिल में वापिस चला जायेगा।

तो बिल्ली तो जमीन के माध्यम पर बैठी है। थिर होना इतनी कुशलता की बात नहीं है। लेकिन जल में खड़े होना, जहां जरा सा कंपन जल में लहरें उठा देगा, लहरें उठीं कि मछलियां नदारद हो जायेंगी। मछलियां पास ही न आयेंगी। तो जब बिल्ली बगुले को देखती है तो उसको समझ में आता है कि यह है गुरु। महागुरु मिले, धन्यभाग। इनके चरण गहूं। इनकी शरण रहूं।

तुम झूठे हो इसलिए झूठ प्रभावी होता है, यह मेरा उत्तर है। तुम झूठे हो। तुम्हारा झूठ में लगाव है इसलिए झूठ प्रभावी होता है। झूठ तुम्हारी भाषा बोलता है, तुम्हारे अंतरंग की भाषा बोलता है। झूठ के साथ तुम्हारे हृदय की कली खुलने लगती है।

जरा देखो, जीवन को परखो। रास्ते पर तुम एक भिखारी को मरता हुआ देखते हो, तुम्हारी आंख में आंसू नहीं आते । यह तुमने कभी ख्याल किया ? फिल्म में तुम देखते हो भिखारी को मरते हुए, तुम्हारी आंख में आंसू आ जाते हैं। लोग रूमाल निकालकर आंसू पोंछ लेते हैं। लोगों को आंसू थिएटर में ही आते हैं। वह बड़ी आश्चर्य की बात है। असली भिखमंगा मरता हो, किसीको आंसू नहीं आते। तुम मुंह फेरकर और घृणा से, कि यह भिखमंगों से कब छुटकारा होगा, कि यह भिखमंगों को क्यों सरकार सड़क पर छोड़ देती है ? इन सबको समाप्त किया जाना चाहिये। इनको निकाल हटाकर अलग किया जाना चाहिये। इनको कामधंधे में लगा देना चाहिये। तुम्हें हजार तर्क खड़े होते हैं असली भिखमंगे को देखकर। खाली खेल चल रहा है।

फिल्म में कोई दांव पर तो लगी नहीं है बात। तुम्हें पता है भलीभांति कि परदा झूठ का जाल है। परदे पर कोई है तो नहीं। तुम्हें पता है कि वहां कोई भी नहीं है, अंधेरे और प्रकाश का जाल है। वहां कोई भी खाली है। परदे पर केवल रोशनी, अंधेरे और प्रकाश का जाल है। वहां कोई भी

नहीं है, मगर आंखें तर हो जाती हैं। मैं जानता हूं लोगों को, जो दो और तीन रूमाल लेकर जाते हैं। क्योंकि एकेक रूमाल भीग जाता है, रखते जाते....। तुम उसी फिल्म को कहते हो गजब की थी, लाजवाब, कि कोई उत्तर नहीं, जिसमें तुम्हारे सब रूमाल भीग जाते हैं, जिससे तुम रोते निकलते हो।

झूठ से तुम इतने प्रभावित होते हो क्योंकि झूठ की भाषा समझते हो। सच की भाषा तुम नहीं समझते।

तालस्ताय ने लिखा है कि उसकी मां इतनी दयालु थी कि थियेटर में देखकर रोने लगती थी, आंसू पोंछने लगती थी। कभी-कभी गश खा जाती थी। अगर थियेटर में कोई ऐसा दृश्य आ जाये तो गश खा जाती थी। कई दफा उसे बेहोश घर में लाना पड़ता था। और बड़ी दीवानी थी देखने की। तो थियेटर में रोज ही जाती थी।

और अक्सर ऐसा होता, तालस्ताय ने लिखा है, जब मैं छोटा था तब तो मुझे समझ में नहीं आया, जब मैं थोड़ा बड़ा हुआ तो मैं बड़ा हैरान हुआ। अक्सर ऐसा होता था--क्योंकि तालतास्य शाही घराने का था। धनपति लोग थे, बड़ी जमींदारी थी। तो वह जो....जिस गाड़ी पर बैठकर आती थी, जिस बग्घी पर बैठकर आती थी, वह बग्घी बाहर तैयार खड़ी रहती थी क्योंकि कब उसको गश आ जाये, और कब उसका मन उखड़ जाये, नाटक न जंचे तो वह उसी क्षण उठकर आ जाती थी। तो ड्राइवर को बैठा ही रहना पड़ता था, कोचवान को बैठा ही रहना पड़ता था गाड़ी में। और रूस....ठंडी रातें, बर्फ पड़ती।

अक्सर ऐसा होता कि कोचवान बैठे-बैठे मर जाता। और उसकी मां थियेटर से रोती हुई बाहर आती। और कोचमेन मरा हुआ बैठा है, उसको धक्के देकर अलग कर दिया जाता, दूसरे आदमी को पकड़कर बिठाया जाता, और गाड़ी चल पड़ती। लेकिन इस मरे हुए कोचमेन के लिये तालस्ताय ने लिखा है कि मैंने कभी आंसू टपकते नहीं देखा। यह असली आदमी मर गया, इसकी गाड़ी के लिये, इसकी ही प्रतीक्षा करते-करते मर गया, इसके ही कारण मर गया, और इसके मन में कोई दया का भाव नहीं उठता? यह असली आदमी है। असली आदमी के प्रति किसीको दया का भाव नहीं उठता।

तुमने देखा? फिल्म में कोई आदमी किसीके प्रेम में पड़ जाये तो तुम्हारी कितनी सहानुभूति होती है। मगर तुमने असली प्रेमी को कभी सहानुभूति दिखाई? बस, वहां तो तुम एकदम जहर हो जाते हो। असली प्रेमी बड़ा खतरनाक आदमी है, लफंगा है, लुच्चा है। असली प्रेमी को कोई अच्छी भाषा भी नहीं बोलना। लेकिन फिल्म के प्रेमी को तुम बड़ी सहानुभूति देते हो।

अगर फिल्म में कोई पत्नी किसी पति को सता रही तो तुम्हारी बड़ी सहानुभूति पति के प्रति होती है। और अगर पति प्रेम में पड़ जाये, किसी दूसरी स्त्री के तो तुम्हारे मन में ऐसा नहीं उठता कि अनीति हो; रही है, मगर असली जिंदगी में? असली जिंदगी में अनीति हो रही है; सहानुभूति उठती ही नहीं, दया उठती ही नहीं। नरक में जायेंगे लोग।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम झूठ से प्रभावित होते हो और सच का तुम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मजनू जब जिंदा था तब कोई उससे प्रभावित नहीं था। गांव भर उसको लानत देता था। गांव भर उसके खिलाफ था। उसे गांव से निकाल दिया था। सबकी सहानुभूति लैला के बाप के साथ थी। अगर उस दिन वोट लिये गये होते तो सबके वोट लैला के बाप को पड़ते, जो कि बाधा डाल रहा था।

लेकिन फिल्म में? जब तुम लैला-मजनू फिल्म देखते हो, तो तुम्हारी सारी सहानुभूति मजनू के साथ है। तुम मजनू के बाप को तो समझते हो कि यह दुष्ट कहां से बीच में सब कहानी को खराब कर रहा है।

तुम जरा गौर करना, उपन्यास पढ़ते-पढ़ते रो लेते हो और जिंदगी... जिंदगी बहुत ज्यादा दुखों से भरी है। क्या उपन्यासों में होगा! उपन्यासों में तो सिर्फ छोटी-मोटी छायायें बनती हैं। जिंदगी बहुत दुख से भरी है। लेकिन जिंदगी देखकर तुम्हें कुछ दुख नहीं होता, न कोई पीड़ा होती है, न कोई सहानुभूति उठती है। क्योंकि जिंदगी सच है और तुम झूठ की भाषा समझते हो।

जिस व्यक्ति को सत्य की दिशा में जाना हो उसे झूठ की भाषा को गिराना पड़ता है। उसे धीरे-धीरे झूठ की भाषा काटनी पड़ती है। वह कविताओं से फिर कम प्रभावित होता है। वह जीवन का जो महाकाव्य है, उसमें उसकी आंख गहरी जाती हैं। वह वहां देखता है।

तथ्यों की खोज शुरू करो तो सत्य को तुम पहचान पाओगे। उपन्यासों में मत डूबे रहो। तुम्हारा दिमाग फिल्मी हो जाये तो बहुत खतरा है। खतरा यही है कि तुम्हारी आंखें धीरे-धीरे-धीरे-धीरे उन बातों से प्रभावित हो जायेंगी, जो बातें नहीं हैं।

अभी एक मनोवैज्ञानिक ने अमरीका में एक खोजबीन की है। बड़ी हैरानी की है, दुखद है। ऐसी कई घटनायें अमरीका में पिछले पांच-सात सालों से घटी हैं, जो चौंकानेवाली हैं।

न्यूयॉर्क में एक स्त्री को--बूढ़ी स्त्री को-किसीने छुरा मारकर मार डाला। किसीऔर बड़े कारण से नहीं, सिर्फ उसका मनीबैग छीन लेने को; उसकाब टुआ छीन

लेने को। जब वह मारी गयी, भरी दुपहरी थी। रास्ता चल रहा था। अनेक लोग रास्ते पर थे। कम से कम दो सौ लोगों ने देखा लेकिन किसीने रुकावट न डाली। लोगों ने अपनी खिड़कियां बंद कर लीं। कौन झंझट में पड़े! क्योंकि यह झंझट की बात है। पुलिस को गवाही न मिले। दो सौ लोग मौजूद थे लेकिन कोई गवाही देने को राजी नहीं। क्योंकि फिर अदालत जाना पड़े और फिर... और कौन झंझट में पड़े? यह आदमी खतरनाक है, जिसने दु रा मारा इसके संगी-साथी होंगे। माफिया पीछे होगा, पता नहीं। कौन झंझट में जाये।

लोग अपना मुंह फेरकर चले गये। एक बूढ़ी औरत, एक कमजोर बूढ़ी औरत एक जवान आदमी ने छुरा मारकर मार डाली। सिर्फ बटुआ छीन लेने को; किसी और कारण से नहीं। लेकिन कोई रोका नहीं। दो सौ आदमी थे, चाहते तो इस जवान को वहीं के वहीं रोक सकते थे। सिर्फ जोर से चिल्ला दिये होते तो इस जवान के हाथ से छुरी छूट गयी होती। इतने लोग मौजूद थे। दुकानें खुली थीं, मकानों पर लोग थे। लोगो ने खिड़कियां बंद कर लीं।

ऐसी कई घटनायें पांच-सात सालों में घटी हैं। तो वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक बड़े चिंतित हुए कि बात क्या हो रही है? आदमी क्या जड़ होता जा रहा है? क्या करुणा सूखती जा रही है? लेकिन जो कारण मिला, वह बहुत हैरानी का है। टेलीविजन। तुम चकित होओगे कि टेलीविजन और कारण?

अमरीका में प्रत्येक आदमी करीब-करीब चार घंटे, पांच घंटे, छह घंटे रोज टेलीविजन देख रहा है। जिंदगी का बड़े से बड़ा हिस्सा टेलीविजन पर जा रहा है। लोग अपनी कुर्सियों से बिलकुल जैसे गोंद से जोड़ दिये गये हों, ऐसे बैठ जाते हैं। टेलीविजन से फिर हटते नहीं।

टेलीविजन क्यों कारण है इसका? टेलीविजन इसका कारण है। टेलीविजन पर लोग देखते हैं, हत्या की जा रही है। देखते हैं सिर्फ। टेलीविजन पर क्या करोगे? देख ही सकते हो। हत्या होती, चोरी होती, डाके डाले जाते, युद्ध होते, वियतनाम होता। निरीह, निहत्थे लोगों पर बम गिराये जाते, छोटे बच्चे-स्त्रियां जलते हैं बमों में। यह सब देख सब देख रहे हैं पांच-छह घंटे। तो धीरे-धीरे एक भाव पैदा हो गया है कि सब चीजें देखने की हैं। पढ़ने की नहीं हैं, देखने की हैं। तो लोग तमाशबीन हो गये हैं। जब पांच-छह घंटे कोई टेलीविजन को देखता रहेगा, यह झूठ जो सामने चल रहा है इसको देखता रहेगा तो इस झूठ की भाषा इसके पकड़ में आ गई। वह तमाशबीन हो गया। अब रास्ते पर किसी को छुरा मारा जा रहा है तो इसको ख्याल ही नहीं आता कि मुझे कुछ करना है। करने का सवाल ही क्या है? रोज तो दिन में तो देखता है छह-छह घंटे--छुरा मारा जाता

है, गोली चलाई जाती है, यह सब तो होता जाता। उसे ख्याल ही नहीं आता। लोग तमाशबीन हो गये हैं। लोग अब भागीदार नहीं होते।

जब मैं यह सर्वे पढ़ रहा था तो मुझे एक याद आई। बंगाल में घटी यह घटना। विद्यासागर के जीवन में घटी यह घटना। विद्यासागर के जीवन में घटी यह घटना। विद्यासागर बड़े महापंडित थे। एक नाटक देखने गये थे। और नाटक में एक आदमी है जो एक स्त्री को सता रहा है। और विद्यासागर क्रोध से भरते जा रहे हैं। ऐसी घड़ी आ गई कि वे भूल ही गये कि यह नाटक है। और वह आदमी आखिरी शिखर पर आ गया अपनी चालबाजियों के। उसने उस स्त्री को एक रात अंधेरे में पकड़ लिया, वह व्यभिचार ही करने जा रहा है।

फिर तो विद्यासागर उचककर अंदर पहुंचे गये। चढ़ गये मंच पर और लगे उस आदमी को निकालकर जूता मारने। सारे लोग चकित हो गये कि यह क्या मामला है। यह कैसा नाटक हो रहा है? उनको पकड़ा गया कि आप यह क्या करते है पंडित होकर? तब उन्हें होश आया। मगर वे तो पसीने से लथपथ, आंखें उनकी खून से लाल, जूता हाथ में।

लेकिन वह अभिनेता भी बड़ा कुशल अभिनेता था। उसने कहा, जूता मुझे दे दें। जूता उसने ले लिया। उसने कहा, यह मेरे जीवन का सब से बड़ा पुरस्कार है। अभिनेता के लिये और क्या बड़ा पुरस्कार हो सकता है कि कोई यह भूल ही जाये कि यह अभिनय है?

कहते हैं, वह जूता उस अभिनेता के घर अब भी है। अभिनेता तो मर गया लेकिन उसके बच्चों ने सम्हालकर रखा है। वह पुरस्कार है विद्यासागर का। क्योंकि उस अभिनेता ने इतनी कुशलता से अभिनय किया कि विद्यासागर भूल गये कि अभिनय है।

एक विद्यासागर, कि अभिनय को देखकर भूल गये कि अभिनय है; सोचा असली जिंदगी है। और एक अमरीका में आदमियों के संबंध में की गई खोजबीन कि असली औरत मारी जा रही है तो लोग समझते हैं, टी. वी. के परदे पर हो रहा है, चलो होने दो। तमाशबीन हो गये हैं।

तुम्हारी जिंदगी अगर झूठी बातों में बहुत रस लेने लगी तो झूठ प्रभावी होगा। अगर झूठ से मुक्त होना हो और झूठ के प्रभाव से मुक्त होना हो, और झूठ के चालबाजियों से मुक्त होना हो तो धीरे-धीरे इस बात को समझने की कोशिश करो, तथ्यों में डूबो। जीवन चारों तरफ खड़ा है नग्न, निर्वस्त्र। वृक्षों को देखो, फूलों को देखो, चांद-तारों को देखो, स्त्री-पुरुषों को देखो, गरीब-अमीर को देखो, राह चलते भिखमंगे को, छोटे बच्चे की किलकारी को, रोते हुए आदमी को,

टपकते हुए आंसुओं को, मुस्कुराहटों को, जिंदगी के तथ्यों को। इन्हीं तथ्यों में कहीं तुम्हें सत्य की झलक मिलेगी। और इसी में कहीं परमात्मा छिपा है।

लेकिन तुम किताबों में खोज रहे हो। इसलिए तो दरिया कहते है, "रंजी सास्तर ग्यान की अंग रही लिपटाय"। सारा दर्पण शास्त्र की किताबी, थोथी, काल्पनिक बातों से, उनकी धूल से ढंक गया है। इस ढंके दर्पण में परमात्मा की तस्वीर बने तो कैसे बने?

तीसरा प्रश्न : आप कहते हैं, प्रार्थना सम्राट की तरह करो, भिखारी की तरह नहीं। आप कहते हैं, प्रार्थना अहैतुकी हो तो ही प्रार्थना है। लेकिन सम्राट से प्रार्थना की जाती है; उसे प्रार्थना करने की क्या जरूरत है?

या क्या प्रार्थना प्रेम-गीत है?

पहली बात : जब तक प्रार्थना करने की जरूरत है तब तक प्रार्थना न हो सकेगी। जरूरत का मतलब है मांग। जरूरत का मतलब है, परमात्मा के अतिरिक्त कोई और चीज की चाह।

तुम मंदिर गये और तुमने मांगा कि हे प्रभु मेरी पत्नी बीमार है, उसे ठीक कर दे। या तुमने मांगा कि मेरा बेटा नौकरी तलाश कर रहा है, मिलती नहीं। नौकरी-दफ्तरों के सामने खड़े-खड़े महीनों बीत गये, अब उसको ध्यान कर।

तुमने कुछ भी मांगा तो प्रार्थना रही कहां, बची कहां? या तुमने सोचा, नहीं मांगी इस संसार की कोई बात। तुम गये और तुमने कहा कि प्रभु, अब मरकर इस जगत में नहीं आना। अब तो मुझे स्वर्ग में बुला ले, अपने पास बुला ले। अब दुबारा आवागमन न हो। यह भी प्रार्थना है लेकिन क्या यह मांग से मुक्त है? यह भी मांग से ही भरी है।

प्रार्थना शब्द का अर्थ ही मांग होता है असल में। इसलिए मांगनेवाले को प्रार्थी कहते हैं। लोगों ने प्रार्थना मांगने के लिये ही की है इसलिए धीरे-धीरे प्रार्थना शब्द का अर्थ ही मांगना हो गया। और प्रार्थना करनेवाले का नाम प्रार्थी हो गया। प्रार्थना तो तभी होती है जब कोई जरूरत न रह गई।

तुम्हारा प्रश्न भी ठीक है कि जब जरूरत ही न रह गयी तो प्रार्थना किस लिये करेंगे? जब जरूरत होती है तभी प्रार्थना होती है। मेरे प्रार्थना का अर्थ है, धन्ययाद। प्रार्थना का अर्थ होता है, कृतज्ञता का भाव। प्रार्थना का अर्थ होता है, इतना ज्यादा दिया है कि मैं धन्यवाद देने आया हूं।

मांग का अर्थ होता है, जो तूने दिया है, कम है। मैं शिकायत करने आया

हूं। फर्क दोनों में समझ लेना, जमीन-आसमान का है। मांग का अर्थ होता है, कैसा तू दाता है! लोग कहते हैं बड़ा दाता है, मगर क्या खाक दाता है! लड़के को नौकरी नहीं मिलती, मेरी दुकान नहीं चलती। कुछ ख्याल कर। सुनते हैं कि तेरे दरबार में देर है, अंधेर नहीं है लेकिन देर भी हो रही है और अंधेर भी हो रहा है। पापी आगे बढ़े जा रहे हैं, मैं पुण्यात्मा पीछे पड़ा जा रहा हूं। भले लोग तो कहीं भी नहीं हैं, बुरे लोग सिर पर चढ़ बैठे हैं। यह अंधेर चल ही रहा है। देर भी बहुत हो गयी है और अंधेर भी खूब हो रहा है। अब इसे रोक।

जब तुम मांगते हो तो शिकायत अनिवार्य है। नहीं तो मांगोगे क्या? मांग का अर्थ ही होता है, कुछ गलत हो रहा है जो नहीं होना चाहिये था। और कुछ जो होना चाहिये था, नहीं हो रहा है। तो जो होना चाहिये वह कर। मांग का अर्थ होता है, मैं तुझे सलाह देने आ रहा हूं। तेरी बुद्धि ठीक से काम नहीं कर रही है, मेरी सलाह मान। मांग का अर्थ होता है, मैं ज्यादा समझदार हूं, तू कम समझदार है। ये सब बातें छिपी हैं मांग में। मांग बड़ी अपमानजनक है, अधार्मिक है।

जीसस सूली पर जब लटकाये गये तो आखिरी क्षण में उनके मुंह से आवाज निकली कि हे प्रभु! यह तू मुझे क्या दिखा रहा है? शिकायत तो आ गयी। शक तो आ गया। यह बात तो हो गयी साफ न कि तू कुछ गलत कर रहा है। यह तू मुझे क्या दिखा रहा है? यह जैसे जीसस की अपेक्षा के अनुकूल नहीं था, जो हो रहा था। शायद जीसस ने कुछ और अपेक्षा की थी ऐसा होगा, ऐसा होगा। सूली पर लटकाया जाऊंगा तो यह चमत्कार होगा, या कुछ सोचा होगा। मन ही तो है आदमी का! वह कुछ भी नहीं हो रहा है, उल्टा सूली लगी जा रही है, हाथ में खीले ठोंके जा रहे हैं, कंठ में प्यास से मरा जा रहा है और कुछ घट नहीं रहा। परमात्मा की कुछ दया नहीं बरस रही। और मैं परमात्मा का बेटा और मेरी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा। यह हो क्या रहा है? यह अन्याय हो रहा है। यह जरा ज्यादती हो रही है। अब बहुत हो गई। अब मुझे कहना ही पड़ेगा।

तो निकल गयी आवाज कि हे प्रभु यह तू मुझे क्या दिखा रहा है? लेकिन जीसस बड़े संवेदनशील व्यक्ति थे। किसी अचेतन में दबी हुई यह बात प्रगट हो गयी। शायद और किसी क्षण में प्रगट होती भी न। फांसी पर ही प्रगट हो सकी। शायद फांसी ही उतना दुख ले आई कि आखिरी तलहटी ने ऐसी बात जो बहुत गहरे में थी.... कभी जीसस ने ऐसी बात न कही थी।

कभी-कभी दुख तुम्हारी असलियत को प्रगट कर जाता है। इसलिए दुख मांजता है; इसलिए दुख निखारता है। कभी-कभी दुख की घड़ी में ही तुम्हें अपनी

सचाई का पता चलता है। सुख की घड़ी में सचाई का पता नहीं चलता। सुख की घड़ी में आदमी सतह पर तैरता है। दुख की घड़ी में तलहटी में उतरता है, खाइयों में उतरता है, खड्डों में जाता है। अपने भीतर के कुएं में डूबता है, अंधेरे में जाता है।

जीसस ने कभी भी शिकायत न की थी। इसके पहले सदा धन्यवाद दिया था। प्रभु की तरफ सदा कृतज्ञता से भरी आंखें उठाई थीं। लेकिन सूली लगी। आखिरी दम तक सम्हाले रहे लेकिन जब खीले ही ठुकने लगे और जब लगा कि बात हुई जा रही है और कोई चमत्कार नहीं घट रहा तो अचेतन में, किसी गहरे अचेतन में दबा हुआ भाव प्रगट हो आया।

जैसे पानी में बबूला उठता है, उठता तो रेत से है, नीचे की रेत से उठता है। फिर उठता है....उठता है, नीचे तो बड़ा छोटा होता है जब रेत से निकलता है, जरा सा होता है। फिर जैसे-जैसे ऊपर उठने लगता है, बड़ा होने लगता है। वजन पानी का कम होने लगता है तो बबूला बड़ा होने लगता है। दबाव कम हो जाता है। फिर और ऊपर आता है तो और बड़ा हो जाता है। फिर सतह पर आता है तो पूरा प्रगट हो जाता है क्योंकि दबाब बिलकुल नहीं रह जाता।

ऐसा कोई बबूला एक ही पड़ा रह गया था। मेरे देखे वही जीसस के क्राइस्ट होने में बाधा थी। मेरे हिसाब से जीसस सूली पर क्राइस्ट हुए। जरा सी कमी रह गई थी। जरा सी खोट रह गयी थी। बड़ी छोटी खोट थी। अगर बिना सूली के मर गये होते तो शायद किसीको पता ही न चलता कि खोट थी। सूली ने बड़ी सफाई कर दी। सूली बड़ा प्रयोग सिद्ध हुई। सूली ने साधक को सिद्ध बना दिया।

जीसस उस घड़ी बुद्ध हो गये। दिखाई पड़ गया जीसस को। आदमी तो बड़ी गहराई, संवेदना के थे, बड़े बोध के थे। जरा सी खोट रह गई थी कहीं पड़ी। वह आखिरी खोट भी छूट गई। तत्क्षण जीसस को दिखाई पड़ गया, यह शिकायत हो गई। मेरे मुंह से शिकायत? प्रार्थना चूक गई। इस आखिरी घड़ी में प्रार्थना चूकी जा रही है? जीवन भर प्रार्थना की, यह घड़ी में प्रार्थना चूकी जा रही है, जब कि प्रार्थना होनी चाहिये। लोग तो कहते हैं न कि चाहे जिंदगी भर याद न की हो, मरते वक्त अगर याद कर लो तो भी काम सर जाये। यह उलटा हुआ जा रहा है कि जिंदगी भर तो याद की और मरते वक्त बात खराब कर ली।

और ऐसा ही होगा, ध्यान रखना। जीसस ने जिंदगी भर याद की तो भी मरते वक्त भूल हुई जा रही थी। तो तुम यह तो सोचना ही मत कि तुम जिंदगी र भूल करोगे और मरते वक्त ठीक हो जायेगा। इस पागलपन में पड़ना ही

मत। यह बिलकुल गणित के बाहर है। यह होनेवाला नहीं है।

तुम यह मत सोचना कि जैसे अजामिल को हुआ कि मर रहे थे, जिंदगी भर पाप किये थे....हत्यारा, डाकू, सब तरह के पाप। कभी भगवान के मंदिर में नहीं गये, कभी नाम नहीं लिया भगवान का। मगर किसी भूल-चूक में अपने बेटे का नाम नारायण रख लिया था।

असल बात यह है कि उन दिनों भगवान के ही नाम कुल नाम थे। तो पापी को भी रखना हो तो नाम उपलब्ध ही न थे। राम रखो कि नारायण कि विष्णु कि पुरुषोत्तम-कुछ भी करो, नाम ही सब भगवान के थे। अभी भी मुसलमानों में जितने नाम हैं, करीब-करीब सब भगवान के है। हिंदुओं का एक शास्त्र है न विष्णु सहस्त्रनाम! उसमें भगवान के हजार नाम गिनाये हैं। मुसलमानों के जितने नाम हैं, सब भगवान के नाम हैं।

मजबूरी थी, कोई और नाम उपलब्ध नहीं थे तो नारायण नाम रख लिया था। कुछ तो रखना ही पड़े नाम। अब जब नाम ही भगवान के थे तो उसने रख लिया होगा कुछ भी एक। इस ख्याल से नहीं कि यह भगवान का नाम है।

मरते वक्त अपने बेटे को बुलाया, "नारायण।" घबड़ा रहा होगा। बेटे को बुलाया होगा कि कुछ आखिरी बात कह दूं कि कहां धन गड़ा रखा है। जिंदगी भर चोरी की, बेईमानी की, धोखाधड़ी की तो कहीं तो गड़ाकर रखा होगा। उन दिनों बैंक तो होते नहीं थे। तो बेटे को बता दूं कि कहां छिपा है, नहीं तो जिंदगी भर की मेहनत बेकार गयी।

लेकिन कहानी कहती है कि ऊपर बैठे नारायण ने सुना कि बुला रहा है, "नारायण"। बड़े प्रसन्न हो गये ऊपर के नारायण और उन्होंने तत्क्षण उसके मरने पर उसे स्वर्ग बुला लिया। अजामिल स्वर्ग गया।

यह बात फिजूल है। यह बात दो कौड़ी की है। यह कहानी किन्हीं जालसाजों ने गढ़ी है। यह तरकीब की बात है। यह उन पंडितों ने गढ़ी है, जो तुमसे कहते हैं रहे आओ जिंदगी में चोर-बेईमान, कोई हर्जा नहीं। मरते वक्त एक दफा नाम ले लेना। और उन्होंने तो बात यहां तक बढ़ा दी कि तुमसे भी नाम लेते न बने... क्योंकि कब मौत आयेगी कुछ पक्का तो है नहीं। जबान लड़खड़ा जाये, बोलते न बने, तो पंडित तुम्हारे कान में दोहरा देगा नाम तो भी चल जायेगा।

मरते आदमी के मुंह में गंगाजल डालते हैं। वह मरे जा रहे हैं। अब उनको कोई फर्क नहीं कि कौन सा जल क्या है। उनको कुछ होश भी नहीं है। उनके दांत बंद हुए जा रहे हैं और लोग चम्मच से दांत खोलकर और गंगाजल डालते हैं।

जिंदगी पड़ी थी, तब गंगा न गये । अब यह बोतल में भरी गंगा इनके पास लाई गई है । जिंदगी पड़ी थी, तब कभी प्रभु को न पुकारा, अब कोई पंडित फीस लेकर इनके कान में रामनाम जप रहा है । ये मूढ़तायें इसलिए चलती हैं कि तुम्हारे झूठ के अनुकूल हैं ।

लेकिन जीसस को दिखाई पड़ गया । और जीसस ने तत्क्षण जो दूसरा वचन कहा....पहला वचन कि हे प्रभु, यह मुझे क्या दिखला रहा हैं ? एक क्षण का सन्नाटा––और वही सन्नाटा क्रांति का सन्नाटा था । उसी अण में रूपांतरण हुआ । उस क्षण में अब तक जो जोसेफ का बेटा जीसस था, अब परमात्मा का बेटा क्राइस्ट हो गया । उस एक क्षण के सन्नाटे में जीसस ने अपने भीतर देख लिया वह बबूला उठता हुआ । शिकायत अभी भी है । तत्क्षण कहा कि हे प्रभु, तेरी मर्जी पूरी हो, मेरी नहीं । दाय विल बी डन, नॉट माइन ।

––प्रार्थना हो गई ।

शिकायत प्रार्थना बन गई । वही ऊर्जा जो शिकायत बन रही थी, प्रार्थना बन गई । बबूला फूट गया शिकायत का । कृतज्ञता का भाव फैल गया सारे प्राणों के रोयें-रोयें में–तेरी मर्जी पूरी हो । ‘ दाय, किंगडम कम ‘दाय विल बी डन’ । तेरा राज्य उतरे । मैं कौन हूं ? तू जो चाहे वैसा हो । फांसी तो फांसी । मैं कौन हूं ? तेरी मर्जी ही ठीक मर्जी है । मेरी मर्जी गलत हो जायेगी । मैं आया कि गलती हो जायेगी ।

इसको मैं प्रार्थना कहता हूं । प्रार्थना का अर्थ है, स्वीकार । तू ठीक है । जैसा है, ठीक है । और तूने जो किया, ठीक है और तू जैसा कर रहा है, ठीक है । और तू जैसा करेगा, ठीक है । तू गलत होता ही नहीं । तू सदा ठीक है । कभी-कभी मुझे अगर गलती दिखाई पड़ती है तो वह मेरी गलती है ।

प्रार्थना का अर्थ है, अहोभाव । प्रार्थना महोत्सव है धन्यवाद का; नृत्य है । मेरे लिये प्रार्थना का अर्थ है, जब कभी तुम्हारे मन में कृतज्ञता का भाव उठे, नाच लेना; प्रभु को धन्यवाद दे देना कि हे प्रभु तूने श्वास दी, आंखें दीं, कान दिये । आंखों से हरियाली देखी किसी वृक्ष कीं । देखते इन वृक्षों को ? ये अशोक और सरू के वृक्ष ! इनको देखकर तुम्हें कभी धन्यवाद देने का मन नहीं उठता ? कि आंखें न होतीं, अगर अंधे होते तो ? यह हरियाली से तुम चूक जाते । यह महाकाव्य हरियाली का तुम अंधे नहीं हो इसलिए देख पाते हो । यह पक्षियों की चहचहाहट, यह कोयल की कुहू-कुहू तुम बहरे नहीं हो इसलिए सुन पाये ।

तो कभी कोयल को सुनकर तुमने भगवान का धन्यवाद दिया कि हे प्रभु, तूने मुझे कान दिये ! कभी सागर की उत्तुंग लहरों को देखकर तुम नाचे और तुमने

कहा, हे प्रभु तूने मुझे जीवन दिया कि मैं यह नृत्य देख सका अपूर्व ! कभी हिमालय के उत्तुंग शिखर को देखकर, हिमाच्छादित उन शिखरों को देखकर तुम्हारे मन में यह भाव उठा कि जायें, सिर रख दें परमात्मा के चरणों पर कि तेरी लीला अपरंपार है ! तो प्रार्थना ।

मेरे लिये प्रार्थना का अर्थ धन्यवाद है । धन्यवाद कैसे उठे, यह सवाल नहीं है । किस कारण उठे, यह सवाल नहीं है । इसलिए मैं तुमसे यह भी नहीं कहता, तुम कोई औपचारिक प्रार्थना करो; कि तुम मस्जिद जाओ, मंदिर जाओ । मस्जिद-मंदिर की प्रार्थना तो झूठी ही होगी । अरे प्रार्थना के लिये मस्जिद-मंदिर जाने की जरूरत है ? उसका मंदिर चारों तरफ मौजूद है । तुम जहां बैठे वहीं मौजूद है । जरा आंख खोलो । जरा कान खोलो । सब तरफ वही मौजूद है । और तुम्हारे रोयें-रोयें में और तुम्हारे पल-पल में और क्षण-क्षण में कृतज्ञता का भाव समा जाये । तुम्हारी हर घड़ी कहने लगे, तेरी मर्जी पूरी हो । इसको मैं कहता हूं सम्राट ।

तुम पूछते हो, ‘ आप कहते हैं, प्रार्थना सम्राट की तरह करो, भिखारी की तरह नहीं । ’ भिखारी की तरह तो कैसे करोगे ? भिखारी का तो मन भीख में होता है ।

एक भिखारी तुम्हें रास्ते पर पकड़ लेता है । कहता है, दाता कुछ दे जाओ । कहता है, आप बड़े दानी । कहता है, आप बड़े पावन; कि आप बड़े सज्जन । मगर उसे इन बातों से मतलब है ? वह सिर्फ खुशामद कर रहा है । उसे मतलब तुम्हारी जेब से है । ये सब बातें तो तरकीबें हैं तुम्हारी जेब से पैसे निकाल लेने की । नजर पैसे पर लगी है । दोगे तो धन्यवाद दे देगा । नहीं दोगे, गालियां देगा । याद रखना, भिखमंगे गालियां देते हैं, जब तुम नहीं देते तो । अधिक लोग तो उसी डर में देते हैं कि गालियां देंगे ।

मगर तुम यह भी समझना, दूसरी बात शायद तुम्हें ख्याल में न हो । अगर दो तो वे समझते हैं, तुम बुद्धू हो । न दो तो गाली देते हैं कि दुष्ट, दो पैसे न निकाले ! अरे महाकंजूस! मारवाड़ी !! दो पैसे न निकले ? दो, तो समझते हैं खूब बनाया । बड़ा बुद्धू है । देखने में तो बड़ा होशियार दिखता था । एक मिनट में पछाड़ा । पैसे निकलवा लिये ।

तुमसे तो मतलब ही नहीं है । ख्याल रखो, भिखारी को तुमसे क्या मतलब? तुमसे क्या लेना-देना ? कोई तुम्हारे लिये बैठा था वहां कि राह देखता था कि आप आयेंगे महापुरुष, और आपके चरणों में सिर रखेगा और धन्यभाग होगा, बड़ा धन्यभागी होगा । ऐसे थोड़े ही बैठा था ! देखता था कि कोई गरम जेबवाला

आदमी निकले। भिखमंगे भी सभी से थोड़े ही मांगते हैं।

तुम जरा ऐसा करो एक दिन, जरा गरीब के दीन-हीन वस्त्र पहनकर निकलो। जूते टूटे-फूटे, सड़े-गले, टोपी सदियों पुरानी, बाप-दादों का पड़ा हुआ कोई कोट-मोट हो वह पहनकर जरा निकलो, वही भिखमंगा ऐसा मुंह फेर लेगा। इससे मांगना और झंझट। अपने से न छीन ले। यह खुद हालत में है कि किसीसे झपट ले। कि निकाल जा भाई, जल्दी कर, और दूसरे ग्राहक आते होंगे।

और तुम अच्छे चमकते हुए जूते पहनकर निकले, और तुम्हारे कपड़े और तुम्हारी कार। और भिखमंगा खड़ा है सामने, प्रार्थना कर रहा है कि दाता, मुझ याचक पर ख्याल करो। तुम जैसा बड़ा दाता रहे और मैं भूखा मर जाऊं। आज मुझे खाना न मिले. . .।

भिखमंगे की जो भाषा है वह प्रार्थना नहीं है, वह चालबाज है। और जब तुम भिखमंगे की तरह परमात्मा के द्वार में खड़े होते हो तब वह भी चालबाजी है। तब तुम कहते हो, हे पतितपावन! आप महान, मैं क्षुद्र। मैं पापी, तुम परमात्मा। मगर वह सब चालबाजी है। वह बात सच नहीं है।

एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा कि वह . . . लाज रह गई। मैंने कहा, क्या हुआ? एकदम ऐसे ही शुरू किया उसने कि लाज रह गई। मैंने कहा, हुआ क्या? उसने कहा, मैं भक्त हूं हनुमानजी का और हनुमानजी की मढ़िया पर जाता हूं। लड़के की नौकरी नहीं लग रही थी. मैंने बिलकुल अल्टीमेटम दे दिया। मैंने कहा दिया, पंदरह दिन के भीतर लगवा दो महाराज। नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं। पंदरह दिन के भीतर लग गयी। क्या . . . हनुमानजी की भी कैसी कृपा!

मैंने कहा, लाज तेरी रह गई कि हनुमानजी की रह गयी? लाज किसकी रह गयी? तो मैंने कहा, संयोग की बात कि तेरे लड़के की नौकरी लग गयी। अब भूलकर ऐसा अल्टीमेटम मत देना : यह संयोग की बात है। दुबारा मत करना कोशिश जांच-परख की, नहीं तो हनुमानजी की लुटिया डूब जायेगी।

उसने कहा, क्या मतलब? मैंने कहा, तू अगर मानता नहीं तो जरा करके देख ले। कल फिर जाकर कुछ और मांग ले। पंदरह दिन का अल्टीमेटम फिर दे आ। दो-चार दफे करके देख क्योंकि एक दफा से कुछ सिद्ध नहीं होता। एक दफा संयोग भी हो सकता है। वह बोला कि आपकी बात भी ठीक होती है। मैं करके देखूंगा। उसने दो-चार बार प्रयोग करके देखा, कुछ न हुआ। वह मेरे पास आया और उसने कहा, आप ठीक कहते थे। लाज उन्हीं की बची थी। कुछ नहीं निकला। फोकट। सब बेकार की बातें हैं। हनुमानचालिसा रट रहा हूं आज

महीने भर से। चार दफे अल्टीमेटम दिया, कोई सार नहीं निकला। मेरी सब श्रद्धा उठ गयी।

मगर वह मुझ पर भी नाराज था। कहने लगा, आपने ठीक नहीं किया। नहीं करना चाहिये। मेरी बड़ी श्रद्धा थी। मैंने कहा, वह कोई खाक श्रद्धा थी! श्रद्धा थी ही नहीं इसलिए उठ गई। श्रद्धा को कभी उठते देखा है? श्रद्धा आई तो आई; फिर जाती नहीं। ये सब झूठी श्रद्धायें हैं।

तुम जब प्रार्थना करते हो भिखमंगे की तरह तो वह प्रार्थना ही नहीं है। तुम जब प्रार्थना करते हो भिखमंगे की तरह तो श्रद्धा ही नहीं है। यह तो अश्रद्धा की सूचना है। तुम भगवान से भी बड़ा सांसारिक संबंध बना रहे हो। लेने-देने का संबंध, दुकानदारी का संबंध, सौदागरी। तुम सौदा कर रहे हो। प्रार्थना कहां होगी सौदे में? सौदे में प्रार्थना दब जायेगी, मर जायेगी। उसके प्राण नष्ट हो जायेंगे।

रामकृष्ण ने विवेकानंद को कहा....विवेकानंद के पिता मर गये तो बड़े कर्ज में छोड़ गये। मस्तमौला आदमी थे। तो ही तो विवेकानंद जैसा बेटा हो सका' कुछ जोड़-जाड़कर नहीं रख गये थे। दिल खोलकर जिये थे। उलटी उधारी छोड़ गये थे। सभी भले आदमी छोड़ जाते हैं।

तो विवेकानंद जरा मुश्किल में थे। वह उधारी भी चुकानी है। एक ही बेटे और मां भी थी। कभी-कभी तो ऐसी हालत हो जाती कि घर में खाने को भी न होता। कभी-कभी ऐसा हो जाता, घर में इतना ही खाने को होता कि या तो मां खा ले या बेटा। तो विवेकानंद कहते कि मुझे आज जरा किसी मित्र ने भोजन दिया है, मैं जरा मित्र के यहां भोजन कर आऊं। तब तक तू भोजन इत्यादि कर ले। और जाकर सड़कों पर घूमते रहते। घूम-घामकर घर आते। बड़ी प्रसन्नता से घर लौटते। दरवाजे पर ही आकर प्रसन्नता बनानी पड़ती। भूख तो पेट में सुलगती, दरवाजे पर बड़े प्रसन्न होकर आकर लौटते पेट पर हाथ फेरते हुए। डकार भी लेते ताकि मां को भरोसा आ जाये। क्योंकि मां को भी शंका होती थी कि बार-बार कौन मित्र इसको देने लगे निमंत्रण? कभी दिखाई नहीं पड़ते। कोई निमंत्रण देने आता भी नहीं।

रामकृष्ण को पता लगा तो रामकृष्ण ने कहा, अरे तू भी खूब पागल है। अरे मां से मांग क्यों नहीं लेता? जा अंदर। आखिर मां किसलिये है? तू काली से मांग क्यों नही लेता? क्या चाहिये तुझे? जा मांग ले। मैं बाहर बैठा, तू भीतर जा। अब जब रामकृष्ण कहें तो विवेकानंद भीतर गये। घंटा भर लगा दिया।

लौटे वहां से आंसुओं मे गद्गद् । बड़े प्रसन्न । रामकृष्ण ने कहा, तो मिल गया न ? मांग लिया न ? विवेकानंद ने कहा, क्या कह रहे हैं ? कौन सी चीज मांगनी है ? रामकृष्ण ने कहा, तू गया किसलिये था ? तब उन्हें याद आई । उन्होंने कहा क्षमा करें, वह तो मैं भूल ही गया । वहां जब सामने पहुंचता हूं तो धन्यवाद का एसा भाव उठता है कि मांगने की इच्छा, मांगने का ख्याल ही मिट जाता है । जो दिया है वह क्या कम है ? मुझे मुझको दिया, इससे अब और क्या देने को हो सकता है ?

रामकृष्ण ने कहा, तू फिर जा । नहीं चलेगा । ऐसे नहीं चलेगा । ऐसे पेट नहीं भरेगा । मांग ले । ऐसा तीन बार भेजा । और तीन बार विवेकानंद बाहर आये--बड़े गद्गद्, और भूल-भूलकर । फिर रामकृष्ण खूब हंसे और उन्होंने कहा, आज तेरी परीक्षा थी । अगर मांगता तो मुझसे फिर तेरा कोई संबंध न रह जाता । आज तू जीत गया । तू जीत गया । तू परीक्षा में पूरा उतरा । तीन बार तुझे भेजा धक्के दे-देकर और तीन बार तू बिना मांगे आ गया । तो तुझे प्रार्थना का राज मिल गया ।

प्रार्थना मांग नहीं है । प्रार्थना भिखमंगापन नहीं है । प्रार्थना सम्राट का धन्यवाद है । तुम्हें इतना दिया है कि तुम सम्राट हो । और क्या होगा जिससे तुम सम्राट हो जाओगे ? कमी क्या है ? धार्मिक व्यक्ति वही है जो अपने भीतर खोजता है और कोई कभी नहीं पाता । जो कहता है, और क्या इससे ज्यादा हो ही नहीं सकता । जितना दिया है, अपरंपार है ।

और इस भाव के पीछे ही आती है कृतज्ञता, छाया की तरह । एक परम धन्यभाग का भाव, एक अहोभाव उठता है--सुगंध की तरह । दूर आकाश तक उठता चला जाता है । जैसे दिये से ज्योति उठती है, जैसे अगरबत्तियों से गंध उठती है, जैसे फूलों से सुवास उठती है ऐसी ही सुवास प्रार्थना है । सम्राट ही कर सकते हैं । अहैतुकी ही होती है प्रार्थना । हेतु आया, प्रार्थना नष्ट हो गयी । हेतु आया, व्यवसाय आया । हेतु गया, प्रेम आया ।

प्रार्थना प्रेम है । अहैतुक ही होता है प्रेम । तुमने किसीसे प्रेम किया तो तुम क्या कारण बता सकते हो कि किस कारण ? अगर तुम कारण बताओ तो प्रेम नहीं ।

जैसे तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गये और किसीने पूछा कि क्या कारण है ? तो तुमने कहा, बड़ी जायदाद है और लड़की एक ही है बाप की । सब अपना ही हो जाने वाला है । तो यह प्रेम हुआ ? हेतु तो हुआ लेकिन प्रेम नहीं हुआ । तुमने अगर कहा कि शरीर सुंदर है इसलिए; तो भी हेतु हो गया । तो तुम चमड़े

के पारखी हो । तुम चमड़े के दुकानदार हो--अष्टावक्र ने जिनको चमार कहा है; तुम चमार हो ।

अष्टावक्र ने तो जनक के दरबार में लोगों को कह दिया था कि सब चमारों को यहां किसलिए इकट्ठा किया है ? जनक ने बुलाया है दरबार, सारे पंडित राज्य के इकट्ठा हुए । अष्टावक्र के पिता भी महापंडित थे, वे भी गये हैं । वहां बड़ा विवाद हो रहा है । जनक ने कुछ जीवन की गुत्थियां सुलझानी चाहीं । अष्टावक्र घर आये तो मां ने कहा कि पिता को गये बहुत देर हो गई, अब तक लौटे नहीं । विवाद चल रहा था तो वे उलझ गये । पंडित आदमी थे । जब तक जीते न, हटें कैसे ?

तो अष्टावक्र उनको लेने गये । वे आठ जगह से टेढ़े थे इसलिए उनका नाम अष्टावक्र । उनको देखकर पंडितों की सभा हंसने लगीं । पंडितों को हंसते देखकर अष्टावक्र ने और जोर का ठहाका मारा । एक सन्नाटा हो गया । लोग जो हंसते थे, एकदम चुप हो गये कि बात क्या है ? यह आदमी आठ अंग से टेढ़ा भी है और पागल भी मालूम होता है । ठहाका इतने जोर से मारा कि जनक भी सहम गये । और जनक ने पूछा कि भई, ये हंसते हैं यह तो मेरी समझ में आता है कि क्यों हंसते हैं । ऊंट की तरह चलते थे वे । आठ अंग टेढ़े हों तो ऊंट से भी खराब हालत हो जाये । तो उसको देखकर हंसी आ गई होगी लोगों को । और पंडितों से ज्यादा नासमझ लोग तो कहीं होते भी नहीं । तो नासमझों को हंसी आ गई होग । दया आनी थी तो हंसी आ गई उलटी ।

तो जनक ने कहा, ये क्यों हसते हैं यह तो मेरी समझ में आ गया, बाकी तू क्यों हंसता है ? उसने कहा, मैं इसलिए हंसता हूं कि इन चमारों को यहां किसलिय इकट्ठा किया ? ये चमार यहां किसलिये भीड़ लगाये बैठे हैं ? जनक थोड़े हैरान हुए । उन्होंने कहा, तू इन्हें चमार कहता है ? सोच-विचारकर कह, ये मेरे राज्य के बड़े पंडित हैं । उन्होंने कहा, होंगे; लेकिन चमड़ी को ही जानते हैं, भीतर को नहीं । मैं बाहर से टेढ़ा-मेढ़ा हूं, भीतर तो देखो । मुझसे ज्यादा सीधी चेतना तुम्हें खोजने से न मिलेगी ।

और यही घटना जनक के जीवन में क्रांति की घटना बन गई । जनक ने उठकर चरण छुए अष्टावक्र के अष्टावक्र बिना विवाद में पड़े जीत गये । अष्टावक्र गुरु हो गये और महागीता का जन्म हुआ ।

तुमने अगर कहा कि मैं इस स्त्री को इसलिए प्रेम करता हूं कि इसकी चमड़ी सुंदर, कि इसका चेहरा सुंदर, कि शरीर बिलकुल ठीक अनुपात में है तो तुम चमार हो, प्रेमी नहीं । तुमने अगर कहा कि यह बड़ी बुद्धिमान है, बड़ी विचारशील

है, तो भी यह प्रेम नहीं। इसमें हेतु हो गया।

प्रेम तो अहैतुक होता है। तुम कहोगे, मुझे पता नहीं, बस प्रेम है; अकारण है। कारण खोजने जाता हूं तो नहीं पाता, कोई कारण नहीं पाता। बस, इसकी सन्निधि में मेरे हृदय में तरंगें उठने लगती हैं। बस, इसकी मौजूदगी में सब मुझे भूल जाता। बस, इसके पास ही मुझे परमात्मा का बोध होता हैं। इसके पास होते ही मुझे लगता है कि जीवन में कुछ अर्थ है। और कोई कारण नहीं है, मेरे जीवन की सारी अर्थवत्ता उसकी मौजूदगी से मिलती है--तो प्रेम।

जिस दिन तुम्हारे जीवन में सब हेतु गिर जाते हैं उस दिन प्रार्थना। अगर दो व्यक्तियों के बीच हेतु गिर जाता है तो प्रेम। अगर एक व्यक्ति और विराट के बीच हेतु गिर जाता है तो प्रार्थना। और जिस दिन कोई हेतु न रहा उस दिन तुम सम्राट हो गये।

सम्राट का मतलब क्या होता है?

स्वामी रामतीर्थ अपने को सम्राट कहते थे, बादशाह कहते थे। उन्होंने किताब लिखी है, 'राम बादशाह के छह हुक्मनामे। फकीर थे। लोग उनसे पूछते कि अपने को बादशाह क्यों कहते हो? तो उन्होंने कहा, बादशाह न कहूं तो क्या कहूं? पर लोगों ने कहा, आपके पास कुछ है तो है नहीं। उन्होंने कहा, इसीलिए तो बादशाह कहता हूं। मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं। मेरी सब जरूरतें पूरी हैं। परमात्मा के साथ जुड़ गया उसी दिन मेरी सब जरूरतें पूरी हो गयीं। अब मेरी कोई जरूरत नहीं है। अब मेरी कोई मांग नहीं है, कोई आवश्यकता नहीं है। सब दौड़-धूप चली गई। यही तो मेरा सम्राट होना है। यह मेरी बादशाहत है।

इसलिए तो हमने महावीर को सम्मान दिया, जिन्होंने सिंहासन छोड़ दिया और भिखमंगे हो गये। क्योंकि हमने देखा, भिखमंगे होकर इनके भीतर असली बादशाहत प्रगट हो गई। और हमने यह भी देखा कि जो सिंहासन पर बैठे हैं, भिखमंगे हैं। नाम मात्र को बादशाह हैं। मांग तो अभी जारी है। मांगते ही चले जाते हैं....मांगते ही चले जाते हैं। मांग का कोई अंत नहीं। और राज्य बड़ा हो, और बड़ा राज्य हो।

प्रार्थना उठती तभी है, जब तुम्हें यह भाव समझ में आ जाता है कि जैसा मैं हूं....प्रभु ने बनाया है तो गलती तो होगी कैसे? भूल तो होगी कैसे? प्रभु का निर्माण हूं, तो भूल-चूक कहां, भूल-चूक कैसे?

मैं अपने संन्यासियों को एक ही बात निरंतर कहता हूं, रोज-रोज कहता हूं, बार-बार कहता हूं कि तुम जैसे हो, परम सुंदर हो। तुम जहां हो वहीं मुकाम है। तुम जैसे हो वैसे ही होने में सारा रहस्य छिपा है। दौड़धूप छोड़ो। धन तो

मांगो ही मत, मोक्ष भी मत मांगो। मांगो ही मत। मांगना ही जाने दो। तुम जैसे हो, परिपूर्ण हो। तुम जैसे हो, सर्वांग-सुंदर हो।

इस भावदशा को जो उपलब्ध हो जाता है उसके जीवन में प्रार्थना की सुगंध, सुवास उठती है।

आखिरी प्रश्न : अथातो प्रेम जिज्ञासा। अब प्रेम की जिज्ञासा। क्या प्रेम की जिज्ञासा ही अनत्व प्रेम के अनुभव में रूपांतरित हो जाती है? कृपा करके समझायें।

अथातो जिज्ञासा, अथातो प्रेम जिज्ञासा। इससे ही हमने दरिया के सूत्र शुरू किये थे। अच्छा है. इसी पर पूरे करें। क्योंकि प्रेम ही बीज है और प्रेम ही फल है। क्योंकि प्रेम ही प्रारंभ है और प्रेम ही अंतिम अभिव्यक्ति।

अथातो प्रेम जिज्ञासा।

हमने जीवन में सब खोजा है....धन खोजा, मान-मर्यादा खोजी, प्रेम नहीं खोजा है; इसलिए हम अपंग मालूम होते हैं, दीन-हीन मालूम होते हैं। प्रेम में जिज्ञासा, प्रेम की खोज ही अंततःपरमात्मा की खोज बन जाती है। क्यों? क्योंकि प्रेम में अहंकार मिटता है, पिघलता है। प्रेम का अर्थ है, तुम्हारी मृत्यु। प्रेम का अर्थ है, तुम गये; तुम न रहे। और जहां तुम न रहे वहीं प्रभु है। तुम्हारी मौजूदगी बाधा है। गैर मौजूदगी द्वार बन जायेगी।

मरो, हे जोगी मरो, मरन है मीठा
तिस मरनी मरो, जिस मरनी मर गोरख दीठा

मिटो। शून्य हो जाओ। जाने दो इस अस्मिता को, इस अहंकार को, इस मैं भाव को। यह मैं भाव गया कि समाधि आई। यह मैं भाव ऐसे है जैसे बरफ। इसे पिघलने दो प्रेम में। यह पिघल जाये तो सरिता बन जाये।

तुमने देखा? पानी की तीन दशायें हैं; ऐसी ही मनुष्य के चेतना की तीन दशायें है। पानी पत्थर की तरह हो सकता है इसलिए, बरफ को हम पत्थर की बरफ कहते हैं। पानी की बरफ को पत्थर की बरफ कहते हैं। पत्थर जैसा हो सकता है कठोर, जड़। जरा भी हलन-चलन नहीं। बहाव सब अवरुद्ध।

फिर पिघले तो गति आती। गत्यात्मकता पैदा होती। बहाव शुरू होता, जीवन आता। फिर पानी भाप भी बन सकता है। भाप बने जाये तो आकाश में उड़ने लगता है। और परम जीवन मिलता, पंख लग जाते।

पत्थर कहीं नहीं जाता। बरफ जमा रहता पत्थर की तरह--कोई आना नहीं, कोई जाना नहीं। कोई गति नहीं, कोई विकास नहीं। कोई उत्क्रांति नहीं। जहां है वहीं के वहीं पड़ा रहता है, मुर्दा, जड़।

पानी में गति है। सागर की खोज शुरू हो गई। पानी चला। तुमने कभी देखा? अपने आंगन में पानी डाल दो तो वह भी चल पड़ता है सागर की तरफ। इतना थोड़ा सा पानी है, इतनी लंबी यात्रा की अभिलाषा करता है। चला सागर की तरफ। खोजने लगा, कैसे जाऊं। खोजने लगा मार्ग। चुल्लू भर पानी भी सागर की तरफ जाने की आकांक्षा से गतिमान होता है। और खोज लेता अंत में। किसी नाली का सहारा लेकर नाले तक पहुंच जायेगा। किसी नाले का सहारा लेकर नदी तक पहुंच जायेगा। किसी नदी का सहारा लेकर महानद तक पहुंच जायेगा। महानद का सहारा लेकर सागर में उतर जायेगा, पहुंच जायेगा। एकेक बूंद पानी की सागर में पहुंचने में समर्थ है।

बूंद को देखो तो भरोसा नहीं आता कि हजारों मील की यात्रा वह बूंद कैसे करेगी? कहीं भी खो जायेगी रास्ते में। कहीं भी कोई दबा देगा, मर जायेगी। लेकिन नहीं, गति आ गई तो सागर कितने ही दूर हो, लाखों मील दूर हो तो भी दूर नहीं—गति आ गई तो। और पत्थर का बरफ सागर में भी पड़ा रहे तो भी सागर करोड़ों मील दूर है क्योंकि पत्थर के बरफ में कोई गति नहीं। किनारे बैठा रहे पत्थर का बरफ तो भी दूर है। क्योंकि जब तक पिघले नहीं, सागर में बहे नहीं, मिले नहीं।

और फिर एक और दशा है अनिर्वचनीय। पानी तो सागर को खोजता है, भाप आकाश को खोजती है; और भी विराट को खोजती है। सागर की फिर भी सीमा है। होगा बड़ा, बहुत बड़ा, नदियों से बहुत बड़ा; लेकिन अंतर जो है नदी में और सागर में, वह परिमाण का है, क्वांटिटी का है, मात्रा का है; गुण का नहीं है। सागर में गुणात्मक भेद है। अनंत आकाश, कोई सीमा नहीं। कोई तट नहीं, कोई किनारा नहीं। न कहीं शुरू होता, न कहीं अंत होता।

जैसे ही पानी सागर में गिरा कि आकाश की यात्रा शुरू हो जाती है। चढ़ने लगता किरणों का सहारा पकड़कर। जैसे नदियों का सहारा लेकर सागर तक आया, किरणों का सहारा पकड़कर चढ़ने लगता आकाश की तरफ। किरणों की सीढ़ियां बना लेता। किरणों के धागों के सहारे, अदृश्य किरणों के सहारे आकाश की यात्रा शुरू हो जाती।

ये तीन ही दशायें चेतना की भी हैं। जब तुम्हारे जीवन में प्रेम नहीं तो तुम बरफ की तरह जमे हुए हो। जब प्रेम आयेगा तब तुम पिघलोगे। इसलिए मैं प्रेम के नितांत पक्ष में हूं कि कम से कम पिघलो तो। प्रार्थना दूर की बात है अभी, कम से कम प्रेम तो हो। चलो किसी के पास पिघलो—किसी स्त्री, किसी पुरुष, किसी मित्र, किसी बेटे, किसी मां, किसी पिता, किसी के पास पिघलो। कहीं तो पिघलने का

पाठ सीखो। पिघले तो सागर की तरफ चले। तो प्रेम पिघलाता है।

फिर जिस दिन तुम पिघलकर आकाश की तरफ चलोगे उस दिन प्रार्थना। प्रेम का मतलब हुआ, दो व्यक्तियों के बीच पिघलो। और प्रार्थना का अर्थ हुआ, व्यक्ति और समष्टि के बीच पिघलो। मगर पाठ तो दो व्यक्तियों के बीच ही सीखने पड़ेंगे।

इसलिए जिसने प्रेम जाना है वही कभी प्रार्थना जान सकता है। जिसने प्रेम ही नहीं जाना वह प्रार्थना नहीं जान सकेगा। इसलिये मैं प्रेम का पक्षपाती हूं। क्योंकि मैं देखता हूं, प्रेम ही अंततः प्रार्थना बनती है।

तो ये तीन तल हैं। काम : पत्थर। जमे हैं। मगर काम में ही छिपा है प्रेम जैसे पत्थर में, बरफ में छिपा है जल। इसलिए मैं काम-विरोधी भी नहीं हूं। मैं बरफ का विरोधी नहीं हूं। कैसे हो सकता हूं? क्योंकि बरफ का अगर विरोध करो तो जल कहां से लाओगे? फिर तुम्हारे पास जल न बचेगा। पत्थर के बरफ से ऊपर जाना है लेकिन दुश्मनी नहीं है कोई; मैत्री साधनी है।

काम से मैत्री साधो। काम में ही परमात्मा की ही झलक खोजो। संभोग में भी समाधि की किरण को पकड़ो। पिघलाओ। काम पिघल जाये, प्रेम बन जाये। प्रेम बनते ही रूपांतरण हो गया। बरफ पड़ा था, कहीं नहीं जाता था। प्रेम जाने लगा। गति आ गयी। चहल-पहल आई, तरंग उठी, जीवन उभरा।

फिर प्रेम में ही मत रुक जाओ। फिर प्रार्थना बनने दो। अभी व्यक्ति के पास पिघले, अब समिष्ट के पास पिघलो। जब एक से मिलकर इतना रस मिलता है तो अनंत से मिलकर कितना न मिलेगा! जब एक स्त्री और पुरुष के बीच इतने प्रेम के गीत उठ सकते हैं, तुम जरा सोचो तो उन रहस्यवादियों की—दरिया की, कबीर की, दादू की, नानक की। जरा सोचो उनकी, जो ऐसे ही संभोग में विराट के साथ रत हो गये हैं। समाधि विराट के साथ संभोग है।

दो शरीर के बीच संभोग हो तो काम।

दो मनों के बीच संभोग हो तो प्रेम।

दो आत्माओं के बीच, दो शून्यो के बीच संभोग हो तो समाधि।

दो शरीर थोड़ी देर को ही मिल सकते हैं। ज्यादा देर को नहीं, क्षणभर को, फिर विलगाव। शरीर की हर दोस्ती दुश्मनी में टूट जाती है। शरीर का विवाह तलाक बन जाता है।

मन जरा ज्यादा देर को मिल सकते हैं, मगर बहुत ज्यादा देर को नहीं। एक जनम ज्यादा से ज्यादा मिल सकते हैं, लेकिन दूसरे जन्मों में फिर बिछड़न पैदा हो जाती है।

लेकिन जब दो आत्मायें मिलती हैं, जब दो शून्य करीब आते हैं तो एक ही

शून्य हो जाता है। फिर कोई बिछड़न नहीं है, फिर कोई वियोग नहीं है।

तो काम को बनाओ प्रेम, प्रेम को बनाओ प्रार्थना। ऐसे काम में छिपा हुआ राम प्रेम में बहेगा, गतिमान होगा, प्रार्थना में उठेगा, विराट आकाश बनेगा।

इसलिए दरिया के इन वचनों को शुरू करते समय मैंने कहा, अथातो प्रेम जिज्ञासा। अब प्रेम की जिज्ञासा।

आज इतना ही।